श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

हिन्दीभाष्यसमन्वितम्

शिवोपदिष्ट पूजा-पद्धतिसहित शैव-शाक्त-वैष्णव-गाणपत्य-
सौर-कार्त्तवीर्यादि मन्त्रों का दक्षिण-वाममार्गानुसारि
साङ्गोपाङ्ग विवेचन एवं कार्त्तवीर्य-दीपदानविधि-
प्रतिपादक सर्वातिशायी तान्त्रिक ग्रन्थ

हिन्दीभाष्यकारः
श्री कपिलदेव नारायण 'स्वरूपावस्थित'
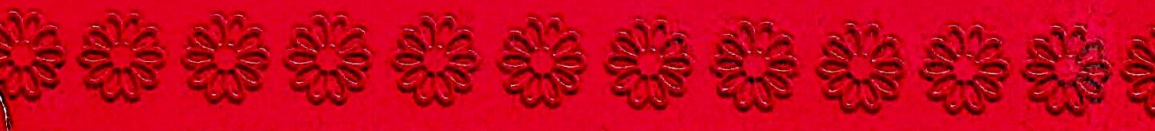
पुस्तक परिचय

महाकालेनयत्प्रोक्तम्पञ्चमीमुक्तिसाधनम्।
सर्वेषांम्मेरुतां यातन्तत्तन्त्रं मेरुसञ्ज्ञितम्॥

जो यह महाकाल द्वारा कहा गया पञ्चमीमुक्ति साधन जहाँ मध्यमणि की तरह गुम्फित है वह तन्त्र मेरुतन्त्र के नाम से जाना जाता है।

कलियुग में मनुष्य अल्पायु होता है। वह केवल शिश्नोदर परायण रहता है ऐसे में मृत्यु के उपरांत वह प्रेत योनि में ही भटकता रहता है। ऐसे कलियुग के पशुओं के उत्थान के लिए भगवान महाकाल ने मुक्ति के साधनों को तन्त्र के मध्यमणि या मेरु की तरह गुम्फित कर दिया है। भगवान शिव के द्वारा भगवती गौरी व देवों को कैलाश पर्वत पर यह उपदिष्ट है। इसमें तंत्र साधना के समस्त पक्षों का सम्यक् वर्णन है।

सामान्यतया दक्षिणमार्गीय ग्रन्थ वाममार्गीय ग्रन्थों की व वाममार्गीय ग्रन्थ दक्षिणमार्गीय ग्रन्थों की निंदा करते नजर आते हैं, लेकिन यहाँ ऐसा नहीं है। यहाँ दक्षिणमार्ग व वाममार्ग दोनों को बराबर महत्त्व देते हुए दोनों साधना पक्षों का वर्णन किया है। यह इस ग्रन्थ के महाकाल प्रोक्त होने का प्रमाण है।

इस ग्रन्थ में दीक्षा प्रकरण से प्रारंभ कर मंत्र पुरश्चरण, देवता पूजन व प्रयोगों का वर्णन किया गया है। ग्रन्थ में दशमहाविद्या साधना, अन्य भगवती के स्वरूपों की साधना, शिव, विष्णु, सूर्य व गणेश साधना के साथ-साथ नवग्रह साधना का विधान है। इन सब विषयों का एक स्थान पर साधकों को हस्तामलकवत् प्राप्त होना परमेश्वर की कृपा है। आशा है कि साधक इस महद्ग्रन्थ से लाभान्वित हो इष्टाराध्य की साधना करेंगे।
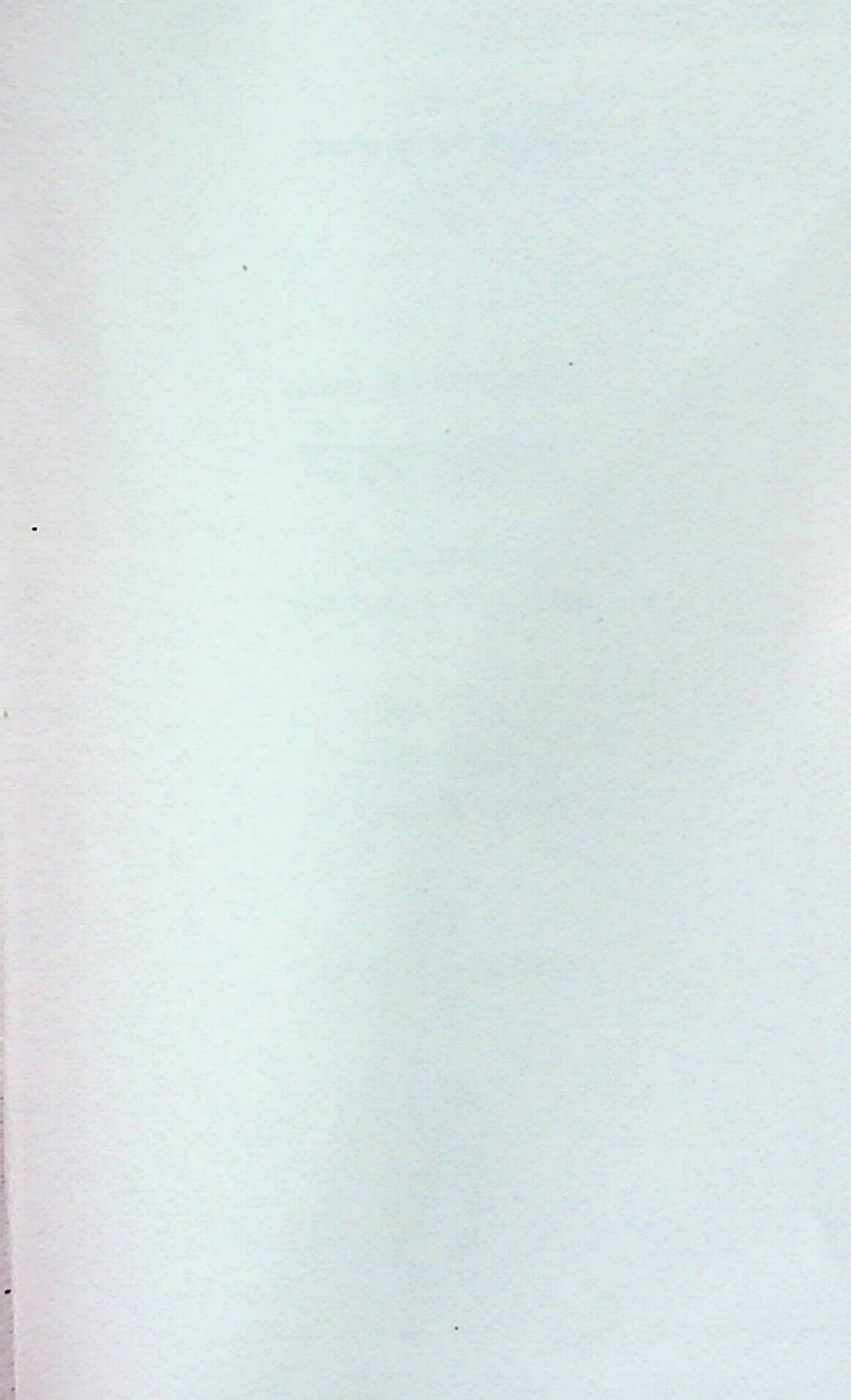
॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
525

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

द्वितीयो भागः * 9–14 प्रकाशः

भाषाभाष्यकारः
स्वरूपावस्थित
श्री कपिलदेव नारायण

संस्कर्त्ता
आचार्य श्रीनिवास शर्मा

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

मेरुतन्त्रम् (द्वितीय भाग)

पृष्ठ : 18+430

ISBN : 978-93-89665-15-4 (Set)

प्रकाशक

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के. 37/117 गोपालमन्दिर लेन

पो. बा. नं. 1129, वाराणसी 221001

दूरभाष : +91 542-2335263; 2335264

email : chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com

website : www.chaukhamba.co.in

प्रथम संस्करण 2021 ई०

मूल्य : ₹5000.00 (1-5 भाग सम्पूर्ण)

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा पब्लिशिंग हाउस

4697/2, भू-तल (ग्राउण्ड फ्लोर)

गली नं. 21-ए, अंसारी रोड

दरियागंज, नई दिल्ली 110002

दूरभाष : +91 11-23286537

email : chaukhambapublishinghouse@gmail.com

•

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

38 यू. ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर

पो. बा. नं. 2113, दिल्ली 110007

•

चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे)

पो. बा. नं. 1069, वाराणसी 221001

प्रस्तावना

परमकारुणिक परमेश्वर के अपार संसार में विद्यमान अनेक दुःख-परम्पराओं से मानवों की रक्षा के लिये तत्तत् ऋषियों द्वारा षडङ्ग वेद, दर्शन, आयुर्वेद, उपवेद, पुराण आदि का आविर्भाव किया गया। उनमें पारलौकिक एवं इहलौकिक फल-साधक प्रभूत दुर्लभ अनुष्ठानों के होते हुये भी अल्पायु लोगों के लिये वे शीघ्र सिद्धि प्रदान करने वाले नहीं थे; इसीलिये जगत् के कल्याण की कामना से जगदम्बा उमा के द्वारा अल्पायु जनों के कल्याणार्थ चिन्तित होकर जिज्ञासा प्रकट किये जाने पर भगवान् शंकर ने सर्वोत्तम तन्त्रशास्त्र का प्रतिपादन किया। फिर भी 'तन्त्राणां गहनो गतिः' इस उक्ति के अनुसार तन्त्र अपने-आपमें अतिशय गूढ़ अर्थ को समाहित रखने वाला शास्त्र है। 'तन्त्र' शब्द का शाब्दिक अर्थ है—तनोति तन्यते वेति तन्त्रम्। शास्त्रों में तन्त्र का लक्षण इस प्रकार स्पष्ट किया गया है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च मन्त्रनिर्णय एव च।
देवतानाञ्च संस्थानं तीर्थानाञ्चैव वर्णनम्॥
तथैवाश्रमधर्मञ्च विप्रसंस्थानमेव च।
संस्थानञ्चैव भूतानां यन्त्राणाञ्चैव निर्णयः॥
उत्पत्तिर्विबुधानाञ्च तरूणां कल्पसंज्ञितम्।
संस्थानं ज्योतिषाञ्चैव पुराणस्थानमेव च॥
कोशस्य कथनञ्चैव व्रतानां परिभाषणम्।
शौचाशौचस्य चाख्यानं स्त्रीपुंसोश्चैव लक्षणम्॥
राजधर्मो दानधर्मो युगधर्मस्तथैव च।
व्यवहारः कथ्यते च तथा चाध्यात्मवर्णनम्॥
इत्यादिलक्षणैर्युक्तं तन्त्रमित्यभिधीयते।

अर्थात् जिसमें सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्त्रनिर्णय, देवताओं का संस्थान, तीर्थ, आश्रम धर्म, विप्रसंस्थान, भूतसंस्थान, यन्त्रनिर्णय, देवताओं की उत्पत्ति, वृक्षों की कल्प-संज्ञात्व, ज्योतिषसंस्थान, पुराणसंस्थान, कोशकथन, व्रतकथन, शौच-अशौच, स्त्री-पुरुष-लक्षण, राजधर्म, दानधर्म, युगधर्म, व्यवहार, अध्यात्म-वर्णन इत्यादि विषयों का विवेचन रहता है, वह शास्त्र 'तन्त्र' शब्द से अभिहित होता है। मनुष्य की समस्त दैवी साधनायें तन्त्र पर ही अवलम्बित होती हैं; यतः समस्त

साधनाओं के गूढ़ रहस्य तन्त्रशास्त्र में ही प्रस्फुटित होते हैं। इसमें स्थूलतम साधन-प्रणाली से लेकर अतिगुह्य मन्त्रशास्त्र एवं अतिगुह्यतर योग-साधनादि के समस्त क्रियाकौशलों का सांगोपांग विवेचन रहता है। यद्यपि तन्त्रों में समाहित दार्शनिक तत्त्व भी अतीव सूक्ष्म हैं, तथापि वे प्रचलित दर्शनशास्त्रों के समान भाषाजाल से जटिल भाष्यों, टीकाओं, नानाविध मत-मतान्तरों एवं विविध वादों द्वारा दुर्बोध्य नहीं हैं; फिर भी साम्प्रदायिक साधनसंकेतज्ञान से सर्वथा शून्य जनों के लिये तन्त्रोक्त साधनजाल में प्रविष्ट होना कथमपि सम्भव नहीं है। जिस प्रकार मनुष्य की प्रकृति सात्त्विक, राजसिक एवं तामसिक-भेद से तीन प्रकार की होती है, उसी प्रकार यह तन्त्रशास्त्र भी सात्त्विक, राजसिक, तामसिक भेद से त्रिविध होता है। साथ ही इसकी साधनप्रणाली भी तदनुरूप गुणभेद से तीन प्रकार की व्याख्यात होती है। फलितार्थ यह है कि जो साधक जिस प्रकृति से ओत-प्रोत होता है एवं जैसी उसकी रुचि होती है, तदनुरूप साधनपथ को अंगीकार करके ही वह अपने इस नश्वर जीवन को सार्थक बनाने में समर्थ होता है। जिस प्रकार देवस्वरूप अथवा दैवी गुणयुक्त जीवों की जननीरूपा शक्ति है, उसी प्रकार असुर गुणयुक्त अथवा असुरों की भी जननीरूपा शक्ति ही है। यही कारण है कि देवता एवं असुर दोनों ही उसकी उपासना में प्रवृत्त रहते हैं, दोनों ही अपने-अपने स्वभावानुरूप उपासना की प्रणाली का अवलम्ब ग्रहण करते हैं और साधना की प्रकृति के अनुसार ही साधनफल को अवाप्त करते हैं। यही कारण है कि शास्त्र में दोनों ही साधन-प्रणालियाँ विवेचित रहती हैं।

वेदों का अनुसरण करते हुये साधनपथ पर अग्रसर होने वाले साधक साधारणतः पाँच उपासक-सम्प्रदायों में विभक्त हैं—गाणपत्य, सौर, शाक्त, वैष्णव एवं शैव। लोक की अज्ञानतावश ये लोग अलग-अलग देवताओं के उपासक कहे जाते हैं अथवा अपने को देवविशेष का उपासक उद्घोषित करते हैं। वस्तुतः वे सभी एक ही विश्वतोमुख भगवान् की अलग-अलग पाँच भावों में उपासना करने वाले होते हैं। स्पष्ट है कि समस्त देव-देवियों में भेदकल्पना जीव की अल्पज्ञता का ही द्योतक है। पद्मपुराण में स्वयं श्रीभगवान् ने कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा।।
एकोऽहं पञ्चधा भिन्नः क्रीडार्थं भुवनेऽखिले।

साधकश्रेष्ठ पुष्पदन्त भी कहते हैं कि वेद, सांख्य, योग, पाशुपत, वैष्णवमत-प्रभृति भिन्न-भिन्न भावों में तुम्हारी ही उपासना करते हैं। मनुष्य अपनी-

अपनी रुचि के अनुसार कोई सरल, कोई वक्र, नानाविध मार्गों का अवलम्बन कर एकमात्र तुम्हें ही लक्ष्य कर चलते हैं। जिस प्रकार नाना नदियों का पथ विभिन्न होते हुये भी सब एक ही समुद्र में आकर गिरती हैं, उसी प्रकार जिस-किसी मार्ग से होकर जायँ, अन्त में सब कोई भगवान् के चरणतल में ही पहुँचते हैं—

त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति
प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥

यही कारण है कि जीव को उपदिष्ट करते हुये शास्त्र भी कहते हैं कि—

यो ब्रह्मा स हरिः प्रोक्तो यो हरिः स महेश्वरः।
या काली सैव कृष्णः स्याद्यः कृष्णः सैव कालिका॥
देवदेवीं समुद्दिश्य न कुर्यादन्तरं क्वचित्।
तत्तद्भेदो न मन्तव्यः शिवशक्तिमयं जगत्॥

अर्थात् जो ब्रह्म हैं, वही हरि हैं और जो हरि हैं, वही महेश्वर हैं। जो काली हैं, वही कृष्ण हैं और जो कृष्ण हैं, वही काली हैं। देव-देवी को लक्ष्य कर कभी भी अपने मन में भेद उत्पन्न होने देना उचित नहीं है। देवता के चाहे कितने भी नाम और रूप हों, सभी एक ही हैं और यह जगत् भी शिव-शक्तिमय ही है। इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कन्ध में भी कहा गया है कि—

त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम्।
सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति॥

इस प्रकार स्पष्ट है कि पञ्चदेवता उस एक ही विश्वतोमुख भगवान् के स्फुरणमात्र हैं, फिर भी मनुष्य अपनी इच्छानुसार अपने उपास्य देवता का ग्रहण नहीं कर सकता; करना उचित भी नहीं है। शास्त्रविधि के अनुसार ही समस्त कार्य होने आवश्यक होते हैं; अतः सद्गुरु ही जीव की प्रकृति का विचार करके उसके उपास्य देवता को निर्दिष्ट करने में समर्थ होता है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों की जिस प्रकार भिन्न-भिन्न रसों में आसक्ति होती है, उसी प्रकार जीव की भी प्राक्तन कर्म और स्वभाव के अनुसार भिन्न-भिन्न देवताओं में आसक्ति होती है; साथ ही अपने-अपने स्वभाव के अनुसार ही किसी जीव की पुरुषदेवता के प्रति तो किसी जीव की स्त्री-देवता के प्रति तथा उन देवताओं के विविध वर्णों के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इन समस्त विषयों का किञ्चित् भी विचार न करके मात्र देवता का नाम-जप एवं रूप-ध्यान करने वाले साधक को शुभ फल की कथमपि प्राप्ति नहीं होती। यही

कारण है कि तन्त्रशास्त्र में इस विषय में प्रभूत विचारों और सिद्धान्तों का वर्णन समुपलब्ध होता है।

तन्त्रमतानुसार देवी की उपासना ही एकमात्र शक्ति की उपासना नहीं है। शक्ति के उपासक गाणपत्य, सौर, वैष्णव, शैव और शाक्त सभी हैं। उनके अनुसार पुरुष निर्गुण है और निर्गुण की उपासना नहीं होती। उपास्य देवता के पुरुष होने पर भी वास्तव में वहाँ उसकी शक्ति की ही उपासना होती है। शक्ति ही हमारे ज्ञान का विषय होती है। शक्तिमान अथवा पुरुष तो ज्ञानातीत सत्तामात्र है; अतः वह किसी भी समय किसी के भी बोध का विषय नहीं होता। वेद एवं तन्त्र में ब्रह्म को सच्चिदानन्द-स्वरूप कहा गया है। इस सच्चिदानन्द में सत् अंश पुरुष अथवा निर्गुण भाव तथा चित् एवं आनन्द अंश गुणयुक्त भाव अर्थात् प्रकृति है और इसी प्रकृति के द्वारा हमें पुरुष का परिचय प्राप्त होता है।

पुरुष और प्रकृति का विचारक ही सांख्य शास्त्र है। यहाँ दुःख के आत्यन्तिक विनाश को ही मुक्ति कहा गया है। सुख-दुःख आदि बुद्धि आदि के ही स्वभाव हैं और स्वभाव कथमपि नष्ट नहीं हो सकता। अतः बुद्धि के अतिरिक्त किसी सत्ता को स्वीकार न करने से दुःख आदि से मुक्तिलाभ असम्भव है; यही कारण है कि बुद्धि के अतिरिक्त सुख-दुःखादि से विरहित एक अतिरिक्त वस्तु अथवा आत्मा को अंगीकार करना पड़ता है और वह आत्मा ही सुख-दुःखादि से रहित निर्गुण पुरुष है। बुद्धि आदि के सुख-दुःखादि धर्म पुरुष में आरोपित होते हैं। इस आरोपित सुख-दुःखादि धर्म के अपगत होने पर ही जीव को मुक्ति-लाभ होता है। बुद्ध्यादि स्वयं में अचेतन पदार्थ हैं और चेतन के सान्निध्य में आने पर ही इनकी प्रवृत्ति देखी जाती है। बुद्धि आदि समस्त जड़ पदार्थ भोग्य पदार्थ हैं; परन्तु भोक्ता के बिना भोग्य सिद्ध नहीं होता। भोग्य पदार्थ का मात्र अनुभव होता है और जो अनुभव करता है या भोग करता है, वही पुरुष है।

सांख्यमत से पुरुष के संयोग द्वारा अचेतन बुद्धि आदि चेतन के समान हो जाते हैं तथा बुद्धि आदि के संयोग से अकर्ता पुरुष कर्ता के समान हो जाता है। सांख्य के पुरुष एवं प्रकृति पारस्परिक साहाय्य के विना संसारी रचना में स्वयं कथमपि समर्थ नहीं होते; किन्तु इसमें भगवदिच्छा का भी कोई प्रयोजन नहीं होता। लेकिन यह सांख्य-सिद्धान्त तन्त्र, उपनिषत् अथवा पुराण-सम्मत नहीं है। गीता के अनुसार भगवान् पुरुषोत्तम ही चरम तत्त्व हैं तथा प्रकृति एवं पुरुष इनकी शक्तिमात्र है। तन्त्रोक्त प्रकृति सांख्योक्त प्रकृति के समान जड़ नहीं है; अपितु वह पूर्ण चैतन्यमयी है। तन्त्रमत से शिव साक्षात् परब्रह्म हैं; न कि जाग्रदवस्थाभिमानी,

स्वप्नावस्थाभिमानी एवं सुषुप्त्यवस्थाभिमानी पुरुषविशेष। उनके दो विभाव हैं—सगुण एवं निर्गुण। माया से उपहित परब्रह्म ही सगुण है और माया से अनुपहित होने पर वही निर्गुण कहलाता है। निर्गुण ब्रह्म के सगुण रूप में आने पर ही उसकी कृपा समझ में आती है, उसकी प्रसन्नता का ज्ञान होता है। इसीलिये शास्त्रों में गुणमयी ब्रह्ममूर्ति की उपासना का आदेश है। यह मूर्ति किसी के द्वारा कल्पित नहीं है; अपितु साधकों के कल्याण के लिये ब्रह्म स्वयमेव अपनी रूपकल्पना करता है। यही अरूप का रूप है और रूप होने पर भी वह शुद्ध चिन्मात्र है। सगुण भाव में शक्ति सुप्रकट रहती है और निर्गुण अवस्था में ब्रह्मशक्ति ब्रह्म में तल्लीन रहती है।

प्रकृति के साथ ब्रह्म का अविनाभाव सम्बन्ध है अर्थात् प्रकृति के विना ब्रह्म नहीं रहता और ब्रह्म के विना प्रकृति नहीं रहती। तिल में तेल के समान प्रकृति ब्रह्म में सदा अनुलिप्त, अभेद्य सम्वन्ध से रहती है। यह प्रकृति जब उसमें तल्लीन रहती है तब वह ब्रह्म निर्गुण कहलाता है। तब वह केवल चिन्मात्र, मन-बुद्धि से अतीत एवं समाधि से बोधगम्य होता है। प्रकृति जब उसमें जागृत हो जाती है तव वह केवल बोधमात्र या शून्यमात्र नहीं रह पाता। तब वह जड़ातीत होते हुये भी जड़मध्य में आकर प्रकाशित होता है। इस प्रकटभाव को ही भगवत्कृपा या अनुग्रहभाव कहा जाता है। उस समय मानों चैतन्य और कर्तृत्व दोनों ही उसमें एक साथ दिखाई पड़ते हैं और इसीलिये कहीं-कहीं निर्गुण ब्रह्म को केवल चैतन्यमात्र कहा गया है एवं इसके कर्तृत्व-भोक्तृत्व को अस्वीकार किया गया है; परन्तु पुरुष प्रकृति से समन्वित होने पर ही सगुण ब्रह्म के नाम से अभिहित होता है। उस समय उसमें चैतन्य और कर्तृत्व दोनों वर्तमान रहते हैं; किन्तु इस अवस्था का अभाव होने पर पुनः उसका ईश्वरत्व नहीं रह जाता। ईश्वरत्व के स्थायी भाव में प्रकृति-पुरुषयुक्त भाव ही अनादि है—यही तन्त्र स्वीकार करता है।

तत्र में आध्यात्मिक मार्ग के उपायरूप से चार प्रकार के मार्गों का उल्लेख किया गया है—पश्वाचार, वीराचार, दिव्याचार एवं कौलाचार। इनमें वेदाचार, वैष्णवाचार एवं शैवाचार में उपदिष्ट आचार का अवलम्बन कर जो साधना की जाती है, वही पश्वाचार होता है। वीर-साधन के विषय में पञ्चतत्त्वों को अपरिहार्य बतलाया गया है; लेकिन कलिकाल के मनुष्यों के लोभी एवं शिश्नोदर-परायण होने के कारण पञ्चतत्त्वों के प्रति उनकी अपरिहार्य आसक्ति को देखते हुये उनके द्वारा साधना सम्भव ही नहीं है। धीर व्यक्ति बार-बार विषय-सेवन करते हुये भी मुकुन्दपदारविन्द से पृथक् नहीं होते। वह हजारो कर्मों में लगे रहने पर भी मुख्य लक्ष्य को कभी विस्मृत नहीं करते। जो साधक संसार के समस्त कर्मों में लिप्त रहते

हुये भी गोविन्द को कभी नहीं भूलते, वे ही यथार्थ धीर होते हैं और वे धीर ही यथार्थ वीर साधक होते हैं। वे वीर साधक जिस प्रकार अपने मस्तक पर अग्नि रखकर दोनों हाथों में तलवार लेकर अपने विविध रूप से अंग-सञ्चालन के द्वारा खेल दिखलाते हैं, उसी प्रकार तन्त्रोक्त वीर साधक भी विमुग्धकारिणी वस्तु लेकर साधना करते हैं; फिर भी वे वस्तुयें कभी-भी उन्हें लक्ष्यभ्रष्ट नहीं करतीं। दिव्य भाव के साधक वीरभाव की अपेक्षा अधिक उच्चावस्था-सम्पन्न पुरुष होते हैं, उनको नीचा दिखला सकने की शक्ति किसी सांसारिक वस्तु में नहीं होती। दिव्य भावापन्न साधक नरदेव होते हैं। वे निरन्तर सन्तोषी, द्वन्द्वसहिष्णु, रागद्वेष-विवर्जित, क्षमाशील एवं समदर्शी होते हैं। वीरसाधकों के समान उनको अपनी असाधारण शक्ति के प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। उनका हृदय सर्वदा प्रशान्त रहता है, उसमें लेशमात्र भी उद्वेग या आशंका नहीं रहती।

कौलाचार अत्यन्त ही जटिल विषय है; परन्तु तन्त्र में इसकी अत्यधिक प्रशंसा की गई है। इसकी साधना वीराचार के ही समान होती है; किन्तु इसमें वीरता प्रदर्शित करने की अपेक्षा वीर बनने की साधना पर ही विशेष लक्ष्य रखा जाता है। कुलाचार में भी पञ्चतत्त्वों का व्यवहार प्रचलित तो अवश्य है; परन्तु वह मत्स्य-मांसासक्त व्यक्ति को संयमपथ में लाने की एक चेष्टामात्र है। जो साधनहीन पुरुष पञ्च मकारों में निमग्न हैं, उनके उस घोर नशे को उतारने के लिये, उन्हें और भी उच्चतर दिव्य मद का मार्ग दिखलाने के लिये जीवों के प्रति भगवान् सदाशिव की अद्भुत करुणा इस साधना में प्रकाशित होती है। कुलाचार के अनुवर्ती होने पर बुद्धि शीघ्र ही निर्मल हो जाती है तथा बुद्धि की निर्मलता से जगज्जननी आद्या के चरणकमल में स्थिर बुद्धि उत्पन्न होती है। स्पष्ट है कि बुद्धि को निर्मल और ब्रह्ममुखी बनाने के लिये ही भोग के द्वारा मोक्ष का द्वार खोलना इस साधना का उद्देश्य है। भगवान् ने इस जगत् की प्रत्येक वस्तु को इस कुशलता से बनाया है कि उनके व्यवहार का यथार्थ ज्ञान होने से उनसे अमृत की प्राप्ति हो सकती है और व्यवहारदोष से उन्हीं से विष भी उत्पन्न हो सकता है। कुलाचार जीवों के भवबन्धन को नष्ट करने की ही चेष्टा करता है। जीव के मद्यपायी होने अथवा लम्पट बनाने के उद्देश्य से शास्त्रविधि की रचना नहीं हुई है। स्त्री के द्वारा कुलाचार का साधन होता है; फिर भी उस स्त्री को भोग की वस्तु नहीं समझा जाता। उसे साक्षात् इष्टदेवी-स्वरूपिणी समझे बिना कोई भी मनुष्य तन्त्रोक्त साधना में सिद्धि नहीं प्राप्त कर सकता। चण्डीस्तव में कहा भी है—

विद्याः समस्तास्तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।
त्वयैकया पूरितमम्बयैतत् का ते स्तुतिः स्तव्यपरा परोक्तिः।

स्पष्ट है कि तन्त्र पञ्चमकारों को साधारण दृष्टि से नहीं देखता; अपितु बुद्धि की मलिनता के कारण हम स्वयं तन्त्रों को पवित्रभाव से नहीं देख सकते। तन्त्रोक्त साधना में अतिशीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जो सिद्धिलाभ के लिये समुत्सुक रहते हैं, वे ही तन्त्रोक्त प्रणाली से साधन करने में अग्रसर हो सकते हैं; लेकिन जिस प्रकार थोड़े दिनों में ही इससे साधनसिद्धि प्राप्त हो जाती है, उसी प्रकार इसमें उसी परिमाण में साधना की उत्कटता भी अत्यधिक होती है। तन्त्रोक्त साधना के स्थान और काल के विषय में विचार करने पर स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह जीव के साधारण भाव में स्थित चित्त के द्वारा हो ही नहीं सकती। सर्वप्रथम तो साधना का स्थान ही इतना भयंकर बताया गया है कि वहाँ दिन में भी एकाकी जाने में भय होता है। विखरे हुये नरकंकाल, नरमुण्ड एवं विच्छिन्न कंकालराशि से समन्वित, दुर्गन्ध से परिपूर्ण एवं शृगालों के भयोत्पादक रुदन अथवा चिल्लाहट वाले निर्जन श्मशानभूमि में अमावास्या के घोर अन्धकार में मृत शरीर के वक्षःस्थल पर आसीन होने की कल्पना से ही सामान्य मनुष्य जब अचेत होने की स्थिति में पहुँच जाता है, तो फिर वहाँ पर बैठकर साधना करना सम्भव है अथवा नहीं, यह स्वयं विचारणीय है। स्पष्ट है कि जिनका इस मार्ग में अनुराग नहीं है, जिन्हें उक्त वस्तुओं से यथेष्ट घृणा है, उनके लिये यह मार्ग कदापि श्रेयस्कर नहीं है। जीव के रुचिभेद से भिन्न-भिन्न भावमय उपास्य देवता और उनकी साधनप्रणाली में भेद होते हुये भी चाहे जिस मार्ग का अवलम्ब ग्रहण न किया जाय, साधक के लिये लक्ष्य स्थान पर पहुँचने में कोई असुविधा नहीं होती तथा समस्त साधनाओं के चरम लक्ष्यभूत भगवान् भी पृथक्-पृथक् नहीं होते। अतएव साधना की प्रणाली चाहे जो भी हो, भगवत्प्राप्ति के विषय में कोई वैलक्षण्य नहीं घटता। पद्मपुराण में कहा भी है—

सौराश्च शैवगाणेशाः वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव ते प्रपद्यन्ते वर्षाम्भः सागरं यथा।।

तन्त्र में साधक के बाह्य भाव का उल्लेख करके उसके अन्तर्भाव को जागृत करने के लिये संकेत किया गया है। महादेव पार्वती से कहते हैं कि हे प्रिये! तेज ही आद्य तत्त्व, पवन द्वितीय तत्त्व, जल तृतीय तत्त्व, पृथिवी चतुर्थ तत्त्व एवं जगदाधार आकाश पञ्चम तत्त्व है। हे कुलेश्वरि! कुलधर्म के आचार तथा पञ्चतत्त्व जिस साधक को इस प्रकार विज्ञात हैं, वह निश्चय ही जीवन्मुक्त है; इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं करना चाहिये—

आद्यतत्त्वं विद्धि तेजो द्वितीयं पवनं प्रिये।
अपस्तृतीयं जानीहि चतुर्थं पृथिवी शिवे।।

पञ्चमं जगदाधारं वियद्विद्धि वरानने।
इत्थं ज्ञात्वा कुलेशानि कुलं तत्त्वानि पञ्च च।।
आचारं कुलधर्मस्य जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।

तन्त्रों में कुल का स्वरूप इस प्रकार परिभाषित किया गया है—

न कुलं कुलमित्याहुः कुलं ब्रह्म सनातनम्।

स्पष्ट है कि तन्त्रशास्त्र में 'कुल' शब्द से वंशपरम्परा अभिप्रेत नहीं है; अपितु सनातन ब्रह्म ही 'कुल' शब्द-वाच्य है। इस ब्रह्म को वास्तविक रूप से जानकर जो पुरुष मोहशून्य अथवा निर्विकार हो सकते हैं; वे ही कुलतत्त्वज्ञ कहलाने के अधिकारी होते हैं। जो इस साधना के साधक हैं, वे ही कुलसाधक अथवा कौल कहलाते हैं। इस प्रकार तन्त्र का कुलतत्त्व कोई सहज बात नहीं है, न ही कौल बनना कोई सामान्य बात है। तन्त्र में कहा भी है—

कुलं कुण्डलिनी शक्तिरकुलं तु महेश्वरः।

अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति ही 'कुल' शब्दगम्य है और महेश्वर ही 'अकुल' शब्द से अभिप्रेत हैं। ध्यातव्य है कि कुण्डलिनी तत्त्व का ज्ञान हो जाने पर साधक ब्रह्मज्ञ हो जाता है और यही तन्त्रोक्त साधना का मर्मस्थान है। कुण्डलिनी ही जीवतत्त्व या मुख्य प्राण है। यही यथार्थतः अध्यात्म या परा प्रकृति है तथा जगत् को यही धारण करती है। योगी लोग इसी को प्राणशक्ति कहते हैं—

प्राणो हि भगवानीशः प्राणो विष्णुः पितामहः।
प्राणेन धार्यते लोकः सर्वं प्राणमयं जगत्।।

अर्थात् प्राण ही ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मक है, प्राण ही जगत् को धारण करने वाला है। समस्त जगत् ही प्राणमय है। जो महाशक्ति ब्रह्मरूप से विकसित होकर स्थूल से स्थूलतर जगदादि रूप में परिणत होती है, वह विश्व की मूल या आदि शक्ति बीज ही प्राण या कुण्डलिनी है। राधा के वक्षःस्थल पर स्थित पुरुष ही श्रीकृष्ण अथवा पुरुषोत्तम हैं। श्रीकृष्ण को जानने के लिये सर्वप्रथम राधा को जानना आवश्यक है। वैर्ष्णवों का कथन है कि श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिये राधिका के अनुगत होकर भजन करना होगा, यही परम सत्य है। योगी एवं तन्त्रोक्त उपासक भी यही कहते हैं कि कुण्डलिनी ही चैतन्य शक्ति है और उसकी कृपा के विना कोई भी शुद्ध चैतन्य या निर्गुण ब्रह्म को नहीं जान सकता।

तन्त्र के छः प्रयोगों के साधन में हमारी मनोवृत्ति कैसी रहती है, इसका कतिपय सांकेतिक शब्दों द्वारा भली-भाँति निदर्शन होता है। वे शब्द हैं—नमः,

स्वाहा, वषट्, वौषट्, हुम् और फट्। अन्तःकरण की शान्त अवस्था में 'नमः' का प्रयोग होता है। समस्त दुर्धर्ष, घातक एवं अपकारी शक्तियाँ विनय के समक्ष नत हो जाती हैं। जो मनुष्य यथाशक्ति परोपकार में रत रहकर दूसरों के हित के लिये अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा देता है, वह अपने शत्रुओं की समस्त विरोधभावनाओं को हटाकर उन पर पूर्ण अधिकार कर लेता है। 'वषट्' अन्तःकरण की उस वृत्ति का लक्ष्य कराता है, जिसमें अपने शत्रुओं के सम्बन्धियों का अनिष्ट-साधन करने अथवा उनका प्राणहरण करने की भावना रहती है। 'वौषट्' अपने शत्रुओं के हृदयों में एक-दूसरे के प्रति द्वेष उत्पन्न करने का सूचक है। 'हुम्' बल तथा अपने शत्रुओं को स्थानच्युत करने के निमित्त क्रोध का ज्ञापक है एवं 'फट्' अपने शत्रु के प्रति शस्त्रप्रयोग को अभिव्यक्त करता है। मन्त्रों की भाँति यन्त्र भी अनेक होते हैं। वे यन्त्र भिन्न-भिन्न प्रकार के चित्रों के संकेत होते हैं। बहुत से यन्त्र प्रकृति के चरित्र का रहस्य बतलाते हैं और कई यन्त्र ऐसे होते हैं, जो मनुष्यों तथा जानवरों के चरित्र का निरूपण करते हैं। तन्त्रशास्त्र में मन्त्रों एवं यन्त्रों का विशद् विवेचन उपलब्ध होता है। इसीलिये तन्त्रशास्त्र का माहात्म्य प्रदर्शित करते हुये कहा गया है—

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिस्तथा।
नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः।।
अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां राज्ञामिन्द्रो यथा वरः।
देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा।।
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मितम्।।
कीर्त्तनं देवदेवस्य हरस्य मतमेव च।
पावनं श्रद्दधानानामिह लोके परत्र च।।

प्राचीनतम तन्त्रग्रन्थों में रथक्रान्त, विष्णुक्रान्त एवं अश्वक्रान्त—तीनों में चौंसठ-चौंसठ ग्रन्थ दृगोचर होते हैं। इस प्रकार कुल एक सौ बयानबे ग्रन्थों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। उनमें से रथक्रान्त तन्त्रग्रन्थों में मेरुतन्त्र का स्थान छठा है। इसके सम्बन्ध में ग्रन्थ के प्रथम प्रकाश में भगवान् शिव का कथन है कि—

महाकालेन यत्प्रोक्तं पञ्चमी मुक्तिसाधनम्।
सर्वेषां मेरुतां यातं तत्तन्त्रं मेरुसंज्ञितम्।।

महाकाल ने जिस पाँचवीं मुक्तिसाधन का कथन किया है, उनमें मेरुतन्त्र सुमेरु पर्वत के समान सर्वोच्च है। ब्रह्मा, विष्णु, गणेश, सूर्य, गौरी आदि देव-देवियों तथा गंगा, यमुना आदि नदियों; साथ ही अन्यान्य उपास्य देवों के मन्त्र,

यन्त्र, न्यास, ध्यान, पीठ, शक्ति आवरणार्चन विधियों एवं वैदिक मन्त्रविधियों का भी प्रतिपादक शिव-पार्वती-संवादरूप यह महनीय ग्रन्थ पैंतीस प्रकाशों में विभाजित है। शिव द्वारा उपदिष्ट एक सौ आठ तन्त्रों में सर्वोच्च स्थान पर अवस्थित होने के कारण ही यह 'मेरुतन्त्र' के नाम से अभिहित है। जलन्धर से भयभीत देवताओं और ऋषियों के लिये भगवान् शिव ने इसका उपदेश किया था। यह महनीय ग्रन्थ लगभग पन्द्रह हजार श्लोकों में निबद्ध है। इस ग्रन्थ में ज्ञान, योग, क्रिया तथा चर्या—इन चारो अंगों के साथ-साथ मन्त्रों के रहस्यात्मक प्रभाव का भी विवेचन किया गया है। यन्त्र-मन्त्र का इसमें विशद् वर्णन है। क्रियाविभाग में मूर्ति एवं यन्त्रपूजन के विधान प्रमुख हैं। चर्याविभाग में दैनिक आचार के साथ-साथ व्रत, उत्सव एवं सामाजिक अनुष्ठानों के विस्तृत विवरण हैं। तर्पण और दीपदान के विधान भी इस ग्रन्थ में विवेचित हैं। इसके अनुसार साधना करके आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चारो प्रकार के श्रेष्ठ कर्मी अपने मनोरथ पूर्ण कर सकते हैं। गीता के सातवें अध्याय के सोलहवें श्लोक में कहा गया है कि मनुष्य की ईश्वर या ईश्वरीय सत्ता-सम्पन्न वस्तुओं के प्रति अभिरुचि के चार प्रमुख कारण हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

अर्थात् भरतवंशियों में श्रेष्ठ हे अर्जुन! चार प्रकार के उत्तम कर्म वाले लोग मेरा अर्चन-पूजन करते हैं, वे हैं—अत्यन्त संकट में पड़ा हुआ, जिज्ञासु अर्थात् यथार्थ ज्ञान का इच्छुक, अर्थार्थी अर्थात् सांसारिक सुखों का अभिलाषी एवं ज्ञानी। इन चार कारणों में से अन्तिम अर्थात् ज्ञानी के अतिरिक्त प्रथम तीन कारण तो ऐसे हैं कि उनसे कोई बचा ही नहीं है। कुछ केवल पीड़ित हैं, कुछ केवल जिज्ञासु हैं तो कुछ केवल अर्थार्थी हैं। इन कष्टों के शमन-हेतु मनीषियों द्वारा अनेक मार्गों का विवेचन किया गया है, जिनमें तन्त्रसाधना श्रेष्ठ है और उनमें भी मेरुतन्त्र श्रेष्ठ है। प्रकृत ग्रन्थ की सर्वातिशायी विशेषता यह है कि यह ग्रन्थरत्न उक्त चारो ही कारणों का समाधान करने वाला है।

प्रस्तुत संस्करण

तन्त्र-साधना हेतु परमोपयोगी यह महनीय ग्रन्थ जो अद्यावधि उपलब्ध है, वह पूर्णतः संस्कृत वाङ्मय में मूलमात्र है। वर्तमान में अल्पज्ञ पाठकों के संस्कृत भाषा-ज्ञान में पूर्णतः दक्ष न होने के कारण अभीष्ट होते हुये भी वे ग्रन्थ-तात्पर्य को अंगीकार करने में समर्थ नहीं हो पा रहे थे, यही कारण है कि यह ग्रन्थ प्रचलन

में नहीं था। ग्रन्थ की अनिवार्यता एवं ग्रन्थोक्त अनुष्ठानों की उपयोगिता को हृदयंगम करते हुये चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी के अप्रतिम स्वत्त्वाधिकारी गोलोकवासी नवनीतदास जी गुप्त की सतत् प्रेरणा के परिणामस्वरूप इस महनीय ग्रन्थ को भाषाभाष्य से समन्वित करने का दुरूह कार्य पूर्णता को प्राप्त हो सका; यह स्वर्गीय गुप्त जी की उत्कट अभिलाषा एवं उनके अनुवर्ती श्री नवीन एवं नीरज जी के सतत् उत्साहवर्धन का ही प्रतिफल है। आशा एवं विश्वास है कि यह संस्करण अध्येताओं के लिये ग्रन्थ के गूढ़ अर्थ को समझने में सहायक सिद्ध होगा।

श्रीनिवास शर्मा

●

विवेच्य विषय

मेरुतन्त्र के प्रकृत संस्करण के द्वितीय भाग में नवम से चतुर्दश प्रकाश तक को रखा गया है। इनमें से नवम प्रकाश में पार्थिव पूजा-विधि का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम पार्थिव शिवलिङ्ग-पूजन की विधि विवेचित करने के पश्चात् काम्य कर्मों के अनुष्ठान में तण्डुल-पिष्ट आदि के द्वारा शिवलिङ्ग का निर्माण करके उसके पूजन करने का निर्देश किया गया है। तत्पश्चात् शिवस्तोत्र एवं शिवमन्त्र के जपादि की विधि प्रदर्शित करने के उपरान्त प्रकाशान्त में लिङ्ग-पूजन के उद्यापन की विधि विस्तारपूर्वक विवेचित की गई है।

दशम प्रकाश में पुरश्चरण एवं कौलिकाचार का विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम पञ्चाम्नायों में से ऊर्ध्वाम्नाय का निरूपण किया गया है। इसके बाद वाममार्गियों के धर्म का निरूपण करने के अनन्तर मद्यपान को निन्दित बतलाते हुये उसका निषेध किया गया है। वामाचार मत में पात्र का लक्षण बतलाकर कौलिक धर्म की उत्पत्ति का स्थान निर्दिष्ट किया गया है। इसके बाद वाममार्गियों का पूजा-प्रकार बतलाया गया है। तदनन्तर मण्डल-पूजा का प्रकार तथा वटु-पूजन एवं बलिदान का विवेचन करने के उपरान्त कौलिकाचार का कथन किया गया है। इसके बाद चक्रपूजन, चक्रपूजा एवं पशुबलिदान विधि, नवरात्र व्रतविधि एवं मिथुनार्चन का कथन किया गया है। अनन्तर कौल मार्ग के देवताओं का कथन करते हुये केशवादि पीठार्चन का फल बतलाया गया है। तत्पश्चात् कुलाचार मार्ग शास्त्र का अर्थनिर्णय किया गया है। इसके बाद विस्तार से समस्त मार्गों में गुरु के महत्त्व का निरूपण किया गया है। तदनन्तर पूर्णाभिषेक-विधि का निरूपण करने के पश्चात् पीठसम्भव रहस्य एवं परमाद्भुत रहस्य का विवेचन करते हुये प्रकाश की समाप्ति की गई है।

एकादश प्रकाश में कलियुग में विद्यमान मन्त्रों का विधिपूर्वक विवेचन किया गया है। सर्वप्रथम कलियुग के अन्त में तीस वेदमन्त्रों की अवस्थिति एवं उन वेदमन्त्रों के साधन-हेतु अनुष्ठेय प्राजापत्य आदि चौदह व्रतों का कथन किया गया है। इसके बाद गायत्री मन्त्र की सविधि विवेचना की गई है। तदनन्तर मृत्युञ्जय मन्त्र, धनेश मन्त्र एवं अतिदुर्गा मन्त्र का विधिपूर्वक विवेचन किया गया है। तत्पश्चात् सविधि श्रीसूक्त का कथन करने के उपरान्त पुरुषसूक्त का सविधि कथन

किया गया है। अन्त में विष्णुपूजन-विधि का विवेचन करने के पश्चात् गृहस्थों के लिये जीवन्मुक्ति के साधनों को स्पष्ट करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

द्वादश प्रकाश में शतरुद्रीय स्तोत्र का विवेचन करते हुये इस मन्त्र से किये जाने वाले अभिषेक का फल बतलाया गया है। इसके बाद देवीसूक्त, विष्णुसूक्त एवं गणपतिसूक्त का विवेचन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

त्रयोदश प्रकाश में नवग्रहों का विवेचन किया गया है। इस क्रम में सर्वप्रथम नीच एवं उच्च स्थानगत ग्रहों के सुख एवं दुःखप्रदातृत्व का विवेचन करने के उपरान्त क्रमशः सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु एवं केतु के मन्त्रों का सविधि विवेचन किया गया है। अन्त में ग्रहपूजन का फल प्रदर्शित करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

अन्तिम चतुर्दश प्रकाश में प्रत्यङ्गिरा मन्त्र का विवेचन किया गया है। इसमें सर्वप्रथम मन्त्रत्याग-विधि का सांपोपांग विवेचन करने के अनन्तर महाविद्या प्रत्यङ्गिरा का कथन किया गया है। अन्त में देवता के त्याग की विधि का कथन करते हुये प्रकाश का समापन किया गया है।

●

विषयानुक्रमणी

॥ श्रीः ॥

श्रीशिव-शिवासंवादोपनिबद्धं

मेरुतन्त्रम्

भाषाभाष्यसमन्वितम्

अथ नवमः प्रकाशः

(पार्थिवपूजाविधिवर्णनप्रकाशः)

श्रीदेव्युवाच

प्रयोगात् परलोकेन परार्थी नेह सौख्यकृत्।
सिद्ध्यर्थी च कलौ शिष्यो धनार्थी गुरुरेव च ॥१॥
पूजार्थिनस्तथा देवा विषयार्थी तथा मनः।
दूरेऽस्माद्दैहिकी सिद्धिः पारकीया कथं भवेत् ॥२॥
तस्मात् कश्चिदुपायश्चेत् पुरश्चर्यादिकं विना।
परत्रेह च सिद्धिः स्याद्विना निन्दां वदस्व तत् ॥३॥

पार्थिवपूजन से लोक-परलोक की सिद्धि-विषयक प्रश्न—श्रीदेवी ने कहा—हे शिवजी! परलोक की कामना से किये जाने वाले प्रयोग के परिणामस्वरूप वर्त्तमान जन्म में किसी भी प्रकार के सुख की प्राप्ति न होने के कारण इस कलियुग में इन प्रयोगों के द्वारा शिष्य मात्र सिद्धि-प्राप्ति का एवं गुरु केवल धन-प्राप्ति का ही इच्छुक होता है। देवगण पूजन के अभिलाषी होते हैं; जबकि पूजक का मन विषयों का अभिलाषी होता है। ऐसी स्थिति में जब दैहिक सिद्धि की प्राप्ति ही असम्भव है तो फिर पारलौकिक सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है? अत: यदि लोक एवं परलोक दोनों की सिद्धि प्रदान करने वाला कोई ऐसा उपाय हो, जो पुरश्चरण आदि कष्टसाध्य क्रियाओं के सम्पादन की बाध्यता न होने के साथ-साथ लोक में गर्हित भी न हो तो उसका कथन करें।।१-३।।

ईश्वर उवाच

आयान्ति यान्ति न पुनर्मन्यन्ते सर्वजन्तुभिः ।
ते मदंशकृता ग्रन्था आगमाख्याः प्रसारिताः ॥४॥
कलेः सहस्रद्वितयं सार्द्धं देवा यदा गतम् ।
सर्वदेवगणैस्त्यक्तं तदा तु पृथिवीतलम् ॥५॥
वेदो नारायणः साक्षात्संस्थास्यत्ययुतावधि ।
आगमैर्भासिते देशे सोऽप्यगम्यो भविष्यति ॥६॥

ईश्वर ने कहा—इस पृथिवी पर समस्त प्रकार के जीवों के आवागमन का कोई अन्त नहीं है। उन सभी के द्वारा मेरे अंशस्वरूप जीवों द्वारा निर्मित आगमग्रन्थों को इस भूतल पर प्रचार-प्रसार किया गया है। कलियुग के ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर अपने-अपने गणों के साथ समस्त देवता जब इस भूतल का परित्याग कर अपने-अपने लोक को प्रस्थान कर गये तब साक्षात् नारायण ने हजारों वेदों को इस पृथिवी पर स्थापित किया; किन्तु आगमों से प्रकाशित इस देश में भगवान् नारायण द्वारा संस्थापित उन वेदों को जानने वाला कोई नहीं होगा।।४-६।।

पार्थिवशिवलिङ्गपूजनम्

उद्धाराय च साधूनां महाकालाज्ञया मया ।
कथितं चिरजीविभ्यः पार्थिवं लिङ्गपूजनम् ॥७॥
तद्विधिं सम्प्रवक्ष्यामि देवाः शृण्वन्तु सादरम् ।
इह लोके परत्रापि सिद्धिः करतले स्थिता ॥८॥

पार्थिव शिवलिङ्ग-पूजन—ऐसी अवस्था में महाकाल की आज्ञा से साधुओं के उद्धार के लिये और लोगों को दीर्घायु की प्राप्ति कराने के लिये मेरे द्वारा पार्थिव लिंग-पूजन का उपदेश किया गया है। हे देवताओं! उस पार्थिव-पूजन की विधि को मैं अब सम्यक् रूप से कहूँगा, जिसका आप सब पूर्ण मनोयोग के साथ श्रवण करें। इस पूजन से लोक और परलोक—दोनों की सिद्धि हस्तगत हो जाती है।।७-८।।

तत्र पार्थिवलिङ्गानां पूजने स्यादयं विधिः।
स्नात्वा नित्यं विधायादौ गच्छेच्छुद्धां भुवं सुधीः ॥९॥
स्थानाष्टके स्थिता या मृत्सा च सर्वार्थसिद्धिदा ।
शमीगर्भाश्वत्थमूले नदीकूले च निर्जने ॥१०॥
पर्वताग्रे च तीर्थे च गोष्ठे वा तुलसीवने ।
वटाधस्तात्तत्र भूमिं मन्त्रयेत्प्रार्थयेदिति ॥११॥

पार्थिवपूजन-विधि—पार्थिव लिंगपूजन की विधि इस प्रकार है—स्नान के उपरान्त नित्यकर्म का सम्पादन कर बुद्धिमान् मनुष्य को पवित्र भूमि पर गमन करना चाहिये। आठ स्थानों की मिट्टी सर्वार्थसिद्धि प्रदान करने वाली होती है; वे स्थान हैं—१. शमी वृक्ष का निम्न भाग, २. पीपल का निम्न भाग, ३. निर्जन नदीतट, ४. पर्वत का अग्रभाग, ५. तीर्थस्थल, ६. गोशाला, ७. तुलसीवन एवं ८. वटवृक्ष का निम्न भाग। उन स्थानों पर जाकर मन्त्रोच्चारण-पूर्वक पृथ्वी की प्रार्थना करनी चाहिये।।९-११।।

ह्रीं पृथिव्यै नम इति मन्त्रः प्रोक्तः षडक्षरः।
अनेन पूजयित्वा तु धरणीं प्रार्थयेदिति ।।१२।।
सर्वाधारा धरा त्वं हि पाहि मां मृत्तिकामिमाम्।
ग्रहीष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थं भव मे सदा ।।१३।।
ततो मृदमुपादाय सम्यक् निःशर्करां चरेत्।
पात्रे निदध्यात्संशुद्धे प्रत्यहं पूजनाय ताम् ।।१४।।
सद्दिने सद्गुरोर्वाऽथ सूर्याद्वा देवतान्तरात्।
गृह्णीयात् सप्तपूजायास्तथा गुहगणेशयोः ।।१५।।
मृत्तिकाहरणे तारो हराय नम इत्ययम्।
तारो महेश्वरायेति नमः सङ्घट्टनं भवेत् ।।१६।।
तारो ङेऽन्तः शूलपाणिर्नमः प्रस्थापने भवेत्।
वस्त्राद्याच्छादिते पीठे ॐ पिनाकधृते नमः ।।१७।।
स्थापयेदिति मन्त्रेण शिवाकान्तं शिवप्रदम्।
कामनायास्तु भेदेन तत्र ध्यायेच्छिवं प्रभुम् ।।१८।।

पृथ्वी की प्रार्थना-हेतु छः अक्षरों का मन्त्र है—ह्रीं पृथिव्यै नमः। इस मन्त्र से पृथ्वी की पूजा करने के उपरान्त इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—

सर्वाधारा धरा त्वं हि पाहि मां मृत्तिकामिमाम्।
ग्रहीष्यामि प्रसन्ना त्वं लिङ्गार्थं भव मे सदा।।

अर्थात् हे पृथिवी! तुम्हीं सबों का आधार हो, हमारी रक्षा करो। लिंग का निर्माण करने के लिये मैं तुम्हारी इस मिट्टी को ग्रहण करूँगा। तुम मेरे ऊपर पर सदा प्रसन्न रहो।

इस प्रकार प्रार्थना करने के पश्चात् प्रतिदिन पूजन करने के लिये कंकड़ आदि से रहित मिट्टी को वहाँ से लाकर शुद्ध पात्र में रख देना चाहिये। तदनन्तर शुभ दिन में अथवा गुरु की आज्ञानुसार अथवा तत्तत् दिनों के देवता के अनुसार उनके पूजन-

हेतु तथा कार्तिक एवं गणेश के पूजन-हेतु मिट्टी को ग्रहण करना चाहिये। इस क्रम में 'ॐ हराय नमः' का उच्चारण कर मिट्टी को उठाकर 'ॐ महेश्वराय नमः' का उच्चारण कर उसे संघटित करना चाहिये अर्थात् उसका पिण्ड बनाना चाहिये। तदनन्तर 'ॐ शूलपाणये नमः' का उच्चारण करते हुये उस पिण्ड को उठाकर 'ॐ पिनाकधृते नमः' का उच्चारण करते हुये वस्त्र आदि से सुसज्जित पीठ पर स्थापित करना चाहिये। तत्पश्चात् सर्वविध कल्याणकारी पार्वतिपति भगवान् शिव का अपनी कामना के अनुसार ध्यान करना चाहिये।।१२-१८।।

ॐ पशुपतये नमः स्नापयेदिति मन्त्रतः।
ॐ शिवाय नम इति पूज्यः पञ्चोपचारकैः ।।१९।।
ॐ महादेवाय नमो मन्त्रेणेति विसर्जयेत्।
ह्रीं गं ग्लों गणपतये ग्लौं गं ह्रीं च भवाक्षरः ।।२०।।
ऐं हुं क्षं क्लीं कुमाराय नमोऽन्तः स्याद्दशाक्षरः।
इमान् मनून् गृहीत्वा तु जपेदष्टसहस्रकम् ।।२१।।
दत्त्वा धूपं हृदि ध्यात्वा गुरुं तन्मन्त्रसिद्धये।
अथार्चनं शुभे घस्रे प्रारभेतेष्टसिद्धये।
कृतनित्यक्रियः शुद्धः प्रदायार्घ्यं विवस्वते ।।२२।।
मृदमादाय तोयञ्च वंबीजेनाभिमन्त्रयेत्।
आसिच्य पिण्डयेत् स्वेष्टमानं पात्रे निधापयेत् ।।२३।।
ततः कालमनुस्मृत्य कामनामपि हृद्गताम्।
लिङ्गानि पार्थिवानीह पूजयेऽमुकसङ्ख्यया ।।२४।।
सङ्कल्प्यैवं मृदः पिण्डादादायाल्पां मृदं सुधीः।
गणेश्वरस्य मन्त्रेण कुर्याद् द्वारगणेश्वरम् ।।२५।।
फलाभयलसत्पाणिं तुन्दिलं चोन्दुरुस्थितम्।
निर्माय स्थापयेत्पीठे ततो विप्रः समाचरेत् ।।२६।।
न्यासं रुद्रस्य विधिवत् सम्पुटीकरणान्वितम्।

तत्पश्चात् 'ॐ पशुपतये नमः' मन्त्र से उस स्थापित मूर्ति को स्नान कराकर 'ॐ शिवाय नमः' मन्त्र से पञ्चोपचार-पूजन करने के उपरान्त 'ॐ महादेवाय नमः' मन्त्र से विसर्जन करना चाहिये। इसके बाद 'ह्रीं गं ग्लौं गणपतये ग्लौं गं ह्रीं' एवं 'ऐं हुं क्षं क्लीं कुमाराय नमः' इन दोनों मन्त्रों का आठ हजार जप करने के पश्चात् धूप प्रदान करके मन्त्रसिद्धि के लिये गुरु का ध्यान करना चाहिये।

इसके पश्चात् इष्टसिद्धि के लिये शुभ दिन में नित्य कर्म का सम्पादन करने के अनन्तर सूर्य को अर्घ्य प्रदान करने के पश्चात् अर्चन प्रारम्भ करना चाहिये। एतदर्थ मिट्टी एवं जल को 'वं' बीज से अभिमन्त्रित कर उस जल की सहायता से मिट्टी का ईप्सित आकार का पिण्ड़ बनाकर उसे पात्र में स्थापित करके देश-काल एवं मनोवाञ्छित कामना का स्मरण करते हुये 'मैं अमुक संख्या में लिङ्गार्चन करूँगा' इस प्रकार का संकल्प करने के उपरान्त मिट्टी के उस पिण्ड से थोड़ी-सी मिट्टी लेकर गणेशमन्त्र का उच्चारण करते हुये द्वारगणेश की मूर्ति बनाकर उस मूर्ति के हाथों को फल एवं अभय से सुशोभित करना चाहिये। वह मूर्ति पेट निकली हुई होनी चाहिये। तदनन्तर उस निर्मित मूर्ति को पीठ पर स्थापित करके विप्र को सम्पुटित करों से विधिवत् रुद्रन्यास करना चाहिये।।१९-२६।।

अविप्राणां शृणु न्यासं गोप्यं पार्थिवपूजने ॥२७॥
अस्य श्रीपार्थिवाख्यस्य विद्या चिन्तामणेर्मनोः।
निग्रहानुग्रहकर्त्ता ब्रह्मा निगदितो मुनिः ॥२८॥
देवता स्यात्कामदुघा गायत्री छन्द ईरितम्।
ॐ ह्रीं ह्रौं बीजं ह्रीं शक्तिर्नमः कीलकमुच्यते ॥२९॥
अभीप्सितार्थसिद्ध्यर्थें नियोगो लिङ्गपूजने।
ॐ ह्रीं ह्रौं बीजपूर्वांस्तु न्यासे मन्त्रान् प्रविन्यसेत् ॥३०॥
शिवायेति परं चान्ते ततोऽङ्गादि समुच्चरेत्।
सर्वज्ञाय प्रथमतः सर्वतृप्ताय चोत्तरम् ॥३१॥
नित्यमलुप्तशक्तये सर्वज्ञानशक्तये च।
नित्यानन्दशक्तये चानन्तशक्तिशिवाय च ॥३२॥
कृत्वा चाङ्गुलिविन्यासं विन्यसेद्धृदयादिषु।

विप्र से भिन्न वर्ण वालों द्वारा पार्थिव-पूजन में किये जाने वाले गुप्त न्यासों को अब मैं कहता हूँ; श्रवण करें।

विनियोग—अस्य श्रीपार्थिवाख्यस्य विद्याचिन्तामणिमन्त्रस्य निग्रहानुग्रहकर्ता ब्रह्मा ऋषिः। कामदुघा देवता। गायत्री छन्दः। ॐ ह्रीं ह्रौं बीजम्। ह्रीं शक्तिः। नमः कीलकम्। अभीप्सितसिद्ध्यर्थें नियोगे लिंगपूजने विनियोगः।

ऋष्यादिन्यास—

१. ॐ ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि।
२. ॐ गायत्री छन्दसे नमः मुखे।
३. ॐ कामदुघायै देवतायै नमः हृदये।

४. ॐ ह्रीं ह्रौं बीजाय नमः गुह्ये।

५. ॐ ह्रीं शक्तये नमः पादयोः।

६. ॐ नमः कीलकाय नमो नाभौ।

करन्यास—

१. ॐ शिवाय सर्वज्ञाय अंगुष्ठाभ्यां नमः।

२. ॐ शिवाय सर्वतृप्ताय तर्जनीभ्यां नमः।

३. ॐ शिवाय नित्यमलुप्तशक्तये मध्यमाभ्यां नमः।

४. ॐ शिवाय सर्वज्ञानशक्तये अनामिकाभ्यां नमः।

५. ॐ शिवाय नित्यानन्दशक्तये कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

६. ॐ शिवायानन्तशक्तिशिवाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि न्यास—

१. ॐ शिवाय सर्वज्ञाय हृदयाय नमः।

२. ॐ शिवाय सर्वतृप्ताय शिरसे स्वाहा।

३. ॐ शिवाय नित्यमलुप्तशक्तये शिखायै वषट्।

४. ॐ शिवाय सर्वज्ञानशक्तये कवचाय हुं।

५. ॐ शिवाय नित्यानन्दशक्तये नेत्रत्रयाय वौषट्।

६. ॐ शिवायानन्तशक्तिशिवाय अस्त्राय फट्।।२७-३२।।

केवलः श्रोत्रियस्तत्र सद्योजातेन मृत्तिकाम् ।।३३।।
गृहीत्वा वामदेवेन जलं दत्त्वा विमर्दयेत्।
लिङ्गं कुर्यादघोरेणार्चयेत्तत्पुरुषेण च ।।३४।।
संस्थाप्य रुद्रसूक्तेन ईशानेन विसर्जयेत्।
आदौ कृत्वा गणेशानं पीठमध्ये निवेशयेत् ।।३५।।
पश्चाल्लिङ्गानि कुर्वीत यथेष्टानि समानि च।
अङ्गुष्ठमानादधिकं वितस्त्यवधिसुन्दरम् ।।३६।।
पार्थिवं रचयेल्लिङ्गं न न्यूनं नाधिकं क्वचित्।

श्रोत्रिय को सद्योजात मन्त्र से मिट्टी ग्रहण करके वामदेव मन्त्र से उसमें जल मिलाकर पिण्ड बनाकर अघोर मन्त्र से लिंग का निर्माण करना चाहिये। फिर तत्पुरुष मन्त्र से उस लिङ्ग का अर्चन करके उसे रुद्रसूक्त से स्थापित करने के उपरान्त ईशानमन्त्र से विसर्जन करना चाहिये। सर्वप्रथम गणेश की प्रतिमा बनाकर पीठ के मध्य में उसे स्थापित करने के बाद इष्ट संख्या में एक समान लिङ्गों का निर्माण करना

चाहिये। इन शोभन पार्थिव लिंगों का मान अंगुष्ठ से लेकर एक बीत्ते तक होता है। सभी लिंगों को समान आकार का बनाना चाहिये, छोटा-बड़ा नहीं बनाना चाहिये।

पक्वजम्बूफलाकारं सर्वकामसमृद्धिदम् ॥३७॥
अतिपुष्टे तु दारिद्र्यं चिपिटे रोगसम्भव: ।
मानाधिके वियोग: स्यात्स्वल्पे सिद्धिर्न जायते ॥३८॥
द्विखण्डे तु भवेन्मृत्युर्वियोनौ न सुखं भवेत् ।
अवशिष्टमृदा कुर्यात् कुमारं तस्य मन्त्रत: ॥३९॥
स्थापयेल्लिङ्गपर्यन्ते स्वमन्त्रेणार्चयेच्च तम् ।
अर्चयन् पार्थिवं लिङ्गं यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥४०॥

पके हुये जामुन के फल के समान आकार वाले लिंग समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले एवं समृद्धि प्रदान करने वाले होते हैं। अधिक पुष्ट लिंग बनाने से दरिद्रता होती है एवं चिपटी आकृति वाले लिंगों के निर्माण से रोग होता है। निर्धारित मान से अधिक ऊँचे लिंग के निर्माण से स्वजन-वियोग होता है और मान से छोटे लिंग बनाने से सिद्धि की हानि होती है। दो खण्डों में लिंग-निर्माण से मृत्यु होती है एवं विना योनि के लिङ्ग-निर्माण से सुख की प्राप्ति नहीं होती। लिंग-निर्माण के अनन्तर बची हुई मिट्टी से कुमार कार्तिकेय की मूर्ति बनानी चाहिये। तदनन्तर उन निर्मित लिङ्गों की स्थापना करके स्वमन्त्र से उनका पूजन करना चाहिये। पार्थिव लिङ्गों के अर्चन से अर्चक को यथोक्त फल की प्राप्ति होती है।।३७-४०।।

तारो ह्रौं ह्रीं जूं स: इति पञ्चबीजादिकैस्तु तै: ।
तान्त्रिको मासमन्त्रैस्तु फलार्थी शिवमर्चयेत् ॥४१॥
प्रासादबीजपूर्वैस्तु वाममार्गी समर्चयेत् ।
पराप्रासादबीजाद्यै: पूजयेत् कौलिकैस्तु तै: ॥४२॥
आवाहनस्य समय ईदृशं शिवमागतम् ।
लिङ्गे प्रतिष्ठितं ध्यायेत् कामनाभेदनात्तु तत् ॥४३॥
भवेन्नानाविधं ध्यानं योनिं कामं प्रपूजयेत् ।
तत्र ध्यानमिदं ज्ञेयं नोक्तं वा यत्र तत्र च ॥४४॥

फल की कामना वाले व्यक्ति को एक मास तक 'ॐ ह्रौं ह्रीं जूं स:' इस पञ्चबीजात्मक तान्त्रिक मन्त्र से लिङ्गार्चन करना चाहिये। वाममार्गी को उक्त तान्त्रिक मन्त्र के पूर्व प्रासादबीज 'ह्रौं' लगाकर एवं कौलिक को पराप्रासादबीज 'सौ:' लगाकर अर्चन करना चाहिये। आवाहन के समय यह ध्यान करना चाहिये कि हमारी कामना

के अनुसार इस प्रकार के शिवजी आकर इस लिङ्ग में प्रतिष्ठित हो गये हैं। कामना के अनुसार भगवान् शिव के विविध प्रकार के ध्यान होते हैं। उनका ध्यान आगे वर्णित है, उसे जहाँ-तहाँ नहीं कहना चाहिये।।४१-४४।।

अथात्मानं शिवात्मानं पञ्चास्यं चिन्तयेद्बुधः ।
त्रिलोचनं चतुर्बाहुं सर्वाभरणभूषितम् ।।४५।।
नीलग्रीवं शशाङ्काङ्कं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ।
व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च नागयज्ञोपवीतकम् ।।४६।।
कमण्डलुधरं देवमक्षमालान्वितं प्रभुम् ।
वरदाभयहस्तं च नमज्जनवरप्रदम् ।।४७।।
वृषपृष्ठसमारूढमुमादेहार्धधारिणम् ।
जटिलं कपिलं दन्तनखाभिद्योतकारिणम् ।।४८।।
अमृतेनाप्लुतं दिव्यं दिव्यभोगसमन्वितम् ।
दिग्देवतासमायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम् ।।४९।।
नित्यं च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ।
सर्वव्यापिनमीशानं रुद्रं वै विश्वरूपिणम् ।।५०।।
एवं ध्यात्वा द्विजः सम्यक् ततो यजनमारभेत् ।

ध्यान—विद्वान् को अपनी आत्मा और शिवात्मा का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिये। भगवान् शिव के तीन नयन एवं चार हाथ हैं और वे सभी वस्त्राभूषण से सुशोभित हैं। उनका कण्ठ नीला है, माथे पर चन्द्रमा है, वर्ण शुद्ध स्फटिक के समान है, बाघाम्बर का उनका उत्तरीय है, नाग का यज्ञोपवीत है। देव के एक हाथ में कमण्डलु, दूसरे में रुद्राक्ष की माला, तीसरे में वरमुद्रा और चौथे हाथ में अभयमुद्रा है। जो उन्हें नमन करते हैं, उन्हें वे वरदान देते हैं। वे नन्दी पर सवार हैं। उनका आधा देह शिव का और आधा देह पार्वती का है। शिर पर जटा है। वर्ण कपिल है। ज्योतिर्मय दाँत और नख हैं। उनका शरीर अमृत से परिपूर्ण है। वे सभी दिव्य भोगों से युक्त हैं। वे दिक्पालों से घिरे हैं। उन्हें सुर और असुर नमस्कार कर रहे हैं। वे नित्य, शाश्वत, शुद्ध, अचल, अक्षर और अमर हैं। वे अव्यय हैं, सबों में व्याप्त हैं, ईशान हैं, रुद्र हैं। वे विश्वरूप हैं। द्विज को इस प्रकार से सम्यक् रूप से ध्यान करने के पश्चात् उनका अर्चन आरम्भ करना चाहिये।।४५-५०।।

आराधितो मनुष्यैस्त्वं सिद्धैर्देवासुरादिभिः ।।५१।।
आराधयामि भक्त्या त्वां मां गृहाण महेश्वर ।
स्वामिन् सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम् ।।५२।।

तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन् सन्निधो भव।
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं पार्थिवं पूजयेत्ततः ॥५३॥
एकैकं पूजयेल्लिङ्गमेकैकं च विसर्जयेत्।
अन्ते पूज्यः कार्त्तिकेयः प्रोक्ता पूजेयमुत्तमा ॥५४॥
सर्वेषामेव लिङ्गानां शीघ्रमेकत्र पूजनात्।
प्रोक्ता पूजा विधिज्ञैः सा पूजेयं मध्यमा तदा ॥५५॥
प्रत्येकमाचरेद्ध्यानं गन्धं पुष्पं पृथक्पृथक्।
धूपदीपनिवेद्यादि यथांशेन निवेदयेत् ॥५६॥

हे शिवजी! आप मनुष्य, सिद्ध, देवता दैत्य आदि से आराधित हैं। मैं भी भक्तिपूर्वक आपकी आराधना कर रहा हूँ। हे महेश्वर! इसे भी आप ग्रहण कीजिये। हे सबों के स्वामी! जगदीश! जब तक पूजन समाप्त न हो, तब तक आप प्रीतिभाव से इन लिंगों में विराजमान रहिये। इस प्रकार देवेश की प्रार्थना करके पार्थिव पूजन करना चाहिये। प्रत्येक लिङ्ग का पूजन अलग-अलग करके अलग-अलग उनका विसर्जन करने के पश्चात् अन्त में कार्तिकेय का पूजन करना चाहिये। इसे ही उत्तम पूजन माना जाता है। सभी लिङ्गों का शीघ्रतापूर्वक एक साथ पूजन करने को विधिज्ञों द्वारा मध्यम पूजन कहा गया है। पूजन के समय प्रत्येक लिङ्ग का ध्यान करते हुये उन्हें पृथक्-पृथक् गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य यथांश रूप में समर्पित करना चाहिये।।५१-५६।।

प्रागादिवामावर्तेन दिक्ष्वष्टौ परिपूजयेत्।
शर्वं भवं रुद्रमुग्रं भीमं पशुपतिं तथा ॥५७॥
महादेवं तथेशानं क्रमात् क्षित्यादिमूर्तकान्।
क्षित्यप्तेजोऽनिलाकाशयजमानेन्दुभास्कराः ॥५८॥
क्षित्यादयः स्युः शर्वाद्यास्तत इन्द्रादिकान् यजेत्।
धूपदीपनिवेद्यादिनमस्कारप्रदक्षिणैः ॥५९॥
ततो जपं प्रकुर्वीत ॐ ह्रौं ह्रीं हूं समुच्चरेत्।
ॐ नमश्च शिवो ङेऽन्तः प्रसन्नायेदमुच्चरेत् ॥६०॥
पारिजाताय स्वाहेति एकविंशतिवर्णकः।
पूजान्तेऽष्टोत्तरशतं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ॥६१॥

पूर्व दिशा से प्रारम्भ करके आठो दिशाओं में निम्न प्रकार से शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, महादेव और ईशान का पूजन करना चाहिये—

पूर्व में—ॐ शर्वाय क्षितिमूर्तये नमः।
ईशान में—ॐ भवाय जलमूर्तये नमः।
उत्तर में—ॐ रुद्रायाग्निमूर्तये नमः।
वायव्य में—ॐ उग्राय वायुमूर्तये नमः।
पश्चिम में—ॐ भीमायाकाशमूर्तये नमः।
नैर्ऋत्य में—ॐ पशुपतये यजमानमूर्तये नमः।
दक्षिण में—ॐ महादेवायेन्दुमूर्तये नमः।
अग्निकोण में—ॐ ईशानाय सूर्यमूर्तये नमः।

इसके बाद इन्द्रादि दस दिक्पालों का यजन धूप, दीप, नैवेद्य, नमस्कार, प्रदक्षिणा से करने के उपरान्त 'ॐ ह्रौं ह्रीं ह्रूं ॐ नमः शिवाय प्रसन्नाय पारिजाताय स्वाहा'—इस इक्कीस अक्षरों वाले मन्त्र का एकाग्रचित्त होकर एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।।५७-६१।।

बिल्वं वा बिल्वपत्रं वा घृताक्तं सतिलं हुनेत्।
एकादशाहुतीः पश्चात् प्रणमेद्दण्डवत् क्षितौ ।।६२।।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तानन्तदेवनमोऽन्वितैः ।
षष्ठीयुक्तं च तन्नाम पत्नीं ङेऽन्तां नमोऽन्विताम् ।।६३।।
पुनश्च तर्पणं कार्यं तादृशैरेव नामभिः ।
द्वितीयान्तैः तर्पयामि बिल्वपत्रैर्जलाक्षतैः ।।६४।।
भवः शर्वस्तथेशानस्तुर्यः पशुपतिर्मतः ।
रुद्रोग्रभीममहतस्त्वष्टौ ते परिकीर्तिताः ।।६५।।
दम्पती भोजयेन्नित्यं पार्वतीशमनीषया ।
शैवं वा भोजयेदेकमभावे वेदवित्तमम् ।।६६।।
एवमर्चयतः पुंसः पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ।
मासमात्रेण सिद्धिः स्यान्नात्र कार्या विचारणा ।।६७।।
अकृत्वा पार्थिवं लिङ्गं योऽन्यदेवं प्रपूजयेत् ।
वृथा भवति सा पूजा स्नानदानादिकाः क्रियाः ।।६८।।

जप सम्पन्न होने के उपरान्त बेल या बेलपत्र को घृताक्त करके तिलसहित ग्यारह आहुति से हवन करने के बाद भूतल पर दण्डवत् लेटकर प्रणाम करना चाहिये। हवन का मन्त्र है—'ॐ अनन्तदेवाय नमः', 'ॐ अनन्तदेवस्य पत्न्यै नमः'। फिर उसी प्रकार नाम-मन्त्रों से बेलपत्र, जल, अक्षत से इस प्रकार तर्पण करना चाहिये—

१. ॐ भवाय नम: भवं देवं तर्पयामि।
२. ॐ शर्वाय नम: सर्वं देवं तर्पयामि।
३. ॐ ईशानाय नम: ईशानं देवं तर्पयामि।
४. ॐ पशुपतये नम: पशुपतिं देवं तर्पयामि।
५. ॐ उग्राय नम: उग्रं देवं तर्पयामि।
६. ॐ रुद्राय नम: रुद्रं देवं तर्पयामि।
७. ॐ भीमाय नम: भीमं देवं तर्पयामि।
८. ॐ महते नम: महान्तं देवं तर्पयामि।

देवपत्नियों का तर्पण—

१. ॐ भवस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
२. ॐ शर्वस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
३. ॐ ईशानस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
४. ॐ पशुपतेर्देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
५. ॐ उग्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
६. ॐ रुद्रस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
७. ॐ भीमस्य देवस्य पत्नीं तर्पयामि।
८. ॐ महतो देवस्य पत्नीं तर्पयामि।

पति-पत्नी के जोड़ों को पार्वती और शिव की भावना से नित्य भोजन कराना चाहिये। यदि पति-पत्नी न मिलें तो एक ही वेदज्ञ शैव को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार उत्तम पार्थिव लिंग का अर्चन एक महीने तक करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसमें किसी भी प्रकार का विचार नहीं करना चाहिये। पार्थिव लिंग का पूजन न करके जो अन्य देवों का पूजन करते हैं, उनकी वह पूजा-स्नान-दानादि क्रिया व्यर्थ हो जाती है।।६२-६८।।

काम्ये तण्डुलपिष्टादिना शिवलिङ्गं विधाय तत्पूजनम्

काम्यकर्मण्ययं कार्यो विधिः शृणु विशेषकम्।
तण्डुलोद्भवपिष्टेन विद्यार्थी तु सहस्रकम्।।६९।।
द्वयोः पूजनमेकत्र मासमेकं करोति चेत्।
अवश्यं लभते विद्यां ध्यानमस्य निरूप्यते।।७०।।
अनेनैव विधानेन पूजयेन्नवनीतजम्।
भवेद्विद्या च सपदि चतुर्दिक्षु तथा यशः।।७१।।

काम्य कर्मों में तण्डुलपिष्ट आदि से शिवलिङ्ग-निर्माण एवं पूजन—अव

काम्य कर्मों के लिये लिंग-निर्माण की विशेष विधि का श्रवण करें। यदि कोई विद्यार्थी तण्डुलपिष्ट (चावल का आटा) से दो हजार की संख्या में शिवलिंग का निर्माण कर एक मास तक प्रतिदिन उनका पूजन करता है तो उसे अवश्य ही विद्या प्राप्त होती है। अब उसका ध्यान कहा जा रहा है। इसी विधान से यदि मक्खन से निर्मित लिंगों का पूजन किया जाय तो विद्यार्थी को तत्काल विद्या की प्राप्ति होती है और उसकी यश:पताका चारो दिशाओं में प्रसरित होती है।।६९-७१।।

वन्दे महेशं सुरसिद्धसेव्यं विद्याप्रदं पुस्तकदत्तदृष्टिम्।
भक्तैर्जनैः पूजितपादपद्मं ध्याये सदा कामप्रदं प्रभुं तम्।।७२।।

ध्यान—देवताओं एवं सिद्धों द्वारा सेवित, विद्या प्रदान करने वाले, पुस्तक पर दृष्टि एकाग्र किये हुये, भक्तजनों द्वारा पूजित चरणकमलों वाले, समस्त कामनाओं को प्रदान करने वाले प्रभु महेश का हम ध्यान करते हैं।।७२।।

इत्थं श्वेतागुरोर्लिङ्गं पूजितं बुद्धिवृद्धिकृत्।
एवं कृष्णागुरोर्लिङ्गं पूजितं धारणाप्रदम्।।७३।।
चणकोद्भवपिष्टस्य प्राग्वल्लिङ्गं तु बुद्धिकृत्।
प्राग्वद् व्रीहिमयं लिङ्गं कृत्वा हन्यात्स्खलद् गिरम्।।७४।।

लिंगार्चन का फल—इस प्रकार श्वेत अगुरु से निर्मित लिंग के पूजन से बुद्धि का विकास होता है एवं कृष्ण अगुरु से निर्मित लिंग के पूजन से धारणा शक्ति प्राप्त होती है। चने के बेसन से निर्मित लिंग के अर्चन से भी पूर्ववत् बुद्धि तीव्र होती है। इसी प्रकार धान्यपिष्ट से निर्मित लिंग हकलाहट को दूर करने वाला होता है।

विद्याकामैश्चिन्तनीयः परशुं हरिणं वरम्।
ज्ञानमुद्रां दधद्धस्तैर्वटमूलमुपाश्रितः।।७५।।
योऽर्चयेत्प्रत्यहं पञ्चशतान्येकं पृथक्पृथक्।
पार्थिवानि तु लिङ्गानि मासात्सा सर्वतोमुखी।।७६।।

विद्या-प्राप्त्यर्थ ध्यान—विद्याकामियों को शिवजी का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये। उनके एक हाथ में परशु, दूसरे हाथ में मृग, तीसरे हाथ में वर और चौथे हाथ में ज्ञानमुद्रा है; साथ ही वे वटवृक्ष के नीचे विराजमान हैं। जो व्यक्ति पाँच सौ पार्थिव लिंगों का अर्चन अलग-अलग एक महीने तक करता है, उसका सर्वतोमुखी विकास हो जाता है।।७५-७६।।

दक्षाङ्कस्थं गजपतिमुखं प्रामृजन् दक्षदोष्णा
वामोरुस्थागपतितनयाङ्के गुहं चापरेण।

इष्टाभीती परिकरयुगे धारयन्निन्दुकान्ति-
रव्यादस्मांस्त्रिभुवननतो नीलकण्ठस्त्रिनेत्रः ॥७७॥

इसमें ध्यान इस प्रकार किया जाता है—श्रीनीलकण्ठ भगवान् के तीन नेत्र हैं। चन्द्रमा के समान उनकी कान्ति है। उनकी दाँयीं गोद में गणेश और बाँयीं गोद में कार्तिकेय विराजमान हैं। इष्ट और अभीति उनके परिकर हैं। तीनों लोक शिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करते हैं; ऐसे भगवान् नीलकण्ठ हमारी रक्षा करें।।७७।।

पुंसोर्विरुद्धयोः सन्धौ कुर्यादयुतसङ्ख्यया।
नदीतीरद्वयानीतमृदा तानि च पूजयेत् ॥७८॥
तत्र ध्येयो हरिहरः शङ्खपद्मादिशूलभृत्।
इन्द्रनीलशरच्चन्द्रनिभो भूषणपूगवान् ॥७९॥

दो विरोधी पुरुषों में मित्रता कराने के लिये नदी के दोनों तटों की मिट्टी लाकर दस हजार पार्थिव लिंगों का निर्माण करके सबका पृथक्-पृथक् पूजन करना चाहिये। इसमें हाथों में शंख, पद्म तथा त्रिशूल धारण करने वाले, मेघ के समान नीले वर्ण और शारदीय चन्द्र की कांति से युक्त तथा आभूषणों से सुशोभित भगवान् शिव के हरि-हरात्मक स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।।७८-७९।।

दम्पत्योरभिधानार्थमर्धनारीश्वरः स्मृतः।
पीयूषपूर्णकलशं दधत्पाशाङ्कुशावपि ॥८०॥
पुत्रार्थी सार्धसाहस्रं कुर्यात्तण्डुलपिष्टजम्।
पार्थिवान्यथवा कुर्यादर्धलक्षमितानि तु ॥८१॥
दक्षाङ्कस्थमिति ध्यानं पूजनं च पृथक्पृथक्।
दधिभक्तस्तु नैवेद्ये पैष्टेनात्र यथेच्छया ॥८२॥
आढकीपिष्टसम्भूतं कान्तार्थी शतपञ्चकम्।
पार्थिवान्यथवा कुर्यादर्द्धलक्षमितानि तु।
पृथग्द्वयं द्वयं पूज्यं ध्यानमत्र निरूप्यते ॥८३॥
कर्पूरगौरं करुणावतारं संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा रमन्तं हृदयारविन्दे भवं भवानीसहितं नमामि ॥८४॥

पति-पत्नी में परिचय कराने के लिये भगवान् शिव के हाथों में अमृत से परिपूर्ण घट के साथ ही साथ पाश एवं अंकुश धारण करने वाले उनके अर्द्धनारीश्वर स्वरूप का ध्यान करना चाहिये।

पुत्र-प्राप्ति के लिये चावल की पिष्टी से बने एक हजार पाँच सौ अथवा पचास हजार पार्थिव लिंगों का अर्चन करके पूर्वोक्त श्लोकसंख्या ७७ के अनुसार ध्यान करना चाहिये। प्रत्येक लिंग का पूजन अलग-अलग करके नैवेद्य में दही एवं भात अर्पण करना चाहिये। तण्डुलपिष्ट से निर्मित लिंग और पार्थिव लिंग पर इच्छानुसार नैवेद्य का अर्पण करना चाहिये।

सौन्दर्य-वृद्धि के लिये अरहरदाल के चूर्ण से निर्मित पाँच सौ लिंगों अथवा पचास हजार पार्थिव लिंगों को बनाकर दो-दो लिंगों का एक साथ पूजन करना चाहिये। इसमें ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—कर्पूर के समान गौर वर्ण वाले, करुणा के अवतार, संसार के सार, गले में नागराज के हार से युक्त, शिव पार्वती के साथ मेरे हृदय में सदैव विराजमान रहें; उन्हें मैं प्रणाम करता हूँ।।८०-८४।।

मारणार्थं सप्तशतं लिङ्गं केशास्थिसम्भवम्।
अथवा लोहलिङ्गानि तुषजान्यथवापि च ॥८५॥
सहस्रमिक्षुदण्डस्य लिङ्गान्युच्चाटने यजेत्।
श्मशानमृत्तिकायास्तु विद्वेषेऽयुतमाचरेत् ॥८६॥
पूजयेत् कार्यवशतो लक्षावधिसहस्रतः।

मारण के लिये केश और हड्डी के पिष्ट से अथवा लौहचूर्ण से अथवा धान की भूसी से सात सौ लिंगों का निर्माण करना चाहिये। उच्चाटन के लिये ईख के टुकड़ों से एक हजार की संख्या में लिंगों का निर्माण कर उनका पूजन करना चाहिये अथवा श्मशान की मिट्टी से दस हजार लिंग बनाकर उनका अर्चन करना चाहिये।

विशेष कार्य के लिये एक हजार लिंग का पूजन प्रतिदिन तब तक करना चाहिये, जब तक कि एक लाख लिंगपूजन पूर्ण न हो जाय अर्थात् एक हजार प्रतिदिन के हिसाब से एक सौ दिन तक पूजन करना चाहिये।।८५-८६।।

उच्चाटे मारणे द्वेषे ध्यातव्यः पुनरीदृशः ॥८७॥
कालीहस्ताम्बुजालम्बः शूलप्रोतद्विषच्चयः।
मुण्डमालालसत्कण्ठो राववित्रासिताखिलः ॥८८॥
विना ज्ञानेन मोक्षस्तु नराणां परिजायते।
तदा तु कोटिलिङ्गानि पूजयेद्ध्यानमुच्यते ॥८९॥
यो योगमायापहृतं च पुंसां ज्ञानं विधत्तेऽखिलवस्तुनिष्ठम्।
तं विश्वनाथं कलिकिल्बिषघ्नं ध्याये शिवालिङ्गितमष्टदेहम् ॥९०॥

उच्चाटन, मारण और विद्वेषण कर्म में ध्यान इस प्रकार करना चाहिये। काली

के करकमलों में शूल है, जिससे वे वैरि-समूह को विनष्ट कर रही हैं। उनके कण्ठ में मुण्डों की माला है और उनके गर्जन से सारा संसार भयभीत है।

विना ज्ञान के भी जो साधक एक करोड़ पार्थिव लिंगों का पूजन करता है, उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसके लिये ध्यान इस प्रकार बतलाया गया है—जिन पुरुषों का समस्त ज्ञान योगमाया के द्वारा हर लिया गया है, उन्हें कलिकिल्विषों को दूर करने वाले विश्वनाथ के पार्वती द्वारा आलिङ्गित आठ रूपों का ध्यान करना चाहिये।

भोगार्थी लक्षमेकन्तु कुर्यात्पुष्पमयानि तु।
दिव्यान् भोगानवाप्नोति ध्यानमत्र निरूप्यते ॥९१॥
वन्दे महेशं सुरसिद्धसेवितं कल्पद्रुमारण्यगतं प्रसन्नम्।
पर्यङ्कगं शैलसुतासमेतं देवाङ्गनागीतसुनृत्यतुष्टम् ॥९२॥

भोग-प्राप्ति के इच्छुक लोगों को पुष्प से निर्मित एक लाख लिंगों का अर्चन करना चाहिये। ऐसा करने से उन्हें दिव्य भोग प्राप्त होते हैं। इस पूजन में ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—मैं उन महेश का ध्यान करता हूँ, जिनकी सेवा में सुर और सिद्ध लगे रहते हैं। जो कल्पवृक्षों के वन में पार्वती के साथ पलंग पर प्रसन्न होकर बैठे हुए हैं। जो देवाङ्गनाओं के गीत और सुन्दर नृत्य से सन्तुष्ट हैं।।९१-९२।।

निर्विघ्नकाशीवासार्थं लोकद्वयजिगीषया।
लिङ्गान्ययुतसङ्ख्यानि धात्रीफलभवानि तु ॥९३॥
सहस्त्रमात्रं पित्तल्या यो लिङ्गानि प्रपूजयेत्।
यथेष्टं लभते भूमिं त्रिसन्ध्यं त्वेकमेव वा ॥९४॥
सहस्त्रत्रितयं रूपकामो गोरोचनोद्भवम्।
तावत्सङ्ख्यं कान्तिकामः काश्मीरीसम्भवं यजेत् ॥९५॥

दोनों लोकों (इहलोक और परलोक) को विजित करने की कामना से जो काशी में निर्विघ्न निवास करना चाहते हैं; हे पार्वति! उन्हें धात्री (आँवला) के फ़ल से निर्मित दस हजार लिंगों का अर्चन करना चाहिये।

जो तीनों सन्ध्याओं में या एक सन्ध्या में पीतल के एक हजार लिंगों का पूजन करता है, उसे इच्छानुरूप भूमि की प्राप्ति होती है।

जिसे-सुन्दर रूप की कामना हो, उसे गोरोचन से निर्मित तीन हजार लिंगों का पूजन करना चाहिये। जिसे कान्तिमान होने की इच्छा हो, उसे केसर से बने तीन हजार लिंगों का पूजन करना चाहिये।।९३-९५।।

मधुपुष्पोद्भवं लिङ्गं वसन्ते शतमर्चयेत्।
प्रत्यहं जायते कामी स्त्रियां तु ध्यानमत्र तु ॥९६॥
ध्याये नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं
रत्नाकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
पद्मासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं
विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं निखिलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम् ॥९७॥

वसन्त ऋतु के दो महीनों में महुआ के फूलों से निर्मित एक सौ लिंगों का जो अर्चन करता है, उस कामी को इच्छित स्त्री की प्राप्ति होती है। इसके लिये ध्यान इस प्रकार करना चाहिये—मैं उन महेश का ध्यान करता हूँ, जिनकी प्रभा चाँदी के पर्वत के समान है। जिनके मस्तक पर रमणीय चन्द्रमा का मुकुट विराजमान है। अंग रत्नों की प्रभा से प्रकाशित हैं। उनके चारो हाथों में परशु, मृग, वर और अभय मुद्रा हैं। वे प्रसन्न हैं और कमल पर विराजमान हैं। देवताओं का समूह चारो ओर से उनकी वन्दना कर रहा है। बाघाम्बर उनका वस्त्र है। वे विश्व के मूल कारण हैं, सारा संसार उनकी वन्दना करता है। वे सबों के भय के विनाशक हैं। उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुख में तीन नेत्र हैं।।९६-९७।।

तीर्थार्थी द्विसहस्राणि सम्यग्लिङ्गानि पूजयेत्।
पृथक् पृथग्बिल्वदलैस्तत्र ध्यानमुदीर्यते ॥९८॥
विजितमदनदर्पः सर्पराजोपवीती
धवलवृषभगामी यामिनीनाथमूर्द्धा।
विधिहरितपनाद्यैः पूजितः पूजनीयो
दिशतु गिरिसुताया वल्लभो नो विभूतीः ॥९९॥

तीर्थाटन के इच्छुक लोगों को दो हजार लिंगों का अर्चन प्रतिदिन बेलपत्र से अलग-अलग करना चाहिये। उसके लिये ध्यान इस प्रकार कहा गया है—मैं उन उमापति का ध्यान करता हूँ, जिन्होंने कामदेव के दर्प का दमन किया है। जिनका यज्ञोपवीत सर्पराज है। जो श्वेत वृषभ पर सवार होकर चलते हैं। जिनके मस्तक पर चन्द्रमा है। ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य आदि जिनकी पूजा करते हैं और सदैव उनके पूज्य हैं। वे उमापति हमें विभूति प्रदान करें।।९८-९९।।

यक्षकर्द्दमजं लिङ्गं सहस्रं प्रीतिवर्धनम्।
सहस्रपञ्चकं कुर्याद् गुडजं प्रीतिवृद्धये ॥१००॥
लक्षन्तु गुडलिङ्गानां पूजनात् पार्थिवो भवेत्।
स्त्री सहस्रं पूजयित्वा भर्तुः प्रियतरा भवेत् ॥१०१॥

नवनीतस्य लिङ्गानि सम्पूज्येष्टमवाप्नुयात्।

कुमकुम, अगर, कस्तूरी एवं कर्पूरपिष्ट को यक्षकर्दम कहते हैं। यक्षकर्दम से एक हजार लिंग बनाकर पूजन करने से परस्पर प्रीति-वृद्धि होती है अथवा पाँच हजार गुड़-निर्मित लिंग के अर्चन से प्रेम बढ़ता है। गुड़ से निर्मित एक लाख लिंगों का पूजन करने वाला व्यक्ति भूपति होता है। गुड़-निर्मित एक हजार लिंग के पूजन से स्त्री अपने पति की प्रियतमा होती है। मक्खन से निर्मित लिंग का सम्यक् रूप से अर्चन करने वाला व्यक्ति अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है।।१००-१०१।।

भस्मनो गोमयस्यापि वालुकायास्तथा फलम्।।१०२।।
त्रिसहस्रं सुहृत्कामी मासि मासि समर्चयेत्।
वर्षैकं निश्चलमना जगन्मित्रं स जायते।।१०३।।
प्रत्यहं यस्त्वष्टशतं मासमात्रं समर्चयेत्।
स शास्त्राभ्यसनादेव गुरुतोऽप्यधिको भवेत्।।१०४।।
प्रातर्गोमयलिङ्गानि नित्यं यस्त्रीणि पूजयेत्।
बृहतीबिल्वजैः पत्रैर्नैवेद्यं गुडमर्पयेत्।।१०५।।
एवं मासत्रयं कुर्वन्ननल्पं लभते धनम्।
एकादशैव लिङ्गानि गोमयस्यैव यो यजेत्।।१०६।।
प्रातर्मध्याह्नयोः सायं निशीथे प्रतिवासरम्।
स सर्वाः सम्पदो यायात् षण्मासानेवमाचरेत्।।१०७।।

मित्रता का आकांक्षी व्यक्ति यदि प्रत्येक महीने तीन हजार की संख्या में गोबर के भस्म अथवा बालू से लिंग का निर्माण करके लगातार एक वर्ष तक उसका पूजन करता है तो समस्त संसार उसका मित्र हो जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति एक मास तक आठ सौ की संख्या में प्रतिदिन उपर्युक्त लिंगों का पूजन करता है, वह शास्त्रों के अभ्यास से अपने गुरु से भी अधिक ज्ञानी हो जाता है।

जो व्यक्ति तीन मास तक नित्य प्रात:काल गोबर से निर्मित तीन लिंगों का पूजन बृहती (कटैला) और बेलपत्रों से करता है एवं नैवेद्य में गुड़ अर्पण करता है, उसे बहुत धन प्राप्त होता है। छः महीनों तक गोबर से निर्मित ग्यारह लिंगों का जो तीनों सन्ध्याओं तथा रात में प्रतिदिन पूजन करता है, उसे सभी प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त है।

यत्र कुत्रापि मोहार्थं चौराणां वापि शुल्किनाम्।
दुर्भूपानामष्टशतं त्रिपक्षं नित्यमर्चयेत्।।१०८।।
यो यजेत्पिचुमन्दोत्थैः पत्रैर्गोमयजं शिवम्।
क्रुद्धं महेश्वरं ध्यायेत्स पराजयते रिपून्।।१०९।।

हरिद्रापिष्टजं लिङ्गसहस्रं यः प्रपूजयेत्।
स्तम्भयेत्स सहस्राणां पञ्चकेन महीपतिम् ॥११०॥
नित्यं पञ्चशतं कुर्यान्मासं निगडमोचनम्।
दुर्गनिर्मुक्तिकामस्तु कुर्यात्पञ्चसहस्रकम् ॥१११॥
कारागृहादिमुक्त्यर्थमयुतं कारयेत्सुधीः।
महादुर्गनिबद्धस्तु षण्मासान्मोक्षमाप्नुयात् ॥११२॥
पूजयायुतलिङ्गानां महाराजभयं हरेत्।
प्रत्यहं वा पञ्चशतं पूजयेच्च त्रिपक्षकम् ॥११३॥
शतद्वयं प्रत्यहं यो मासमेकं समर्चयेत्।
तस्य चौरभयं नास्ति सुखेनायाति देशतः ॥११४॥

चोरों, करग्राहकों या दुष्ट राजाओं को अपने मनोनुकूल बनाने के लिये पैंतालीस दिनों तक आठ सौ की संख्या में लिंगपूजन करना चाहिये। जो व्यक्ति नीम के पत्तों के पिष्ट से बने लिंग या गोबर से बने लिंग का अर्चन करता हुआ भगवान् महेश्वर के क्रुद्ध रूप का ध्यान करता है, उसके शत्रु पराजित हो जाते हैं।

हल्दी-पिष्ट से निर्मित एक हजार लिंगों के पूजन से स्तम्भन होता है। इसी प्रकार के पाँच हजार लिंगार्चन से राजा का स्तम्भन होता है। प्रतिदिन पाँच सौ की संख्या में हल्दी से निर्मित लिंग-पूजन से निगड़बन्धन से मुक्ति प्राप्त होती है। एवमेव किले में बन्द बन्दी को छुड़ाने के लिये एक महीने तक पाँच हजार हल्दीलिंग का पूजन करना चाहिये और जेल से छुटकारे के लिये दस हजार लिंगार्चन करना चाहिये। इसी प्रकार छः महीने तक लिंगार्चन करने से महादुर्ग से भी छुटकारा मिल जाता है। दस हजार लिंगार्चन से महाराजा का भय समाप्त होता है अथवा पैंतालीस दिनों तक प्रतिदिन पाँच सौ लिंगार्चन से भी महाराज-भय समाप्त होता है। जो व्यक्ति एक महीने तक प्रतिदिन दो सौ लिंगार्चन करता है, उसे रास्ते में चोरों का भय नहीं रहता और वह सुखपूर्वक स्वदेश लौट आता है।।१०८-११४।।

डाकिन्यादिभये सप्तसहस्रं वाऽथ नित्यशः।
षण्मासं पञ्चशतकं योऽर्चयेत्तु तदन्तकः ॥११५॥
सहस्रपञ्चकं मासि योऽर्चयेद्वर्षपञ्चकम्।
पूर्वजन्मार्जिताद्वापि दारिद्र्यात् परिमुच्यते ॥११६॥
एकादश यजेन्नित्यं शालिपिष्टमयानि च।
लिङ्गानि मासमात्रेण सकलं कल्मषं दहेत् ॥११७॥

यः कृष्णैश्च तिलैः सम्यग्लिङ्गं कृत्वाऽर्चयेन्नरः।
वर्षत्रयं तस्य सर्वपापनाशः प्रजायते ॥११८॥
शिशिरे सर्वपुष्पोत्थं लिङ्गं योऽर्चति चेन्नरः।
निष्पापः स्यात्त्रिवर्षं वा पूजयेत्स्फाटिकं तथा ॥११९॥

डाकिनी आदि का भय उपस्थित होने पर सात हजार लिंगार्चन या प्रतिदिन छः महीनों तक पाँच सौ लिंगार्चन करने से वह भय समाप्त हो जाता है। जो व्यक्ति पाँच वर्षों तक प्रतिमास पाँच हजार लिंगों का अर्चन करता है, वह पूर्वजन्मार्जित दरिद्रता से मुक्त हो जाता है।

शालिधान्य के चूर्ण से निर्मित ग्यारह लिंगों का एक मास तक जो प्रतिदिन पूजन करता है, उसके समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति तीन वर्षों तक काले तिल से निर्मित लिंगों का पूजन करता है, उसके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। शिशिर ऋतु (अगहन-पूष) में प्रतिदिन सभी पुष्पों से लिंग बनाकर जो व्यक्ति तीन वर्षों तक उनका पूजन करता है, वह निष्पाप हो जाता है अथवा स्फटिक-निर्मित लिङ्ग-पूजन से भी व्यक्ति निष्पाप हो जाता है।।११५-११९।।

बालवैधव्ययोगस्य नाशार्थमयुतत्रयम्।
लिङ्गानामयुतेनैव कन्यका सत्पतिं लभेत् ॥१२०॥
यस्त्वेकादशलिङ्गानि रजतोत्थानि पूजयेत्।
प्रत्यहं तं सर्वगुणा जायन्ते समुपस्थिताः ॥१२१॥
लिङ्गान्ययुतसङ्ख्यानि तिलपिष्टस्य योऽर्चयेत्।
प्रत्यहं वा रुद्रसङ्ख्यं वर्षाद् ग्रामपतिर्भवेत् ॥१२२॥
ब्रह्मस्वपरिहारार्थं सौवर्णं लिङ्गमर्चयेत्।
त्रिसन्ध्यं नक्तभोजी च रुद्रसूक्तपरायणः ॥१२३॥
लवणोद्भवलिङ्गानि योऽयुतं च पृथक्पृथक्।
पूजयेत्तस्य सौभाग्यं निर्धनस्यापि वर्धते ॥१२४॥

बालवैधव्य योग के नाश के लिये तीस हजार पार्थिव लिंगों का अर्चन करना चाहिये। दस हजार पार्थिव लिंगों के पूजन से कन्या सुन्दर पति को प्राप्त करती है।

जो व्यक्ति प्रतिदिन चाँदी के ग्यारह लिंगों का पूजन करता है, उस व्यक्ति में सभी सद्गुणों का समावेश हो जाता है। जो व्यक्ति तिलपिष्ट से निर्मित दस हजार लिंगों का अथवा एक वर्ष तक प्रतिदिन ग्यारह तिलपिष्ट-निर्मित लिंगों का पूजन करता है, वह ग्रामाधिपति हो जाता है।

ब्रह्मांश-उपभोग से प्राप्त पाप के विनाश के लिये केवल रात्रिभोजन करते हुये तीनों सन्ध्याओं में सुवर्ण-निर्मित लिंग का पूजन एवं रुद्रसूक्त का पाठ करना चाहिये।

निर्धन व्यक्ति भी यदि नमक से निर्मित दस हजार लिंगों का पृथक्-पृथक् पूजन करता है तो वह सौभाग्यशाली हो जाता है।।१२०-१२४।।

यस्त्वन्नस्य शिवं कृत्वा ऋतुमेकं प्रपूजयेत्।
शतमेकं प्रत्यहं चेदन्नं क्षेत्रे भवेद्बहु ॥१२५॥
अयुतं शर्करालिङ्गं वर्षाकालेऽथवा पुनः।
धत्तूरकुसुमोत्थानि लिङ्गान्येकादशार्चयेत् ॥१२६॥
यवपिष्टोद्भवान्येव लिङ्गानि लवणस्य वा।
कृत्वा चायुतसङ्ख्यानि वशीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥१२७॥
पृथक्छतत्रयं यस्तु गोमयोत्थानि पूजयेत्।
क्षुद्ररोगविनाशः स्यात् षण्मासाच्च महागदाः ॥१२८॥

जिस किसी एक ऋतु के दो महीनों में प्रतिदिन जिस किसी एक अन्न का एक सौ लिंग बनाकर उसका प्रतिदिन पूजन किया जाता है, उस अन्न की उपज क्षेत्र में बहुत अधिक बढ़ जाती है।

वर्षाकाल में दस हजार गुड़-निर्मित लिंग अथवा ग्यारह धत्तूरपुष्प-निर्मित के लिंग, यवचूर्ण अथवा नमक से निर्मित दस हजार लिंगों के अर्चन से तीनों लोक वशीभूत हो जाते हैं।

गोबर से निर्मित तीन सौ लिंगों का अलग-अलग पूजन करने से क्षुद्र रोगों का विनाश होता है और छः मास तक उनका अर्चन करने से महान् रोगों से भी मुक्ति मिल जाती है।।१२५-१२८।।

फलं न जायते दृष्ट्वा यस्य कस्यापि कर्मणः।
फललिङ्गानि पूज्यानि तेन चायुतसङ्ख्यया ॥१२९॥
दूर्वायाश्च गुडूच्या वायुतं लिङ्गानि योऽर्चयेत्।
तस्याल्पमृत्युनाशः स्यात्तथा नीवारपिष्टजात् ॥१३०॥
इन्द्रनीलस्य यो लिङ्गं मासषट्कं प्रपूजयेत्।
अथवा ताम्रजं लिङ्गं तस्य सिद्ध्यति पौष्टिकम् ॥१३१॥
स्फाटिकस्य तु यल्लिङ्गं स योगेश्वर उच्यते।
लक्षस्य पूजनात्तस्य बहुस्वामित्वमाप्नुयात् ॥१३२॥

पितृगेहादिमोक्षार्थमथ वा पितृमुक्तये।
रजतस्य यदा लिङ्गमयुतं परिपूजयेत् ॥१३३॥
अयुतं स्वर्णलिङ्गस्य पूजनं प्रकरोति यः।
स सत्यलोकमाप्नोति सङ्कल्पे नात्र संशयः ॥१३४॥

किसी को उसके कर्मों के फल यदि न प्राप्त हों तो उसे लिंग की आकृति वाले फल से निर्मित दस हजार लिंगों का पूजन करना चाहिये (लिंगाकार फलों में जामुन, अंगूर, छुहाड़ा, खजूर आदि के फलों का ग्रहण किया जा सकता है)।

दूर्वा (दूब) अथवा गुरूच से निर्मित दस हजार लिंगों के अर्चन से अल्पायु मृत्युयोग का नाश होता है। तिन्नी चावल के चूर्ण से निर्मित लिंगों के अर्चन से भी अल्पमृत्यु का नाश होता है।

जो व्यक्ति छः महीने तक प्रतिदिन नीलम अथवा ताँबे से निर्मित लिंग का पूजन करता है, उसके पौष्टिक कर्म सिद्ध हो जाते हैं। स्फटिक से बने लिंग को योगेश्वर लिंग कहा जाता है। एक लाख की संख्या में स्फटिक-निर्मित लिंगों के पूजन से व्यक्ति को बहुस्वामित्व की प्राप्ति होती है अर्थात् वह विपुल सम्पत्ति एवं अनेक सेवकों वाला हो जाता है।

पितृगृह आदि की मुक्ति के लिये या पिता की मुक्ति के लिये दस हजार चाँदी के लिंगों का पूजन करना चाहिये। जो लोग दस हजार स्वर्णलिंगों का पूजन करते हैं, वे संकल्पमात्र से सत्यलोक को प्राप्त करते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

नागस्य त्रपुषश्चायुष्कामः कांस्यस्य चार्चयेत्।
देहसौगन्ध्यलाभाय गन्धकोत्थं समर्चयेत् ॥१३५॥
आद्यकर्षणजं काष्ठजातमेकन्तु निर्धनः।
सहस्रं पूजयेद्यस्तु दारिद्र्यात्प्रतिमुच्यते ॥१३६॥
कर्पूरजं शक्तिकामो गोऽर्थं गोधूमपिष्टजम्।
मुद्गपिष्टान्मुदे नित्यं लिङ्गं पूज्यं त्रयं द्विजैः ॥१३७॥
कस्तूरीसम्भवं नित्यं सहस्रं गन्धकामुकः।
मांषपिष्टमयं लिङ्गं नित्यपिष्टान्नसिद्धिदम् ॥१३८॥
यवधान्यमयं लिङ्गं यमलोकनिवारणम्।
प्रियङ्गुपिष्टजं लिङ्गं प्रियदं सर्वदेहिनाम् ॥१३९॥
यः करोति तिलैः श्वेतैः श्वेतद्वीपमहीपतिः।
यस्य यच्च प्रियं तस्य लिङ्गं कृत्वा तदाप्नुयात् ॥१४०॥

ग्रीष्मे तु मल्लिकापुष्पसम्भवानि सहस्त्रतः ।
अयुतं पूजयेद्यस्तु तस्य स्याद् द्विगुणाकृतिः ॥१४१॥
नीलोत्पलमयं लिङ्गं कृत्वा शरदि मानवः ।
यस्य कस्यापि कार्यस्य सिद्धिं प्राप्नोत्यसंशयः ॥१४२॥
हेमन्ते जातिकुसुमैर्लिङ्गं कृत्वा मनोहरम् ।
भक्त्या समर्च्य मतिमाञ्छिवेन सह मोदते ॥१४३॥

आयुवृद्धि के लिये सीसे, राँगे या कांसे से बने लिंग का पूजन करना चाहिये एवं शरीर को सुगन्धित बनाने के लिये गन्धक से निर्मित लिंग का अर्चन करना चाहिये। आद्यकर्षण काष्ठ (लिसोढ़ा) की लकड़ी से निर्मित एक हजार लिंगों के अर्चन से निर्धन व्यक्ति दरिद्रता से छुटकारा पा जाता है।

द्विजों को शक्ति की प्राप्ति के लिये कर्पूर से बने तीन लिंगों का, गौओं की प्राप्ति के लिये गेहूँ के आटे से निर्मित तीन लिंगों का एवं सुख-प्राप्ति के लिये मूँगदाल के पिष्ट से निर्मित तीन लंगों का नित्य अर्चन करना चाहिये।

गन्धकामुकों को एक हजार कस्तूरी-निर्मित लिंग का पूजन करना चाहिये। उड़द-दाल के चूर्ण से निर्मित एक हजार लिंगों के नित्य पूजन से नित्य पिष्टान्न (दही-बड़ा, बरी आदि) की प्राप्ति होती है।

जौ के आटे से निर्मित एक हजार लिंगों के अर्चन से यमलोक-गमन नहीं करना पड़ता। कंगुनी के आटे से निर्मित एक हजार लिंगों के अर्चन से समस्त शरीरधारियों का प्रेम प्राप्त होता है। उजले तिलपिष्ट से बने एक हजार लिंगों के अर्चन से व्यक्ति श्वेत द्वीप का राजा होता है। जिसे जो वस्तु प्रिय हो, उस वस्तु से बने लिंग का अर्चन करने से वह वस्तु प्राप्त होती है।

ग्रीष्मकाल में मालतीपुष्प से निर्मित एक हजार लिंगों का दस हजार बार जो पूजन करता है, उसकी आकृति द्विगुणित हो जाती है। शरद ऋतु में नीलकमल से निर्मित एक हजार लिंगों का जो मानव अर्चन करता है, उसके समस्त कार्य निःसन्दिग्ध रूप से सिद्ध होते हैं। हेमन्त ऋतु में जातिपुष्प से निर्मित मनोहर लिंगों का भक्तिपूर्वक सम्यक् रूप से पूजन करने वाला व्यक्ति भगवान् शिव की सन्निधि प्राप्त कर प्रसन्नता को प्राप्त होता है।।१३५-१४३।।

कोमलेषु तु लिङ्गेषु पार्थिवं श्रेष्ठमुच्यते ।
कठिनेषु तु पाषाणं पाषाणात् स्फाटिकं परम् ॥१४४॥
स्फाटिकात् पद्मरागञ्च काश्मीरं पद्मरागतः ।
काश्मीरात् पुष्परागोत्थमिन्द्रनीलोद्भवं ततः ॥१४५॥

इन्द्रनीलात्तु गोमेदं गोमेदाद् विद्रुमोद्भवम्।
विद्रुमान्मौक्तिकं श्रेष्ठं तस्माच्छ्रेष्ठं तु राजतम्॥१४६॥
हैरण्यं राजताच्छ्रेष्ठं हैरण्याद्धीरकं वरम्।
हीरकात् पारदं श्रेष्ठं बाणलिङ्गं ततः परम्॥१४७॥

कोमल लिंगों में पार्थिव लिंग उत्तम होता है। कठिन लिंगों में प्रस्तर से निर्मित लिंग उत्तम होता है। पत्थर के लिंगों से स्फटिक से बना लिंग उत्तम होता है। स्फाटिक लिंग से माणिक्य-निर्मित लिंग उत्तम होता है। माणिक्य लिंग से कस्तूरी-निर्मित, कस्तूरी से पुखराज-निर्मित, पुखराज से नीलम-निर्मित, नीलम से गोमेद-निर्मित, गोमेद से मूँगा-निर्मित एवं मूँगा से मोती-निर्मित लिंग क्रमशः उत्तम होता है। मोती द्वारा बने लिंग से रजत् अर्थात चाँदी से निर्मित, चाँदी की अपेक्षा स्वर्ण-निर्मित, उसकी अपेक्षा हीरे से निर्मित, उसकी अपेक्षा पारे से निर्मित एवं उससे भी बाणलिंग उत्तम होता है।।१४४-१४७।।

नर्मदाजलमध्यस्थं बाणलिङ्गमिति स्मृतम्।
बाणासुरार्चितं लिङ्गं बाणलिङ्गमितीरितम्॥१४८॥
बाणलिङ्गे स्वयम्भूते चन्द्रकान्ते हृदि स्थिते।
चान्द्रायणसमं ज्ञेयं शम्भोर्नैवेद्यभक्षणम्॥१४९॥
ग्राह्याग्राह्यविभागोऽयं बाणलिङ्गे न विद्यते।
तदर्पितं जलं चान्नं ग्राह्यं प्रासादसञ्ज्ञया॥१५०॥
शिवनाममयं लिङ्गं सदा पूज्यं महर्षिभिः।
यतश्च सर्वलिङ्गेभ्यस्तद्धि पूज्यतमं मतम्॥१५१॥

बाणलिंग नर्मदा नदी के जल से प्राप्त होता है। बाणासुर ने इस लिंग का अर्चन किया था, इसीलिये इसे बाणलिंग कहा जाता है। स्वयं समुद्भूत चन्द्रमा के सदृश कान्ति वाले बाणलिंग को हृदय पर धारण कर शम्भु के नैवेद्य का भक्षण करना चान्द्रायण व्रत के समान होता है। बाणलिंग पर अर्पित नैवेद्य में ग्राह्य-अग्राह्य का विचार नहीं किया जाता; अपितु बाणलिंग पर अर्पित जल एवं अन्न प्रसाद के रूप में ग्राह्य है। समस्त लिंगों में सर्वाधिक पूज्य माना गया साक्षात् शिवस्वरूप यह बाणलिंग ही महर्षियों द्वारा सदा पूजित होता है।।१४८-१५१।।

चतुरङ्गुलमुच्छ्रायं रम्यं वेदिकया युतम्।
उत्तमं लिङ्गमाख्यातं पञ्चसूत्रैः सुसाधितम्॥१५२॥
तदर्धमधमं प्रोक्तं तदर्धमवरं स्मृतम्।
तस्मान्न्यूनं पूजनीयं न कदापि न सत्फलम्॥१५३॥

रुद्राक्षं शिवलिङ्गं च स्थूलं स्थूलं प्रशस्यते।
शालग्रामो नार्मदश्च सूक्ष्मः सूक्ष्मो विशिष्यते ॥१५४॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाऽप्यनुलोमजः।
पूजयेत् सततं लिङ्गं तत्तन्मन्त्रेण सादरम् ॥१५५॥

लिंगमान का महत्त्व—पाँच सूत्रों से सुसाधित चार अङ्गुल ऊँची सुन्दर वेदी से समन्वित लिंग उत्तम होता है। उससे आधा अर्थात दो अङ्गुल ऊँचा लिंग अधम और उससे भी आधा अर्थात् एक अङ्गुल ऊँचा लिंग अवर अर्थात् निम्न कोटि का होता है। शुभ फलों की प्राप्ति के लिये इससे कम ऊँचाई वाले लिंग की पूजा नहीं करनी चाहिये।

रुद्राक्ष और शिवलिंग स्थूल आकार वाले ही प्रशस्त माने जाते हैं; जबकि शालग्राम और नर्मदेश्वर सूक्ष्म से सूक्ष्म ही श्रेष्ठ माने जाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा अनुलोमजों को अपने-अपने लिये विहित तत्तत् मन्त्रों से सदैव आदर के साथ लिंगपूजन करना चाहिये।।१५२-१५५।।

विप्राणां वैदिकेनैव मन्त्रेणाराधनं वरम्।
तन्त्रोक्तं दीक्षितानां च तन्त्रोक्तेन विधानतः।
स्मृतमाराधनं शम्भोर्न चावैदिकवर्त्मना ॥१५६॥
दधीचिगौतमादीनां शापनिर्दग्धचेतसाम्।
न जायेत तथा श्रद्धा पूते वैदिककर्मणि ॥१५७॥
यो वैदिकमनादृत्य स्मार्तकर्म तथैव च।
अन्यत्समाचरेन्मर्त्यो न स कर्मफलं लभेत्।

ब्राह्मणों के लिये वैदिक मन्त्र से आराधना करना ही श्रेष्ठ कहा गया है। तान्त्रिक मार्ग में दीक्षित लोगों को तान्त्रिक विधि से ही पूजन करना चाहिये। अवैदिक मार्ग से भगवान् शिव की आराधना नहीं करनी चाहिये।

दधीचि, गौतम आदि के शाप से दग्ध चित्त वालों की पवित्र वैदिक कर्मों में उतनी श्रद्धा नहीं होती। जो मनुष्य वैदिक और स्मार्त कर्मों का अनादर करके अन्य मार्ग का आश्रयण ग्रहण करते हैं, उन्हें कर्मफल की प्राप्ति नहीं होती।।१५६-१५७।।

बहवः सिद्धिमेष्यन्ति कलौ पार्थिवलिङ्गतः ॥१५८॥
कृते रत्नमयं लिङ्गं त्रेतायां हेमसम्भवम्।
द्वापरे पारदं श्रेष्ठं पार्थिवं तु कलौ युगे ॥१५९॥

यथालब्धोपचारैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः।
पूजयेत्पार्थिवं लिङ्गं शास्त्रोक्तविधिना नरः॥१६०॥
पञ्चसूत्रविचारं च पार्थिवे न विचारयेत्।
यथाकथञ्चिद्विधिना रमणीयं प्रकल्पयेत्॥१६१॥

कलियुग में अधिकांश लोग पार्थिव लिंगों के पूजन से ही सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं। कृतयुग में रत्न-निर्मित लिंग को, त्रेता में स्वर्ण-निर्मित लिंग को, द्वापर में पारदलिंग को और कलियुग में पार्थिव लिंग को श्रेष्ठ कहा गया है। व्यक्ति को यथाशक्ति उपलब्ध उपचारों से शास्त्रीय विधि के अनुसार श्रद्धा-भक्तिपूर्वक पार्थिव लिंग का पूजन करना चाहिये। पार्थिव लिंग के निर्माण में पञ्चसूत्री का विचार नहीं करना चाहिये; अपितु उसे जिस-किसी भी प्रकार से अत्यन्त मनोहर पार्थिव लिंग का निर्माण करना चाहिये।।१५८-१६१।।

द्विखण्डं तु प्रकुर्वाणो नैव पूजाफलं लभेत्।
रत्नहेमधरासूतपिष्टस्फटिकसम्भवम् ॥१६२॥
एकखण्डं भवेल्लिङ्गमितरे च चराचरे।
कुर्यात्तदेकखण्डं तु द्विखण्डं तु स्थिरं स्मृतम्॥१६३॥

दो खण्डों में निर्मित शिवलिंग का पूजन करने से उस पूजा का किसी प्रकार का फल प्राप्त नहीं होता। रत्न, सुवर्ण, मिट्टी, पारा, आटा एवं स्फटिक से बने लिंग एक ही खण्ड़ वाले होते हैं। इस चराचर जगत् में एक खण्ड़ वाला ही लिंग होता है। दो खण्ड़ वाले लिंग को स्थिर कहा गया है।।१६२-१६३।।

विप्राणां मृत्तिका श्वेता क्षत्रियाणां तथारुणा।
विशां पीता च शूद्राणां कृष्णा वा लभ्यते यथा॥१६४॥
भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि।
उग्राय चोग्रनाशाय सर्वाय शशिमौलिने॥१६५॥
विलोमानां पूजनार्थं मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः।
ततः पूजासमाप्तौ तु दद्यात् पुष्पाञ्जलित्रयम्॥१६६॥

लिंगार्चन के लिये लिंग-निर्माण में ब्राह्मणों को उजली मिट्टी का, क्षत्रियों को लाल मिट्टी का, वैश्यों को पीली मिट्टी का एवं शूद्रों को काली मिट्टी का प्रयोग करना चाहिये अथवा जिस वर्ण की मिट्टी उपलब्ध हो, उसी मिट्टी से लिंग का निर्माण करना चाहिये। विलोम (उच्च वर्ण की स्त्री और निम्न वर्ण के पुरुष से उत्पन्न व्यक्ति) व्यक्तियों को लिंग-पूजन के समय निम्न मन्त्र का प्रयोग करना चाहिये—

भवाय भवनाशाय महादेवाय धीमहि।
उग्राय चोग्रनाशाय शर्वाय शशिमौलिने।।

पूजा की समाप्ति होने पर तीन पुष्पाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये।।१६४-१६६।।

शिवस्तोत्रजपादिकथनम्

जपं पञ्चाक्षरस्यापि कुर्यादष्टोत्तरं शतम्।
वक्ष्यमाणां स्तुतिं पश्चात् पठेद्देवस्य तुष्टये॥१६७॥
नमोङ्कारस्वरूपाय नमोऽक्षरवपुर्धृते।
नमो नादात्मने तुभ्यं नमो बिन्दुकलात्मने॥१६८॥
अलिङ्गलिङ्गरूपाय रूपातीताय वै नमः।
त्वं माता सर्वलोकानां त्वमेव जगतः पिता॥१६९॥
त्वं त्राता त्वं सुहृन्मित्रं त्वं प्रियः शिवरूपधृक्।
त्वं गुरुस्त्वं गतिः साक्षी त्वं पिता त्वं पितामहः॥१७०॥
नमस्ते भगवन् रुद्र भास्करामिततेजसे।
नमो भवाय देवाय धर्मरूपहिताय च॥१७१॥
शिवाय क्षितिपालाय सदासुरभिदे नमः।
पशूनां पतये चैव पावकामिततेजसे॥१७२॥
भीमाय व्योमरूपाय शब्दमात्राय ते नमः।
महादेवाय सोमाय अमृताय नमोऽस्तु ते॥१७३॥
उग्राय यजमानाय नमस्ते कर्मयोगिने।
ओङ्काराय नमस्तुभ्यं धर्मगोवाहनाय च॥१७४॥
पार्थिवस्य च लिङ्गस्य यन्मया पूजनं कृतम्।
अनेन भगवान् रुद्रो वाञ्छितार्थं प्रयच्छतु॥१७५॥
इति स्तुत्वा जपं कृत्वा प्रणिपत्य विसर्जयेत्।

पञ्चाक्षरी मन्त्र—पुष्पाञ्जलि प्रदान करने के उपरान्त 'ॐ नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षरी मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। जप के पश्चात् देवता की सन्तुष्टि के लिये मूलोक्त श्लोक १६८ से १७५ तक का पाठ करना चाहिये। उक्त श्लोकों का तात्पर्यार्थ इस प्रकार है—

ॐकार-स्वरूप को नमस्कार है। अक्षय शरीरधारी को प्रणाम है। नादब्रह्म को प्रणाम है। बिन्दु-कला रूप को प्रणाम है। अलिंग लिंगरूप को, रूपातीत को नमस्कार

है। सभी लोकों की माता तुम्हीं हो एवं सारे संसार के पिता भी तुम्हीं हो, तुम्हें प्रणाम है। तुम्ही रक्षक हो, तुम्हीं हितैषी हो, तुम्हीं मित्र हो, तुम्हीं प्रिय शिव का स्वरूप धारण करने वाले हो, तुम्हीं गुरु हो, तुम्हीं गति हो, तुम्हीं साक्षी हो, तुम्हीं पिता हो और तुम्हीं पितामह भी हो। अगणित सूर्य के तेज से समन्वित भगवान् रुद्र को प्रणाम हैं। कल्याण के लिये भव-रूप धारण करने वाले भवदेव को नमस्कार है। धरती का पालन करने वाले, देवताओं एवं असुरों को विदीर्ण करने वाले शिव को प्रणाम हैं। अपरिमेय अग्नितेज से युक्त भगवान् पशुपति को प्रणाम है। भयंकर आकाशस्वरूप एवं शब्दतन्मात्रास्वरूप को प्रणाम हैं। पियूषवर्षी चन्द्ररूप महादेव को प्रणाम है। उग्र कर्मयोगी यजमान को प्रणाम है। ॐकार रूप को प्रणाम है। धर्म एवं वृषभवाहन-स्वरूप को प्रणाम है। इन पार्थिव लिंगों का जो पूजन मैंने किया है, इसके द्वारा भगवान् रुद्र हमारे अभीष्ट को हमें प्रदान करें। इस प्रकार स्तुति करने के उपरान्त जप करना चाहिये और जप पूर्ण करने के बाद प्रणाम करके देवता का विसर्जन करना चाहिये।।१६७-१७५।।

अथैकादशलिङ्गानां विधानमभिधीयते ॥१७६॥
एकं लिङ्गं प्रतिदिनं षोडशैरुपचारकैः ।
पूजयेद्द्रोणपुष्पैर्घृतमेव समर्पयेत् ॥१७७॥
एवं शतदिनं सर्वऋणान्मुक्तिः प्रजायते ।
लिङ्गद्वयं प्रतिदिनं षोडशैरुपचारकैः ।
पुष्पाणि मल्लिकायास्तु नैवद्यार्थं गुडः स्मृतः ॥१७८॥
दिनानां त्रिशतं कुर्यादयुतं पुत्रमाप्नुयात् ।
दिनं प्रति त्रयं कृत्वा षोडशैरुपचारकैः ॥१७९॥
करञ्जपुष्पैः कर्पूरं नैवेद्यं सम्प्रदर्शयेत् ।
दिनानां पञ्चशतकं कन्या भवति शोभना ॥१८०॥
चतुष्टयं प्रतिदिनं षोडशैरुपचारकैः ।
पूजयेद्यवनैवेद्यं पुष्पाणि चम्पकस्य तु ॥१८१॥
दिनं पञ्चशतं कृत्वा विवाहो जायते ध्रुवम् ।
षट्षड्बकुलपुष्पैश्च नैवेद्यं क्षौद्रमेव च ॥१८२॥
महतः कलहान्मुक्तिर्दिनानां स्याच्छतत्रयात् ।
सप्त प्रतिदिनं पुष्पैः शतपत्रैः प्रपूजयेत् ॥१८३॥
दध्योदनं च नैवेद्यं दिनपञ्चशतैर्युतम् ।
उद्दिष्टं मनसि यत्तीर्थं तद्भवेद्देवतापि च ॥१८४॥

यस्तु प्रतिदिनं चाष्टबिल्वपत्रैः समर्चयेत्।
नैवेद्यं तत्र लड्डूका उपचाराश्च षोडश ॥१८५॥
शतत्रयदिनं कृत्वा महाविद्यागमो भवेत्।
नव प्रतिदिनं कृत्वा नैवेद्यं पञ्चमासकम् ॥१८६॥
बन्धुपुष्पैश्च पूजा स्यादृणमुक्तो धनी भवेत्।
दश प्रतिदिनं वर्षमेकं काञ्चनपुष्पकैः ॥१८७॥
नैवेद्यार्थमपूपाः स्युर्दूरदेशागमो भवेत्।
एकादश प्रतिदिनं नैवेद्यं पञ्चखाद्यकम् ॥१८८॥
पुष्पाणि करवीरस्य काञ्चनं रजतादिकम्।
मुक्ताफलप्रवालादि यदिष्टं प्राप्नुयाच्च तत् ॥१८९॥

अब एकादश लिंगों के अर्चन-विधान को कहता हूँ। एक सौ दिनों तक प्रतिदिन एक लिंग का द्रोणपुष्प से षोडशोपचार पूजन करने के बाद उस पर घी समर्पित करने से समस्त ऋणों से मुक्ति प्राप्त होती है। तीन सौ दिनों तक प्रतिदिन दो लिंगों का मल्लिकापुष्प से षोडशोपचार पूजन सम्पन्न कर गुड़ का नैवेद्य अर्पण करने से दस हजार पुत्रों की प्राप्ति होती है। पाँच सौ दिनों तक प्रतिदिन तीन लिंगों के षोडशोपचार पूजन में करंजपुष्प, कपूर और नैवेद्य अर्पण से सुन्दर पुत्री की प्राप्ति होती है। पाँच सौ दिनों तक प्रतिदिन चार लिंगों के षोडशोपचार पूजन में चम्पापुष्प और यव से बने नैवेद्य का अर्पण करने से निश्चय ही विवाह हो जाता है। तीन सौ दिनों तक प्रतिदिन छः लिंगों के षोडशोपचार पूजन में मौलसिरीपुष्प और मधु का अर्पण करने से अतिशय भयंकर कलह से भी मुक्ति मिल जाती है। पाँच सौ दिनों तक प्रतिदिन सात लिंगों के षोडशोपचार पूजन में गुलाब या कमलपुष्प और दही-भात का नैवेद्य अर्पण करने से अभीप्सित तीर्थ और देवता का दर्शन होता है। तीन सौ दिनों तक प्रतिदिन आठ लिंगों के षोडशोपचार पूजन में बेलपत्र और लड्डू का नैवेद्य अर्पण करने से व्यक्ति को महती विद्या की प्राप्ति होती है। पाँच मास तक प्रतिदिन नव लिंगों का नैवेद्य-सहित बन्धूकपुष्प अर्पण करते हुये पूजन करने वाला व्यक्ति ऋण से मुक्त होकर धनी हो जाता है। एक वर्ष तक प्रतिदिन दस लिंगों के षोडशोपचार पूजन में स्वर्णपुष्प और पूआ का नैवेद्य अर्पित करने से दूर देश गया हुआ व्यक्ति भी लौट आता है। एक वर्ष तक प्रतिदिन ग्यारह लिंगों के षोडशोपचार पूजन में पंचमेवा के नैवेद्य के साथ-साथ करवीरपुष्प अर्पित करने से व्यक्ति सोना, चाँदी, मोती, मूँगा आदि जो भी अभीष्ट हो, उसे प्राप्त कर लेता है।।१७६-१८९।।

लिङ्गार्चनोद्यापनविधिः

उद्यापनविधिं वक्ष्ये समाप्तौ तत्समाचरेत्।
लिङ्गार्चने च सम्पूर्णे सञ्जाते च मनोरथे ॥१९०॥
कुर्याल्लिङ्गं तु सौवर्णं रौप्यं ताम्रमथापि वा।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत तत्प्रमाणेन निर्मितम् ॥१९१॥
महाशैवाख्ययोगोऽयमार्द्रा सोमश्चतुर्दशी।
द्वयोर्योगे शैवयोग एकस्मिंस्तु दिनं शिवम् ॥१९२॥
महायोगेऽनन्तफलं बहुलं शैवयोगके।
यथोक्तं शिवयोगे तु फलं प्राप्नोति मानवः ॥१९३॥
उपोष्य प्रथमे चाह्नि सम्पूज्य परमेश्वरम्।
आचार्य्यं ब्राह्मणांश्चापि होमार्थं वृणुयात्ततः ॥१९४॥
गणेशमम्बां सम्पूज्य शिवं संस्थाप्य पूजयेत्।
प्राणप्रतिष्ठापूर्वन्तु वह्निस्थापनमाचरेत् ॥१९५॥
आचार्य्यमृत्विजश्चापि वरयेद्दक्षिणादिना।
यत्सङ्ख्याकं यजेल्लिङ्गं तन्मितं होममाचरेत् ॥१९६॥

लिंगार्चन की समाप्ति होने पर उसके उद्यापन की विधि को अब मैं कहता हूँ। लिंगार्चन की समाप्ति के पश्चात् मनोरथ के पूर्ण हो जाने पर वित्तशाठ्य (कंजूसी) का त्यागकर प्रमाणानुसार शास्त्रीय विधान से सुवर्ण, रजत् अथवा ताँबा के लिंग का निर्माण कराना चाहिये। सोमवार को चतुर्दशी तिथि में आर्द्रा नक्षत्र से निर्मित महाशैवाख्य योग या सोम-चतुर्दशी के योग से बने शैवयोग में या सोमवार को शिवयोग में यह कार्य करना चाहिये। इस कार्य को महाशैवाख्य योग में करने से अनन्त फल, शैवयोग में करने से प्रभूत फल और शिवयोग में करने से यथोक्त फल की प्राप्ति होती है। उस दिन उपवास रहकर दिन के प्रथम प्रहर में परमेश्वर का पूजन कर आचार्य एवं ब्राह्मणों का हवन के लिये वरण करने के पश्चात् गणेश-गौरी का पूजन करने के बाद शिव की स्थापना एवं पूजन करके प्राण-प्रतिष्ठापूर्वक अग्नि की स्थापना करने के उपरान्त दक्षिणा आदि के द्वारा आचार्य और ऋत्विजों का वरण करके जितनी संख्या में शिवलिंगों का अर्चन किया गया हो, उतनी ही आहुतियों से हवन करना चाहिये।।१९०-१९६।।

आयुष्कामो घृतैस्तत्र धनार्थी वापि पायसैः।
तिलाज्याभ्यां चरेद्धोममेतद्भिन्नं यदर्थयेत् ॥१९७॥

रात्रौ जागरणं कुर्याद् गीतवाद्यपुरःसरम्।
तर्पणं मार्जनं कुर्यात्ततो ब्राह्मणभोजनम् ॥१९८॥
बटुकानां कुमारीणां गणं साम्बिकतुष्टये।
पुनर्लिङ्गं पूजयित्वा दद्यात्तं गुरवे पुनः ॥१९९॥
वस्त्रालङ्करणाद्यैश्च गुरुं यत्नेन तोषयेत्।
दक्षिणां भूयसीं दत्त्वा सुहृद्भिः सह भोजनम् ॥२००॥
यथा कुर्यादिति प्रोक्तं लिङ्गस्योद्यापनं परम्।
विधिः प्रोक्तः पार्थिवानां सर्वकामप्रपूरकः ॥२०१॥
उद्यापनेन सहितः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२०२॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते पार्थिव-पूजाविधिवर्णनं नाम नवमः प्रकाशः॥९॥

●

आयु की कामना वाले को घी से हवन करना चाहिये। धन की कामना हो तो खीर से हवन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त अन्य कामनाओं के लिये तिल और घी से हवन करना चाहिये। हवन-समाप्ति के पश्चात् गीत-वाद्य के साथ रात्रि-जागरण करने के उपरान्त प्रात: तर्पण-मार्जन करने के बाद ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर साम्ब सदाशिव की सन्तुष्टि के लिये बटुकों और कुमारियों को भोजन कराने के पश्चात् लिंग का पूजन करके उस लिंग को अपने गुरु को समर्पित कर देना चाहिये। साथ ही वस्त्र, अलंकार आदि से भी गुरु को सन्तुष्ट करके प्रचुर दक्षिणा प्रदान कर बन्धु-बान्धवों के सहित स्वयं भी भोजन करना चाहिये।

इस प्रकार जिस विधि से लिंगार्चन का उद्यापन करना चाहिये, उसका वर्णन किया गया। यह उद्यापन-सहित लिंगार्चन विधि पृथिवीवासियों के सभी कामनाओं को पूर्ण करने वाली कही गयी है। अब आगे क्या सुनना चाहती हो।।१९७-२०२।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'पार्थिवपूजन-विधि' नामक नवम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

अथ दशमः प्रकाशः

(पुरश्चर्याकौलिकाचारप्रकाशः)

श्रीदेव्युवाच

क्वचिद्दक्षं क्वचिद्वामं क्वचित्सौरं च शाम्भवम्।
ऊर्ध्वाम्नायं क्वचिद्दक्षमुत्तरं पश्चिमं क्वचित्॥१॥
अध आम्नायकं चापि गाणपत्यं च वैष्णवम्।
पारसीकं क्वचिद्बौद्धं पाखण्डं च क्वचित्क्वचित्॥२॥
तत्तत्प्रकरणे स्तौषि क्वचिन्निन्दसि तं पुनः।
क्वचिन्निर्दैवतं मार्गं वेदान्तं वैदिकं क्वचित्॥३॥
द्वीपधर्मान् खण्डधर्मान् कुलधर्मान् क्वचित्क्वचित्।
देशधर्मान् कालधर्माञ्ज्ञातिधर्मान् क्वचित्क्वचित्॥४॥
तन्त्रोत्तममिदं तन्त्रं प्रसन्नश्चेन्ममोपरि।
तदा तत्त्वं मम ब्रूहि निःसन्देहां च मां कुरु॥५॥

पुरश्चरण में कौलिकाचार—श्री देवी ने कहा—कुछ साधक दक्षिणमार्गी, कुछ वाममार्गी, कुछ सौर और कुछ साधक शाम्भव होते हैं। इनमें भी कुछ ऊर्ध्वाम्नाय, कुछ दक्षिणाम्नाय, कुछ उत्तराम्नाय, कुछ पश्चिमाम्नाय, कुछ अधराम्नाय, कुछ गाणपत्य, कुछ वैष्णव, कुछ पारसीक, कुछ बौद्ध, कुछ पाखण्ड मार्ग के अनुयायी होते हैं। कुछ परस्पर बड़ाई करते हैं और कुछ दूसरे मार्गों की निन्दा करते हैं। कुछ निरीश्वरवादी, कुछ वेदान्ती और कुछ वैदिक होते हैं। कुछ द्वीपधर्म, कुछ अखण्डधर्म, तो कुछ कुलधर्म के अनुयायी होते हैं। कुछ देशधर्म, कुछ कालधर्म और कुछ जातिधर्म के अनुयायी होते हैं। आपके द्वारा वर्णित यह तन्त्र सबसे उत्तम है। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे वास्तविक तत्त्व से अवगत कराकर मेरे सन्देह को दूर कीजिये।।१-५।।

श्रीशिव उवाच

अहो कालस्य माहात्म्यं तन्त्रे तन्त्रे त्वया पुनः।
पृच्छ्यते तत्तदाधिक्यं साहङ्कारं ब्रवीमि तत्॥६॥

प्रज्ञेयं सात्त्विकी काचिज्जाता कालस्य यत्त्वया।
उपकाराय सर्वेषां पृष्टं तत्त्वं ब्रवीमि तत् ॥७॥
यथा बालस्य पितृगीस्तथा वेदध्वनिर्हिता।
कलेर्दशसहस्राणि यदा वर्षाणि यान्ति च ॥८॥
वेदो नारायणः साक्षात् कालावयवजन्तुभिः।
न श्रूयते तदा देवि ज्ञेयः कालः समागतः ॥९॥
वाग्जृम्भाक्षुतपादादिशब्दा उत्पत्तिनश्वराः।
वेदभिन्नानि शास्त्राणि तथा जानन्तु देवताः ॥१०॥

श्रीशिव ने कहा—हे पार्वति! यह काल का ही माहात्म्य है कि प्रत्येक तन्त्र के विषय में आप मुझसे बार-बार प्रश्न करती हैं और अहंकारवश मैं उसका वर्णन करता हूँ। सम्भवत: यह किसी सात्त्विक काल में समुद्भूत बुद्धि का ही परिणाम है कि आपने मुझसे यह प्रश्न किया है; अत: समस्त लोगों के उपकार के लिये मैं उस वास्तविक तत्त्व को आपसे कहता हूँ।

जैसे पिता को अपने बालक के मुख से वेद-ध्वनि सुनने में अच्छी लगती है, उसी प्रकार कलियुग के दस हजार वर्ष व्यतीत होने पर साक्षात् कालस्वरूप नारायण को जीवों से वेद-ध्वनि सुनने पर अच्छा लगेगा। जीवों के द्वारा यदि वेद-ध्वनि सुनायी न पड़े तो यह समझना चाहिये कि काल का समागम हो गया है। जीभ के स्पर्श से निकले पाद आदि शब्द जैसे नश्वर होते हैं, उसी प्रकार देवतागण वेद के अतिरिक्त सभी शास्त्रों को नश्वर मानते हैं।।६-१०।।

यस्य शास्त्रस्य लोकेऽस्मिन् प्रचारो यावदस्ति ह।
तावत्तन्मार्गिणां सौख्यं वेदमार्गोऽद्य कुण्ठितः ॥११॥
तस्मात्तन्मार्गकर्तारः शिष्यांस्तत्सम्प्रदायिनः।
तानानयन्ति स्वे मार्गे यत्तत्तावत्सुखं भवेत् ॥१२॥
नृणां ज्ञानं यथा षड्भिरिन्द्रियैरभिजायते।
तथा षडङ्गैर्वेदार्थज्ञानं भवति निश्चितम् ॥१३॥

इस लोक में जिस शास्त्र का जब तक प्रचार रहता है, तब तक उसके अनुयायियों को वही शास्त्र सुखदायक प्रतीत होता है; इसीलिये वर्त्तमान में वेदशास्त्र कुण्ठित हो गया है। इसी प्रकार उस मार्ग के प्रवर्तक और उस सम्प्रदाय के अनुयायीगण उन शिष्यों को तब तक उस मार्ग में प्रविष्ट कराते रहते हैं, जब तक कि उस मार्ग से उन्हें सुख की प्राप्ति होती रहती है।

मनुष्यों को ज्ञान जिस प्रकार छः इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होता है, उसी प्रकार वेद के छः अंगों से निश्चित ही वेदार्थ का ज्ञान होता है।।११-१३।।

कालमहेशप्रणीतपञ्चाम्नायेषु ऊर्ध्वाम्नायकथनम्

कर्मेन्द्रियाणि च नृणां यथा पञ्चमितानि च।
तथा कालमहेशस्य पञ्चाम्नाया मयोदिताः ॥१४॥
ऊर्ध्वाम्नायं समुद्दिष्टं वाचिकं कर्म तस्य तत्।
तत्र प्रमाणं वेदाः स्युस्तदंशाः स्मृतयस्तथा ॥१५॥

ऊर्ध्वाम्नाय-विवेचन—जिस प्रकार मनुष्यों की पाँच कर्मेन्द्रियाँ होती हैं, उसी प्रकार कालमहेश के पाँच आम्नाय मेरे द्वारा कहे गये हैं। ऊर्ध्वाम्नाय में वाणी के अनुसार कर्म कहे गये हैं और उसमें वेद प्रमाणस्वरूप हैं तथा उसी की अंशभूता स्मृतियाँ होती हैं।।१४-१५।।

तदङ्गानि पुराणानि गायत्र्याद्याश्च देवताः।
ब्राह्मबीजं तथा क्षेत्रं संस्काराद् ब्राह्मणा मताः ॥१६॥
ब्राह्मणाचरणं ब्रह्मविद्याभिर्ब्राह्मणो भवेत्।
यस्य वश्या वयं यस्य वाचमर्थोऽनुधावति ॥१७॥
एकस्मिंल्लक्षणे हीने वागर्थमनुधावति।
द्विहीने लक्षणे देवि स्वाचाराद् ब्राह्मणो भवेत् ॥१८॥
लक्षणत्रयहीनो यस्तन्त्रमार्गेण सिद्ध्यति।
चतुर्लक्षणहीनानां मार्गाः स्युः कौलिकादयः ॥१९॥
एतल्लक्षणभिन्नेन यथादेशं यथाकुलम्।
यथाजाति यथाकालं कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥२०॥

पुराण उन स्मृतियों के अङ्गस्वरूप हैं और गायत्री आदि देवता हैं। ब्राह्म बीज एवं क्षेत्र अर्थात् ब्रह्माणी के संस्कार से ब्राह्मण कहे गये हैं। ब्राह्मण के अनुरूप आचरण करने एवं ब्रह्मविद्या की साधना करने से ब्राह्मण होते हैं। हम सभी देवगण उसी ब्रह्मविद्या के वशीभूत हैं और उसी के वशीभूत होकर वाणी अर्थ का अनुगमन करती है। हे देवि! लक्षणों में एक कम होने से वाणी अर्थ का अनुगमन करती है और लक्षणों में दो कम होने पर अपने आचार से ब्राह्मण होता है। तीन लक्षणों के कम होने पर तन्त्रमार्ग में सिद्धि मिलती है और चार लक्षणों के कम होने पर कौल आदि मार्ग का प्रादुर्भाव होता है। इन लक्षणों से भिन्न देश, कुल, जाति और समय के अनुसार धर्म का संग्रह करना चाहिये।।१६-२०।।

मिथ्यासम्भाषणं स्तेयं सर्वमार्गेषु गर्हितम्।
यत्किञ्चिज्जन्म यत्कर्म न जपो न तपः क्रियाः ॥२१॥
जीवन्मुक्तः सत्यवक्ता सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्।
अहिंसा परमो धर्मः सोऽपि वाक्कायकर्मभिः ॥२२॥
दृढो यत्र न चाचारो न जातिः स च मुक्तवत्।
इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते परमं पदम् ॥२३॥
परसन्तापरहिते तन्निष्ठा यस्य चेतसि।
मुक्तं कालेऽपि जानीहि जीवन्मुक्तं न संशयः ॥२४॥
यदिन्द्रियज्ञानवती सृष्टिर्भवति मैथुनात्।
त्यक्तं तन्मनसा येन जीवन्मुक्तः स एव हि ॥२५॥

चाहे जिस-किसी तरह से जन्म हो, कैसा भी कर्म हो, भले ही वह जप, तप एवं क्रिया का अनुष्ठान न करता हो; लेकिन झूठ बोलना एवं चोरी करना सभी मार्गों में निन्दित कहा गया है। सत्य बोलने वाला ही जीवन्मुक्त होता है; क्योंकि सत्य में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है।

वचन, शरीर एवं कर्म से अहिंसा का आचरण करना ही सबसे बड़ा धर्म है। मन, कर्म एवं वचन से अहिंसामार्ग पर चलने वालों के लिये किसी निश्चित आचरण अथवा जाति की आवश्यकता नहीं होती। ऐसे लोग इस लोक में सुखों का भोग करने के उपरान्त शरीरान्त होने पर निश्चित ही परमपद को प्राप्त करते हैं।

दूसरों के दुःख से निःस्पृह होते हुये भी जिसके चित्त में उसके प्रति निष्ठा होती है, उसे ही काल से मुक्त जानना चाहिये और वास्तव में वही जीवन्मुक्त होता है।

मैथुन से सृष्टि होती है—इस ज्ञान से जिसकी इन्द्रियाँ सम्पन्न हो जाती हैं और ऐसा ज्ञान होने पर जो अपने मन से भी मैथुन का त्याग कर देता है, वही वास्तव में जीवन्मुक्त होता है।।२१-२५।।

यथेच्छालाभसन्तुष्टः स्तौति नो न च निन्दति।
न सत्सुखं न दुःखं स्यात्कर्मणा स विमुच्यते ॥२६॥
हित्वा विषयसौख्यं च परं सन्तोषमास्थितः।
यावद्देहस्य निर्वाहस्तावत्कालं परिक्षिपेत् ॥२७॥
कामक्रोधादिरहितस्तपस्तपति निर्जने।
न फलं कामयेत्किञ्चिज्जीवन्मुक्तः स एव हि ॥२८॥

जो यथालाभ से ही सन्तुष्ट रहता है, न किसी की बड़ाई करता है और न ही किसी की निन्दा करता है, जिसे न सुख होता है और न ही दुःख होता है, वह कर्मों से विमुक्त हो जाता है।

जो कोई भी जीव विषय-सुख का त्याग करके अत्यन्त सन्तोषपूर्वक काम-क्रोध से मुक्त होकर एकान्त में तप में निमग्न रहते हुये किसी भी फल की कामना न करता हुआ अपने जीवन को व्यतीत करता है, वह निश्चित ही जीवन्मुक्त होता है।

दुर्विज्ञेया दुर्निवारा महाकालस्य गेहिनी।
तदंशाराधनात् सैव प्रसन्ना चेद्विमुञ्चति ॥२९॥
सुबुद्धिभिः प्रियैः पुत्रैर्यथा माता प्रतार्यते।
तथा प्रतार्यते चेयं जीवन्मुक्तः स उच्यते ॥३०॥
कृतं बन्धार्थमनया भक्ष्यं पानं च मैथुनम्।
येनैवं विदितं बन्धात्स्वयं मुक्तस्तदा भवेत् ॥३१॥
देवाः पूजनमिच्छन्ति तस्माद्बद्धाः परिग्रहात्।
शुकवद्योऽप्रतिग्राही जीवन्मुक्तः स कोऽपि हि ॥३२॥
शौरं प्रकुर्वतो नित्यं विष्ठाबुद्धिः कलेवरे।
देहाभिमानो गलितो जीवन्मुक्तः स एव हि ॥३३॥
एष वै सुगमोपायो नात्र कार्या विचारणा।
वेदस्याभ्यासतः सर्वं यो नयेत्स तु मोक्षवान् ॥३४॥

महाकाल की गृहिणी माया को न कोई जान सकता है और न ही उससे बच सकता है। उसी के अंश की आराधना करने से वह प्रसन्न होती है और तभी वह जीव को मुक्त करती है। अपने प्रिय पुत्र को भी सम्यक् ज्ञान द्वारा माता जिस प्रकार प्रताड़ित करती है, उसी प्रकार यह महामाया भी जिसे प्रताड़ित करती है, वही जीवन्मुक्त कहा जाता है। बन्धन के लिये ही इस महामाया के द्वारा भोज्य एवं पेय पदार्थों तथा मैथुन का विधान किया गया है। जो जीव इस सत्य को जान लेता है, वह उसी समय बन्धन से मुक्त हो जाता है। देवगण पूजन की कामना करते रहते हैं; इसीलिये वे परिग्रह से बन्धन में पड़े रहते हैं; शुक के सदृश जो अप्रतिग्राही (स्वच्छन्द विचरण करने वाला) होता है, वह चाहे कोई भी क्यों न हो, जीवन्मुक्त होता है। शूकर नित्य देह धारण के लिये विष्ठाबुद्धि रखता है, यदि वह देहाभिमान से रहित हो जाय तो वह भी निश्चित ही जीवन्मुक्त होता है। जीवन्मुक्ति के ये ही सुगम उपाय हैं, इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है। वेद का सतत् अभ्यास करते हुये जो जीव सबकुछ अधिगत करता है, वही मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी होता है।।२९-३४।।

कोऽहं किं दृश्यते कर्ता कोऽस्य याति क्व चेतसि।
इति सम्भावयन्नित्यं महाकाले लयं व्रजेत् ॥३५॥
वामिकैः कौलिकैस्तस्मादज्ञातैश्च गुरुं विना।
समस्तैरथवाज्ञातैर्वञ्चितेयं न चेतरैः ॥३६॥
बद्धो यो बन्धनैस्तस्य त्रोटयेद्बन्धनानि च।
भावयेद्यो महाकालं जीवन्मुक्तस्तदा भवेत् ॥३७॥
बन्धमोक्षप्रकारास्तु तन्त्रे सङ्कलिता मया।
यैर्ज्ञाता गुरुमार्गेण तैर्बन्धोऽयं विमोचितः ॥३८॥

मैं कौन हूँ? यह क्या दृश्यमान है? इसका कर्ता कौन है? यह कहाँ जाता है? इस प्रकार से अपने चित्त में नित्य विचार करता हुआ जीव महाकाल में लय हो जाता है। इन तथ्यों को न जानने वाले वाममार्गियों एवं कौलों को गुरु के विना इनका ज्ञान नहीं होता। गुरु के अतिरिक्त किसी दूसरे से यदि उन्हें ज्ञान हो भी जाता है तो भी वे वास्तविक ज्ञान से वंचित ही रह जाते हैं।

जो बद्ध हैं, वे भी 'महाकाल मेरे बन्धन को तोड़ देंगे' इस प्रकार की भावना से जब युक्त हो जाते हैं, उसी समय वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। बन्धन और मोक्ष के प्रकारों का संकलन मेरे द्वारा तन्त्रों में किया गया है। इन प्रकारों का जिन्हें गुरुमार्ग से ज्ञान हो जाता है, वे बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।।३५-३८।।

कुगुरोर्मुखतो वापि ज्ञानाभासाच्च पुस्तकात्।
स्वधर्मं ये परित्यज्य येऽत्र मग्नास्तु ते हताः ॥३९॥
तस्माद्धर्मं प्रवक्ष्यामि वामिनामधिकारिणाम्।
येषां भोगोऽपि मोक्षोऽपि भवेद्येषां च दुर्गतिः ॥४०॥
अवश्यमेव कर्तव्याः शिष्या वामेऽधिकारिणः।
गुरोस्तेन भवेत्तेजः शिष्योऽपि लभते सुखम् ॥४१॥
मोहेन चाथ लोभेन दीक्षामनधिकारिणे।
यो दद्यात्स दरिद्रः स्याच्छिष्यः स्याद्दुःखभाजनम् ॥४२॥

अयोग्य गुरु के मुख से अथवा पुस्तकों से ज्ञान का आभास हो जाने पर जो अपने धर्म का परित्याग कर इस वाममार्ग में निमग्न हो जाते हैं, वे विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये भोग, मोक्ष एवं निन्दित गति को प्राप्त होने वाले वाममार्ग के अधिकारियों के लिये धर्म का प्रकाशन करता हूँ।

वाममार्ग में अधिकारी पुरुषों को गुरु द्वारा अवश्य ही शिष्य बनाना चाहिये अर्थात्

दीक्षा देनी चाहिये। ऐसा करने से गुरु का तेज बढ़ता है और शिष्य को भी सुख की प्राप्ति होती है।

मोहवश या लोभवश जो गुरु अनधिकारियों को इस मार्ग की दीक्षा देता है, वह गुरु स्वयं दरिद्र होता है और शिष्य भी दु:ख का भागी होता है।।३९-४२।।

पूर्वोक्तलक्षणेष्वेकं यस्मिन् विप्रे न दृश्यते।
उपतापं स वै कुर्यात्किञ्चिद् ब्राह्मणतां गतः ।।४३।।
अधिकारो न मे जातः समस्तब्रह्मकर्मणाम्।
इह लोके परत्रापि कथं लप्स्याम्यहं सुखम् ।।४४।।
अन्धश्च यः परद्रव्ये परस्त्रीषु नपुंसकः।
परापवादे यो मूको नित्यमित्थं विचारयेत् ।।४५।।
तस्यैव ब्राह्मणस्यात्र ब्राह्मणत्वाधिकारिता।
अब्राह्मणास्तु ये केचिन्मांसे मद्ये रता वयम् ।।४६।।
कथं लभामहे मोक्षमिति चिन्तापरायणाः।
पूर्वोक्तलक्षणैर्युक्तास्तेऽपि शिष्याः प्रकीर्तिताः ।।४७।।

जिस ब्राह्मण में पूर्वोक्त लक्षणों में से एक भी लक्षण दिखाई नहीं देता, वह नाममात्र का ब्राह्मण होने के कारण निश्चित ही दु:खी होता है। वैसा ब्राह्मण हर समय 'समस्त ब्रह्मकर्म में मेरा अधिकार नहीं है; फिर मैं इस लोक में और परलोक में सुख कैसे प्राप्त करूँगा। जिस प्रकार अन्धों के लिये धन व्यर्थ है, नपुंसकों के लिये परायी स्त्री व्यर्थ है, गूंगे के लिये दूसरे की निन्दा व्यर्थ है, वैसे ही मेरे लिये यह ब्राह्मणत्व व्यर्थ है' यही विचार करता रहता है।

जो ब्राह्मण इस प्रकार से विचार करता रहता है, उसे ही इस मार्ग में ब्राह्मणत्व का अधिकार है। ब्राह्मण के अतिरिक्त भी ऐसे लोग जो 'हमलोग अहर्निश मांस एवं मद्य के सेवन में लगे हुये हैं; अत: हमें किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होगी'—इस प्रकार की चिन्ता में निमग्न रहते हैं, वे भी यदि पूर्वोक्त लक्षणों से समन्वित होते हैं, तो शिष्य बनने के अधिकारी होते हैं।।४३-४७।।

पञ्चलक्षणसंयुक्तो ब्राह्मणः काल एव सः।
अहं ब्रह्मा तथा विष्णुस्तस्याज्ञावशवर्तिनः ।।४८।।
स चेद्वामपथं प्राप्तः पुनः श्वा चापि जायते।
चतुर्लक्षणसम्पन्नो विप्रो ज्ञेयोऽस्ति मध्यमः ।।४९।।
ताभ्यां दत्तोऽभाग्यवशात्तान्त्रिकः कोऽपि चेन्मनुः।
सद्यः फलति चाद्यस्य क्रियया चापरस्य तु ।।५०।।

लक्षणत्रययुक्तो यस्तस्य वैदिकतान्त्रिके।
यथोक्ताचरणादेव फलदे स्तो न वामके ॥५१॥
लक्षणद्वयसंयुक्तस्तस्य वामश्च दक्षिणः।
मनू तुल्यफलौ स्यातां न कदाचन वैदिकः ॥५२॥
एकलक्षणसंयुक्तो वामस्तस्य फलप्रदः।
शूद्रादियवनान्तानां सिद्धिर्वामपथे स्थिता ॥५३॥
वाममार्गस्थितो विप्रस्तुलसीं न स्पृशेत्क्वचित्।
न स्पृशेद्वैष्णवं विप्रं प्रणमेन्न च वैदिकम् ॥५४॥
हीनो विप्रः क्षत्रियाद्या वाममार्गरता अपि।
तद्व्रतमत्वाद् व्रतैर्विष्णोः पूता निष्किल्बिषास्तथा ॥५५॥

उपर्युक्त पाँचो लक्षणों से समन्वित ब्राह्मण साक्षात् कालस्वरूप होता है और मैं स्वयं, ब्रह्मा तथा विष्णु भी उसकी आज्ञा के वशीभूत होते हैं। पाँच लक्षणों से युक्त वह ब्राह्मण भी यदि वाममार्ग का आश्रयण कर लेता है तो उसे पुनः कुत्ते की योनि में गमन करना पड़ता है।

चार लक्षणों से युक्त ब्राह्मण को मध्यम जानना चाहिये। ऐसे ब्राह्मण को दुर्भाग्य-वश यदि कोई तान्त्रिक मन्त्र प्रदान किया जाता है तो उस मन्त्र का आश्रयण कर उसके द्वारा स्वयं के लिये अथवा दूसरे के लिये की गई कोई भी क्रिया सद्यः फलप्रद हो जाती है।

तीन लक्षणों से युक्त वैदिक ब्राह्मण यदि तान्त्रिक मार्ग में जाता है तो उसके द्वारा यथोक्त आचरण करने पर ही मन्त्र फलप्रद होता है; वाममार्ग उसके लिये फलप्रद नहीं होता।

दो लक्षणों से युक्त वैदिक ब्राह्मण के लिये वाम अथवा दक्षिण—दोनों ही मार्ग एक समान फल देने वाले होते हैं; वैदिक मन्त्र उसके लिये कभी भी फलदायी नहीं होते।

एक लक्षण से युक्त ब्राह्मण को वाममार्ग में ही सफलता प्राप्त होती हैं; साथ ही शूद्र से लेकर यवनों तक को भी वाममार्ग से ही सिद्धि हस्तगत होती है।

वाममार्गी विप्र को तुलसी का स्पर्श कदापि नहीं करना चाहिये, उसे वैष्णव ब्राह्मणों का भी स्पर्श नहीं करना चाहिये और न ही किसी वैदिक को प्रणाम करना चाहिये। निम्नस्तर के विप्र और क्षत्रिय आदि वाममार्गी होने पर भी विष्णु का व्रताचरण करने के कारण पवित्र और किल्विष-रहित होते हैं।।४८-५५।।

वाममार्गिणां धर्मनिरूपणम्

वक्ष्येऽथ प्रकटं धर्मं वामगानां सुखावहम्।
सत्सङ्गश्च विवेकश्च निश्चलं नयनद्वयम् ॥५६॥

यस्य नास्तीतरस्सोऽपि कथं वामे सुखं लभेत्।
सांसारिकसुखासक्तं ब्रह्मज्ञोऽस्मीति वादिनम् ॥५७॥
कर्मब्रह्मोभयान्नष्टं त्यजेदुत्पथगं यथा।
मद्यं मांसं सुरापानं मत्स्यस्त्रीबान्धवास्तथा ॥५८॥
अनेके यत्र जायन्ते तत्र वामो गतिप्रदः।
स्थित्वा तु दक्षिणे मार्गे गुप्तं भुक्तं पलादिकम् ॥५९॥
स याति नरकं घोरं विष्ठायां जायते कृमिः।
अतो द्विजैः सदा सेव्यो वैदिको धर्मसञ्चयः ॥६०॥

वाममार्गियों का धर्म—अब वाममार्ग के सुखदायक प्रकट धर्म को कहता हूँ। सत्संग और विवेक—ये दो इसके निश्चल नेत्र हैं। जिसके पास सत्संग और विवेक दोनों में से एक भी न हो, उसे वाममार्ग में सुख कैसे प्राप्त हो सकता है? 'मैं ब्रह्मवादी हूँ' इस प्रकार कहने वाले सांसारिक सुख में आसक्त व्यक्ति के उन्मार्गगामी होने के कारण कर्म और ब्रह्मज्ञान दोनों ही नष्ट हो जाते हैं। मद्यसेवन, मांसभक्षण, सुरापान, मत्स्यभक्षण के साथ ही अनेक स्त्री-मित्र जहाँ होते हैं, वहीं पर वाममार्ग गतिमान होता है। दक्षिण मार्ग का अनुसरण करने वाला यदि गुप्त रूप से मांसादि का भक्षण करता है तो वह घोर नरक में जाता है और मल में रहने वाला कीड़ा होता है। अतः द्विजों को सदैव वैदिक धर्म का सेवन करना चाहिये।।५६-६०।।

विना बलिं पलं योऽत्ति विना पूजां सुरां पिबेत्।
दूतीयज्ञं विनान्यस्य स्त्रीगो वापि स नारकी ॥६१॥
अबुध्वा समयाचारं कुलधर्मं चरेद्यदि।
स गुरुश्चैव शिष्यश्च योगिनीनां भवेत्पशुः ॥६२॥
वाममार्गमजानन्योऽधिकारी मोक्षमिच्छति।
पारावारमपारं स बाहुभ्यां तर्तुमिच्छति ॥६३॥
सर्वकर्मविहीना ये वर्णाश्रमविवर्जिताः।
कौले वा वाममार्गे ते भुक्तिमुक्त्योश्च भाजनम् ॥६४॥

विना बलि के जो मांस-भक्षण करता है, विना पूजा के जो सुरापान करता है एवं विना दूतीयाग के जो परस्त्री-गमन (मैथुन) करता है, वह नरकगामी होता है। यदि समयाचार को जाने विना ही कौलिकाचार करता है तो ऐसा गुरु और शिष्य दोनों ही योगिनियों के आहार हो जाते हैं। वाममार्ग को न जानते हुये जो अधिकारी भी यदि मोक्ष की कामना करते हैं, वे हाथों से तैरकर महासागर को पार करना चाहते हैं। जो

लोग समस्त कर्मों से रहित एवं वर्णाश्रमधर्म का परित्याग कर देते हैं, वे ही कौलमार्ग या वाममार्ग में भोग एवं मोक्ष दोनों प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं।।६१-६४।।

निन्दन्तु बान्धवाः सर्वे त्यजन्तु तु सुतादयः।
जना हसन्तु मां दृष्ट्वा राजानो दण्डयन्तु वा ।।६५।।
रोगदारिद्र्यदुःखाद्यैः पीडितोऽप्यनिशं त्वहम्।
लक्ष्मीस्तिष्ठतु वा यातु न मुञ्चामि पथस्त्विमान् ।।६६।।
एवं यस्य दृढा भक्तिः स वामे सिद्धिमाप्नुयात्।
नार्थलोभान्न च क्रोधान्न द्वेषान्न च मत्सरात् ।।६७।।
न कामान्न भयाद्वापि मार्गे प्राप्तं परिज्यजेत्।
प्रत्यहं नार्चयेद्देवीं मार्गेऽस्मिन्विघ्नमाप्नुयात् ।।६८।।

सभी बान्धव जिसकी निन्दा करते हों, पुत्र आदि भी जिसका त्याग कर दें, जिसे देखकर लोग हँसते हों, राजा भी जिसे दण्ड देता हो, रोग-दुःख-दरिद्रता से रात-दिन पीड़ित होकर भी यदि वह सोचता है कि 'लक्ष्मी रहे या जाय, मैं इस मार्ग को नहीं छोड़ूँगा' इस प्रकार की दृढ़ भक्ति जिसकी होती है, उसे ही वाममार्ग में सिद्धि मिलती है। वह न धन के लोभ से, न क्रोध से, न ईर्ष्या से, न वैर से, न कामवश, न ही भय से अपने मार्ग का परित्याग करता है। जो प्रतिदिन देवी का अर्चन नहीं करता, उसे मार्ग में विघ्नों का सामना करना पड़ता है।।६५-६८।।

गुरुकारुण्यपूतो हि देहनिर्धूतकल्मषः।
कुलपूजारतो यस्तु सोऽयं कौलो न चेतरः ।।६९।।
परोक्षे कोऽनुजानीते कस्य किञ्च भविष्यति।
यद्वा प्रत्यक्षफलदं तदेवोत्तमदर्शनम् ।।७०।।

गुरु की करुणा से परम पवित्र, सभी कल्मषों से रहित शरीर वाला जो व्यक्ति कुलपूजन में निरन्तर लगा रहता है, वही कौल होता है; दूसरा नहीं। बाद में किसका क्या होगा—यह कौन जानता है? जो प्रत्यक्ष में फल प्रदान करने वाला होता है, वही उत्तम दर्शन होता है।।६९-७०।।

गुरूपदेशरहिता महान्त इति केचन।
मोहयन्ति जनान् केचित्स्वयं पूर्वविमोहिताः ।।७१।।
पेयं मद्यं पलं खाद्यं समालोक्यं प्रियामुखम्।
इत्येवाचरणं प्रोक्तं पामराः प्रवदन्ति च ।।७२।।

मद्यपानेन मुनयो यदि सिद्धिं लभन्ति चेत्।
मद्यपानरताः सर्वे किं सिद्धा न भवन्त्विमे ॥७३॥
मांसभक्षणमात्रेण यदि पुण्या गतिर्भवेत्।
क्रव्यादानां तदा मोक्षो मांसादन्यन्न भुञ्जते ॥७४॥
स्त्रीसम्भोगेन भो देवा यदि मुक्तिं प्रजायते।
तदा सर्वेऽपि मुक्ताः स्युः कस्य जन्म भविष्यति ॥७५॥
कृपाणधारागमनं व्याघ्रकर्णावलम्बनम्।
भुजङ्गावरणं नूनं शक्यं वै कुलवर्त्मतः ॥७६॥

कतिपय महान् लोग गुरु के उपदेश के विना भी लोगों को मुग्ध कर लेते हैं और कुछ लोग स्वयं पहले से ही विमोहित होते हैं। मदिरा का पान, मांस का भक्षण एवं प्रिया के मुख का अवलोकन ही आचार कहा गया है।

मूढ़ लोग कहते हैं कि मदिरा पीने से ही यदि मुनियों को सिद्धि मिलती है तो समस्त मद्यपायियों को सिद्धि क्यों नहीं मिल जाती? यदि मांसभक्षण से ही सद्गति की प्राप्ति होती है तो फिर मांस के अतिरिक्त कुछ भी भक्षण न करने वाले सिंह-व्याघ्र आदि की सद्गति क्यों नहीं होती। हे देवताओं! स्त्री के साथ सम्भोग करने से ही यदि मुक्ति मिलती है तो फिर सभी ही मुक्त हो जाते; ऐसी स्थिति में जन्म किसका होगा?

कौलमार्ग के अनुसरण से कृपाण की धार पर चलना, बाघ का कान पकड़ना और साँपों का हार पहनना निश्चित ही सम्भव है।।७१-७६।।

मद्यपाननिषेधः

वृथापानं तु देवेशि सुरापानमिहोच्यते।
तन्महापातकं ज्ञेयं वेदादिषु निरूपितम् ॥७७॥
अनाघ्रेयमनालोक्यमवश्यं चाप्यपेयकम्।
मद्यं मांसं पशूनां तु कौलिकानां महत्फलम् ॥७८॥
अमेध्यानि द्विजातीनां मद्यान्येकादशैव हि।
द्वादशं तु सुरामद्यं सर्वेषामुत्तमं स्मृतम् ॥७९॥
तस्माद्विप्रो हि राजन्यो वैश्यश्च न सुरां पिबेत्।
सुरादर्शनमात्रेण कुर्यात् सूर्यावलोकनम् ॥८०॥
तस्य संसर्गमात्रेण प्राणायामत्रयं चरेत्।
आजानुभ्यां भवेत्स्नानं नाभ्यामुपवसेदहः ॥८१॥

ऊर्ध्वं नाभेस्त्रिरात्रं तु मद्यस्य स्पर्शने विधिः।
सुरापाने कृते वह्निज्वलद्दण्डं प्रवेशयेत् ॥८२॥
मुखे तेन विनिर्दग्धे तच्छुद्धिं समवाप्नुयात्।

मद्यपान का निषेध—हे देवेशि! व्यर्थ का पान ही सुरापान कहलाता है और वह घोर पाप कराने वाला होता है, ऐसा वेद आदि शास्त्रों में निरूपित किया गया है। पशुओं के लिये मद्य एवं मांस न तो सूँघने योग्य होते हैं, न देखने के योग्य और न ही पीने योग्य होते हैं; लेकिन कौलिकों के लिये ये सभी महान् फल देने वाले होते हैं। द्विजातियें के लिये ग्यारह प्रकार के मद्य अपवित्र एवं अग्राह्य हैं; जबकि बारहवें प्रकार के सुरा मद्य को सबके लिये उत्तम कहा गया है।

इसलिये ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य को सुरापान नहीं करना चाहिये; अपितु उन्हें यदि सुरा का दर्शन भी हो जाय तो उनको सूर्य का दर्शन करना चाहिये। मद्य का स्पर्श हो जाने पर उन्हें तीन प्राणायाम करना चाहिये। घुटने के नीचे मद्य का स्पर्श होने पर स्नान करने के पश्चात् दिन भर नाभि तक जल में खड़े रहना चाहिये और नाभि से ऊपर स्पर्श होने पर तीन रात्रि-पर्यन्त जल में खड़े रहना चाहिये।

मद्य का पान कर लेने पर अग्नि में प्रज्ज्वलित दण्ड को मुख में प्रवेश करना चाहिये; ऐसा करने से मुख के दग्ध हो जाने से मद्यपायी शुद्धि को प्राप्त हो जाता है।

अभिघातेन यो हन्यादात्मार्थं प्राणिनः प्रिये ॥८३॥
निवसेन्नरके घोरे दिनानि पशुरोमभिः।
सम्मितानि दुराचारस्तिर्यग्योनिषु जायते ॥८४॥
अनुमन्ता विभक्ता च निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादत्यष्टौ च ते समाः ॥८५॥
धनेनाक्रीय तं हन्ति खादिता चोपभोगकः।
घातको वधबन्धाद्यैरित्येकस्त्रिविधो मतः ॥८६॥
तृणं चाप्यविधानेन छेदयेन्न कदाचन।
विधिवद्गां द्विजं वापि हत्वा पापैर्न लिप्यते ॥८७॥

हे प्रिये! जो अपने सुख के लिये प्राणियों की हत्या करता है, वह हत पशु के रोयें के बराबर दिनों तक घोर नरक में निवास करता है और इस दुराचार से कारण वह तिर्यक् योनि में जन्म ग्रहण करता है। जीव-हिंसा की अनुमति देने वाले, उसे विभक्त करने (छिन्न-भिन्न) वाले, उसका वध करने वाले, क्रय एवं विक्रय करने वाले, जीवमांस का संस्कार करने वाले, उपभोग करने वाले तथा उसका भक्षण करने

वाले—ये आठो प्रकार के लोग एक समान जीवहिंसा के दोषी होते हैं। पैसे से खरीद कर उसका वध करने वाले, भक्षण कर उसका उपभोग करने वाले एवं वध-बन्धन द्वारा उसकी हत्या करने वाले—ये तीनों बराबर होते हैं।

कभी भी विना विधि के तृण को भी नहीं काटना चाहिये; लेकिन विधिपूर्वक गौ अथवा द्विज का वध करने पर भी व्यक्ति पाप का भागी नहीं होता।।८३-८७।।

सर्वेभ्यः कौलिकः श्रेष्ठ ऊर्ध्वाम्नायी च वामगः।
अधिकारी भक्तियुक्तो यो भवेद्गुरुसेवकः ।।८८।।

वाममार्ग का आश्रयण करने वाला ऊर्ध्वाम्नायी कौलिक सबसे श्रेष्ठ होता है। जो वामाचारी भक्ति से समन्वित होता है, वही गुरु की सेवा करने का अधिकारी होता है।।८८।।

संहारः पश्चिमाम्नाये उत्तरेऽनुग्रहो भवेत्।
मन्त्रयोगं विदुः पूर्वं भक्तियोगं तु दक्षिणम् ।।८९।।
पश्चिमं कर्मयोगं तु ज्ञानयोगं तथोत्तरम्।
मातृकान्याससंस्थाने वामे कौलिकवर्त्मनि ।।९०।।

पश्चिमाम्नाय में संहार होता है, उत्तराम्नाय में अनुग्रह होता है, पूर्वाम्नाय में मन्त्रयोग होता है एवं दक्षिणाम्नाय में भक्तियोग होता है। इसी प्रकार पश्चिमाम्नाय में कर्मयोग एवं उत्तराम्नाय में ज्ञानयोग होता है। एवमेव वाम कौलिकमार्ग में मातृकान्यास होता है।।८९-९०।।

प्रपञ्चयोगनामानं न्यासं कुर्यात्स उच्यते।
श्रीप्रपञ्चे द्वीपमाये कमलाजलधी तथा ।।९१।।
गिरिविष्णुवल्लभे च पट्टनं पद्मधारिणी।
समुद्रतनयापीठे क्षेत्रयुग्लोकमातृका ।।९२।।
वनं कमलवासिन्यपीन्दिरा चाश्रमस्तथा।
मागुहौ तु रमागुह्यौ पद्माचरणकौ तथा ।।९३।।
नारायणप्रियोद्भिज्जौ द्विलक्ष्मीः स्वेदजान्विता।
अण्डाजाश्च महालक्ष्मीस्तु जरायुजलक्ष्मिका ।।९४।।
स्वरस्थाने षोडशैव युग्मानि स्पर्शकिष्वथ।
आर्य्यालवौ त्रुट्यभे च चण्डिका च कलान्विता ।।९५।।
काष्ठादुर्गे निमेषाख्यशिवे श्वासो ह्यपर्णिका।
अम्बिकाघटिके चैव मुहूर्तश्च सतीयुतः ।।९६।।

ईश्वरीप्रहरौ चैव शाङ्करी दिवसान्विता।
ईशानी चापि सन्ध्या च पार्वती रात्रिसंयुता ॥९७॥
सर्वमङ्गलया युक्तां स्थितिं न्यस्येत्ततः परम्।
दाक्षायण्या तथा वारं हैमवत्यायुतं न्यसेत् ॥९८॥
नक्षत्रं च महामायायुक्तं योगं न्यसेत्ततः।
माहेश्वर्य्या च करणं मृडान्या पक्षमेव च ॥९९॥
रुद्राणी माससंयुक्ता शर्वाणी राशिसंयुता।
अथर्त्तुपरमेश्वर्य्यौ काली चायनसंयुता ॥१००॥
कात्यायनी वत्सरयुग्गौरी युगसमन्विता।
भवानीप्रलयौ चाथ यादिस्थानेषु विन्यसेत् ॥१०१॥
पञ्चभूतयुता ब्राह्मी पञ्चतन्मात्रसंयुता।
वागीश्वरी ततो वाणी पञ्चकर्मेन्द्रियान्विता ॥१०२॥
सुज्ञानेन्द्रियसावित्री सानिला च सरस्वती।
गायत्री गुणयुक्ता च वागन्तःकरणान्विता ॥१०३॥
अवस्थायुक् शारदा च धातुयुक्ता च भारती।
दोषयुक्ता प्रिया चेति व्यापकं विद्यया न्यसेत् ॥१०४॥
त्रितारमूलविद्यान्ते मातृकाक्षरतः परम्।
वदेत्प्रपञ्चरूपायै श्रियै नम इति क्रमात् ॥१०५॥
प्रपञ्चादिभिराढ्यान्त्यवर्णयुक्तिं तु योजयेत्।
मातृकान्याससम्प्रोक्तस्थानेषु तदनन्तरम् ॥१०६॥
त्रितारमूलकस्यैव प्रपञ्चस्य स्वरूपतः।
आर्य्या पराम्बादेव्यै च नमोक्त्या व्यापकं न्यसेत् ॥१०७॥
प्रपञ्चन्यास एवं स्याद्भुवनन्यास उच्यते।

प्रपञ्चन्यास—वाम कौलिक मार्ग में प्रपञ्चयोग-नामक न्यास करना चाहिये; वह इस प्रकार होता है—

१. ऐं ह्रीं श्रीं अं प्रपञ्चरूपायै श्रियै नमः शिरसि।
२. ऐं ह्रीं श्रीं आं द्वीपरूपायै मायायै नमः मुखवृत्ते।
३. ऐं ह्रीं श्रीं इं जलधिरूपायै कमलायै नमः दक्षनेत्रे।
४. ऐं ह्रीं श्रीं ईं गिरिरूपायै विष्णुवल्लभायै नमः वामनेत्रे।
५. ऐं ह्रीं श्रीं उं पत्तनरूपायै पद्मधारिण्यै नमः दक्षकर्णे।

६. ऐं ह्रीं श्रीं ऊं पीठरूपायै समुद्रतनयायै नमः वामकर्णे।
७. ऐं ह्रीं श्रीं ऋं क्षेत्ररूपायै लोकमात्रे नमः दक्षनासापुटे।
८. ऐं ह्रीं श्रीं ॠं वनरूपायै कमलवासिन्यै नमः वामनासापुटे।
९. ऐं ह्रीं श्रीं ऌं आश्रमरूपायै इन्दिरायै नमः दक्षकपोले।
१०. ऐं ह्रीं श्रीं ॡं गुहारूपायै मायायै नमः वामकपोले।
११. ऐं ह्रीं श्रीं एं नदीरूपायै रमायै नमः ऊर्ध्वोष्ठे।
१२. ऐं ह्रीं श्रीं ऐं चत्वररूपायै पद्मायै नमः अधरोष्ठे।
१३. ऐं ह्रीं श्रीं ओं उद्भिजरूपायै नारायणप्रियायै नमः ऊर्ध्वदन्तपंक्तौ।
१४. ऐं ह्रीं श्रीं औं स्वेदजरूपायै सिद्धलक्ष्म्यै नमः अधोदन्तपंक्तौ।
१५. ऐं ह्रीं श्रीं अं अण्डजरूपायै राजलक्ष्म्यै नमः जिह्वाग्रे।
१६. ऐं ह्रीं श्रीं अः जरायुजरूपायै महालक्ष्म्यै नमः कण्ठे।
१७. ऐं ह्रीं श्रीं कं लवरूपायै आर्यायै नमः दक्षबाहुमूले।
१८. ऐं ह्रीं श्रीं खं त्रुटिरूपायै उमायै नमः दक्षकूर्परे।
१९. ऐं ह्रीं श्रीं गं कलारूपायै चण्डिकायै नमः दक्षमणिबन्धे।
२०. ऐं ह्रीं श्रीं घं काष्ठारूपायै दुर्गायै नमः दक्षकराङ्गुलिमूले।
२१. ऐं ह्रीं श्रीं ङं निमेषरूपायै शिवायै नमः दक्षकराङ्गुल्यग्रे।
२२. ऐं ह्रीं श्रीं चं श्वासरूपायै अपर्णायै नमः वामबाहुमूले।
२३. ऐं ह्रीं श्रीं छं घटिकारूपायै अम्बिकायै नमः वामकूर्परे।
२४. ऐं ह्रीं श्रीं जं मुहूर्तरूपायै सत्यै नमः वाममणिबन्धे।
२५. ऐं ह्रीं श्रीं झं प्रहररूपायै मूर्तये नमः वामकराङ्गुलिमूले।
२६. ऐं ह्रीं श्रीं ञं दिवसरूपायै शाम्भव्यै नमः वामकराङ्गुल्यग्रे।
२७. ऐं ह्रीं श्रीं टं सन्ध्यारूपायै ईशान्यै नमः दक्षोरुमूले।
२८. ऐं ह्रीं श्रीं ठं रात्रिरूपायै पार्वत्यै नमः दक्षजानुनि।
२९. ऐं ह्रीं श्रीं डं तिथिरूपायै सर्वमङ्गलायै नमः दक्षगुल्फे।
३०. ऐं ह्रीं श्रीं ढं वाररूपायै दाक्षायण्यै नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले।
३१. ऐं ह्रीं श्रीं णं नक्षत्ररूपायै हैमवत्यै नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे।
३२. ऐं ह्रीं श्रीं तं योगरूपायै महामायायै नमः वामोरुमूले।
३३. ऐं ह्रीं श्रीं थं करणरूपायै महेश्वर्यै नमः वामजानुनि।
३४. ऐं ह्रीं श्रीं दं पक्षरूपायै मृडान्यै नमः वामगुल्फे।
३५. ऐं ह्रीं श्रीं धं मासरूपायै रुद्राण्यै नमः वामपादाङ्गुलिमूले।
३६. ऐं ह्रीं श्रीं नं राशिरूपायै शर्वाण्यै नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे।
३७. ऐं ह्रीं श्रीं पं ऋतुरूपायै परमेश्वर्यै नमः दक्षपार्श्वे।

३८. ऐं ह्रीं श्रीं फं अयनरूपायै काल्यै नमः वामपार्श्वे।
३९. ऐं ह्रीं श्रीं बं वत्सररूपायै कात्यायन्यै नमः पृष्ठे।
४०. ऐं ह्रीं श्रीं भं युगरूपायै गौर्यै नमः नाभौ।
४१. ऐं ह्रीं श्रीं मं प्रलयरूपायै भवान्यै नमः जठरे।
४२. ऐं ह्रीं श्रीं यं पञ्चभूतरूपायै ब्राह्म्यै नमः हृदये।
४३. ऐं ह्रीं श्रीं रं पञ्चतन्मात्रारूपायै वागीश्वर्यै नमः दक्षकुक्षौ।
४४. ऐं ह्रीं श्रीं लं पञ्चकर्मेन्द्रियरूपायै वाण्यै नमः गलपृष्ठे।
४५. ऐं ह्रीं श्रीं वं पञ्चज्ञानेन्द्रियरूपायै सावित्र्यै नमः वामकुक्षौ।
४६. ऐं ह्रीं श्रीं शं पञ्चप्राणरूपायै सरस्वत्यै नमः हृदयादिदक्षकराङ्गुल्यन्तम्।
४७. ऐं ह्रीं श्रीं षं गुणत्रयरूपायै गायत्र्यै नमः हृदयादिवामकराङ्गुल्यन्तम्।
४८. ऐं ह्रीं श्रीं सं अन्तःकरणचतुष्टयरूपायै वाक्प्रदायै नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।
४९. ऐं ह्रीं श्रीं हं अवस्थाचतुष्टयरूपायै शारदायै नमः हृदयादिदक्षपादाङ्गुल्यन्तम्।
५०. ऐं ह्रीं श्रीं ळं सर्वधातुरूपायै भारत्यै नमः कट्यादिपादाङ्गुल्यन्तम्।
५१. ऐं ह्रीं श्रीं क्षं दोषत्रयरूपायै विद्यात्मिकायै नमः कट्यादिब्रह्मरन्ध्रान्तम्।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं सकल-प्रपञ्चाधिदेवतायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः ह्सौः स्हौः श्री ह्रीं ऐं ॐ—इस मन्त्र से सर्वाङ्ग में व्यापक न्यास एक बार या तीन बार करना चाहिये। इस प्रकार प्रपञ्चन्यास का वर्णन किया गया। अब भुवनन्यास का वर्णन किया जाता है।

त्रितारमूलमन्त्रान्ते विभागेनाक्षराणि च ।।१०८।।
सानुस्वाराणि चोच्चार्य भूतलादिकनाम च ।
लोकानीह शतान्ते तु कोटिगुह्यपदं वदेत् ।।१०९।।
योगिनीमूलदेव्यास्तु नामाथाधारशक्ति च ।
देव्यै नम इति प्रोच्य प्रोक्ताङ्गेषु प्रविन्यसेत् ।।११०।।
अक्षराणां विभागस्तु अकारादित्रयं त्रयम् ।
अर्धेन्दुयुक् ततः स्थाने स्थानयुग्मे द्वयं द्वयम् ।।१११।।
कादिकाः सप्तवर्गाश्च लक्षं चापि चतुर्दश ।
अथ नामानि लोकानामतलं वितलं तथा ।।११२।।
सुतलाख्यं महातलं तलातलरसातले ।
पातालं भूर्भुवः स्वश्च महर्जनस्तपस्तथा ।।११३।।
सत्यं चेत्यथ गुह्यादिस्थाने यत्र तदुच्यते ।
गुह्यान्तरं द्वितीयेऽथ चातिगुह्यमचिन्त्यकम् ।।११४।।

महागुह्यं स्वतन्त्रं च परमं गुह्यमग्रत: ।
ॐकारं योगिनीस्थाने रहस्यं ज्ञानमग्रत: ॥११५॥
रहस्यं च क्रियामुक्त्वाऽथाष्टमे विनियुज्यते ।
रहस्यं डाकिनीं चाथ महारहस्यहाकिनी ॥११६॥
महागुप्तं काकिनीं च गुप्ततरं च शाकिनी ।
गुप्तं श्रीहाकिनीं पश्चान्महाकायं च याकिनीम् ॥११७॥
न्यसेद्वामी क्रमान्यस्यौ गुल्फौ जघनजानुनी ।
ऊरुगुल्फौ च मूलाधारं स्वाधिष्ठाननाभिकम् ॥११८॥
हृदंसकण्ठभालानि ब्रह्मरन्ध्रमिति क्रमात् ।
त्रितारमूलमन्त्रान्ते चतुर्दश तु वं वदेत् ॥११९॥
अधिपायै पराम्बायै देव्यै हृद्व्यापकं न्यसेत् ।

भुवनन्यास—त्रितार एवं मूल मन्त्र के पश्चात् अनुस्वारयुक्त प्रत्येक अक्षरों से शरीर के तत्तत् स्थलों में भुवनन्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. पाँवों में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: अं आं इं अतललोकनिलयशतकोटिगुह्याद्य-योगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

२. गुल्फों में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: ईं उं ऊं वितललोकनिलयशतकोटिगुह्यान्त-रान्तयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बा देव्यै नम:।

३. जंघों में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: ऋं ॠं ऌं सुतललोकनिलयशतकोटिअतिगुह्या-चिन्त्ययोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

४. घुटने में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: ॡं एं ऐं महातललोकनिलयशतकोटिमहा-गुह्यस्वतन्त्रयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

५. उदरपार्श्वों में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: ओं औं तलातललोकनिलयशतकोटि-परमगुह्येच्छायोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

६. नितम्ब में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: अं अ: रसातललोकनिलयशतकोटिरहस्य-ज्ञानयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

७. मूलाधार में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: कं खं गं घं ङं पाताललोकनिलयशतकोटि-रहस्यतरक्रियो-योगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

८. स्वाधिष्ठान में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: चं छं जं झं ञं भूर्लोकनिलय-शतकोट्यतिरहस्यडाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

९. मणिपुर में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ स्हौ: टं ठं डं ढं णं भुवर्लोकनिलय-शतकोटिमहारहस्यडाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नम:।

१०. अनाहत में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौ स्हौः तं थं दं धं नं स्वर्लोकनिलयशतकोटिपरमरहस्यलाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

११. विशुद्धि में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौ स्हौः पं फं वं भं मं महर्लोकनिलयशतकोटिगुप्तकाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

१२. आज्ञा में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौ स्हौः यं रं लं वं जनलोकनिलयशतकोटिगुप्ततरसाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

१३. ललाट में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौ स्हौः शं षं सं हं तपोलोकनिलयशतकोट्यतिगुप्तहाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

१४. ब्रह्मरन्ध्र में—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौ स्हौः ळं क्षं सत्यलोकनिलयशतकोटिमहागुप्तयाकिनीयोगिनीमूलदेवतायुताधारशक्त्यम्बादेव्यै नमः।

इस प्रकार से न्यास करके अग्रलिखित मन्त्र से व्यापक न्यास करना चाहिये। मन्त्र है—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हैः अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङ चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं सकलभुवनाधिपायै श्रीपराम्बादेव्यै नमः ह्सौः स्हौः श्रीं ह्रीं ऐं ॐ॥१०८-११९॥

मूर्तिन्यासं प्रवक्ष्यामि तत्रादौ प्रणवत्रयम् ॥१२०॥
मूलमन्त्रं समुच्चार्य न्यासं कुर्यात्तदुच्यते।
चतुर्थीनमसा युक्तान् प्रोक्ताङ्गेषु प्रविन्यसेत् ॥१२१॥
मानादौ प्रिया चान्ते मस्तके केशवाक्षये।
मुखे नारायणौष्ठे च दक्षस्कन्धे च माधवः ॥१२२॥
ईशान्या सहितो वामे गोविन्दश्चोग्रयान्वितः।
विष्णूर्ध्वनयने दक्षपार्श्वे तु मधुसूदनः ॥१२३॥
ऋद्धिश्च वामपार्श्वेऽथ दक्षकट्यां त्रिविक्रमः।
रुक्मिणीयुग्वामकट्यां कान्तियुक्तस्तु वामनः ॥१२४॥
दक्षोरौ धीधरोद्धारौ वामे दोषाकरस्थितौ।
एकनासा हृषीकेशो दक्षजानुनि विन्यसेत् ॥१२५॥
एकारिणी पद्मनाभौ वामे चौघवती भवेत्।
दामोदरोऽथ दक्षायां जङ्घायां वासुदेवयुक् ॥१२६॥
अर्कमानाथ वामायां जङ्घायामञ्जनप्रभा।
सङ्कर्षणयुता दक्षपादे प्रद्युम्नसंयुता ॥१२७॥

अस्थिमाला वामपादे ह्यनिरुद्धो धरायुतः ।
एते षोडश विन्यस्याः सानुस्वारादिपूर्वकाः ॥१२८॥
विष्णुभक्तियुतानान्तु न्यासोऽयं परिकीर्तितः ।

विष्णुभक्तों के लिये मूर्तिन्यास—अव मूर्तिन्यास का विवेचन किया जा रहा है। त्रितार के बाद मूल मन्त्र बोलकर मूर्तिन्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. शिरसि—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं स्हौं अं केशवायाक्षरशक्त्यै नमः।
२. मुखे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः आं नारायणाद्याशक्त्यै नमः।
३. दक्षिणांसे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः इं माधवायेष्टदायै नमः।
४. वामांसे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ईं गोविन्दायैशान्यै नमः।
५. दक्षपार्श्वे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः उं विष्णवे उग्रायै नमः।
६. वामपार्श्वे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ऊं मधुसूदनायोर्ध्वनयनायै नमः।
७. दक्षकट्यां—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ऋं त्रिविक्रमाय ऋध्यै नमः।
८. वामकट्यां—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ॠं वामनाय रूपिण्यै नमः।
९. दक्षोरौ—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ऌं श्रीधराय लुप्तायै नमः।
१०. वामोरौ—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ॡं हृषिकेशाय लूनदोषायै नमः।
११. दक्षजानुनि—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः एं पद्मनाभायैकनायिकायै नमः।
१२. वामजानुनि—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ऐं दामोदरायैकारिण्यै नमः।
१३. दक्षजंघायां—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ओं वासुदेवायौघवत्यै नमः।
१४. वामजंघायां—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः औं संकर्षणायार्कमानायै नमः।
१५. दक्षपादे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अं प्रद्युम्नायाञ्जनप्रभायै नमः।
१६. वामपादे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः अः अनिरुद्धायास्थिमालाधरायै नमः।

इस प्रकार से विष्णुभक्तों के लिये मूर्तिन्यास कहा गया है।।१२०-१२८।।

शैवन्यासे दक्षपादे करभद्राभवौ मतौ ॥१२९॥
वामे खगबलाशर्वौ गतिदा च फलप्रदः ।
ऋद्धियुग्दक्षईशानौ जगत्स्थानसमन्वितः ॥१३०॥
क्रमान्न्यसेत्तथा चैव तत्पुरुषोड्डुवल्लभौ ।
अघोरा ज्ञाननादी च ततष्टङ्को धरायुतः ॥१३१॥
वामदेवोऽथ सद्याख्याजष्टङ्कधरदामिनी ।

शैवों के लिये मूर्तिन्यास—अब शिवोपासकों के लिये मूर्तिन्यास का कथन किया जा रहा है। वह इस प्रकार करणीय होता है—

१. दक्षपादाग्रोरुमूलपर्यन्तम्—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः कं भं भवाय करभद्रायै नमः।

२. वामपादाग्रोरुमूलपर्यन्तम्—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः खं वं शर्वाय खगबलायै नमः।

३. दक्षपार्श्वे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः गं फं हराय फलप्रदगतिदायै नमः।

४. वामपार्श्वे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः घं वं पशुपतये घोरपादायै नमः।

५. दक्षोरुमूले—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ङ नं उग्राय पंक्तिवासायै नमः।

६. वामोरुमूले—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः चं धं महादेवाय चन्द्रार्धधारिण्यै नमः।

७. कंठे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः छं दं भीमाय छन्दोमय्यै नमः।

८. मुखे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः जं थं ईशानाय जगत्स्थानायै नमः।

९. दक्षकर्णे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः झं तं तत्पुरुषाय झंकृत्यै नमः।

१०. वामकर्णे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ञं णं अघोराय ज्ञानदायै नमः।

११. भाले—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः टं ढं सद्योजाताय टंकढक्कधरायै नमः।

१२. शिरसि—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः ठं डं वामदेवाय ठंकृतिडामर्यै नमः।।१२९-१३१।।

ब्राह्मोऽत्राथ भवेन्न्यासः पादे ब्रह्म च पक्षिणी ॥१३२॥
प्रजापती रञ्जनी च जङ्घयोरथ जानुनोः।
वेधालक्ष्म्यौ चोरुगे च स्रष्टारं हरिताननाम् ॥१३३॥
ललाटे ललितां न्यस्येत्तथैव चतुराननम्।
क्षमां हिरण्यगर्भं च ब्रह्मरन्ध्रे प्रविन्यसेत् ॥१३४॥
त्रितारमूलमन्त्रान्ते श्रीत्रिमूर्तिपदं वदेत्।
आर्य्यापराम्बादेव्यै च नमसा व्यापकं चरेत् ॥१३५॥
एवं न्यासविधिं कृत्वा कुर्याद्यश्च ज़पादिकम्।
भूतप्रेतजनाद्यैश्च स जपी नैव बाध्यते ॥१३६॥

ब्रह्मोपासकों के लिये मूर्तिन्यास—ब्रह्मा के उपासको कों निम्न प्रकार से मूर्तिन्यास करना चाहिये—

१. मूलाधारे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः यं ब्रह्मणे पक्षिण्यै नमः।

२. स्वाधिष्ठाने—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः कं प्रजापतये रञ्जिन्यै नमः।

३. मणिपूरके—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः लं वेधसे लक्ष्म्यै नमः।

४. अनाहते—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः वं परमेष्ठिने वज्रिण्यै नमः।

५. विशुद्धौ—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौः स्हौः शं पितामहाय शशिधरायै नमः।

६. आज्ञायां—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ: स्हौ: षं विधात्रे षडाधारालयायै नम:।
७. अर्धेन्दौ—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ: स्हौ: सं विरञ्चये सर्वनायिकायै नम:।
८. रोधिन्यां—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ: स्हौ: हं स्रष्ट्रे हसितानानायै नम:।
९. नादे—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ: स्हौ: लं चतुराननाय ललितायै नम:।
१०. नादान्ते—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हसौ: स्हौ: क्षं हिरण्यगर्भाय क्षमायै नम:।

तत्पश्चात् ॐ ऐं ह्रीं श्रीं त्रिमूर्तये आर्यापराम्बादेव्यै नम: से व्यापक न्यास करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक न्यास सम्पन्न करने के उपरान्त जप आदि क्रिया का जो अनुष्ठान करता है, ऐसे जापक को भूत-प्रेत आदि किसी भी प्रकार से बाधित नहीं कर पाते।।१३२-१३६।।

वामाचारिमते पात्रलक्षणम्

वामाचारिमते वच्मि पात्रादेरथ लक्षणम्।
आधारेण विना अंशा न च तृप्यन्ति मातर: ।।१३७।।
चतुष्पदं च त्रिपदं षट्पदं वर्त्तुलं तथा।
विप्रादीनां च वर्णानां पात्रलक्षणमुच्यते ।।१३८।।
नारिकेलस्वर्णतारकाचशुक्तिशिलोद्भवम् ।
शङ्खसद्दारुकूर्मादिकपालालाबुमृन्मयम् ।।१३९।।
उत्तमं मध्यमं हीनं विप्रादीनां प्रकीर्त्तितम्।
नातिस्थूलं नातिसूक्ष्मं छिन्नं भिन्नं विवर्जयेत् ।।१४०।।
ताम्रकांस्यादिभिर्लोहै: पात्रं नैव तु कारयेत्।

वामाचार में पात्र-लक्षण—अब वाममार्ग में पात्रों के लक्षण का वर्णन करता हूँ, क्योंकि विना आधार के मातृशक्तियाँ तृप्त नहीं होतीं। ब्राह्मणों के लिये चार पैरों वाला, क्षत्रियों के लिये तीन पैरों वाला, वैश्यों के लिये छ: पैरों वाला एवं शूद्रों के लिये गोल आकृति वाला आधार होना चाहिये। वे पात्र नारियल, सोना, चाँदी, काँच, सीप, पत्थर, शंख, लकड़ी, कच्छप, कपाल, अलाबु (तुमड़ी) एवं मृत्तिका से निर्मित होने चाहिये। ये पात्र ही क्रमश: ब्राह्मणादि वर्णों के लिये उत्तम, मध्यम एवं अधम कहे गये हैं। ये पात्र न तो अधिक बड़े होने चाहिये और न ही अधिक छोटे; अपितु सामान्य आकार के होने चाहिये; साथ ही वे टूटे-फूटे भी नहीं होने चाहिये। ताँबा, काँसा और लोहे का पात्र नहीं बनवाना चाहिये।।१३७-१४०।।

ब्रह्मसिद्धि: सुवर्णे स्याद्दु:खान्तस्तारपात्रत: ।।१४१।।
शान्ति: शिलाया: स्तम्भस्तु मृन्मये नारिकेलजे।
वश्याद्यं कूर्म्मजे ज्ञानं शुक्तिर्मुक्तिप्रदायिनी ।।१४२।।

पुण्यवृक्षजपात्रं तु पापघ्नं मृत्तवृत्तिकृत् ।
कपाले वीरसंसिद्धिरलावौ योगसिद्धयः ॥१४३॥

स्वर्ण-निर्मित पात्र के प्रयोग से ब्रह्मसिद्धि प्राप्त होती हैं एवं रजत्-निर्मित पात्र का प्रयोग करने पर अन्त में दुःख उठाना पड़ता है। शान्तिकर्म में शिला-पात्र, स्तम्भनकर्म में मृत्तिकापात्र, वश्यकर्म में नारियल-पात्र एवं ज्ञान-प्राप्ति के लिये कूर्मपात्र का प्रयोग करना चाहिये। शुक्ति-निर्मित पात्र मुक्ति प्रदान करने वाला होता है एवं पवित्र वृक्ष की लकड़ी से बने पात्र पापों का विनाश करने वाले होते हैं। मिट्टी के पात्र आजीविका प्रदान करने वाले एवं कपालपात्र वीरसिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं। अलाबु अर्थात् तुम्बीपात्र योगसिद्धि देने वाले होते हैं।।१४१-१४३।।

अम्भसां द्वादशप्रस्थं चतुःप्रस्थं तु तण्डुलाः ।
प्रस्थार्धं तण्डुलं पक्त्वा तावन्मात्रांस्तु सुन्दरान् ॥१४४॥
शीतादिरहिते स्थाने दिवसद्वयमास्यते ।
पश्चादग्नौ समारोप्य जम्बालसदृशं पचेत् ॥१४५॥
पादप्रस्थांस्तण्डुलांश्च तन्मात्रान्सुन्दरान् क्षिपेत् ।
पुनर्दिनद्वयं स्थाप्य पुनरेवं प्रकल्पयेत् ॥१४६॥
अर्कं तस्य समादाय तण्डुले सुविनिःक्षिपेत् ।
पुनरेवं त्रिधा कुर्य्यात्ताण्डुलीया सुरा स्मृता ॥१४७॥
अयमेव भवेत्सोमः सोमयागफलप्रदः ।
दूतीयागे भवेद्योगे सोमपानं तु तत्स्मृतम् ॥१४८॥
या गतिः सोमयज्ञेन कौलिकानामनेनसाम् ।
भोगः स्वर्गश्च भवति विना कष्टेन वामिनाम् ॥१४९॥

बारह प्रस्थ अर्थात् बारह किलो जल एवं चार किलो चावल लेकर आधा किलो चावल को पका कर उन मनोहर पक्व चावलों को शीतादि से रहित स्थान पर बिखेर कर दो दिनों तक रखने के बाद उनका अग्नि की सहायता से अत्यन्त गाढ़ा पाक करके उनका अर्क निकालकर उन चावलों पर अच्छी तरह छिड़क देना चाहिये। यही क्रिया तीन बार करने पर तण्डुलीया सुरा तैयार हो जाती है। यही सोमरस होता है, जो कि सोमयाग के फल को देने वाला होता है। दूतीयाग में इसी से सोमपान करने का विधान है। जिस प्रकार निष्पाप कौलिकों को सोमयज्ञ से सद्गति की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार वाममार्गियों को भी इस सुरा के प्रयोग से विना किसी कष्ट के भोग एवं स्वर्ग—दोनों की प्राप्ति होती है।।१४४-१४९।।

एवं तु यवपिष्टोत्थो यवसोम इति स्मृतः ।
यवतण्डुलयोगेन शक्तिसोमो निगद्यते ॥१५०॥
स्विन्नकुट्टितगोधूमाः समं विश्वेन संयुताः ।
स्थापिता द्वादशाहं तु वारुण्या परिवारिताः ॥१५१॥
तन्मद्यं सूर्य्यसञ्ज्ञं स्याद्योगिनीमदवर्धनम् ।
पीतं तच्चक्रपूजान्ते वाजपेयफलप्रदम् ॥१५२॥
इदमेव त्रिधा युक्तं दलं मद्यं च साधितम् ।
अग्निर्भवेत्तस्य पानादग्निदानफलं लभेत् ॥१५३॥
अग्निर्यदा सप्तदिनं वारुणीयन्त्रगः कृतः ।
पचेदनलनामासौ महापातकनाशनः ॥१५४॥

इसी प्रकार यवपिष्ट से बनने वाली सुरा यवसोम कहलाती है एवं यव और चावल दोनों को मिलाकर बनाई जाने वाली सुरा शक्तिसोम कहलाती है।

महीन गेहूँचूर्ण एवं सोंठचूर्ण को समान मात्रा में लेकर पानी ड़ालकर बारह दिनों तक रखने के बाद जो मद्य तैयार होता है, वह सूर्य-नामक मद्य योगिनियों के मद की वृद्धि करने वाला होता है। चक्रपूजा के अन्त में पान करने से यह वाजपेय यज्ञ के फल को देने वाला होता है। इस प्रकार निर्मित तीनों मद्यों को एक साथ मिला देने पर अग्नि उद्दीप्त होती है और अग्निदान का फल प्राप्त होता है। वारुणी यन्त्र में सात दिनों तक यदि उस अग्नि का पाक किया जाय तो अनल नाम वाली वह अग्नि महान् पातकों का नाश करने वाली होती है।।५१-१५४।।

दशप्रस्थो गुडः प्रोक्तस्तावद्बब्बूलजास्त्वचः ।
जम्बूत्वग्धातकीपुष्पं तदर्धं नारिकेलजम् ॥१५५॥
कुसुमं च तदर्धं स्यात्तदर्धा च हरीतकी ।
तावद्बिभीतकं प्रोक्तं चतुर्थांशं कटुत्रयम् ॥१५६॥
तावच्च चित्रकं तस्माद्गुडो द्वादशभागकः ।
करेण भ्रामयेत्सम्यगनुलोमविलोमतः ॥१५७॥
अष्टोत्तरशतावृत्त्या त्रिसन्ध्यं प्रतिवासरम् ।
द्वादशाहेन पाकः स्याद्वारुणीयन्त्रगं पचेत् ॥१५८॥
एषा गौडीति विख्याता महामदकरी मता ।
शिवेन निर्मिता पूर्वं स्वयं पीता तु भैरवैः ॥१५९॥

दस प्रस्थ (किलो) गुड़, दस प्रस्थ बबूल की छाल, पाँच प्रस्थ जामुन की छाल,

पाँच प्रस्थ आँवले का फूल, ढाई प्रस्थ नारियलपुष्प, सवा प्रस्थ हरें, हरें का आधा बहेडा, सबका चतुर्थांश त्रिकटु एवं त्रिकटु के बराबर ही चित्रक—इन सबको अच्छी तरह से हाथ से मिलाकर बारह दिनों तक प्रत्येक दिन सुबह, दोपहर एवं शाम को एक सौ आठ बार अनुलोम और एक सौ आठ बार विलोम रूप से घुमाने। के बाद वारुणी यन्त्र में रखकर उसका पाक करना चाहिये। इस प्रकार अत्यधिक मद उत्पन्न करने वाला गौड़ी मद्य तैयार हो जाता है। इसे स्वयं भगवान् शिव ने तैयार किया था और भैरवों ने पान किया था।।१५५-१५९।।

द्विगुणं मकरन्दस्य वारि संयोजयेद्गुडे ।
षोडशाहेन पाकः स्याच्छेषमन्यत्पुरोक्तवत् ॥१६०॥
सर्वदेवप्रिया चेयं वशीकरणमुत्तमम् ।
देवानां शक्तयो वश्या मानुषीणान्तु का कथा ॥१६१॥
हरीतकी चित्रकं च मरिचं धातकी तथा ।
मधूकपुष्पं क्षौद्रं च भागैकेन विवर्धितम् ॥१६२॥
अशीतिगुडसम्मिश्रं शेषमन्यत्तु पूर्ववत् ।
इदं मनोहरं मद्यं योगिनीपानमुत्तमम् ॥१६३॥

गुड़ को उससे दुगुने मकरन्द (पुष्परस) में मिलाकर सोलह दिनों तक पूर्ववत् पाक करने से तैयार मद्य से उत्तम वशीकरण होता है। इससे देवशक्तियाँ भी वश में हो जाती हैं; फिर मानुषी शक्तियों की तो बात ही क्या है?

एक भाग हरें, दो भाग चित्रक, तीन भाग मरिच, चार भाग आँवला, पाँच भाग महुआ का फूल और छः भाग मधु में अस्सी भाग गुड़ मिलाकर पूर्ववत् पाक करने से जो मद्य बनता है, वह योगिनियों के लिये उत्तम मनोहर पेय होता है।

माद्यभावं प्रवक्ष्यामि बिन्दुसंसाधकं सुराः ।
माहिषं दधि संग्राह्यं चतुःशतगुणो गुडः ॥१६४॥
मोचाफलस्य पक्वस्य मर्दितस्य रसस्तथा ।
ग्राह्यो दधिचतुर्थांशस्तत्सम्मर्द्य घटे क्षिपेत् ॥१६५॥
इदं सुरातोऽप्यधिकं ब्राह्मणानां प्रशस्यते ।
गौडी माध्वी तथा पैष्टी त्रिविधा तु सुरा स्मृता ॥१६६॥
शूद्राणामुचिता चेयं न स्यात्क्षत्रियवैश्ययोः ।

बिन्दुसाधकों के लिये सुरा के मादकभाव का वर्णन करता हूँ। भैंस का दही, उसमें चार सौ गुना गुड़ एवं दधि का चतुर्थांश पके केले के रस को एकत्र कर सबको मलकर

एक घड़े में रख देना चाहिये। यह ब्राह्मणों के लिये सुरा से भी अधिक प्रशस्त होता है। गौड़ी, माध्वी और पैष्टी—तीन प्रकार की सुरा होती है और यह सुरा शूद्रों के लिये उचित होती है; क्षत्रिय और वैश्यों के लिये नहीं।।१६४-१६६।।

ब्रह्मानन्दसुरा यैस्तु विप्रैः पीता तु कौलिकैः ।।१६७।।
न चोन्मादकरी तेषां सुरा बुद्धिविवर्द्धिनी ।
कथिता ब्रह्मचिन्तैवं नित्यमेवं मतं सताम् ।।१६८।।
ब्राह्मणस्य सुरा मद्यवासना प्रभवेद्यदि ।
चाण्डालवद्बहिष्कार्यो नासौ वामी न कौलिकः ।।१६९।।
वामिनां कौलिकानान्तु मुखे तिष्ठन्ति देवताः ।
नयन्ति ते तु तद्गन्धं स तु वन्द्यो भवेद्द्विजः ।।१७०।।
देवता यस्य न मुखे साक्षाच्चण्डाल एव सः ।

विप्रों और कौलिकों के द्वारा पान की जाने वाली ब्रह्मानन्द सुरा उन्माद उत्पन्न करने वाली नहीं होती; अपितु उनकी बुद्धि को बढ़ाने वाली होती है। सदाचारियों का यह मत है कि नित्य ब्रह्मचिन्तन करना ही विप्रों एवं कौलिकों के लिये सुरास्वरूप होता है।

ब्राह्मण की सुरा यदि मद्यवासना से युक्त हो जाय तो उस ब्राह्मण का चाण्डाल के समान बहिष्कार कर देना चाहिये। ऐसा ब्राह्मण न तो वाममार्गी होता हैं, न ही कौलिक होता है। वाममार्गियों एवं कौलिकों के मुख में देवता का वास होता है। उनके मुख से जो गन्ध प्रसारित होता है, उसी से द्विज वन्दनीय होता है। जिसके मुख में देवता का वास नहीं होता, वह चाण्डाल के समान होता है।।१६७-१७०।।

सर्वसिद्धिकरी पैष्टी गौडी भोगप्रदायिनी ।।१७१।।
माध्वी मुक्तिकरी ज्ञेया द्राक्षी राज्यकरी मता ।
विद्याप्रदैक्षवी प्रोक्ता खार्ज्जूरी रिपुनाशिनी ।।१७२।।
तालजा स्तम्भने शस्ता पनसाख्या शुभप्रदा ।
नारिकेलोद्भवा श्रीदा निम्बजा रोगनाशिनी ।।१७३।।
मधूकजा ज्ञानकरी मैरेया पापनाशिनी ।
यत्सानन्दं रुचिकरं सामोदं च मनोहरम् ।।१७४।।
मद्यं तदुत्तमं देवीदेवताप्रीतिकारकम् ।

पैष्टी सुरा समस्त प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करने वाली एवं गौड़ी भोग प्रदान करने वाली होती हैं। माध्वी सुरा मोक्ष देने वाली एवं द्राक्षी सुरा राज्य प्राप्त कराने वाली होती हैं। ईखरस से निर्मित सुरा विद्या प्राप्त कराने वाली एवं खजूर से निर्मित

सुरा शत्रुघातिनी होती है। ताड़ की सुरा (ताड़ी) स्तम्भन कार्य में उपयोगी होती है एवं कटहल से निर्मित सुरा कल्याणप्रदा होती है। नारियल से निर्मित सुरा लक्ष्मी प्रदान करने वाली एवं नीम्बफल से बनाई गई सुरा रोगों का विनाश करने वाली होती है। महुये ये निर्मित सुरा ज्ञान प्रदान करने वाली एवं मैरेय सुरा पापनाशिका होती है।

जो सुरा रुचिकर हो, आनन्द प्रदान करने वाली हो, हर्षप्रद हो एवं मनोहर हो, वही सुरा उत्तम होती है; साथ ही देवी-देवता के लिये प्रीतिकारक भी होती है।

मद्यं मांसं च विजयामष्टगन्धैर्विमिश्रयेत्।
सम्मर्द्य वटिकाः प्राग्वज्जले देयास्ततोऽर्चयेत् ॥१७५॥
धत्तूरबीजं विजया जातीपत्रं फलं तथा।
अकारकरभो वत्सवृक्षस्य च तु वल्कलम् ॥१७६॥
मद्यं च भागवृद्धांशं मर्दयित्वा वटीकृतम्।
अयं बिन्दुश्चाष्टगन्धाभिधानो देवताप्रियः ॥१७७॥

मद्य, मांस, भांग में अष्टगन्ध मिलाकर सबको अच्छी प्रकार से मर्दित कर वटी बनाकर पूर्ववत् जल में ड़ालकर उसी जल से पाद्य-अर्घ्यादि प्रदान करते हुये देवता का अर्चन करना चाहिये।

धत्तूरबीज, विजया, जातीपत्र एवं उसका फल, अकरकरा, नखी एवं वत्सवृक्ष की छाल को बराबर मात्रा में लेकर उसको एक भाग ज्यादा मद्य में मिलाकर सम्मर्दन करके वटी बना लेनी चाहिये। यह देवताओं के लिये अत्यन्त प्रीतिकारक अष्टगन्ध होता है।।१७५-१७७।।

गुडमिश्रेण तक्रेण तथा च मधुभोजिना।
पूजां विप्रगणः कुर्यादेतत्कर्म न लोपयेत् ॥१७८॥
प्रमादाद्यदि लोपेत देवताशापमाप्नुयात्।
विजयाया द्रवैर्वाथाभावे तर्पणमाचरेत् ॥१७९॥
यथाहिफेनभुक् चापि तं विना व्याकुलो भवेत्।
तथा कौलिकवामानां मन्त्रदेवाः श्रमातुराः ॥१८०॥
विना मद्येन मांसेन साधकं पीडयन्ति हि।
ताभ्यां भोगं च भक्तेभ्यो मन्त्रा यच्छन्ति तं विना ॥१८१॥
निष्फला एव जायन्ते श्रमयन्ति च साधकम्।
तस्मात्पतन्ति नो वामे क्षुद्रा अपि विचारतः ॥१८२॥

मधुभोजी विप्रों को निरन्तर गुड़-मिश्रित तक्र (मट्ठा) से पूजन करना चाहिये। कभी

भी इस कार्य में व्यवधान नहीं करना चाहिये। प्रमादवश यदि कर्म का लोप होता है तो देवता से शाप प्राप्त होता है। गुड़-मिश्रित तक्र के अभाव में भाँग के जल से तर्पण करे। जिस प्रकार अफीम का सेवन करने वाला अफीम के बिना बेचैन हो उठता है, उसी प्रकार कौलिकों और वाममार्गियों के देवता भी इसके बिना बेचैन हो जाते हैं। मद्य-मांस की प्राप्ति न होने पर वे निश्चित रूप से साधक को पीड़ित करते हैं; मद्य-मांस का भोग दिये जाने पर ही देवता भक्तों को मन्त्र प्रदान करते हैं। भोग न प्रदान करने पर मन्त्र निष्फल हो जाते हैं और साधक केवल श्रम ही करता रह जाता है। इसीलिये क्षुद्र लोग भी यदि विचारवान होते हैं तो वाममार्ग का आश्रयण नहीं ग्रहण करते।।१७८-१८२।।

मांसन्तु त्रिविधं प्रोक्तं खभूजलचरोद्भवम्।
यथासम्भवमेकैकं तर्पणाय प्रयोजयेत्॥१८३॥
हन्यान्मन्त्रेण चानेन ह्यभिमन्त्र्य पशुन्तथा।
गन्धपुष्पाक्षतैः पूजा चान्यथा नरकं व्रजेत्॥१८४॥
शिवा कृतमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवताङ्गतः।
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवस्त्वं शिवो ह्यसि॥१८५॥
ब्रह्मा स्यात्सलिले विष्णुर्गन्धे रुद्रश्च तद्भवे।
परमात्मा तदानन्दे तस्मात्सेव्यमिदं प्रिये॥१८६॥

मांस तीन प्रकार के होते हैं—खेचर पक्षी का मांस, भूचर जीवों का मांस एवं जलचर जीवों का मांस। तर्पण के लिये इनमें से यथासम्भव एक-एक का प्रयोग करना चाहिये। मांस के लिये जीव का वध करने के पूर्व निम्न मन्त्र से पशु को अभिमन्त्रित करके गन्ध-पुष्प-अक्षत से उसकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा न करने पर नरकगामी होना पड़ता है। मन्त्र है—

शिवाकृतमिदं पिण्डमतस्त्वं शिवताङ्गत:।
उद्बुध्यस्व पशो त्वं हि नाशिवस्त्वं शिवो ह्यसि।।
ब्रह्मा स्यात्सलिले विष्णुर्गन्धे रुद्रश्च तद्भवे।
परमात्मा तदानन्दे तस्मात्सेव्यमिदं प्रिये।।

भावार्थ यह है कि यह पिण्ड देवी के द्वारा निर्मित है, अत: तुझमें भी शिवात्व विद्यमान है। हे पशु! तुम उद्‌बुद्ध हो जाओ; क्योंकि तुम अशिव नहीं हो, बल्कि शिव ही हो। हे प्रिये! ब्रह्मा की जल से तथा विष्णु एवं रुद्र की गन्ध से उत्पत्ति हुई है; साथ ही परमात्मा का उद्भव आनन्द से हुआ है। इसलिये यह तुम्हारे लिये सेवन करने योग्य है।।१८३-१८६।।

मांसाभावे तु लशुनमार्द्रकं नागरन्तु वा।
पलाण्डुं वाथ वटका मसूराणान्तथैव च ॥१८७॥
मत्स्यमांसविहीनेन मद्येनापि च तर्पयेत्।
न कुर्यान्मांसमत्स्याभ्यां विना द्रव्येण पूजनम् ॥१८८॥
पिशितन्तिलमात्रन्तु तिलार्धमपि बिन्दुना।
नराणां देवताभावोऽन्यथा प्रेतविभावनम् ॥१८९॥
ब्राह्मणैः कौलिकैः पेयं सर्वक्षत्रै रणागमे।
वैश्यैर्गोलम्भने पेयं शूद्रैः स्त्रीरतिकर्मणि ॥१९०॥

मांस उपलब्ध न होने पर लहसुन, अदरक, नारंगी, प्याज या मसूर के बड़े का अर्पण करना चाहिये। मछली और मांस के न रहने पर केवल मद्य से भी तर्पण किया जा सकता है; किन्तु मांस एवं मछली के रहने पर भी विना द्रव्य (मद्य) के पूजन नहीं करना चाहिये। मन्त्रोच्चारणपूर्वक तिल पीसकर उसमें तिल का आधा मद्य मिलाकर अपने को देवता मानकर पूजन करना चाहिये; अन्यथा वह पूजन प्रेतवत् हो जाता है।

ब्राह्मणों और कौलों को सदा पान करना चाहिये, समस्त क्षत्रियों को युद्ध आसन्न होने पर पान करना चाहिये, वैश्यों को गोलम्भन के समय पान करना चाहिये एवं शूद्रों को स्त्री के साथ मैथुन करते समय पान करना चाहिये।।१८७-१९०।।

देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य शक्तिशास्त्रोक्तवर्त्मना।
गुरुं स्मरन् पिबेन्मद्यं खादेन्मांसं न दोषभाक् ॥१९१॥
ब्रह्मध्यानस्य स्थैर्यार्थे देवतातृप्तिहेतवे।
सेवेत मधुमांसानि तृप्तये चेत्स पातकी ॥१९२॥
मत्स्यमांसवसादीनां पदार्थानां निषेवणात्।
यागकालं विनाऽन्यत्र स महापातकी भवेत् ॥१९३॥
यथा क्रतुषु विप्राणां सोमपानं न दूषितम्।
मद्यपानं च कौलानां पूजान्ते न विगर्हितम् ॥१९४॥
श्रीगुरोः कुलशास्त्रेभ्यः सम्यग्विज्ञाय वामिना।
पञ्चमुद्रा निषेव्यन्ते चान्यथा पतितो भवेत् ॥१९५॥
आवृत्तिं गुरुभक्तिं च तथा देवादिपूजनम्।
वीरोत्सवं विना पानाद्देवताशापमाप्नुयात् ॥१९६॥

शक्तिशास्त्र में उक्त विधि के अनुसार देवताओं और पितरों का सम्यक् रूप से अर्चन करके गुरु का स्मरण करने के पश्चात् मद्यपान एवं मांसभक्षण में कोई दोष नहीं

होता। ब्रह्म-ध्यान में स्थिरता के लिये एवं देवता तथा पितरों की तृप्ति के लिये मधु-मांस का सेवन करना चाहिये। स्वयं की तृप्ति के लिये इनका सेवन करने वाला पातकी होता है।

यज्ञकाल से अतिरिक्त समय में मछली, मांस, मज्जा आदि पदार्थों का सेवन करने वाला महान् पातकी होता है। जिस प्रकार यज्ञों में विप्रों द्वारा किया जाने वाला सोमपान दूषित नहीं माना जाता, उसी प्रकार पूजा के अन्त में कौलिकों द्वारा किया गया मद्यपान भी गर्हित नहीं माना जाता।

वाममार्गियों को अपने गुरु और कुलमार्ग का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही पञ्चमकारों का सेवन करना चाहिये; अन्यथा वे पतित हो जाते हैं। पूर्ण रूप से गुरुभक्ति-रहित देवादि पूजन और वीरोत्सव के विना मद्यपान करने से वीर साधकों को देवता के शाप का भागी होना पड़ता है।।१९१-१९६।।

कौलिकधर्मोत्पत्तिस्थानम्

दक्षयज्ञे यदा देवि त्वया त्यक्तं कलेवरम्।
अहं गृहीत्वा तत्स्कन्धे चितां वेष्टुं समुद्यतः ॥१९७॥
वडवाग्नेः प्रवेशार्थं यत्र यत्राभवत्स तु।
तत्र तत्रापि शक्रेण तूर्णं निर्वापितो जलैः ॥१९८॥
एवं पर्य्यटतो वर्षं प्रस्वेदो मे महानभूत्।
तद्बिन्दुपातनिर्दग्धा धरणीयं तदाभवत् ॥१९९॥
तदा सम्प्रार्थितो विष्णुर्धरणीरक्षणाय च।
स एव लघुभिर्बाणैस्त्वदङ्गानि समाच्छिनत् ॥२००॥
चतुरशीतिखण्डानि कृत्वाऽसौ पातयेद् भुवि।
वातेन पीडितश्चाहं यातो धर्मोऽखिलस्तदा ॥२०१॥
विष्णुश्च प्रकटीभूय पादयोः पतितो मम।
उत्थाप्य च परिष्वक्तस्तव शोकश्च विस्मृतः ॥२०२॥
तावद् ब्रह्मादयो देवा नारदाद्या महर्षयः।
सन्तुष्टुवुस्तदा वाक्यं विष्णुः प्रोवाच पार्वति ॥२०३॥

कौलिक धर्म की उत्पत्ति—हे देवि! जब आपने दक्ष-यज्ञ में अपने शरीर का त्याग कर दिया था तब मैं आपके शव को अपने कन्धे पर लेकर चिता में प्रवेश करने के लिये समुद्यत हुआ। जहाँ-जहाँ मैंने वड़वाग्नि में प्रवेश करने का उपक्रम किया, वहाँ-वहाँ इन्द्र ने जल बरसाकर अग्नि को बुझा दिया। इस प्रकार एक वर्ष तक इधर-

उधर घूमते हुये मुझे बहुत पसीना आया और इस धरती पर जहाँ-जहाँ मेरे उस पसीने की बूँदें गिरीं, वहाँ-वहाँ यह धरती दग्ध हो उठी।

तब उस समय देवताओं के प्रार्थना करने पर धरती की रक्षा के लिये विष्णु ने छोटे बाणों के प्रयोग से आपके अंगों को चौरासी खण्डों में विभक्त कर पृथ्वी पर गिरा दिया और मैं वात से पीड़ित होकर सभी धर्मों को भूल गया; साथ ही विष्णु भी प्रकट होकर मेरे पैरों पर गिर पड़े। तब मैंने उन्हें उठाकर गले लगा लिया और आपके शोक को भूल गया। हे पार्वति! उस समय ब्रह्मादि देवों एवं नारदादि महर्षियों ने अपने अनेकविध वचनों से मुझे सन्तुष्ट किया और विष्णु ने इस प्रकार कहा।।१९७-२०३।।

ज्ञानदोऽसि महेश त्वं कथं मोहमुपागतः।
सत्याः शरीरेण सह प्रवेष्टुं हव्यवाहने ॥२०४॥
अनुगछेत्पतिं नारी न पुमांस्तां च गच्छति।
इति शास्त्रमनादृत्य कथं देव विमोहितः ॥२०५॥
एवं वदति देवेशे ब्रह्मणा मां हरिं तथा।
प्रोचुः श्लेषगिरोऽङ्गैस्तु सत्याश्चेदं धरातलम् ॥२०६॥
स्थले स्थले शवस्पर्शाद् ब्रह्मकर्मविवर्जितम्।
तस्या धरायाः संशुद्धिं विप्राणां वापि शुद्धताम् ॥२०७॥
ब्राह्मवाक्यस्य सत्यत्वं यथा भवति तत्कुरु।

हे महेश! आप तो ज्ञान के दाता हैं, फिर स्वयं कैसे मोह को प्राप्त हो गये और सती के शरीर के साथ यज्ञाग्नि में प्रवेश करने को उद्यत हो उठे? पति के पीछे पत्नी चिता में प्रवेश करती है, न कि पति पत्नी की चिता में प्रवेश करता है। इस प्रकार शास्त्र का अनादर करके हे देव! आप कैसे विमोहित हो गये।

अत्यन्त श्लिष्ट वाणी में देवेश के इस प्रकार कहने पर ब्रह्मा ने मुझसे एवं विष्णु से कहा कि इस धरातल पर जगह-जगह सती के शव का स्पर्श होने से ब्रह्मकर्म का लोप हो गया है। अब जिस प्रकार से पृथिवी एवं विप्रों की सम्यक् प्रकार से शुद्धि तथा ब्राह्मवाक्य अर्थात् वेदों की सत्यता का स्थापन हो सके, उसे आप करें।।२०४-२०७।।

ततो ध्यात्वा मया प्रोक्तं सम्मतीकृत्य विष्णुना ॥२०८॥
यत्र वेदक्रिया ह्रस्ता तत्र तन्त्रं प्रवर्त्यताम्।
ये विप्राः शापनिर्दग्धाः शब्दब्रह्मविवर्जिताः ॥२०९॥
तेषां तु कुलधर्मोऽयं भुक्तिमुक्त्योस्तु साधनम्।
ये विप्राः पीठसञ्जाताः शापनिर्दग्धविप्रताः ॥११०॥

तेषां कुलेऽधिकारोऽयं मार्गस्यास्य प्रजायते।
तत्कुले एव पूज्यत्वात्कौलीनपथ उच्यते ॥२११॥

तदनन्तर विष्णु की सम्मति प्राप्त करके ध्यान लगाकर मैंने कहा कि जहाँ वैदिक कर्म समाप्त हो गये हैं, वहाँ तन्त्रमार्ग का प्रवर्तन किया जाय। जो ब्राह्मण शाप से दग्ध होकर शब्दब्रह्म से रहित हो गये हैं, उनका यह कुलधर्म होने के साथ-साथ उनके भोग एवं मोक्ष का साधन भी होगा। जो विप्रपीठ शापदग्ध होकर विप्रत्व खो चुके हैं, उनके कुल को इस मार्ग का आश्रयण करने का अधिकार होगा एवं उनके कुल में ही पूज्य होने के कारण यह कौलीनपथ कहा जायेगा।।२०८-२११।।

वाममार्गस्ततो न्यूनस्तेषां यौ क्षत्रवैश्यकौ।
यजमानौ तयोस्तत्राधिकार: समुदाहृत: ॥२१२॥
सिद्धान्तीयस्ततो न्यूनस्तत्र शूद्राधिकारता।
ये पारम्पर्यमज्ञात्वा कौलधर्मे विशन्ति ते ॥२१३॥
नि:स्वा: सन्ततिहीनाश्च रोगिणो नात्र संशय:।
कौलज्ञाने ह्यसिद्धो य: पलं वै भोक्तुमिच्छति ॥२१४॥
स महापातकी देवि सर्वकर्मबहिष्कृत:।
समयाचारहीनस्य स्वैरवृत्तेर्दुरात्मन: ॥२१५॥
न सिद्धय: कुलं नश्येत्तत्संसर्गं न कारयेत्।

उससे न्यून वाममार्ग होगा और उसमें यजमानभूत क्षत्रियों और वैश्यों का अधिकार होगा। वाममार्ग से न्यून सिद्धान्तीय होगा, जिसमें शूद्रों का अधिकार होगा। जो लोग परम्परा को न जानकर कौलधर्म में प्रवेश करेंगे, वे सत्त्वहीन, सन्तति-रहित एवं रोगी होंगे; इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। हे देवि! कौलज्ञान में सिद्ध न होते हुये भी जो मांस-भक्षण की कामना करता है, वह महापातकी सभी कर्मों से बहिष्कृत होता है। समयाचार से रहित स्वेच्छाचारी दुरात्माओं के पास सिद्धियाँ नहीं होतीं। वे कुलधर्म का नाश करने वाले होते हैं; इसलिये उनका संसर्ग नहीं करना चाहिये।।२१२-२१५।।

य: शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामचारत: ॥२१६॥
स सिद्धिमिह नाप्नोति परत्र च पराङ्गतिम्।
लोके भवति निन्द्यश्च वेदे चैव तथैव स: ॥२१७॥
कुलद्रव्याणि सेवेत योऽन्यदर्शनमाश्रित:।
तदङ्गरोमसङ्ख्यातभूतयोनिषु जायते ॥२१८॥

मद्येन स्फालितात्मा यो न किञ्चिदपि वेत्ति चेत्।
न ध्यानं न तपश्चर्या न धर्मो न च सत्क्रिया ॥२१९॥
न दैवं न गुरुर्नात्मा विचारो यदि कौलिके।
केवलं विषयासक्तः पतत्येव न संशयः ॥२२०॥

जो शास्त्रविधि का त्याग करके अपनी इच्छानुसार कर्म करता है, वह न तो इस लोक में सिद्धि प्राप्त कर पाता है और न ही उसकी सद्गति होती है; साथ ही वह लोक एवं वेद दोनों में निन्दनीय भी होता है।

जो अन्य दर्शन का आश्रय ग्रहण करके कुलद्रव्य का सेवन करता है, उसके शरीर में जितनी संख्या मे रोयें होते हैं, उतनी भूतयोनियों में वह जन्म ग्रहण करता है।

मद्य के कारण भ्रमित आत्मा वाला कोई कौलिक यदि ध्यान, तपश्चर्या, धर्म, सत्कर्म कुछ भी नहीं जानता और न ही देवता, गुरु, आत्मा किसी का विचार करता है; अपितु केवल विषयासक्त रहता है, वह निःसन्देह पतित होता है। इसमें शंका की कोई गुंजाइश नहीं है।।२१६-२२०।।

लिङ्गत्रयविशेषज्ञः षडाधारविभेदकः।
पीठस्थानानि चागत्य महायज्ञवनं श्रयेत् ॥२२१॥
आमूलाधारमाब्रह्मरन्ध्रं गत्वा पुनः पुनः।
चिच्चन्द्रकुण्डलीशक्तिमुद्रया स्यात्सुखाशयः ॥२२२॥
व्योमपङ्कजनिस्पन्दसुधापानरतो भवेत्।
मधुपानमिदं प्रोक्तमितरे मद्यपायिनः ॥२२३॥
पुण्यापुण्ये उभे छित्त्वा ज्ञानखड्गेन योगवित्।
परे लयेत्सदा चित्तं पलाशी स निगद्यते ॥२२४॥
मनसा स्वेन्द्रियगणान्नियम्यात्मनि योजयेत्।
मत्स्याशी स जनः प्रोक्तः शेषा धीवरवृत्तयः ॥२२५॥
अप्रबुद्धा तु या शक्तिः प्रबुद्धा कौलिकस्य च।
शक्तिं तां सेवयेद्यस्तु स भवेच्छक्तिसेवकः ॥२२६॥
इत्येवं पञ्चमुद्राणां गुप्तं तत्त्वं मयोदितम्।
ज्ञात्वा गुरुमुखात्सम्यक् सेवते स च मुच्यते ॥२२७॥

तीनों लिंगों को पूर्ण रूप से जानने वाले एवं छहों आधारों का भेदन करने वाले को पीठस्थान में आकर महावन का आश्रय ग्रहण करना चाहिये। मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र तक एवं ब्रह्मरन्ध्र से मूलाधार तक जाकर चित् चन्द्र कुण्डलिनी शक्तिमुद्रा के द्वारा

सुखपूर्वक आसीन होकर सहस्रार से टपकते अमृतरस के पान में जो संलग्न रहता है, वही मधुपान कहलाता है; उससे इतर तो मद्यपायी होते हैं।

ज्ञानरूपी खड्ग से पुण्य और पाप दोनों को काट कर जो योगी निरन्तर पराशक्ति में अपने चित्त को लय किये रहता है, वही पलाशी अर्थात् मांसभक्षी कहा जाता है।

जिसने मन से अपनी इन्द्रियों को नियन्त्रित करके आत्मा में जोड़ लिया है, वही वास्तविक मत्स्य-भक्षक होता है; दूसरे तो मात्र धीवरवृत्ति अर्थात् मत्स्य से अपनी आजीविका चलाने वाले होते हैं।

जो कौलिक सुषुप्त शक्ति को जागृत करके उस जागृत शक्ति का सेवन करता है, वही वास्तविक शक्तिसेवक होता है।

इस प्रकार पञ्च मकारों के गुप्त तत्त्वों का विवेचन मेरे द्वारा किया गया। गुरुमुख से सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके जो इसका सेवन करता है, वह मुक्त हो जाता है।

वामिनां पूजाप्रकार:

अथ पूजाप्रकारस्तु कथ्यते वामिदुर्लभः।
आत्मस्थानमनुद्रव्यदेवशुद्धिं प्रकल्पयेत्॥२२८॥
स्नानं सन्ध्या भूतशुद्धिः प्राणायामः प्रतिष्ठितिः।
प्राणानां मातृकान्यासादिकैः स्यादात्मशोधनम्॥२२९॥
सम्मार्ज्जनानुलेपाद्यैर्दर्पणोदरवत्कृतम्।
वितानं धूपदीपाद्यैः स्थानशुद्धिरियं मता॥२३०॥
ग्रथित्वा मातृकावर्णैर्मूलमन्त्राक्षराणि च।
क्रमोत्क्रमत्रिरावृत्तिर्मन्त्रशुद्धिरियं मता॥२३१॥
पूजाद्रव्याणि सम्प्रोक्ष्य मूलास्त्रेण विधानवित्।
दर्शयेद्धेनुमुद्रां च द्रव्यशुद्धिरियं मता॥२३२॥
पीठे देवं प्रतिष्ठाप्य सकलीकृत्य प्रोक्षयेत्।
अर्घ्योदकेन मूलेन दीपदानं प्रदर्शयेत्॥२३३॥
देवे शुद्धिं विधायेत्थं पश्चाद्यजनमाचरेत्।
सा पूजा फलदा ज्ञेया त्वन्यथा निष्फला भवेत्॥२३४॥

वाममार्ग में देवपूजन की विधि—अब मैं वाममार्ग के दुर्लभ पूजा-प्रकार को कहता हूँ। सर्वप्रथम आत्मा, स्थान, मन्त्र, द्रव्य और देव-शुद्धि की भावना करनी चाहिये। आत्मशुद्धि में स्नान, सन्ध्या, भूतशुद्धि, प्राणप्रतिष्ठा, प्राणायाम, मातृकान्यास

आदि आते हैं। स्थानशुद्धि में झाड़ू लगाकर भूमि का लेपन करके उसे दर्पण के समान स्वच्छ करना, चँदोवा तानना, धूप देना, दीपक जलाना आदि कर्म आते हैं। मन्त्रशुद्धि में मूल मन्त्र के प्रत्येक वर्णों को मातृकावर्णों से अनुलोम-विलोमक्रम से ग्रथित करके तीन बार जप करना होता है। द्रव्यशुद्धि के अन्तर्गत पूजनसामग्रियों का मूल मन्त्र एवं अस्त्रमन्त्र से प्रोक्षण करके धेनुमुद्रा का प्रदर्शन किया जाता है। देवशुद्धि में पीठ पर देव को प्रतिष्ठापित करने के उपरान्त सकलीकरण करके मूल मन्त्र द्वारा अर्घ्यजल से प्रोक्षण कर देवता को दीपक दिखाया जाता है। विधिज्ञ को इस प्रकार देवशुद्धि करने के पश्चात् ही पूजन का आरम्भ करना चाहिये। ऐसा करने पर ही किया गया पूजन फलदायी होता है; अन्यथा की गई पूजा निष्फल होती है।।२२-२३४।।

मण्डलपूजाप्रकारः

मण्डलेन विना पूजा विफला परिकीर्तिता।
तस्मान्मन्त्रेण विधिवल्लिखित्वा तत्र पूजयेत् ॥२३५॥
अखण्डमण्डलाकारं विश्वं व्याप्य व्यवस्थितम्।
त्रैलोक्यं मण्डितं येन मण्डलं तत्सदाशिवम् ॥२३६॥
उद्यानं चतुरस्रं स्यात्कामरूपं तु वर्त्तुलम्।
जलन्धरं चार्धचन्द्रं पूर्णं पूर्णगिरिर्मतः ॥२३७॥
अभ्यर्च्य मण्डलं पश्चादाधारं स्थापयेत्क्रमात्।
शाङ्खमर्घ्यं भोगपूजाबलिपात्राणि पञ्च च ॥२३८॥

मण्डल-पूजन की विधि—मण्डल से रहित पूजन विफल कहा गया है, इसलिये मन्त्रोच्चारण द्वारा विधिवत् मण्डल का निर्माण कर उस मण्डल में पूजन करना चाहिये। मण्डल-निर्माण का मन्त्र है—

अखण्डमण्डलाकारं विश्वं व्याप्य व्यवस्थितम्।
त्रैलोक्यं मण्डितं येन मण्डलं तत्सदाशिवम्।।

अर्थात् अखण्ड मण्डलाकार रूप में सारे संसार को व्याप्त करके व्यवस्थित तीनों लोकों को जो मण्डित किये हुए हैं, वे स्वयं सदाशिव हैं।

चतुरस्र मण्डल को उद्यान (उड्डियान), गोलाकार मण्डल को कामरूप, अर्द्धचन्द्राकृति वाले मण्डल को जलन्धर और पूर्ण मण्डल को पूर्णगिरिपीठ कहा गया है। मण्डल का अर्चन करके उस पर आधार स्थापित करने के उपरान्त क्रमशः शङ्खपात्र, अर्घ्यपात्र, भोगपात्र, पूजनपात्र और बलिपात्र—इन पाँच पात्रों को स्थापित करना चाहिये।।२३५-२३८।।

स्वदक्षिणादिवामान्तं स्थाप्याभ्यर्च्यासवेन च।
सम्पूर्य मन्त्रपूतेन कुलेश्वरि विधानवित् ॥२३९॥

तत्र माषप्रमाणं तु मद्यं मांसं च निक्षिपेत्।
नष्टैः पर्युषितोच्छिष्टैर्दुर्गन्धैर्गन्धवर्जितैः ॥२४०॥
हेतुभिः परपात्रस्थैस्तर्पणं निष्फलं भवेत्।
स्वादिष्टैश्च मदोत्सिक्तैर्द्रव्यैरमृतसन्निभैः ॥२४१॥
मनोहरैश्च देवीनां तर्पणं सफलं भवेत्।
असंस्कृता सुरा पापा कलहव्याधिदुःखदा ॥२४२॥
आयुःश्रीकीर्तिसौभाग्यधर्मविद्याविनाशिनी।
तस्मात्संस्कृत्य विधिवत्कुलद्रव्यं ततोऽर्चयेत् ॥२४३॥

हे कुलेश्वरि! अपने दाँयीं ओर से प्रारम्भ करके बाँयीं ओर के अन्त तक स्थापित पात्रों का अर्चन करके उन्हें मन्त्र से पवित्र किये गये मद्य से पूरित कर विधिज्ञ अर्चक के उसमें उड़द के बराबर मांस और मद्य का निक्षेप करना चाहिये। विकृत, बासी, जूठा, दुर्गन्धित एवं गन्धरहित सुरा एवं दूसरे पात्र में स्थित सुरा से किया गया तर्पण निष्फल होता है तथा स्वादिष्ट, मद से परिपूर्ण, अमृत-सदृश मनोहर सुरा से देवियों का किया गया तर्पण सफल होता है।

संस्कृत न की गई सुरा पापकारिणी, कलह कराने वाली, व्याधि उत्पन्न करने वाली एवं दुःखदायिनी होने के साथ-साथ आयु, कीर्ति, श्री, सौभाग्य, धर्म एवं विद्या का विनाश करने वाली भी होती है; अतः कुलद्रव्य का विधिवत् संस्कार करने के उपरान्त ही अर्चन करना चाहिये।।२३९-२४३।।

सुसंस्कृता सुरा रोगदुःखापदपहारिणी।
आयुःश्रीकीर्त्तिसौभाग्यधर्मविद्याविवर्धिनी ॥२४४॥
अन्यथा नरकं याति दाता भोक्ता न संशयः।
विना द्रव्याधिवासेन न स्मरेन्न जपेत्तथा ॥२४५॥
ये स्मरन्ति महामूढास्तेषां दुःखं पदे पदे।
नाशयेन विना मन्त्रो न मन्त्रेण विनाशयः ॥२४६॥

सम्यक् रूप से संस्कृत की गई सुरा रोग, दुःख एवं आपदाओं का हरण करने के साथ-साथ आयु, श्री, कीर्ति, सौभाग्य, धर्म एवं विद्या की वृद्धि करने वाली होती है। असंस्कृत सुरा से अर्चन करने पर दाता और भोक्ता दोनों निःसन्देह नरक के भागी होते हैं।

द्रव्याधिवास के विना स्मरण एवं जप नहीं करना चाहिये। जो महामूर्ख स्मरण करते हैं, उन्हें पग-पग पर दुःख उठाना पड़ता है। न तो अर्थरहित मन्त्र होता है और न ही मन्त्ररहित अर्थ होता है।।२४४-२४६।।

वीक्षणस्पर्शनध्यानमन्त्रमुद्राविशोधनैः ।
द्रव्यं तर्पणयोग्यं स्याद्देवताप्रीतिकारकम् ॥२४७॥
आवाहयेदग्निसूर्यचन्द्रार्णप्रणवोद्भवाः ।
चतुर्णवतिसङ्ख्याश्च कला आवाह्य पूजयेत् ॥२४८॥
तत्रेष्टदेवता ध्यायञ्च्छ्लोकार्थं प्रविचारयेत् ।
श्लोकानेतान् पठेत्पश्चात्तान् ब्रवीमि शृणु प्रिये ॥२४९॥

वीक्षण (दृष्टिपात), स्पर्श, ध्यान, मन्त्र एवं मुद्रा-प्रदर्शन द्वारा शोधित द्रव्य तर्पण के योग्य होने के साथ-साथ देवता के लिये प्रीतिकारक भी होता है। अग्नि, सूर्य, चन्द्र, वर्ण एवं प्रणव से उद्भूत चौरानबे कलाओं का आवाहन करके उनका पूजन करना चाहिये। हे प्रिये! फिर वहीं पर इष्टदेवता का ध्यान करते हुये श्लोक के अर्थ का विचार करने के पश्चात् इन श्लोकों को पढ़ना चाहिये। अब मैं उन श्लोकों को कहता हूँ, सुनो।।२४७-२४९।।

अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणाकारे निधेह्यमृतरूपिणि ॥२५०॥
अकुलस्थामृताकारे शुद्धिज्ञानकरे परे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥२५१॥
तद्रूपिणि करस्पर्शं कृत्वा भूतस्वरूपिणि ।
भूत्वामृतापराकारे मयि विस्फुरणं कुरु ॥२५२॥
ॐ क्लीं ह्रौं जूं स इत्युक्त्वा अमृते अमृतोद्भवे ।
अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणीति पदं वदेत् ॥२५३॥
अमृतं स्रावययुगं स्वाहान्तो द्रव्यशुद्धये ।
अमृतेशीमनुः प्रोक्तः पञ्चत्रिंशद्भिरक्षरैः ॥२५४॥
त्रिधा निमन्त्र्य प्रागुक्तं दीपनीमन्त्रतस्त्रिधा ।
संस्पृश्यार्चनपात्रन्तु पूजयेद्धेनुमुद्रया ॥२५५॥
ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतागमशेषरसं भृतम् ।
आयुरिदं महामद्यपीयूषरसमावह ॥२५६॥
शुद्धद्रव्येण तेनापि गन्धपुष्पाक्षतैरपि ।
न्यासोक्तसर्वमन्त्रैश्च स्वात्मानं प्लावयेत्तथा ॥२५७॥

हे एकमात्र अखण्ड रसस्वरूप आनन्द प्रदान करने वाली, परमामृतस्वरूपा, स्वच्छन्द रूप से स्फुरित होने वाली, अमृस्वरूपा देवि! यहाँ निवास करो। हे अकुल

स्थान में अवस्थित अमृतस्वरूपा, परम शुद्ध ज्ञानस्वरूपा देवि! क्लिन्नरूप में वर्तमान इस वस्तु को अमृतस्वरूप बनाओ। हे साक्षात् अमृतस्वरूप आकार वाली, अमृतस्वरूप अपने हाथों के स्पर्श से प्राणिजगत् की रचना करने वाली देवि! हमें अतीव कान्तिमान बनाओ।

द्रव्यशुद्धि के लिये पैंतीस अक्षरों वाला अमृतेशी मन्त्र इस प्रकार है—ॐ क्लीं ह्रौं जूं स: अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा। पूर्वोक्त तीन दीपनी मन्त्रों से तीन बार निमन्त्रित करके अर्चनपात्र का स्पर्श करके धेनुमुद्रा से उसका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर मूलोक्त 'ब्रह्माण्ड........पीयूषरसमावह' (अर्थात् ब्रह्माण्डखण्डसम्भूत आगमशेष रस से युक्त इस महामद्य में आयु और अमृतरस का समावेश करो।) श्लोकमन्त्र द्वारा प्रार्थना करनी चाहिये; साथ ही उस शुद्ध द्रव्य से भी गन्ध-पुष्प-अक्षत द्वारा देवी का पूजन करने के उपरान्त न्यास में कथित समस्त मन्त्रों द्वारा स्वयं को आप्लावित करना चाहिये।।२५०-२५७।।

मूर्ध्नि श्रीगुरुपंक्तिं च मूलाधारे च पादुकाम्।
दिव्यौघं तर्पयेदादौ आदिनाथः सदाशिवः ॥२५८॥
ईश्वरो रुद्रविष्णू च ब्रह्मा पत्नीयुतास्त्विमे।
भवन्ति द्वादश ततः सिद्धौघास्तान् प्रतर्पयेत् ॥२५९॥
सनकाद्याश्च चत्वारः सुजातश्चारुभूषितः।
सनत्कुमारो व्यासश्च वामदेवः शुकस्तथा ॥२६०॥
दत्तात्रेयो रैवतको द्वादशैव तु मानवान्।
तर्पयेत् षण्नृसिंहं च महेशं भास्करं तथा ॥२६१॥
महेन्द्रं माधवं विष्णुं नामान्ते तु प्रयोजयेत्।
महाशिवं च सिद्धौघे मानवौघे सदाशिवम् ॥२६२॥
शिवं तु परमं दिव्यं पीठपूजां ततश्चरेत्।

तदनन्तर मूर्धा में गुरुपंक्ति और मूलाधार में पादुका की भावना करके सर्वप्रथम आदिनाथ, सदाशिव, ईश्वर, रुद्र, विष्णु एवं ब्रह्मा—इन दिव्यौघों का सपत्नीक तर्पण इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आदिनाथाय पत्नीयुताय तर्पयामि नमः।
२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सदाशिवाय पत्नीयुताय तर्पयामि नमः।
३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ईश्वराय पत्नीयुताय तर्पयामि नमः।
४. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रुद्राय पत्नीयुताय तर्पयामि नमः।

५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विष्णवे पत्नीयुताय तर्पयामि नमः।

६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्मणे पत्नीयुताय तर्पयामि नमः।

तदनन्तर बारह सिद्धौघों का तर्पण करने के पश्चात् सनकादि बारह मानवौघों का तर्पण निम्न प्रकार से करना चाहिये—

१. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनकाय तर्पयामि नमः।
२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनन्दनाय तर्पयामि नमः।
३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनातनाय तर्पयामि नमः।
४. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनत्कुमाराय तर्पयामि नमः।
५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सुजाताय तर्पयामि नमः।
६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं चारुभाषिताय तर्पयामि नमः।
७. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सनत्कुमाराय तर्पयामि नमः।
८. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं व्यासाय तर्पयामि नमः।
९. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वामदेवाय तर्पयामि नमः।
१०. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शुकदेवाय तर्पयामि नमः।
११. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दत्तात्रेयाय तर्पयामि नमः।
१२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं रैवतकाय तर्पयामि नमः।

मानवौघों का तर्पण करने के पश्चात् छः नृसिंहों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं नृसिंहाय सदाशिवाय तर्पयामि नमः।
२. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महेशाय सदाशिवाय तर्पयामि नमः।
३. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भास्कराय सदाशिवाय तर्पयामि नमः।
४. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं महेन्द्राय सदाशिवाय तर्पयामि नमः।
५. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं माधवाय सदाशिवाय तर्पयामि नमः।
६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विष्णवे सदाशिवाय तर्पयामि नमः।

इस प्रकार तर्पण करने के पश्चात् पीठपूजन करना चाहिये।।२५८-२६२।।

तत आवाहयेद्देवीं मन्त्राभ्यां पूजयेत्तथा ।।२६३।।
महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरद्यैहि परमेश्वरि ।।२६४।।
देवेशि भक्तिसुलभे सर्वाभरणसंयुते ।
यावत्त्वां पूजयामीह तावत्त्वं सुस्थिरा भव ।।२६५।।
ध्यात्वा मुद्राः प्रदर्श्याथ गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
चिन्मयस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्याशरीरिणः ।।२६६।।

साधकानां हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना।
लिङ्गस्थण्डिलवह्न्यप्सु फलके मूर्ध्नि मण्डले ॥२६७॥
मूर्त्तौ कुड्ये च हृदये पूजा दशसु कीर्तिता।
अरूपं रूपिणं कृत्वा कर्मकाण्डे रता जनाः ॥२६८॥

तदनन्तर देवी का आवाहन करके निम्नांकित दो मन्त्रों से पूजन करना चाहिये—

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि।।
देवेशि भक्तिसुलभे सर्वाभरणसंयुते।
यावत्त्वां पूजयामीह तावत्त्वं सुस्थिरा भव।।

अर्थात् महान् पद्माटवी के मध्य स्थित, कारणानन्दविग्रहस्वरूपा एवं समस्त प्राणियों का हित करने वाली हे माते परमेश्वरि! आज यहाँ आओ। भक्ति द्वारा प्राप्त होने वाली समस्त आभरणों से समन्वित हे देवेशि! जबतक मैं तुम्हारी पूजा करूँ, तब तक तुम यहाँ पर सम्यक् रूप से स्थिर रहो।

उक्त मन्त्र से पूजनोपरान्त 'साधकों के हित-साधन के लिये चिन्मय, अप्रमेय, निर्गुण, अशरीरी ब्रह्मा ने विविध रूप धारण किया है' इस प्रकार ध्यान करके मुद्रा का प्रदर्शन करते हुये गन्ध, पुष्प एवं अक्षत से लिंग, स्थण्डिल, अग्नि, जल, फलक, मूर्धा, मण्डल, मूर्ति, दीवाल और हृदय—इन दस स्थानों पर उस अरूप को सरूप बनाकर कर्मकाण्ड में संलग्न लोग पूजन करते हैं।।२६३-२६९।।

गवां सर्वाङ्गजं क्षीरं स्रवेत्स्तनमुखाद्यथा।
तथा सर्वगतो देवः प्रतिमादौ विराजते ॥२६९॥
आदिरूप्याच्च सर्वस्य पूजायाश्च विशेषतः।
साधकस्य च विश्वासात्सान्निध्यं देवता लभेत् ॥२७०॥
गवां सर्वशरीरस्थं न करोत्यात्मपोषणम्।
सुकर्मरचितं चाज्यं पुनस्तदपि पोषयेत् ॥२७१॥
एवं सर्वशरीरस्थः सर्पिर्वत्परमेश्वरः।
उपासनां विना देवो न ददाति फलं नृणाम् ॥२७२॥

जिस प्रकार गाय के सर्वाङ्ग में रहने वाला दूध उसके स्तन के अग्रभाग से स्रवित होता है, उसी प्रकार समस्त जगहों पर व्याप्त देवता प्रतिमा आदि में विराजमान रहते हैं। विशेषतः पूजा के एवं सामान्यतः सबके आदि रूप देवता का सान्निध्य साधक की आस्था के फलस्वरूप प्राप्त होता है।

जिस प्रकार गाय के सम्पूर्ण शरीर में विद्यमान दुग्ध स्वयं अपना पोषण नहीं करता, अपितु शोभन कर्मों द्वारा आज्य (घृत) बनकर वह उसका भी पोषण कर सकता है, उसी प्रकार समस्त शरीरों में अवस्थित परमेश्वर गोघृत के सदृश उपासना के विना मनुष्यों को फल प्रदान नहीं करते।।२६९-२७२।।

सकलीकृत्य तत्प्राणांस्तदीयानीन्द्रियाणि च।
प्रतिष्ठाप्यार्च्चयेद्देवि अन्यथा निष्फलं मतम्।।२७३।।
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं यन्त्रहीनं च यद्भवेत्।
ळं क्षं साधयते सर्वं हीनमङ्गं यथा तथा।।२७४।।
देवस्य मन्त्ररूपस्य यन्त्रव्याप्तिमजानताम्।
कृतार्चनादिकं सर्वं व्यर्थं भवति शाम्भवि।।२७५।।

हे देवि! देवता का सकलीकरण करके उसमें प्राणों, इन्द्रियों आदि की प्रतिष्ठा करने के उपरान्त ही अर्चन करना चाहिये; अन्यथा की गई पूजा निष्फल होती है। मन्त्र, क्रिया एवं यन्त्र से रहित 'ळं' एवं 'क्षं' से की गई साधना जिस प्रकार अंगहीन होने के कारण निष्फल होती है, उसी प्रकार उक्त सकलीकरण, प्रतिष्ठापन आदि से रहित पूजा भी निष्फल होती है। हे शाम्भवि! देवता के यन्त्र में रहने वाले मन्त्रस्वरूप को न जानते हुये किये गये अर्चन आदि समस्त कार्य व्यर्थ होते हैं।।२७३-२७५।।

वामे कौले यन्त्रपीठे मूर्तिस्थाने च दक्षिणे।
वैदिके तु स्वयं जातं पूजितं सुखदायकम्।।२७६।।
अनादि वैदिकं यस्मात्स्वयम्भूस्तत्र देवता।
गम्यत्वान्नश्वरत्वाच्च तादृक् तान्त्रिकपूजनम्।।२७७।।
कामक्रोधादिदोषोत्थसर्वदुःखनियन्त्रणात्।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देवस्तु परिपूजितः।।२७८।।
दक्षिणावर्त्ततो लेख्यं यन्त्रं दक्षिणपूजने।
वामक्रमेण कौलादौ गुप्तमेतत्प्रकाशितम्।।२७९।।

वाममार्ग और कौलमार्ग में यन्त्रपीठ पर, दक्षिणमार्ग में मूर्ति में और वैदिक मार्ग में स्वयंभू स्वरूप का पूजन करना सुखदायक होता है। क्योंकि वैदिक मार्ग अनादि है, इसीलिये उसके देवता स्वयंभू होते हैं। तान्त्रिक मार्ग में देवता गम्य एवं नश्वर होता है। काम, क्रोधादि दोषों से उत्पन्न सभी दुःखों का नियन्त्रण करने वाला होने के कारण इसे 'यन्त्र' कहा गया है, इसी में देवता की पूजा करनी चाहिये। दक्षिणमार्ग के पूजन में यन्त्र-लेखन दक्षिणावर्त से करना चाहिये एवं कौलादिकों को पूजन-हेतु

यन्त्रलेखन वामावर्त क्रम से करना चाहिये। इस गुप्त तथ्य को यहाँ प्रकाशित किया गया।।२७६-२७९।।

षोडशैरुपचारैस्तु साङ्गं सावरणं यजेत्।
महान् षोढा दिनान् सर्वान् गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥२८०॥
प्रणवादिनमोऽन्तेन तत्तन्नाम्ना समर्चयेत्।
अथागमोक्तमार्गेण तर्पयेद्दधिबिन्दुभिः ॥२८१॥
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यां तु नखैर्निश्शब्दमुत्क्षिपन्।
अपात्रस्येदमष्टौ च तर्पयेद्देवतामुखम् ॥२८२॥
सकृत्तर्पणमुत्सृज्य जप्त्वा मूलं च पादुकाम्।
अन्तःशक्तिमनुस्मृत्य तर्पयेद्देहदेवताम् ॥२८३॥
अङ्गुष्ठो भैरवस्थानं चण्डिकायास्त्वनामिका।
तस्मात्ताभ्यां तर्पणीयं यन्त्रं तत्तु तयोः प्रियम् ॥२८४॥

सोलह उपचारों से अंगों एवं आवरणों के सहित देवता का पूजन करना चाहिये। सोलह दिनों तक समस्त देवताओं का गन्ध-अक्षत-पुष्प से पूजन करना चाहिये। समस्त देवताओं के नाम के आदि में प्रणव अर्थात् ॐ एवं अन्त में नमः लगाकर बने मन्त्र से उनका अर्चन करना चाहिये। तदनन्तर आगमोक्त मार्ग से दधिबिन्दु अर्थात् मद्य से तर्पण करना चाहिये। अपात्रों द्वारा अंगूठा एवं अनामिका के नखों से फेंके गये मद्य से देवता के मुख में आठ बार तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर शीघ्रता से तर्पण का समापन कर मूल मन्त्र और पादुका मन्त्र का जप करके अन्तःशक्ति का स्मरण करते हुये हृदयस्थ देवता का तर्पण करना चाहिये। अँगूठों में भैरव का स्थान है होता एवं अनामिका में चण्डिका का स्थान होता है; इसीलिये इन दोनों से यन्त्र में तर्पण उन्हें प्रिय है।।२८०-२८४।।

अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां च वश्यकर्मणि तर्पयेत्।
तर्जन्यङ्गुष्ठयोगेन तर्पयेदाभिचारिके ॥२८५॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन स्तम्भकर्मणि तर्पयेत्।
एवं सन्तर्प्य देवादीन् गुरुपङ्क्तिं प्रपूजयेत् ॥२८६॥
कराभ्यां चेन्मुद्रां समधु नृकपालं
च दधतीं सृतस्वर्णप्रख्यामरुणकुसुमालेपवसनाम्।
कृपापूर्णापाङ्गीमरुणनयनामम्बरकचा-
मुपेतां सिद्धौघैर्यजति गुरुपङ्क्तिं कृतमतिः ॥२८७॥

एवं सम्पूज्य धूपं च दीपं नैवेद्यमेव च।
कदल्यादिफलान्येवं ताम्बूलं च समर्पयेत् ॥२८८॥

वशीकरण कर्म में अँगूठा और मध्यमा के योग से, अभिचार कर्म में अँगूठा और तर्जनी के योग से एवं स्तम्भन कर्म में अँगूठा और कनिष्ठा के योग से तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार देवों का तर्पण करने के उपरान्त गुरुपंक्ति का पूजन करना चाहिये। हाथों में मुद्रा एवं मद्यपूरित नरकपाल धारण करने वाली, स्वर्णखचित रक्तवर्ण पुष्पों से सुसज्जित वस्त्र धारण करने वाली, कृपापूर्ण तिरछी रक्त वर्ण नयनों वाली, आकाशस्वरूप केशों वाली, सिद्धौघों से समन्वित गुरुपंक्ति का ध्यान करते हुये उसका पूजन करना चाहिये। इस प्रकार पूजन करके गुरुपंक्ति को धूप, दीप, नैवेद्य, केला आदि फल एवं ताम्बूल समर्पण करना चाहिये।।२८५-२८८।।

बटुपूजनबलिदानविचारः

अवश्यमादौ वामादौ कुर्याद्बटुकपूजनम्।
मार्गेऽस्मिन्बटुको मुख्यः सुराद्यन्तेन निर्मितम् ॥२८९॥
विना तं तु न गृह्णीत देवस्तस्मात्तदर्चनम्।
अपूज्य बटुकं यस्तु महादेवं प्रपूजयेत् ॥२९०॥
तस्य पूजाफलं नास्ति बटुकश्च प्रकुप्यति।
सगणं पूजयेत्तस्माद् गन्धपुष्पासवामिषैः ॥२९१॥
तत्तन्मन्त्रैर्विधानेन देवता प्रीतिमाप्नुयात्।
ततो बलिं क्षेत्रपत्ये दद्यादस्य मनुं शृणु ॥२९२॥
तारद्वयं ततो देवीपुत्रोक्त्वा बटुकेति च।
नाथेति कपिलजटाभारभासुरपिङ्गल ॥२९३॥
त्रिनेत्राग्निज्वालामुख इमं पूजाबलिं वदेत्।
गृह्ण-गृह्ण हुं फट् स्वाहा षट्चत्वारिंशदर्णकः ॥२९४॥
मन्त्रमेवं समुच्चार्य ततः श्लोकं पठेदिमम्।
बलिदानेन सन्तुष्टो बटुकः सर्वसिद्धिदः ॥२९५॥
शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवितः।

बटुक-पूजन एवं बलिदान-विधि—वाममार्गियों को पूजन के प्रारम्भ में बटुक-पूजन अवश्य करना चाहिये। इस मार्ग में बटुक मुख्य हैं; क्योंकि प्रारम्भ में सुरा उन्हीं के द्वारा निर्मित की गई है। बटुक-पूजन के विना देवता उस सुरा का ग्रहण नहीं करते; इसलिये बटुक-पूजन अवश्य करणीय है। बटुक का पूजन किये विना जो

व्यक्ति महादेव का पूजन करता है, उसे उस पूजा का कोई फल तो नहीं ही मिलता; बटुक भी उसपर कुपित हो जाते हैं। इसलिये गणों के सहित तत्तत् देवताओं की उनके मन्त्रों से सविधि गन्ध, पुष्प, आसव और मांस से पूजन करके उनकी प्रसन्नता प्राप्त करनी चाहिये। इसके पश्चात् क्षेत्रपति को बलि प्रदान करना चाहिये। बटुक को बलि प्रदान करने का छियालीस अक्षरों वाला मन्त्र है—ॐ ॐ देवीपुत्र बटुकनाथ कपिल जटाभार भासुर पिंगल त्रिनेत्राग्निज्वालामुख इमं पूजाबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र से बलि-समर्पण करने के उपरान्त निम्न श्लोक को पढ़ना चाहिये—

बलिदानेन सन्तुष्टो बटुक: सर्वसिद्धिद:।
शान्तिं करोतु मे नित्यं भूतवेतालसेवित:।।

अर्थात् समस्त सिद्धियों को प्रदान करने वाले भूत-वेताल द्वारा सेवित बटुक बलिदान से सन्तुष्ट होकर हमें शान्ति प्रदान करें।।२८९-२९५।।

तारत्रयं सर्वपूर्वभ्यसन्तांश्च वदेत्क्रमात् ।।२९६।।
योगिनी डाकिनी शाकिनी त्रैलोक्यनिवासिनी।
नमश्चैव इमं पूजाबलिं गृह्णीत इत्यपि ।।२९७।।
हुं फट् चैव तथा प्रोच्य चान्ते स्वाहापदं वदेत्।
चतुश्चत्वारिंशदर्णो मन्त्रोऽयं परिकीर्तितः ।।२९८।।
या काचिद्योगिनी रौद्रा सौम्या घोरतरा परा।
खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीता सदाऽस्तु मे ।।२९९।।

योगिनी-बलिमन्त्र—योगिनी को बलि प्रदान करने का चौवालीस अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ॐ ॐ सर्वयोगिनीभ्य: सर्वडाकिनीभ्य: सर्वशाकिनीभ्यस्त्रैलोक्यनिवासिनीभ्यो नम: इमं पूजाबलिं गृह्णीत हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र से बलि प्रदान कर निम्न श्लोक का पाठ करना चाहिये—

या काचिद् योगिनी रौद्रा सौम्या घोरतरा परा।
खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीता सदास्तु मे।।

अर्थात् आकाश, भूमि अथवा अन्तरिक्ष में विचरण करने वाली जो कोई भी रौद्र, सौम्य अथवा परम भयानक योगिनियाँ हैं, वे सदा मेरे ऊपर प्रसन्न रहें।।२९६-२९९।।

तारत्रयं वदेत्सर्वभूतेभ्यः सर्वमेव च।
पश्चाद् भूतपतिभ्यो हृदन्तः सप्तदशाक्षरः ।।३००।।
भूता ये विविधाकारा दिव्यभौमान्तरिक्षगाः।
पातालतलसंस्थाश्च शिवयोगेन भाविताः ।।३०१।।

ध्रुवाद्याः सत्यसन्धाश्च इन्द्राद्याश्च व्यवस्थिताः ।
तृप्यन्तु प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम् ॥३०२॥

भूतबलि का मन्त्र—भूतबलि प्रदान करने का सत्रह अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ॐ ॐ सर्वभूतेभ्यः सर्वभूतपतिभ्यो नमः। उक्त मन्त्र से भूतबलि देने के बाद इस श्लोक का पाठ करना चाहिये—

भूता ये विविधाकारा दिव्यभौमान्तरिक्षगाः।
पातालतलसंस्थाश्च शिवयोगेन भाविताः।।
ध्रुवाद्यास्सत्यसन्धाश्च इन्द्राद्याश्च व्यवस्थिताः।
तृप्यन्तु प्रीतमनसो भूता गृह्णन्त्विमं बलिम्।।

अर्थात् आकाश, भूमि एवं अन्तरिक्ष में गमन करने वाले, पाताल में रहने वाले, शिव द्वारा उद्भूत, ध्रुव-सत्यसन्ध आदि तथा इन्द्र आदि द्वारा व्यवस्थित भूतगण प्रसन्न मन से इस बलि को ग्रहण कर तृप्त हों।।३००-३०२।।

तारत्रयं तथैह्येहि देवीपुत्र बटोऽधुना ।
अथोच्छिष्टहारिणे हं हूं हं हूं वारद्वयं वदेत् ॥३०३॥
क्षेत्रपालेति शर्वेति विघ्नान्नाशययुग्मकम् ।
सर्वोपचारसहितमिमं पूजाबलिं वदेत् ॥३०४॥
गृह्ण-गृह्ण हुं फट् स्वाहा चतुष्षष्ट्यक्षरो मनुः ।
क्षेत्रपालस्य सम्प्रोक्तः सर्वसिद्धिविधायकः ॥३०५॥
वसामि तस्य क्षेत्रेऽस्मिन् क्षेत्रपालस्य किङ्करः ।
प्रीतोऽयं बलिदानेन सर्वरक्षां करोतु मे ॥३०६॥

क्षेत्रपाल-बलिमन्त्र—समस्त सिद्धियों का विधान करने वाले क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करने का चौंसठ अक्षरों वाला मन्त्र इस प्रकार है—ॐ ॐ ॐ एह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथोच्छिष्टहारिणे हं हूं हं हूं हं हूं हं हूं क्षेत्रपाल सर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितमिमं पूजाबलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा। इस मन्त्र से क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करने के पश्चात् इस श्लोक से प्रार्थना करनी चाहिये—

वसामि तस्य क्षेत्रेऽस्मिन्क्षेत्रपालस्य किङ्करः।
प्रीतोऽयं बलिदानेन सर्वरक्षां करोतु मे।।

अर्थात् उन क्षेत्रपाल का सेवक मैं उनके क्षेत्र में निवास करता हूँ, मेरे द्वारा प्रदत्त इस बलि से प्रसन्न होकर वे क्षेत्रपाल मेरी सब प्रकार से रक्षा करें।।३०३-३०६।।

ॐकारत्रितयं हुं श्रीं हसौं च ह्रीं ह्रीं वदेत्ततः ।
हुंयुगान्ते भैरवाधिष्ठितायाक्षो वदेदिति ॥३०७॥

भ्यानन्दहृदयान् मन्त्रसिद्धयेऽवतरद्वयम्।
क्षेत्रपाल महाक्षेत्रपालाय वौषड् हुमिति ॥३०८॥
अयमेकोनपञ्चाशदक्षरश्च मनुः स्मृतः।
श्रेष्ठस्य क्षेत्रपालस्य महाप्रीतिकरः परः ॥३०९॥
तारत्रयं वदेत् पश्चादमुकक्षेत्रपालाय।
राजराजेश्वर इमां पूजाबलिमतः परम् ॥३१०॥
गृह्णयुग्मं द्विठान्तोऽयं मन्त्रः प्रोक्तोऽखिलेष्टदः।
राजराजेश्वराख्यस्य दैवतस्य समर्चने ॥३११॥
अनेन बलिदानेन बटुर्वर्गसमन्वितः।
राजराजेश्वरो देवो मे प्रसीदतु सर्वदा ॥३१२॥

क्षेत्रपाल-प्रीतिकर मन्त्र—क्षेत्रपाल को अत्यन्त प्रिय लगने वाला उञ्चास अक्षरों का मन्त्र है—ॐ ॐ ॐ हुं श्रीं हसौं ह्रीं ह्रीं हुं हुं भैरवाधिष्ठितायाक्षोभ्यानन्दहृदयान्द्‌ मन्त्रसिद्धयेऽवतरावतर क्षेत्रपालमहाक्षेत्रपालाय वौषट् हुम्।

राजराजेश्वरार्चन मन्त्र—राजराजेश्वर-नामक देवता के अर्चन का मन्त्र है—ॐ ॐ ॐ अमुक-क्षेत्रपालाय राजराजेश्वर इमां पूजाबलिं गृह्ण गृह्ण ठः ठः। राजराजेश्वर का यह मन्त्र समस्त प्रकार के अभीष्ट को प्रदान करने वाला है। इस प्रकार राजराजेश्वर को बलि प्रदान करने के बादं निम्न श्लोक का पाठ करना चाहिये—

अनेन बलिदानेन बटुर्वर्गसमन्वितः।
राजराजेश्वरो देवो मे प्रसीदतु सर्वदा।

अर्थात् इस बलिदान से बटुकों से समन्वित राजराजेश्वर देव मेरे ऊपर सदा प्रसन्न हों।।३०७-३१२।।

बटुकाय बलिं पश्चादुत्तरे योगिनीबलिम्।
पूर्वे भूतबलिं दद्यात् क्षेत्रपालाय दक्षिणे ॥३१३॥
राजराजेश्वरं मध्ये पूजयित्वाहरेद्बलिम्।
अङ्गुष्ठानामिकाभ्यान्तु बटुकस्य भवेद्बलिः ॥३१४॥
तर्जनीमध्यमानामाङ्गुष्ठैः स्याद्योगिनीबलिः।
अङ्गुलीभिश्च सर्वाभिर्दद्याद्भूतबलिं द्विजः ॥३१५॥
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु क्षेत्रपालबलिर्भवेत्।
अङ्गुष्ठमध्यमाभ्यां तु राजराजेश्वरस्य च ॥३१६॥

वटुक को बलि प्रदान करने के पश्चात् उत्तर दिशा में योगिनी को, पूर्व दिशा में

भूतों को एवं दक्षिण दिशा में क्षेत्रपाल को बलि प्रदान करने के उपरान्त मध्य में राजराजेश्वर का पूजन करके उन्हें भी बलि समर्पित करना चाहिये।

अँगूठे और अनामिका को मिलाकर बटुक को बलि प्रदान करना चाहिये। तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और अँगूठे के योग से योगिनी को बलि समर्पित करना चाहिये। सभी अँगुलियों के योग से भूतबलि देनी चाहिये। अँगूठे और तर्जनी को मिलाकर क्षेत्रपालबलि दी जाती है एवं अँगूठे और मध्यमा के योग से राजराजेश्वर को बलि प्रदान की जाती है।।३१३-३१६।।

बटुकादीन् समर्च्यैवं कुलदीपान् प्रदर्शयेत्।
देवभक्तः सुपिष्टेन कुर्याद्वेदाङ्गुलोन्नतान् ।।३१७।।
दीपान् डमरुकाकारांस्त्रिकोणानतिशोभनान् ।
कर्षाज्यग्राहिणः कुर्यान्नव सप्ताथ पञ्च च ।।३१८।।
अन्तस्तेजोबहिस्तेज एकीकृत्यामितप्रभान् ।
त्रिधा देव्युपरि भ्राम्य कुलदीपं निवेदयेत् ।।३१९।।
समस्तचक्रैश्चक्रेशीयुते देवि नवात्मिके ।
आरार्त्रिकमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये ।।३२०।।
कुलदीपान् प्रदर्श्याथ शक्तिपूजां समाचरेत् ।

इस प्रकार बटुक इत्यादि का सम्यक् रूप से अर्चन के बाद कुलदीपक दिखाना चाहिये। देवता के भक्त को आटे से एक कर्ष अर्थात् सोलह ग्राम घी रखने लायक चार अंगुल ऊँचा डमरू के आकार का त्रिकोण सुन्दर नव, सात अथवा पाँच दीपक अन्दर एवं बाहर के तेज को एक में समेटे हुये असीमित तेज वाले उन दीपों को देवी के ऊपर तीन बार घुमाकर कुलदीप समर्पित करना चाहिये। दीप समर्पित करते समय निम्न श्लोक का उच्चारण करना चाहिये—

समस्तचक्रैश्चक्रेशीयुते देवि नवात्मिके।
आरार्त्रिकमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये।।

अर्थात् 'समस्त चक्रों एवं उन चक्रों की अधिष्ठात्री देवियों से समन्वित नवात्मिका हे देवि! मेरी सिद्धि के लिये इस आरती को ग्रहण करो।' इस प्रकार कुलदीप समर्पित करने के पश्चात् शक्ति-पूजन करना चाहिये।।३१७-३२०।।

गुरुपादरजोजोषी श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ।।३२१।।
स्वशक्तिं वीरशक्तिं च दीक्षितां गुरुरूपिणीम् ।
पाययित्वा पिबेन्मद्यं चेति शास्त्रस्य निश्चयः ।।३२२।।

अनिवेद्य तु यः शक्त्यै कुलद्रव्यं निषेवते।
पूजनं निष्फलं तस्य देवता न प्रसीदति ॥३२३॥

शक्तिपूजन के उपरान्त गुरु के पदरज से आनन्दित होने वाला श्रद्धा एवं भक्ति से युक्त साधक को दीक्षिता गुरुरूपा अपनी शक्ति एवं वीरशक्ति को मद्य का पान कराने के पश्चात् स्वयं मद्यपान करना चाहिये—ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। शक्ति को निवेदित किये बिना जो कुलद्रव्य अर्थात् मद्य का सेवन करता है, उसका पूजन तो निष्फल होता ही है, देवता भी उस पर प्रसन्न नहीं होते।।३२१-३२३।।

चाण्डाली चर्मकारी च मातङ्गी पुल्कसी तथा।
श्वपची खटकी चैव कैवर्त्ती विश्वयोनिका ॥३२४॥
कुलाष्टकमिदं प्रोक्तमकुलाष्टकमुच्यते।
कुडुकी सौत्रिकी चापि शस्त्रीजीवा तु रञ्जकी ॥३२५॥
गायकी रजकी शिल्पी कौशिकी च तथाष्टमी।
स्त्रियो मन्त्रसमायुक्ताः समयाचारपालिकाः ॥३२६॥
कुर्यात्सद्यस्तु संस्कारं मन्त्रैश्चैव पृथक् पृथक्।
पूजयेत्कुलमार्गस्थस्तत्र शक्तिमनुस्मरन् ॥३२७॥
कुमारी वा व्रतस्था वा योगमुद्राधरापि वा।
पूजाकाले स्वतः प्राप्ता सा पूज्या सहसा बुधैः ॥३२८॥

कुलनायिकायें आठ प्रकार की होती हैं—चाण्डाली, चर्मकारी, मातङ्गी, पुल्कसी, श्वपची, खटकी, कैवर्ती, विश्वयोनिका। इन्हें कुलाष्टक कहा जाता है। कुडुकी, सौत्रिकी, शस्त्रीजीवा, रञ्जकी, गायकी, रजकी, शिल्पी और कौशिकी—ये आठ अकुलाष्टक कही गयी हैं।

कुलमार्ग का अनुसरण करने वाले को समयाचार का पालन करने वाली मन्त्र से समन्वित स्त्रियों का सद्यः संस्कार करने के उपरान्त उन सभी में तत्तत् शक्तियों का स्मरण करते हुये अलग-अलग मन्त्रों से उनका पूजन करना चाहिये। विज्ञ साधक को कुमारी, व्रतधारिणी, योगमुद्राधारिणी अथवा पूजा के समय अचानक स्वतः आई हुई स्त्री का पूजन करना चाहिये।।३२४-३२८।।

उक्तजात्यङ्गनाभावे चतुर्वर्णाङ्गनां यजेत्।
सुरूपा तरुणी शान्तानुकूला मुदिता शुचिः ॥३२९॥
रोगहीना भक्तियुक्ता मूढशास्त्रोपजीविनी।
अलोलुपा सुशीला च स्मितास्या प्रियवादिनी ॥३३०॥

गुरुदैवतभक्ता तु सुचित्ता कौलिकप्रिया।
विमत्सरा विशेषज्ञा देवताराधनोत्सुका ॥३३१॥

उपर्युक्त जातियों की रमणियों के न मिलने पर चारों वर्णों की सुन्दर रूप वाली, युवती, शान्त, पूजा के अनुकूल, प्रसन्न, पवित्र, रोगरहित, भक्ति से समन्वित, मूढ़शास्त्र से जीवन-यापन करने वाली, लोभ न करने वाली, सुन्दर आचरण वाली, प्रसन्न मुख वाली, प्रिय वचन बोलने वाली, गुरु एवं देवता की भक्ति करने वाली, शुद्ध अन्तःकरण वाली, ईर्ष्या न करने वाली, विशेष ज्ञान वाली एवं देवता की आराधना के लिये उत्सुक स्त्रियाँ कौलिकों के लिये प्रशस्त कही गई हैं।

दुर्गन्धा दुःखिता मूर्खा वृद्धोन्मत्ता रहस्यभित्।
कुतर्का कुत्सिता स्तब्धा निर्लज्जा कलहप्रिया ॥३३२॥
विरूपोन्मार्गगा दुष्टा पङ्ग्वन्धा विकृतानना।
ईदृशीं मन्त्रयुक्तां हि स्त्रियं योगी विवर्जयेत् ॥३३३॥

योगियों के लिये त्याज्य स्त्रियाँ हैं—दुर्गन्धा, दुःखिता, मूर्खा, वृद्धा, उन्मत्ता (पागल), रहस्य का भेदन करने वाली अर्थात् गुप्त बातों को किसी के समक्ष प्रकट करने वाली, कुतर्क करने वाली, निन्दित विचार वाली, स्तब्धा, निर्लज्जा, कलहकारिणी, विरूपा, उन्मार्गगामिनी, दुष्टा, लंगड़ी, अन्धी और विकृत मुख वाली। ये स्त्रियाँ मन्त्र से समन्वित होने पर भी योगियों द्वारा त्याज्य होती हैं।।३३२-३३३।।

ततोऽर्चनादिकं सर्वं मन्त्रोदकपुरःसरम्।
इतः पूर्वादिमनुना मन्त्री देव्यै समर्पयेत् ॥३३४॥
शेषं दक्षिणवत्कुर्यात्तदुच्छिष्टादिकं पुनः।
शेषं कामं ततो देयं शेषिकायै स कथ्यते ॥३३५॥
ऐं हृदुच्छिष्टचाण्डालिनि मातङ्गि पदं वदेत्।
सर्ववशङ्करि स्वाहा चैकविंशतिवर्णकः ॥३३६॥
मन्त्रेणानेन निर्माल्यं शेषिकायै समर्पयेत्।
देवीमुच्छिष्टमातङ्गीं ध्यायेल्लोकैकमोहिनीम् ॥३३७॥
वीणावाद्यविनोदगीतनिरतां नीलांशुकोल्लासिनीं
बिम्बोष्ठीं नवयावकाढ्यचरणामाकर्णकेशांशुकाम्।
हृद्याङ्गां सितशङ्खकुण्डलधरां माणिक्यभूषोज्ज्वलां
मातङ्गीं प्रणतोऽस्मि सुस्मितमुखीं देवीं शुकश्यामलाम् ॥३३८॥

इसके बाद मन्त्री को मन्त्रोच्चारण-पूर्वक हाथ में जल लेकर 'इतः पूर्वं' आदि मन्त्र के द्वारा समस्त पूजन को देवी को समर्पित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् अवशिष्ट कार्य दक्षिणमार्ग के समान करने के उपरान्त उच्छिष्ट आदि को शेषिका को समर्पित करना चाहिये; उसके लिये इक्कीस अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार है—ऐं नमः उच्छिष्टचाण्डालिनि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहा।

इक्कीस अक्षरों वाले इस मन्त्र से शेषिका को निर्माल्य अर्पित करने के उपरान्त समस्त लोकों को मोहित करने वाली उच्छिष्टमातङ्गी देवी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

वीणावाद्यविनोदगीतनिरतां नीलांशुकोल्लासिनीं
बिम्वोष्ठीं नवयावकाढ्यचरणामाकर्णकेशांशुकाम्।
हृद्याङ्गां सितशङ्खकुण्डलधरां माणिक्यभूषोज्ज्वलां
मातङ्गीं प्रणतोऽस्मि सुस्मितमुखीं देवीं शुकश्यामलाम्।।

अर्थात् वीणावादन के साथ-साथ हर्षित करने वाले गान में निरत, फहराते हुये नीले वस्त्रों वाली, गोल होठों वाली, नूतन अलक्तक से सुशोभित चरणों वाली, कर्ण-पर्यन्त झूल रहे केशरूपी वस्त्रों वाली, मनोहारी अंगों वाली, श्वेत शंख का कुण्डल धारण करने वाली, माणिक्य के आभूषणों से प्रकाशित, सुन्दर हास्यपूर्ण मुख वाली, शुक-सदृश श्याम वर्ण वाली देवी मातंगी को मैं प्रणाम करता हूँ।।३३४-३३८।।

ततः श्रीगुरुरूपाय साक्षात्परशिवाय च।
कराभ्यां पात्रमुद्धृत्य सद्द्वितीयं समर्पयेत्।।३३९।।
सुसम्प्रदायसंयुक्तैर्वीरैश्च सह पूजयेत्।
अन्योन्यं चिह्नितं कृत्वा पिबेत्तत्तदनुज्ञया।।३४०।।
सव्यतोद्धृत्य पात्रं तु मुद्रां कृत्वापसव्यतः।
यथाविधि द्वितीयेन गृह्णीयान्मन्त्रमुच्चरेत्।।३४१।।
इदं पवित्रममृतं पिबामि भवभेषजम्।
मद्यपानसमुच्छेदे कारणं भैरवोदितम्।।३४२।।
वित्तस्वातन्त्र्यसारत्वात्तस्यानन्दमयत्वतः।
तन्मयत्वाच्च भावानां भावाश्चान्तरिता रसे।।३४३।।
स्वस्वातन्त्र्यविकासाय सुरसस्तेन पीयते।
तस्मादिमां सुरां देवीं पूर्णकामः पिबाम्यहम्।।३४४।।
मन्त्रेणानेन भो देवा मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
अनाकुलमनाः कुर्यान्मधुपानं शनैः शनैः।।३४५।।

इसके बाद 'श्रीगुरुरूपाय साक्षात् परशिवाय' कहकर हाथों से मत्स्य-सहित पात्र को उठाकर समर्पित करना चाहिये। तदनन्तर सम्प्रदाय से संयुक्त वीरों का पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् एक-दूसरे से चिह्नित करके उनसे आज्ञा प्राप्त कर स्वयं पान करना चाहिये।

पात्र को बाँयें हाथ में लेकर दाहिने हाथ से मुद्रा दिखाकर यथाविधि द्वितीय (मत्स्य) के साथ ग्रहण करके इस मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये—

इदं पवित्रममृतं पिबामि भवभेषजम्।
मद्यपानसमुच्छेदे कारणं भैरवोदितम्।।
वित्तस्वातन्त्र्यसारत्वात्तस्यानन्दमयत्वत:।
तन्मयत्वाच्च भावानां भावाश्चान्तरिता रसे।।
स्वस्वातन्त्र्यविकासाय सुरसस्तेन पीयते।
तस्मादिमां सुरां देवीं पूर्णकाम: पिबाम्यहम्।।

अर्थात् संसार के लिये ओषधि-स्वरूप इस पवित्र अमृत का मैं पान करता हूँ। भैरव द्वारा इसे मद्यपान के विनाश के लिये कारणभूत कहा गया है। वित्तस्वातन्त्र्य का सारस्वरूप होने के फलस्वरूप उसके आनन्दस्वरूप होने के कारण समस्त भावों के मूल भाव इस रस में समाहित हैं। अपने स्वातन्त्र्य के विकास के लिये इस शोभन रस का देवता लोग पान करते हैं; इसलिये पूर्णकाम मैं इस सुरा देवी का पान करता हूँ।

हे देवताओं! मन्त्रज्ञ को इस उपर्युक्त मन्त्र और मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित करके शान्तचित्त होकर धीरे-धीरे मद्यपान करना चाहिये।।३३९-३४५।।

पिशितं माषमात्रं तु मद्यं चुलुकसम्मितम्।
स्वीकार्यमादौ गुरुणा शिष्येभ्य: शेषदो भवेत्।।३४६।।
आदाय गुरुणा दत्तां सद्वितीयां सुरां पिबेत्।
स्त्रीगुरुज्येष्ठपूज्यानां पुरतश्चोपविश्य च।।३४७।।
न कदाचित्पिबेन्मद्यं निर्मन्त्रं न पिबेत्तथा।
विना मन्त्रं पिबेन्मद्यं स सुरापो निगद्यते।।३४८।।

उड़द के बराबर मांस और चुल्लू भर मदिरा सर्वप्रथम गुरु को ग्रहण करना चाहिये; तत्पश्चात् बची हुई मदिरा गुरु द्वारा शिष्यों को प्रदान की जानी चाहिये। गुरु द्वारा प्रदत्त उस सुरा को ग्रहण करके शिष्य को द्वितीया अर्थात् मत्स्य के साथ उसका पान करना चाहिये। कभी भी स्त्री, गुरु, ज्येष्ठ एवं पूज्यजनों के सामने बैठकर सुरा का पान नहीं करना चाहिये और न ही मन्त्र से अनभिमन्त्रित सुरा का ही पान करना चाहिये। मन्त्र से अभिमन्त्रित किये विना जो सुरा का पान करता है, वह सुरापी अर्थात् मद्यप कहा जाता है।।३४६-३४८।।

स्वात्ममूलत्रिकोणस्थे कोटिसूर्यसमप्रभे ।
कुण्डल्याकृतिचिद्रूपे हुनेद् द्रव्यं समन्त्रकम् ॥३४९॥
अनन्तपात्रभरितमिदं तत्परमामृतम् ।
पराहन्तामये वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम् ॥३५०॥

अपने मूलाधार चक्र के त्रिकोण में स्थित करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान चिद्रूपिणी कुण्डलिनी में मन्त्रसहित द्रव्य से हवन करना चाहिये। होम करने का मन्त्र इस प्रकार है—

अनन्तपात्रभरितमिदं तत्परमामृतम्।
पराहन्तामये वह्नौ होमस्वीकारलक्षणम्।।३४९-३५०।।

गुरुं दैवतमन्त्राणामैक्यं सञ्चिन्तयेद्धिया ।
यावदुल्लासपर्यन्तमुपदेशैः पिबेन्मधु ॥३५१॥
भोजनान्ते विषं मद्यं मद्यान्ते भोजनं विषम् ।
अमृतं तद्विजानीयाद्यदनेन समं पिबेत् ॥३५२॥
चर्वणेन युतं मद्यममृतं कथितं सदा ।
चर्वणेन विना पानं केवलं विषभक्षणम् ॥३५३॥
पानं तु त्रिविधं प्रोक्तं दिव्यवीरपशुक्रमैः ।
दिव्यं देव्यग्रतः पानं वीरं मृद्वासने कृतम् ॥३५४॥
स्वेच्छया पशुवत्पीतं पशुपानमितीरितम् ।

गुरु, देवता और मन्त्र में ऐक्य का चिन्तन करते हुये उल्लास-पर्यन्त यथोपदेशित मद्य का पान करना चाहिये। भोजन के पश्चात् मद्य एवं मद्यपान के पश्चात् भोजन— दोनों ही विष के बराबर होते हैं। जो भोजन के साथ-साथ मद्यपान करता है, उसे अमृत जानना चाहिये। चर्वण (भोजन) से समन्वित मद्य सदा ही अमृत कहा गया है; लेकिन चर्वण से रहित पान करना मात्र विषभक्षण करना ही होता है।

दिव्य, वीर और पशु के क्रम से पान तीन प्रकार का कहा गया है। देवी के सामने किया गया पान दिव्य, मृदु आसन पर बैठकर किया गया पान वीर एवं पशु के समान स्वेच्छा से किया गया पान पशुपान कहा जाता है।।३५१-३५४।।

कौलिकाचारकथनम्

वक्ष्येऽथ कौलिकाचारं लोकद्वयफलप्रदम् ॥३५५॥
पात्रमेलापकं कर्म प्रोच्यते सख्यकारकम् ।
तत्राता न पिता मित्रं पात्रमेलापकावृतम् ॥३५६॥

अदीक्षितैरनाचारैरमन्त्रज्ञैरदैवतैः ।
दूषकैः समये नष्टैः प्रपञ्चपथधारिभिः ॥३५७॥
ब्रह्मतेजोमुखे पात्रमेलनं नैव कारयेत् ।
त्वत्पूजानिरतैः शान्तैः परद्रव्यपराङ्मुखैः ॥३५८॥
कुलोपदेशकुशलैः कुलमार्गप्रवर्त्तकैः ।
स्त्रीप्रियैः स्त्रीस्तुतैर्धन्यैः सुन्दरैर्मृदुवादिभिः ॥३५९॥
कुलमार्गेति गुप्तैश्च विद्यावद्भिः सुरूपकैः ।
प्रयोगसिद्धैर्द्रव्याढ्यैर्भाग्यवद्भिश्च कामुकैः ॥३६०॥
ब्रह्ममुक्तै राजमान्यैर्मिलितैर्दैवयोगतः ।
कुर्यात्पात्रस्य मेलं च सौख्यवृद्धिर्द्वयोर्भवेत् ॥३६१॥

कौलिकाचार—अब दोनों लोकों में फल प्रदान करने वाले कौलिकाचार को कहूँगा। सखाभाव को उत्पन्न करने वाले पात्रमेलापक कर्म को कहता हूँ। वहाँ रक्षा करने वाला कोई पिता नहीं होता; अपितु चक्र में बैठे सभी मित्र ही होते हैं। अदीक्षितों, आचार-विरहितों, मन्त्र को न जानने वालों, देवता को न मानने वालों, निन्दकों, समय नष्ट करने वालों, प्रपञ्चमार्गानुयायियों एवं ब्रह्मतेज से युक्त व्यक्तियों के सामने पात्रमेलन नहीं करना चाहिये। तुम्हारी पूजा में संलग्न, शान्त, परद्रव्य के अनाकांक्षी, कुलोपदेश में निपुण, कुलमार्ग के प्रवर्तक, स्त्रीप्रेमी, स्त्रियों द्वारा स्तुत, धन्य, सुन्दर, मृदुभाषी, कुलमार्गरूपी गुप्त विद्या के ज्ञाता, सुन्दर रूप वाले, प्रयोग में सिद्ध, धनवान, भाग्यवान, कामुक, ब्रह्ममुक्त एवं राजमान्य यदि दैवयोग से मिल जायँ तो पात्रमेलन से दोनों लोकों में सुख की वृद्धि होती है।।३५५-३६१।।

एकपात्रं न कुर्वीत यदि साक्षात्कुलेश्वरः ।
मन्त्राः पराङ्मुखा यान्ति विघ्नाश्चैव पदे पदे ॥३६२॥
न दद्याद्भैरवायापि स्वपात्रं स्थितिहेतुकम् ।
यदि दद्याच्च मोहेन देवताशापमाप्नुयात् ॥३६३॥
आसनं भोजनं पात्रमन्यच्च शयनादिकम् ।
अनभिज्ञैरनर्हैश्च सङ्करं नैव कारयेत् ॥३६४॥
म्नायभेदेन वा कुर्यात्कौलिकैः पात्रमेलनम् ।
पूर्वदक्षिणयोरैक्यमुदक्पश्चिमयोस्तथा ॥३६५॥
योगिभिर्योगिनीभिश्च प्रदत्तं पूर्णपात्रकम् ।
समन्त्रपादुकामूलमन्त्रजप्तं पिबेत्ततः ॥३६६॥

क्वचिद्यदृच्छया प्राप्तं मद्यपात्रं तु भक्तितः ।
आदाय पूर्ववज्जप्त्वा पिबेत्तच्च गुरुं स्मरेत् ॥३६७॥

साक्षात् कुलेश्वर को भी अकेले नहीं पीना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र साधक से विमुख हो जाते हैं और पग-पग पर विघ्न होते हैं। साक्षात् भैरव को भी अपना मद्यपात्र नहीं देना चाहिये; यदि मोहवश साधक अपना पात्र दे देता है तो वह देवता का शाप प्राप्त करता है। अपना आसन, भोजन, मद्यपात्र, शय्या आदि अनभिज्ञ एवं अयोग्य लोगों से मिश्रित नहीं करना चाहिये।

अथवा आम्नायभेद से कौलिकों के साथ पात्रमेलन करना चाहिये। पूर्वाम्नाय एवं दक्षिणाम्नाय तथा पश्चिमाम्नाय एवं उत्तरम्नाय में ऐक्य होता है। योगियों और योगिनियों को मद्यपूर्ण पात्र प्रदान करने के पश्चात् मन्त्रसहित पादुकामन्त्र और मूलमन्त्र का जप करने के उपरान्त उसका पान करना चाहिये। कभी यदि कोई भक्तिपूर्वक स्वेच्छा से मद्यपात्र प्रदान करे तो उस पात्र को लेकर पूर्ववत् जप करने के उपरान्त गुरु का स्मरण करते हुये मद्यपान करना चाहिये।।३६२-३६७।।

गुरुशक्तियुतानां च गुरुज्येष्ठकनिष्ठयोः ।
स्वज्येष्ठस्यापि चोच्छिष्टं खादेन्नान्यस्य कर्हिचित् ॥३६८॥
ज्येष्ठैः कनीयसे योज्यं न पुनर्ग्राहयेत्ततः ।
शक्त्युच्छिष्टं पिबेन्मद्यं वीरोच्छिष्टं तु चर्वणम् ॥३६९॥
आत्मोच्छिष्टं न दातव्यं परकीयं न भक्षयेत् ।
उच्छिष्टं भक्षयेत्स्त्रीणां नाभ्यः स्वोच्छिष्टमर्पयेत् ॥३७०॥
स्वस्य मेलापकस्यापि स्थापयेत्तत्र मण्डलम् ।
पात्रं ततोऽर्चयेद्देवीं तर्पणादि समाचरेत् ॥३७१॥
उत्थाप्यान्योन्यपात्रे च दद्यादन्योन्यहस्तयोः ।
द्वयोरैक्यं स्मरेद्ध्यन्योन्यमिति पात्रमेलनम् ॥३७२॥

शक्ति के साथ गुरु का, गुरु के ज्येष्ठ और कनिष्ठों का एवं अपने से ज्येष्ठ का उच्छिष्ट (जूठन) खाया जा सकता है; इनके अतिरिक्त किसी दूसरे का जूठन कभी नहीं खाना चाहिये। ज्येष्ठ और कनिष्ठ के जूठन को न तो एक में मिलाना चाहिये और न ही दोनों के मिश्रित जूठन को ग्रहण करना चाहिये। शक्ति का उच्छिष्ट मद्य पान करना चाहिये और वीरोच्छिष्ट मुद्रा का भक्षण करना चाहिये। न तो अपना जूठन किसी को देना चाहिये और न ही दूसरे का जूठन खाना चाहिये। स्त्रियों का जूठन खाना तो चाहिये, लेकिन अपना जूठन स्त्रियों को नहीं देना चाहिये।

अपने मेलापक पात्र को भी मण्डल पर स्थापित करने के बाद उस पात्र का अर्चन करके देवी का तर्पण आदि करना चाहिये। अपने हाथ से दूसरे के पात्रों को उठाकर दूसरों को नहीं देना चाहिये। दोनों के ऐक्य का स्मरण करके ही पात्रमेलन करना चाहिये।।३६८-३७२।।

चक्र पूजनम्

चक्रपूजां प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपिताम्।
अभीष्टसिद्धिदां नातः परं किञ्चिच्च विद्यते ।।३७३।।
सर्वेषामेव देवानां प्रिया प्रोक्तेप्सितप्रदा।
वैदिकैरपि कर्त्तव्याभीष्टसिद्ध्यै पुरोहितम् ।।३७४।।
कृत्वा तु कौलिकं देवि पूर्णाः स्युस्तन्मनोरथाः।

चक्रपूजन—अब समस्त तन्त्रों में गोपनीय चक्रपूजन को कहता हूँ; इसके समान अभीष्टसिद्धि प्रदान करने वाला इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है। यह सभी देवताओं को प्रिय और सर्वेप्सित-प्रदायक कहा गया है। अभीष्टसिद्धि के लिये वैदिकों को भी चक्रपूजन करना चाहिये। हे देवि! कौलिक भी चक्रपूजन करके पूर्णमनोरथ वाले हो जाते हैं।।३७३-३७४।।

लक्ष्मीः कोलासुरं हत्वाशेषात्तद्रुधिरं पपौ ।।३७५।।
पानमत्ता तदा विप्रैर्यथेच्छं हसिता तु सा।
ब्रह्मणा विष्णुना वापि मयापि प्रष्टुमिच्छता ।।३७६।।
तदा बुद्ध्वा महालक्ष्मीर्भूमावन्तर्हिताभवत्।
निःश्रीकं सकलं जातं मुमूर्षुरिव दृश्यते ।।३७७।।

किसी समय लक्ष्मी ने कोलासुर का वध करके उसके समस्त रुधिर का पान किया था, उस समय लक्ष्मी को पान से मत्त देखकर विप्रों ने उनकी जब खूब हँसी उड़ायी तब ब्रह्मा, विष्णु के साथ-साथ मुझे भी उस सन्दर्भ में लक्ष्मी से पूछने की इच्छा हुई। ऐसा जानकर महालक्ष्मी भूमि में अन्तर्हित हो गयीं, जिसके फलस्वरूप पृथिवी के समस्त पदार्थ कान्तिहीन होकर मृतवत् दिखाई देने लगे।।३७५-३७७।।

धर्मो न चलते क्वापि न च तुष्यन्ति देवताः।
एवं वर्षशते जाते ब्रह्माणं शरणं गताः ।।३७८।।
ब्रह्मापि तत्र निःश्रीको दरिद्र इव दृश्यते।
प्रोक्तवन्तस्तु मुनयो विधे निःश्रीकता कुतः ।।३७९।।

कहीं भी धर्म का प्रचलन नहीं रह गया और न ही देवगण प्रसन्न हो रहे थे। इसी

प्रकार एक वर्ष व्यतीत हो जाने पर सभी ब्रह्मा की शरण में गये। वहाँ ब्रह्मा भी श्रीहीन होकर दरिद्र के समान दिखायी पड़े, तब मुनियों ने ब्रह्मा से पूछा कि हे ब्रह्मन्! आप श्रीहीन कैसे हो गये?।।३७८-३७९।।

तदा विप्रकृतं हास्यं ब्रह्मणा बोधितं प्रिये।
ब्राह्मं तेजो महदिदं विष्णुस्तूष्णीमुपस्थितः ॥३८०॥
युष्मत्पक्षावरोधेन हसिता श्रीः शिवेन च।
तेनेयं कुपिता जाता गता तस्माद्रसातलम् ॥३८१॥
सर्वे श्रियोज्झिता विप्रा लोके निःश्रीकता ततः।
तस्माद्विष्णुः शिवोऽहं च यूयं शक्रपुरोगमाः ॥३८२॥
नागाश्च पितरः सिद्धा दिक्पाला यक्षराक्षसाः।
आराधयन्तु तां देवीं स्तुवन्तु च महास्तवैः ॥३८३॥

हे प्रिये! इस प्रकार ब्राह्मणों के द्वारा परिहास करने पर प्रबुद्ध ब्रह्मा ने कहा कि ब्राह्म तेजःस्वरूप ही यह महत् तत्त्व है। उस समय विष्णु मौन बैठे रहे। आप लोगों के पक्षावरोध एवं शिव के द्वारा हँसी उड़ाये जाने से क्रुद्ध होकर लक्ष्मी रसातल में चली गयीं; फलस्वरूप सभी ब्राह्मण श्रीहीन हो गये और संसार में कान्तिहीनता छा गई। ब्राह्मण भी श्रीहीन हो गये। इसीलिये इन्द्र को आगे करके विष्णु, शिव, मैं, आप सबके साथ-साथ नाग, पितर, सिद्ध, दिक्पाल, यक्ष, राक्षसगणों को सारगर्भित स्तोत्रों द्वारा उन देवी की स्तुति एवं आराधना करनी चाहिये।।३८०-३८३।।

ततः सम्मिलिताः सर्वे गताः श्रीशैलपर्वतम्।
किञ्चिच्छोभां श्रियो दृष्ट्वा चक्रुराराधनं ततः ॥३८४॥
वैदिकैस्तान्त्रिकैर्मार्गैर्नानास्तोत्रैः प्रतुष्टुवुः।
एवं वर्षत्रयादूर्ध्वं प्रत्यक्षा श्रीर्व्यजायत ॥३८५॥
अपश्यच्च कृपादृष्ट्या सहासं वाक्यमब्रवीत्।
किमर्थं हासितं विप्रैर्देवैश्चाकुलितं कुतः ॥३८६॥
उपासना पुनः कस्माद्दुर्दर्शायाः कृता पुनः।
ततः सा तु मया प्रोक्ता सर्वं विश्वं त्वया ततम् ॥३८७॥
त्वत्सामर्थ्यं न जानन्ति हसन्ति त्वां च कर्मणा।
एतद्बुद्ध्वा मया हास्यं कृतं हृदयसाक्षिणि ॥३८८॥
प्रभावस्तु तवाज्ञातः सर्वैर्विप्रैः सुरासुरैः।
अतः परं प्रसीदेशे लोकयात्रां च निर्वह ॥३८९॥

तदनन्तर वे सभी एक साथ श्रीशैल पर्वत पर गये और वहाँ पर कुछ श्रीशोभा को देखकर सबों ने उन देवी की आराधना करके वैदिक और तान्त्रिक मार्ग से विविध स्तोत्रों द्वारा उन्हें सन्तुष्ट करने लगे। इस प्रकार तीन वर्षों तक आराधना करने के बाद लक्ष्मी ने उन सबको प्रत्यक्ष दर्शन दिया और सबों को कृपादृष्टि से देखकर मुस्कुराते हुए लक्ष्मी ने कहा कि ब्राह्मणों ने किसलिये हँसी उड़ाई थी एवं देवताओं ने किस कारण से व्याकुल किया था और अब पुन: किसलिये अत्यन्त कठिनता से देखने योग्य की उपासना कर रहे हैं?

तदनन्तर मैंने उनसे कहा कि यह सारा संसार आपसे ही विस्तार को प्राप्त हुआ है। आपके सामर्थ्य को न जानने वाले इन्हें आपके कर्मों पर हँसी आ गयी थी और यह जानकर ही मुझे भी हँसी आ गई थी। हे हृदयसाक्षिणि! सभी विप्रों, देवों एवं असुरों को आपके प्रभाव का ज्ञान नहीं है। अत: आप प्रसन्न हों और लोकयात्रा का निर्वाह करें।।३८४-३८९।।

इति श्रुत्वा मम वचस्तदा प्रोक्तं श्रिया किल।
इयं सुरा मे भगिनी तत्प्रधानन्तु पूजनम् ।।३९०।।
ये करिष्यन्ति देवस्य स देवो मोदमेष्यति।
यथा मायाप्रपञ्चोऽयं वृथा भवति मां विना ।।३९१।।
समस्ताश्च तथा पूजाश्चक्रपूजां विना वृथा।
इह लोके भोगवाञ्छा देवतात्वं परत्र चेत् ।।३९२।।
अपेक्षितं तदा कार्यं मन्त्रैर्वै चक्रपूजनम्।
सर्वदेवप्रियं गोप्यं तद्विधिं कथयाम्यथ ।।३९३।।

इस प्रकार के मेरे वचनों को सुनकर लक्ष्मी ने कहा कि यह सुरा मेरी बहन है और इसके द्वारा जो लोग देवता की पूजा करते हैं, उनसे देवता प्रसन्न होते हैं। जिस प्रकार यह समस्त मायाप्रपञ्च मेरे विना व्यर्थ है, उसी प्रकार समस्त पूजन भी चक्रपूजन के विना व्यर्थ होता है। जिसकी इस लोक में भोग प्राप्त करने की कामना हो एवं परलोक में देवत्व-प्राप्ति की लालसा हो, उसे मन्त्रों से चक्रपूजन अवश्य करना चाहिये। चक्रपूजन सभी देवों को प्रिय है, अब मैं चक्रपूजन की गुप्त विधि का वर्णन करती हूँ।।३९०-३९३।।

समस्तचक्रपूजा सा अष्टधा परिकीर्तिता।
सहस्रोत्पतिते कार्यें कार्ये वा पूर्णताङ्गते ।।३९४।।
देवतोत्साहदिवसे कौलिकस्यागमेऽपि वा।
उमामाहेश्वरे योगे योगे वा शक्तिसङ्गमे ।।३९५।।

बलिराज्ये कामदिने चक्रपूजातिहर्षदा ।
प्रदोषे वाभिजिति वा निशीथे वाष्टमीयुते ॥३९६॥
नवम्यां चेद्भवेद्योग उमामाहेश्वराभिधः ।
भौमाष्टम्यां चतुर्दश्यां योगोऽयं शक्तिसङ्गमः ॥३९७॥
आश्विनस्यासिते पक्षे त्रयोदश्यादिपञ्च च ।
बलिराज्यमिदं प्रोक्तं यथेच्छाक्राडनाय तु ॥३९८॥
तत्कामदिनमित्याहुः सोमवारे त्रयोदशी ।
पूर्वस्मिन् दिवसे स्नात्वा देवीमभ्यर्च्य कामनाम् ॥३९९॥

समस्त चक्रपूजन आठ प्रकार का होता है। हजारों कार्यों के विनष्ट होने पर अथवा कार्य के पूर्ण होने पर, देवतोत्साह-दिवस में, कौलिक के आगमन पर, उमा-महेश्वरयोग में, शक्ति-संगमयोग में, बलिराज्य में एवं कामदेव-पूजन के दिवस में चक्रपूजन हर्षप्रदायक होता है। प्रदोष में, अभिजित् नक्षत्र में, अष्टमी की आधी रात में, नवमी तिथि को उमा-महेश्वर योग में, मंगलवार की अष्टमी में, चतुर्दशी तिथि में शक्ति-संगम योग होता है।, आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी से शुक्ल द्वितीया तक के पाँच दिनों को बलिराज्य कहा गया है। यह चक्रपूजन के लिये उत्तम होता है। ऐसे कामनापूरक योगों में सोमवारी त्रयोदशी श्रेष्ठ होती है। इस दिन के एक दिन पहले स्नान करके कामना-पूर्ति के लिये देवी का अर्चन करना चाहिये।।३९४-३९९।।

चक्रपूजापशुबलिदानविधी

कृत्वा सङ्कल्पयेच्चक्रपूजां दद्याद्बलिं पशोः ।
तद्विधिं सम्प्रवक्ष्यामि चानुकल्पं प्रकल्पयेत् ॥४००॥
बलिस्तु त्रिविधः प्रोक्तस्तान्त्रिकः स्मार्त एव च ।
वैदिकश्चेति तत्रादौ तान्त्रिकोऽष्टविधः स्मृतः ॥४०१॥
नरश्च महिषः कोलश्छागोऽविः सारसस्तथा ।
कपोतः कुक्कुटश्चेति सामान्यं पूर्वपूर्वतः ॥४०२॥
श्रेष्ठस्तत्र कलौ देवीमहापीठे नरो बलिः ।
कर्तव्यः साधकेन्द्रेण सद्यो याति च सुन्दरः ॥४०३॥
धातुबद्धः कृष्णकूर्चोऽक्षेत्रादिरनुलोमजः ।
मूल्याद् गृहीतो वापीष्टो दैवतः स्वयमागतः ॥४०४॥

चक्रपूजन एवं पशुबलिदान-विधि—संकल्पपूर्वक चक्रपूजा करके पशुबलि देनी चाहिये; पशुबलि के अभाव में उसका अनुकल्प देना चाहिये। अब उस पशुबलि

की विधि को कहता हूँ। बलि तीन प्रकार की होती है—तान्त्रिक, स्मार्त और वैदिक। उनमें से तान्त्रिक बलि आठ प्रकार की होती है—नर, भैंसा, सूअर, बकरा, भेंड़, सारस, कबूतर और मुर्गा की बलि। ये सभी क्रमशः सामान्य होते हैं।

कलियुग में देवी के महापीठ में नरबलि सर्वश्रेष्ठ होती है। साधकश्रेष्ठ को ऐसे नर की बलि देनी चाहिये जो नवयुवक, सुन्दर, ब्रह्मचारी एवं काली दाढ़ी वाला हो। अक्षेत्र में उत्पन्न अनुलोमज न हो। वह समुचित मूल्य देकर खरीदा गया हो अथवा भाग्यवशात् स्वयं आ गया हो।।४००-४०४।।

वर्षं षण्मासमथवा यथेच्छाचारपालितः।
स भवेद्बलियोग्यश्च नान्यश्चौरादिकाहृतः ।।४०५।।
महिषः पञ्चमादूर्ध्वं दशाधस्ताद्वनोद्भवः।
ग्रामजोऽपि महाक्रूरो निरुक्कृष्णैकवर्णकः ।।४०६।।
आरक्ताक्षश्चोर्ध्वशृङ्गो दीर्घपुच्छस्तु मांसलः।
एकवर्णो देवताया वर्णरूपो गदोज्झितः ।।४०७।।
साण्डः सश्रृङ्गो यूथेशो गन्धिमानौषधादिभिः।
विगन्धीकृत्य बलये योग्यः सर्वोत्तमस्त्वयम् ।।४०८।।
सर्वेषामेव वर्णानां देवतानां तथैव च।
अधिकारः प्रीतिदश्च यज्ञेऽप्येष विशिष्यते ।।४०९।।

यथेच्छ खिलाया-पिलाया गया एक वर्ष अथवा छः मास की अवधि वाला भैंसा अथवा पाड़ा बलि के लिये उपयुक्त होता है। किसी के द्वारा चुराया गया पाड़ा बलि के योग्य नहीं होता।

पाँच महीने से ऊपर और दस महीने के भीतर की अवधि वाला जंगली अथवा ग्रामीण शूकर (सूअर) बलि के लिये उपयुक्त होता है। वह शूकर अत्यन्त क्रूर, एक वर्ण वाला, लाल आँखों वाला, ऊपर उठे हुये दाँतों वाला, लम्बी पूँछ वाला, मांसल, मोटा-ताजा एवं घर्घर ध्वनि से युक्त होना चाहिये।

बलि के योग्य बकरा वह होता है, जिसका अण्डकोश बड़ा हो एवं सींगें भी बड़ी हों। जो झुण्ड का नेता एवं शरीर से निःसृत गन्ध वाला हो। औषधादि के प्रयोग द्वारा निर्गन्ध बनाया गया वह बलि के लिये सर्वविध उपयुक्त होता है। यज्ञ में सभी वर्ण वाले जीवों की बलि समस्त देवताओं को अत्यन्त प्रिय होती है।।४०५-४०९।।

मेषः सश्रृङ्गस्त्वजवच्छृङ्गहीनोऽपि कुत्रचित्।
अङ्गहीनो विहीनाण्डो बालो वृद्धो न शस्यते ।।४१०।।

वर्षद्वयोर्ध्वं च गृहे पालितो बलवत्तरः ।
मांसभारात्तथानेन समो वै सारसो वरः ॥४११॥
नीलकण्ठच्छविः कण्ठे कपोतः पुष्टकन्धरः ।
वर्षादूर्ध्वं गृहे पुष्टो बल्यर्थं योग्य उच्यते ॥४१२॥
सर्वेषामग्रतो रौति यः प्रातर्बहुवर्णकः ।
मांसलस्त्वेकवर्णो वा ताम्रचूडो विशिष्यते ॥४१३॥
नरो द्विजैर्न हन्तव्यो विप्रेण महिषस्तथा ।
शूकरैः समतां नीताः कुक्कुटा बलयोऽखिलैः ॥४१४॥

सींग वाला भेंड़ा बलि के योग्य वह होता है, कहीं-कहीं सींग-रहित भेड़ा भी बलियोग्य कहा गया है। अंगहीन, अण्डरहित, शिशु एवं वृद्ध भेंड़े की बलि उपयुक्त नहीं होती।

बलि के योग्य श्रेष्ठ सारस वह होता है, जिसे दो वर्ष तक घर में पाल-पोसकर बलवान बनाया गया हो। जिसके शरीर के समस्त अंग मांस से पुष्ट हों।

बलि योग्य कबूतर के कण्ठ में नीलकण्ठ की छवि होनी चाहिये एवं उसके कन्धे पुष्ट होने चाहिये। एक वर्ष से अधिक समय तक घर में रखकर पाला-पोसा गया पुष्ट कबूतर ही बलि के लिये उपयुक्त होता है।

वह मुर्गा बलि के योग्य होता है, जो भोर में सबसे पहले वांग देता हो, अनेक अथवा एक वर्ण वाला हो, पुष्ट हो एवं विशेष रूप से कलगीदार हो।

द्विजों को नर-बलि नहीं देनी चाहिये एवं विप्रों को भैंसा, सूअर, मुर्गा आदि किसी भी प्रकार की बलि नहीं देनी चाहिये।।४१०-४१४।।

कूष्माण्डं नारिकेलञ्च श्रीफलं चेक्षुमेव च ।
वस्त्रसंवेष्टितं कृत्वा छेदयेच्छुरिकादिभिः ॥४१५॥
एष स्मार्तो बलिः प्रोक्तः धर्मशास्त्रानुगामिभिः ।
पूर्वपूर्वत्रापि चोक्तो विशिष्टो देवतोषकः ॥४१६॥
यस्य यत्राधिका भक्तिस्तेन तुष्यति देवता ।
नियमैश्च यमैर्युक्तः सकलैर्मूर्तिरात्मनः ॥४१७॥
वैदिकं तु बलिं दद्यादोदनं स्विन्नमाषवत् ।
सरोचनमतिक्रूरदैवते वटकान्वितम् ॥४१८॥

सफेद कुम्हड़ा (भतुआ), नारियल, बेल और ईख को वस्त्र में लपेटकर छूरी अदि

से उसमें छिद्र करके दी जाने वाली बलि स्मार्त बलि कहलाती है। धर्मशास्त्र के अनुगामियों के लिये यही बलि देय होती है। उपर्युक्त स्मार्त बलि नीचे से क्रमशः उत्तमोत्तम होती है अर्थात् ईक्षुबलि से बेल की बलि, बेल से नारियल की बलि एवं नारियल से कूष्माण्ड़ बलि श्रेष्ठ होती है। यह स्मार्त बलि देवताओं को सन्तुष्टि प्रदान करने वाली होती है। यम-नियम से समन्वित जिस साधक की जिस बलि में अधिक भक्ति होती है, उसी की बलि प्रदान करने से देवता सन्तुष्ट होते हैं। वैदिक बलि भिगोये चावल के सदृश भात की देनी चाहिये। अत्यन्त क्रूर देवताओं को गोरोचन और बड़े की बलि देनी चाहिये।।४१५-४१८।।

बलिं सम्पूज्य विधिवद्गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ।
तारं कालियुगं यज्ञेश्वरि लोहपदं वदेत् ।।४१९।।
दण्डायै नम इत्येष मन्त्रः षोडशवर्णकः ।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा तत उत्थाय साधकः ।।४२०।।
देवीरूपं पशुं ध्यात्वा पुष्पं तस्मिन्विनिक्षिपेत् ।
मन्त्रितं मूलमन्त्रेण सपुष्पाक्षतचन्दनम् ।।४२१।।
यदा स चालयेद्गात्रं गृहीतस्तु तदेच्छया ।
यावन्न चालयेद्गात्रं पशुस्तावन्न हन्यते ।।४२२।।
उत्तराभिमुखो भूत्वा बलिं पूर्वमुखं तथा ।
निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ।।४२३।।
पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः ।
प्रणमामि ततः सर्वरूपिणं बलिरूपिणम् ।।४२४।।
चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम् ।
चामुण्डाबलिरूपार्थं बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ।।४२५।।
यज्ञार्थं पशवः सृष्टा स्वयमेव स्वयम्भुवा ।
अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ।।४२६।।

साधक गन्ध-पुष्प-अक्षत आदि से बलि का विधिवत् पूजन करके 'ॐ कालि कालि यज्ञेश्वरि लोहदण्डायै नमः' इस षोडशाक्षर मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के पश्चात् आसन से उठकर पशु को देवी रूप मानकर मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित चन्दन, अक्षत और फूल उस पशु पर चढ़ावे। तदनन्तर बलि पशु को तब तक पकड़े रहे जब तक पशु देह हिलाता रहे। जब तक पशु देह हिलाना बन्द न करे, तब तक उसका वध नहीं करना चाहिये। बलि पशु को पूर्वाभिमुख खड़ा करके साधक स्वयं उत्तराभिमुख होकर

चारो ओर भली प्रकार निरीक्षण करने के पश्चात् निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करे—

पशुस्त्वं बलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थित:।
प्रणमामि तत: सर्वरूपिणं बलिरूपिणम्।।
चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशनम्।
चामुण्डाबलिरूपार्थं बले तुभ्यं नमोऽस्तु ते।।
यज्ञार्थं पशव: सृष्टा: स्वयमेव स्वयम्भुवा।
अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोवध:।।

अर्थात् हे पशु! मेरे भाग्य से तुम बलिरूप में यहाँ उपस्थित हुये हो; इसलिये पूर्णरूपेण बलिस्वरूप तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ। चण्डिका को प्रीति प्रदान करने वाला होने के कारण, प्रदान करने वाले की आपत्ति का विनाश करने वाले चामुण्डा-बलिस्वरूप हे बलि! तुम्हारे लिये नमस्कार है। स्वयं भगवान् ब्रह्मा ने यज्ञों के लिये पशुओं की सृष्टि की है; इसलिये आज मैं तुम्हारा हनन करूँगा; क्योंकि यज्ञ में किया गया वध वध नहीं होता।।४१९-४२६।।

ॐ श्रीं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण बलिं मत्स्वरूपिणम्।
चिन्तयित्वा न्यसेत्पुष्पमम्भकेनास्य मस्तके ।।४२७।।
अंसे च त्वं चण्डिकाया: सुरलोकप्रसाधक:।
ह्रीं ह्रीं खड्गेति मन्त्रेण तं खड्गं परिपूजयेत् ।।४२८।।
मां हूं फडिति मन्त्रं तु जपन्सञ्छेदयेद्बलिम्।
एकेनैव प्रहारेण च्छिन्नो दैवततुष्टये ।।४२९।।
प्रहारे पतिते शब्द: क्रियते यदि नापदि।
वर्षस्याभ्यन्तरेऽवश्यं राज्यनाश: प्रजायते ।।४३०।।

तदनन्तर 'ॐ श्रीं ह्रीं श्रीं' मन्त्र से बलि को मेरे (देवी के) समान मानकर उसके मस्तक पर जल-फूल चढ़ाना चाहिये और 'त्वं चण्डिकाया: सुरलोकप्रसाधक: ह्रीं ह्रीं खड्ग' इस खड्ग-मन्त्र से कन्धे पर रखकर तलवार का पूजन करना चाहिये। इसके बाद 'मां हूं फट्' इस मन्त्र का जप करते हुये सम्यक् रूप से बलि को च्छिन्न करना चाहिये। देवता की प्रसन्नता के लिये एक ही प्रहार से बलिपशु का शिरच्छेद कर देना चाहिये। प्रहार पड़ने पर यदि बलिपशु चिल्लाता है, तब एक वर्ष के अन्दर निश्चित ही राज्य का विनाश हो जाता है।।४२७-४३०।।

एवं दत्त्वा बलिं सम्यङ्नित्यकर्म विधाय च।
तृतीये प्रहरे रामा नराश्चोर्ध्वं निमन्त्रयेत् ।।४३१।।

अमुष्याः प्रीतये देव्या मन्मनोरथसिद्धये।
चक्रपूजोत्सवार्थं त्वं श्वो मयामन्त्रितो ह्यसि ॥४३२॥
अष्टाधिका निमन्त्र्यास्तु स्त्रियो न्यूनास्तु मत्कृते।
स्त्रीभ्यश्च पुरुषा न्यूना अधिकास्ते तु हानिदाः ॥४३३॥

इस प्रकार सम्यक् रूप से बलि प्रदान करने के उपरान्त नित्य कर्म का अनुष्ठान करके दिन के तीसरे प्रहर में अधिक स्त्रियों एवं कम पुरुषों को निमन्त्रित करके अधोलिखित मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये—

अमुष्याः प्रीतये देव्या मन्मनोरथसिद्धये।
चक्रपूजोत्सवार्थं त्वं श्वो मयामन्त्रितो ह्यसि।।

अर्थात् इस देवी की प्रसन्नता के लिये एवं मेरे मनोरथ की सिद्धि के लिये की जाने वाली चक्रपूजा के उत्सव में आप सब मेरे द्वारा निमन्त्रित हैं।

शिवपूजन-हेतु निमन्त्रित आठ से अधिक लोगों में स्त्रियों की संख्या कम होनी चाहिये एवं शक्ति-पूजन में पुरुषों की संख्या स्त्रियों से कम होनी चाहिये। यदि पुरुषों की संख्या अधिक होती है तो साधक को हानि होती है।।४३१-४३३।।

सर्वकौलव्रतस्थाः प्राग्दक्षिणाम्नायवर्जिताः।
भवन्ति दीक्षानिरता निमन्त्र्याश्चक्रपूजने ॥४३४॥
तस्यां रात्रौ तु सम्पूज्य देवं स्वयमतन्द्रितः।
कुलशब्दं द्विधा प्रोच्य कुलजेति पिशाचिनी ॥४३५॥
त्रयोदशार्णं स्वाहान्तमष्टोत्तरसहस्रकम्।
जपेन्निशि ततः पश्येच्चक्रविघ्नं तथाशुभम् ॥४३६॥
विघ्ने दृष्टे न कर्त्तव्यं कार्यं वा शान्तिपूर्वकम्।
शान्तिर्गाणेश्वरो होमो ग्रहाणां भैरवस्य च ॥४३७॥

चक्र-पूजन में पूर्वाम्नाय और दक्षिणाम्नाय के कौलिकों को छोड़कर दीक्षा-समन्वित समस्त कौलिकों को निमन्त्रित करना चाहिये। फिर उस रात में निरालस होकर देवता का पूजन स्वयं करना चाहिये। 'कुल-कुल कुलजे पिशाचिनि स्वाहा' इस तेरह अक्षर वाले मन्त्र का रात्रि में एक हजार आठ बार जप करने के पश्चात् चक्र में होने वाले विघ्न अथवा अशुभ का निरीक्षण करना चाहिये। विघ्न अथवा अशुभ के दृष्टगोचर होने पर चक्रपूजन नहीं करना चाहिये अथवा शान्तिकर्म करने के बाद चक्रपूजन का कार्य करना चाहिये। विघ्न-शान्ति के लिये गणेश, ग्रह एवं भैरव का हवन करना चाहिये।।४३४-४३७।।

ततो बहिर्बलिं दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्।
ॐ नमश्च त्रिरुच्चार्य अमुकक्षेत्रपालक ॥४३८॥
एह्येहि भगवन्पूजां गृह्णयुग्मं बलिं तथा।
भक्षयुग्मं चक्रविघ्नकरांस्तम्भययुग्मकम् ॥४३९॥
हुं फट् स्वाहा सप्तचतुर्वर्णो मन्त्रः प्रकीर्तितः।
दिनस्य कृत्यं निर्वर्त्य सायं चक्रं प्रपूजयेत् ॥४४०॥

इसके बाद बाहर इस मन्त्र का उच्चारण करते हुये बलि प्रदान करना चाहिये— ॐ ॐ ॐ नमः अमुकक्षेत्रपालक एह्येहि भगवन् पूजां गृह्ण गृह्ण बलिं भक्ष भक्ष चक्रविघ्नकरान् स्तम्भय स्तम्भय हूं फट् स्वाहा। क्षेत्रपालबलि का यह मन्त्र सैंतालीस अक्षरों का कहा गया है। तत्पश्चात् दिन का कार्य समाप्त करके सायंकाल में चक्रपूजन करना चाहिये।।४३८-४४०।।

अर्वाक्चक्रं स्वविद्यायास्तन्मध्ये स्थापयेद्घटम्।
मद्यपूर्णे तत्र देवीमावाह्यार्चनमाचरेत् ॥४४१॥
नानाविधानि मांसानि ह्यनेका मत्स्यजातयः।
चतुर्विधानि भक्ष्याणि योजयेत्सोपदंशकैः ॥४४२॥
साङ्गां सावरणां सम्यक्पूजयित्वा सुरां बुधाः।
शक्तयश्च तथा वीराः पूज्याः पुष्पाक्षतादिभिः ॥४४३॥
पूजागृहस्यान्तरतस्त्रिकोणे भूगृहान्तरे।
उच्छिष्टभैरवं चोग्रगन्धपुष्पादिभिर्यजेत् ॥४४४॥
उच्छिष्टदोषो भविता चक्रपूजामहोत्सवे।
तद्दोषपरिहारार्थं भैरवं पूजयाम्यहम् ॥४४५॥

इसके बाद चक्र के मध्य में अपने मन्त्र से मद्य से परिपूर्ण घट का स्थापन करने के उपरान्त वहीं पर देवी का आवाहन करके अर्चन करना चाहिये। उपदंशों के सहित भाँति-भाँति के मांस, अनेक प्रकार की मछलियाँ, चार प्रकार के भक्ष्य पूजन के लिये रखना चाहिये।

विज्ञ साधक को अंगदेवताओं एवं आवरणदेवताओं के सहित मुख्य देवता का सम्यक् रूप से पूजन करने के उपरान्त पुष्प-अक्षत आदि के द्वारा सुरा, शक्तियाँ एवं वीरों का पूजन करना चाहिये। तदनन्तर पूजागृह के भीतर भूगृहान्तर के त्रिकोण में उग्र गन्ध वाले पुष्पों से उच्छिष्टभैरव का पूजन करना चाहिये और निम्न मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये—

उच्छिष्टदोषो भविता चक्रपूजामहोत्सवे।
तद्दोषपरिहारार्थं भैरवं पूजयाम्यहम्।।

अर्थात् चक्रपूजन के महान् उत्सव के आयोजन में उच्छिष्ट दोष सम्भावित होता है; अत: उस दोष के निराकरण-हेतु मैं भैरव का पूजन करता हूँ।।४४१-४४५।।

तारत्रयं तथोच्छिष्टभैरवैहि द्वयं तथा।
बलिं गृह्णयुगं हुं फट् स्वाहा द्वाविंशदक्षरः ।।४४६।।
अनेन बलिदानं तु पूजान्तेऽस्य प्रकल्पयेत्।
पूजागारं समागत्य प्रणमेच्चक्रसंस्थितान् ।।४४७।।
गुरुः पात्रं समादाय मद्यामृतयुतं करे।
परिषिञ्चेत्सामयिकानर्थशान्तिस्तवं पठेत् ।।४४८।।

पूजन के अन्त में 'ॐ ॐ ॐ उच्छिष्टभैरवाय एह्येहि बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा' इस बाईस अक्षर वाले मन्त्र से बलि प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर पूजागृह में आकर चक्र को प्रणाम करके चक्र पर स्थापित गुरुपात्र को उठाकर उसमें स्थित मद्यरूपी अमृत को अपने हाथों से चारो ओर छिड़कना चाहिये एवं सामयिक अनर्थों की शान्ति के लिये स्तुतिपाठ करना चाहिये।।४४६-४४८।।

जपन्ति देव्यो हरपादपंकजं प्रसन्नवामामृतमोक्षदायकम्।
अनन्तसिद्धान्तमतिप्रबोधकं नमामि सान्तुष्टिकयोगिनीगणम् ।।४४९।।
योगिनीचक्रमध्यस्थं मातृमण्डलवेष्टितम्।
नमामि शिरसा नाथं भैरवं भैरवीप्रियम् ।।४५०।।
अनादिघोरसंसारध्वान्तविध्वंसकारिणे ।
नमः श्रीनाथवैद्याय कुलौषधिविधायिने ।।४५१।।
आपदो दुरितं रोगाः समयाचारलङ्घनात्।
ये सर्वे ते विनश्यन्तु दिव्यचक्रस्य मेलनात् ।।४५२।।

देवियाँ जिन भगवान् शंकर के चरणकमलों की मन ही मन प्रार्थना करती हैं, जो प्रसन्न वामाओं को अमृतरूपी मोक्ष प्रदान करने वाला है, जो अनन्त सिद्धान्तों से सम्बद्ध मति को जागृत करने वाला है, जो योगिनीगणों को सन्तुष्टि प्रदान करने वाला है, उन चरणकमलों को मैं प्रणाम करता हूँ।

योगिनीचक्र के मध्य में अवस्थित एवं मातृमण्डल से घिरे हुये भैरवी के प्रिय पति भैरव को मैं शिर से प्रणाम करता हूँ।

अनादि भयंकर जगत् के अन्धकार का विनाश करने वाले, कुलौषधि का विधान करने वाले श्रीवैद्यनाथ के लिये नमस्कार है।

समयाचार का उल्लंघन के फलस्वरूप जो भी भयंकर रोगस्वरूप आपत्तियाँ हैं, वे सभी इस दिव्य चक्र के संयोग से विनष्ट हो जायँ।।४४९-४५२।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं कीर्तिर्लाभः शुभं जयः।
कान्तिर्मनोरथश्चास्तु पान्तु सर्वाश्च देवताः ॥४५३॥
सम्पूजकानां प्रतिपालकानां यमीन्द्रयोगीन्द्रतपोधनानाम्।
विश्वस्य राष्ट्रस्य परस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान्कुलेशः ॥४५४॥

आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, कीर्ति, लाभ, शुभ, जय, कान्ति, मनोरथ आदि सबकुछ देवता द्वारा हमें प्राप्त हों। सम्यक् रूप से पूजन करने वाले, दूसरों का प्रतिपालन करने वाले, महान् व्रतियों, सर्वश्रेष्ठ योगियों, तपस्वियों, संसार के समस्त राष्ट्रों एवं उनके अधिपतियों को भगवान् कुलेश शान्ति प्रदान करें।।४५३-४५४।।

नन्दन्तु साधककुलान्यपि दर्शका ये
सृष्ट्या जना अथ गुरूक्तमहान्वया ये।
नन्दन्तु सर्वकुलकौलरताः परा ये
त्वन्ये विशेषपदभेदकशाम्भवा ये ॥४५५॥
नन्दन्तु सिद्धगुरवस्तदनुक्रमौघा
ज्येष्ठानुजाः समयिनो बटुकाः कुमार्यः।
षड् योगिनीप्रवरवीरकुले प्रसूता
नन्दन्तु भूमिपतिगोद्विजसाधुलोकाः ॥४५६॥
नन्दन्तु नीतिनिपुणा निरवद्यनिष्ठा
निर्मत्सरा निरुपमा निरुपद्रवाश्च।
नित्यं निरञ्जनरता गुरवो नितान्त-
शान्ता गुणान्तमनसो हतशोकशङ्काः ॥४५७॥
नन्दन्तु योगनिरताः कुलयोगयुक्ता
आचार्यसामयिकसाधकपुत्रकाश्च।
गावो द्विजा युवतयो यतयः कुमार्यो
नन्दन्तु भावनिरता गुरुभक्तियुक्ताः ॥४५८॥

साधकों के कुल, सृष्टि के समस्त दर्शक लोग एवं गुरु-प्रोक्त महान् कुल में

उत्पन्न लोग आनन्द प्राप्त करें। जो समस्त कुलाचार में निरत श्रेष्ठ कौल हैं एवं अन्य जो विशेष पद के भेदक शाम्भव हैं, वे भी आनन्द प्राप्त करें।

क्रमशः सिद्धगुरुगण, बड़े-छोटे समयी, बटुकगण, कुमारियाँ, छः श्रेष्ठ योगिनियों के वीरकुल में उत्पन्न राजागण एवं ब्राह्मणों तथा द्विजों में सज्जन लोग आनन्दित हों।

नीतिपालन में प्रवीण, अविचल निष्ठा वाले, किसी से भी द्वेष न करने वाले, किसी भी प्रकार की उपमा से रहित, किसी भी प्रकार के उपद्रव से रहित, नित्य अविच्छिन्न रूप से निराकार में रत रहने वाले, परम शान्त, परम गुणी, समस्त शोक एवं शंका का हरण करने वाले गुरु लोग प्रसन्न हों।

योग में सदा संलग्न एवं कुलयोग-समन्वित आचार्य, सामयिक, साधक, साधकपुत्र, ब्राह्मण, द्विज, युवतियाँ, संन्यासीगण, कुमारियाँ, भावाभिभूत जन तथा गुरुभक्ति से समन्वित लोग आनन्द प्राप्त कर प्रसन्न हों।।४५५-४५८।।

नन्दन्तु साधककुलान्यणिमाद्यनिष्ठाः
शापाः पतन्तु समये द्विषि योगिनीनाम् ।
सा शाम्भवी स्फुरतु कापि समाप्यवस्था
यस्यां गुरोश्चरणपङ्कजमेव लभ्यम् ।।४५९।।
याश्चक्रक्रमभूमिका वसतयो नाडीषु याः संस्थिता
याः कामद्रुमरोमकूपनिलया याः संस्थिता धातुषु ।
उच्छ्वासामितहृत्तरङ्गनिलया निःश्वासवासाश्च या-
स्ता देव्यो रिपुपक्षभक्षणपरास्तृप्यन्तु कौलार्चिताः ।।४६०।।
या देव्यः कुलसम्भवाः क्षितिगता या देवतास्तोयगा
या नित्यं प्रथितप्रभाः शिखिगता या मातरः स्वाश्रयाः ।
या व्योमामृतमण्डलामृतमया याः सर्वगाः सर्वदा
ताः सर्वाः कुलमार्गपालनपराः शान्तिं प्रयच्छन्तु मे ।।४६१।।

अणिमा आदि सिद्धियों से विरहित साधककुल आनन्दित हों, समयाचार से द्वेष रखने वाले योगियों के शाप निष्फल हों, किसी भी अवस्था में वह शाम्भवी विद्या दीप्तिमान रहे, जिसमें एकमात्र गुरु के चरणकमलों का सान्निध्य प्राप्त हो।

चक्रों के आवासस्वरूप नाड़ियों में निवास करने वाली, कामवृक्ष के रोमकूपों में निवास करने वाली, समस्त धातुओं में विद्यमान, अमित उच्छ्वासों वाले हृदय के तरंगों में रहने वाली, समस्त निःश्वासों में निवास करने वाली एवं शत्रुओं के भक्षण में तल्लीन देवियाँ कौलों द्वारा पूजित होकर तृप्त हों।

कुलमार्ग के पालन में निरत पृथिवी पर विद्यमान कुलोत्पन्न देवियाँ, जल में रहने वाली देवियाँ, शिखर पर अवस्थित होकर सदा देदीप्यमान देवियाँ, अपने आश्रय में रहने वाली मातायें, व्योमामृत मण्डल में सर्वदा सब जगह अमृतस्वरूपा देवियाँ— ये सभी मुझे शन्ति प्रदान करें।।४५९-४६१।।

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डके वा पुरि गगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वानले वा सलिलपवनयोर्यत्र तत्र स्थिता वा।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिमासैः
प्रीता देव्यः सदा नः कृतबलिविधयः पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ।।४६२।।
ब्रह्मश्रीशेषदुर्गा गुहबटुकगणा भैरवाः क्षेत्रपाला
वेतालादित्यरुद्रा ग्रहवसुमुनयः सिद्धयो गुह्यकाद्याः।
भूता गन्धर्वविद्याधरऋषिपितरः किन्नरा यक्षनागा
योगीशाश्चारणाद्याः पुरुषमुनिसुराश्चक्रगाः पान्तु सर्वे ।।४६३।।
देहस्थाखिलदेवता गजमुखाः क्षेत्राधिपा भैरवा
योगिन्यो बटुकाश्च यक्षपितरो भूताः पिशाचा ग्रहाः।
अन्ये भूचरदिक्चराश्च खचरा वेतालकाश्चेटका-
स्तृप्ताः स्युः कुलपुत्रकस्य पिबतः पानं मदीयं वरम् ।।४६४।।

ऊपर ब्रह्माण्ड में, पुरों में, आकाशतल में, निर्दुष्ट भूतल में, पाताल में, अग्नि में, जल में, वायु में अथवा जहाँ-कहीं भी अवस्थित रहने वाली; साथ ही क्षेत्र के पीठों एवं उपपीठों में विद्यमान होकर धूप-दीप आदि से सदा प्रसन्न रहने वाली श्रेष्ठ वीरों द्वारा वन्दनीय देवियाँ विधिपूर्वक प्रदत्त बलि को प्राप्त कर हमारी रक्षा करें।

ब्रह्मा, लक्ष्मी, समस्त दुर्गा, गुह, समस्त बटुक, भैरव, क्षेत्रपाल, वेताल, आदित्य, रुद्र, ग्रह, वसु, मुनिगण, समस्त सिद्धियाँ, गुह्यक, भूत, गन्धर्व, विद्याधर, ऋषि, पितर, किन्नर, यक्ष, नाग, योगीश, चारण आदि चक्र में निवास काने वाले सभी पुरुष, मुनि एवं देवगण मेरी रक्षा करें।

शरीरावस्थित गणेशादि समस्त देवगण, क्षेत्राधिपति, भैरव, योगिनियाँ, बटुकगण, यक्षों, पितरों, भूतों, पिशाचों एवं ग्रहों के साथ ही भूमि पर, दिशाओं में तथा आकाश में विचरण करने वाले वेताल और उनके दासगण—ये सभी कुलपुत्रस्वरूप मेरे द्वारा प्रदान किये गये श्रेष्ठ मद्य का पान करके तृप्ति को प्राप्त करें।।४६२-४६४।।

सत्यं वै गुरुदेवदेवपितरो वेदागमा योगिनी
प्रीताश्चेत्परदेवता यदि भवेद्वेदाः प्रमाणं हि चेत्।

शाक्तेयं परिदर्शनं भवति चेदाज्ञाप्यमोघास्ति चेत्
सत्ये वापि च कौलिको यदि तदा स्यान्मे जयः सर्वदा ॥४६५॥

तृप्यन्तु साधकाः सर्वे समुद्राः सगणाधिपाः ।
योगिन्यः क्षेत्रपालाश्च मम देहे व्यवस्थिताः ॥४६६॥

शिवाद्यनिलपर्यन्तं ब्रह्मादिस्तम्बसंयुतम् ।
कालाज्ञादिशिवान्तश्च पानयज्ञेन तृप्यताम् ॥४६७॥

गुरु, देवता, पितर, वेद, आगम एवं योगिनियाँ यदि सत्य हैं; परा देवता यदि प्रसन्न हैं; वेद यदि प्रमाण हैं; यह शाक्त दर्शन यदि सब जगह प्रसरित है एवं इसकी आज्ञा यदि अमोघ है; साथ ही कौलधर्म यदि सत्य है तो हमारी सब जगह विजय हो।

सभी साधक तृप्त हों; मुद्रा एवं गणाधिपों के सहित समस्त योगिनियाँ एवं क्षेत्रपाल मेरे शरीर में वास करें।

ब्रह्मा से लेकर स्तम्भ तक संयुक्त, शिवादि से अनिल-पर्यन्त एवं कालाज्ञा से लेकर शिव-पर्यन्त इस पानयज्ञ से तृप्ति को प्राप्त करें।।४६५-४६७।।

तत्पात्रन्तु समुत्थाप्य समुद्धास्य गुरुस्ततः ।
दद्याच्छिष्याय कुम्भस्थं योगिनीभ्यः पृथक्पृथक् ॥४६८॥

पात्रे तथैव वीरेभ्यश्चेतरेभ्यः स्वयं पिबेत् ।
स्त्रीणामन्यतमं स्थानं पुंसामन्यतमं पृथक् ॥४६९॥

अथवा मिथुनं कृत्वा क्रमात्समुपवेशयेत् ।
पङ्क्त्याकारेण वा सम्यक्चक्राकारेण वा पुनः ॥४७०॥

शिवशक्तिधिया सर्वांश्चक्रमध्ये समर्चयेत् ।
तत्र मन्त्रेषु वीरेषु कार्याकार्यं न विद्यते ॥४७१॥

तत्र यद्यत्कृतं कर्म शुभं वा यदि वाशुभम् ।
तत्सर्वं देवताप्रीत्यै जायते नात्र संशयः ॥४७२॥

उस पात्र को उठाकर अलग रखने के बाद गुरु को घट-स्थित मद्य में से शिष्य के साथ-साथ योगिनियों को भी पृथक्-पृथक् मद्य प्रदान करना चाहिये। इसी प्रकार वीरों एवं अन्य लोगों को भी अपने-अपने पात्र से स्वयं मद्यपान करना चाहिये। मद्यपान के समय स्त्रियों को अलग और पुरुषों को अलग बैठाना चाहिये अथवा स्त्री-पुरुषों की जोड़ी बनाकर पंक्ति के आकार में अथवा चक्राकार में बैठाना चाहिये। तदनन्तर उन सबको शिव एवं शक्तिस्वरूप मानकर चक्रमध्य में मन्त्रों से उनका अर्चन करना चाहिये। उस समय वीराचारी को कार्य-अकार्य का विचार नहीं करना चाहिये। उस

समय जो भी शुभ या अशुभ कर्म होते हैं, वे सभी देवता को प्रीति प्रदान करने वाले होते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।।४६८-४७२।।

जल्पो जपफलं तन्द्रा समाधिरभिधीयते।
विक्रिया पूजनं प्रोक्तं छर्दितं भैरवो बलिः ।।४७३।।
मुक्तिः स्याच्छक्तिसंयोगः स्तोत्रं तत्कालभाषणम्।
न्यासोऽवयवसंस्पर्शो भोजनं हवनक्रिया ।।४७४।।
ध्यानं तु वीक्षणं प्रोक्तं शयनं चन्दनं भवेत्।
तदुल्लासकृतानां च या चेष्टा सा च सत्क्रिया ।।४७५।।
कार्याकार्यविचारन्तु यः करोति स पातकी।
एतच्चक्रगता देवि विज्ञेयाः परयोगिनः ।।४७६।।
येनाप्नुवन्ति मनुजाः साक्षाद्भैरवरूपताम्।

उस समय किये गये जल्प को पूजाफल, तन्द्रा (आलस्य) को समाधि, विक्रिया को पूजन, वमन को भैरवबलि, स्त्री-पुरुष का संयोग मुक्ति, उस समय का वार्तालाप स्तोत्र, अंगों का स्पर्श न्यास एवं भोजन को हवन कहा गया जाता है। एक-दूसरे का अवलोकन करना ही ध्यान, शयन करना ही चन्दन एवं हर्षातिरेक से की गई चेष्टायें ही सत्कर्म कही गई हैं। उस समय जो करणीय-अकरणीय का विचार करता है, वह पातकी होता है। हे देवि! इस चक्र का ज्ञान परयोगियों को ही होता है। इसके द्वारा मनुष्य साक्षात् भैरवस्वरूप हो जाते हैं।।४७४-४७६।।

सम्मोदं कोपशमनं पतनं गायनं तथा ।।४७७।।
वेणुवीणादिवाद्यं च कवितारचनादिकम्।
रोदनं भाषणं चैव समुत्थानं विजृम्भणम् ।।४७८।।
गमनं विक्रिया देवि योग इत्यभिधीयते।
विकृतिं मनसो हित्वा यदोल्लासः प्रवर्तते ।।४७९।।
तदा तु देवताभावं भजन्ते योगिपुङ्गवाः।

हे देवि! अतीव आनन्दित होना, क्रोध का शमन करना, गिर पड़ना, गाना गाना, बाँसुरी-वीणा आदि बजाना, कविता आदि की रचना, रोदन, भाषग, खड़ा होना, जम्भाई लेना, गमन आदि विक्रिया को ही योग कहा गया है। किसी भी प्रकार के विकार को मन से हटाकर जब प्रसन्नता का प्रादुर्भाव होता है, तभी योगिश्रेष्ठ लोग देवताभाव को प्राप्त करते हैं।।४७७-४७९।।

कौलिकान् भैरवावेशान् यो विनिन्दति मूढधीः ।।४८०।।

तं नाशयन्त्यसन्देहाद्योगिन्यो नात्र संशयः।
यद्यद्भक्तिसमावेशादद्भुतं कौलिके जने ॥४८१॥
तत्तद्भवत्यसन्दिग्धं शुभं वा यदि वाशुभम्।
देवतासक्तमनसः शुद्धा देवि सदा हि ते ॥४८२॥

जो मूर्ख जन भैरवाविष्ट कौलिको की निन्दा करते हैं, उनका निश्चित रूप से योगिनियाँ विनाश कर देती हैं; इसमें किसी प्रकार की विचिकित्सा नहीं करनी चाहिये।

हे देवि! कौलिक जनों में जैसे-जैसे अद्भुत भक्ति का समावेश होता है, वैसे-वैसे निश्चित रूप से शुभ अथवा अशुभ घटित होने पर भी देवता में आसक्त मन वाले वे कौलिक सदा शुद्ध ही रहते हैं।।४८०-४८२।।

तारो नमो भगवति मद्यमांसविहारिणि।
रतिप्रिये चक्रदेवि वद कौलिकवल्लभे ॥४८३॥
सत्यं मनोगतं मेऽद्येत्युक्त्वा मद्यं पलान्वितम्।
प्रदद्याच्च कौलिकेभ्यस्तन्मन्त्रान् प्रब्रुवन्ति ते ॥४८४॥
तत्र कश्चिदकौलश्चेन्न सा स्फुरति भारती।
न निन्देन्न हसेत्कुप्येच्चक्रे मधुमदाकुलान् ॥४८५॥
एतच्चक्रगतां वार्त्तां बहिर्नैव प्रकाशयेत्।
तेभ्यो द्रोहं न कुर्वीत नाहितं च समाचरेत् ॥४८६॥
रक्ष्यां संरक्षयेत्तां वै गोपयेच्च प्रयत्नतः।

'ॐ नमो भगवति मद्यमांसविहारिणि रतिप्रिये चक्रदेवि कौलिकवल्लभे सत्यं मनोगतं मेऽद्य' यह कहकर मांस-सहित मद्य कौलिको को प्रदान करना चाहिये और उन कौलिकों को भी उक्त मन्त्र का उच्चारण करना चाहिये।

वहाँ पर यदि कोई कौल से भिन्न हो तो उसके मुख से वह विद्या प्रस्फुटित नहीं होती; लेकिन उस चक्र में मद्य के मद से व्याकुल उस कौलभिन्न व्यक्ति की न तो निन्दा करनी चाहिये, न उसपर हँसना चाहिये और न ही उसपर क्रोध करना चाहिये।

इस चक्र में होने वाली बातचीत को वहाँ से बाहर आकर प्रकाशित नहीं करना चाहिये। उनसे न तो द्रोह करना चाहिये और न ही उनका अहित करना चाहिये; अपितु उनकी सम्यक् रूप से रक्षा करनी चाहिये और यत्नपूर्वक इसे गुप्त रखना चाहिये।

चक्रे मदाकुलान् दृष्ट्वा चिन्तयेद्देवताधिया ॥४८७॥
न निन्देन्न हसेद्भक्त्या स गच्छेद्योगिनीपदम्।
प्रवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णा द्विजातयः ॥४८८॥

निवृत्ते भैरवीचक्रे सर्वे वर्णाः पृथक्पृथक्।
एवं चक्रस्य माहात्म्यं देवीपूजोपयोगतः ॥४८९॥

मद से आकुल लोगों को चक्र में देखकर उनके प्रति भक्तिपूर्वक्र देवबुद्धि रखनी चाहिये; उनको देखकर जो न तो उनकी निन्दा करता है और न ही हँसी उड़ाता है, वह योगिनी के पद को प्राप्त करता है।

भैरवी चक्र के प्रवृत्त होने पर सभी वर्ण द्विज में परिवर्तित हो जाते हैं और भैरवी चक्र के निवृत्त होने पर सभी अपने-अपने वर्ण वाले हो जाते हैं। इस प्रकार का देवीपूजन के उपयोगी चक्र का माहात्म्य है।।४८७-४८९।।

स्त्रियोऽथ पुरुषः षण्ढश्चाण्डालो वा द्विजोत्तमः।
चक्रमध्ये न भेदोऽस्ति सर्वे देवसमाः स्मृताः ॥४९०॥
चक्रमध्यगताः सर्वे पुरुषाः शिवरूपिणः।
स्त्रियः सर्वाश्च पार्वत्यस्तस्माद्भेदं न कारयेत् ॥४९१॥
मद्यकुम्भसहस्रैस्तु मांसभारशतैरपि।
न तुष्यति महामाया भगलिङ्गामृतं विना ॥४९२॥
कामुको न स्त्रियं गच्छेदनिच्छन्तीमदीक्षिताम्।
सद्यः संस्कारसंशुद्धां विहितत्वाद् व्रजेत्स्त्रियम् ॥४९३॥

चक्र में उपस्थित स्त्री-पुरुष, नपुंसक, चाण्डाल और द्विजोत्तम में कोई भेद नहीं होता; अपितु सभी देवता के समान होते हैं। चक्र के मध्य में अवस्थित सभी पुरुष शिवस्वरूप और सभी स्त्रियाँ पार्वतीस्वरूपा होती हैं; अतः उनमें भेद नहीं करना चाहिये।

मद्य के हजारों घड़ों एवं सैंकड़ों मन मांस समर्पित करने पर भी भग-लिंगामृत की प्राप्ति के विना महामाया सन्तुष्ट नहीं होती। कामाभिलाषी को अदीक्षित एवं अनिच्छुक स्त्रियों के साथ रमण नहीं करना चाहिये; अपितु विहित होने के कारण संस्कार द्वारा सम्यक् रूप से सद्यः शुद्ध की गई स्त्रियों के पास ही गमन करना चाहिये।।४९०-४९३।।

सहस्रचक्रपूजातो राज्यभ्रष्टो नृपो भवेत्।
पञ्चाशद्भिश्च पुत्राप्तिर्नीरोगो दशभिर्भवेत् ॥४९४॥
यस्य चक्रस्य पूजायां रतिः स्खलति योगतः।
अवश्यं सार्वभौमोऽसौ वर्षमध्ये भविष्यति ॥४९५॥

यथेप्सितप्रियाप्राप्त्यै पञ्चधा पूजनं चरेत्।
सप्तभिः स्याद्धनप्राप्तिश्चक्रपूजाविधिस्त्वयम् ॥४९६॥
भगिनीं वा सुतां भार्य्यां यो दद्यात्कुलयोगिने।
मधुमत्ताय चक्रे वाचक्रे वा पुण्यभाक्स तु ॥४९७॥

एक हजार चक्र-पूजा करने पर राज्य से च्युत व्यक्ति पुनः राजा हो जाता है, पचास चक्रों के पूजन से पुत्र की प्राप्ति होती है एवं दस चक्रों के पूजन से व्यक्ति रोगरहित हो जाता है। जिस साधक की चक्रपूजा में संयोग के फलस्वरूप रति स्खलित हो जाती है, वह साधक एक वर्ष के भीतर अवश्य ही सम्पूर्ण पृथिवी का अधिपति हो जाता है।

पाँच बार चक्रपूजन करने से अभीप्सित स्त्री की प्राप्ति होती है एवं सात बार चक्रपूजन करने से धन की प्राप्ति होती है। यही चक्रपूजन की विधि है। चक्र के भीतर अथवा बाहर जो अपनी बहन, बेटी अथवा पत्नी को मधुमत्त कुलयोगियों को समर्पित करता है, वह निश्चित ही पुण्य का भागी होता है।।४८४-४८७।।

उत्तमा नित्यपूजा स्यान्मध्यमं पर्वपूजनम्।
मासपूजाधमा प्रोक्ता मासादूर्ध्वन्तु निष्फला ॥४९८॥
मासेऽथ वाधिमासे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा।
श्रीगुरुं पूजयेद्भक्त्याऽप्राप्तौ तत्स्त्रीसुतादिकान्।
तदभावे तत्कुलीनं तच्छिष्यं चान्ययोगिनम्।
सन्तोषयेत् कुलद्रव्यैश्चक्रपूजापुरःसरम् ॥४९९॥
रोगेष्वापत्सु दोषेषु दुःसङ्गे दुर्निमित्तके।
पूजयेद्योगिनीवृन्दं देवि तद्दोषशान्तये ॥५००॥

नित्य पूजन उत्तम होता है। पर्व के समय पर किया जाने वाला पूजन मध्यम होता है। महीने में एक बार किया जाने वाला पूजन अधम होता है एवं एक महीने से अधिक समय पर किया जाने वाला पूजन व्यर्थ होता है।

महीने-महीने या एक माह से अधिक समय पर या छः महीने पर या प्रत्येक वर्ष भक्तिपूर्वक गुरु का पूजन करना चाहिये। गुरु के अभाव में उनकी पत्नी-पुत्र आदि का, उनके भी अभाव में गुरु के कुल वालों का, गुरुकुल के लोगों के अभाव में गुरुशिष्य का और उसके भी अभाव में किसी अन्य योगी का पूजन करके चक्रपूजन के साथ-साथ कुलद्रव्य निवेदित कर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये। हे देवि! रोगों में, विपत्ति में, दुःसंग-जन्य दोष, दुर्निमित्त-जनित दोष—इन सबकी शान्ति के लिये योगिनियों का पूजन करना चाहिये।।४९८-५००।।

नवरात्रव्रतविधिः

वक्ष्येऽथ नवरात्रस्य विधिं सर्वेष्टदायकम्।
आश्विनस्य सिते पक्षे प्रतिपद्येकवार्षिकीम्॥५०१॥
द्विवर्षीणा द्वितीयायामेवमग्रे प्रवर्धयेत्।
नवम्यां नववर्षा च सुरूपा व्यङ्गवर्जिता॥५०२॥
शुद्धा बाला च ललिता मालिनी च वसुन्धरा।
सरस्वती रमा गौरी दुर्गा च नव कीर्तिताः॥५०३॥

नवरात्र व्रत की विधि—अब सभी मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले नवरात्र व्रत की विधि का निरूपण करता हूँ। आश्विन शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को एक वर्ष वाली, द्वितीया को दो वर्ष वाली, तृतीया को तीन वर्ष वाली, चतुर्थी को चार वर्ष वाली, पञ्चमी को पाँच वर्ष वाली, षष्ठी को छः वर्ष वाली, सप्तमी को सात वर्ष वाली, अष्टमी को आठ वर्ष वाली और नवमी को नव वर्ष वाली रूपवती, सर्वाङ्ग-सम्पन्ना कन्याओं का पूजन करना चाहिये (मतान्तर से प्रतिपदा को एक, द्वितीया को दो, तृतीया को तीन, चतुर्थी को चार, पञ्चमी को पाँच, षष्ठी को छः, सप्तमी को सात, अष्टमी को आठ एवं नवमी को नव—इस प्रकार कुल पैंतालीस कन्याओं का पूजन किया जाता है। कतिपय लोग एकवर्षा कुमारी का नव दिन, द्विवर्षा कुमारी का आठ दिन, त्रिवर्षा कुमारी का सात दिन, चतुर्वर्षा कुमारी का छः दिन, पञ्चवर्षा कुमारी का पाँच दिन, षष्ठवर्षा कुमारी का चार दिन, सप्तवर्षा कुमारी का तीन दिन, अष्टवर्षा कुमारी का दो दिन एवं नववर्षा कुमारी एक दिन पूजन करते हैं)। इनमें से एकवर्षीया कुमारी को शुद्धा, द्विवर्षीया को बाला, त्रिवर्षीया को ललिता, चतुर्वर्षीया को मालिनी, पञ्चवर्षीया को वसुन्धरा, छः वर्षीया को सरस्वती, सप्तवर्षीया को रमा, अष्टवर्षीया को गौरी और नववर्षीया को दुर्गा कहा गया है।।५०१-५०३।।

प्रातर्निमन्त्रितां भक्त्या देवतार्चां समाप्य च।
अभ्यङ्गस्नानशुद्धां तां पूजायतनमानयेत्॥५०४॥
देवतासन्निधौ बालामुपवेश्य समर्चयेत्।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपदीपैश्च कुलदीपकैः॥५०५॥
भक्ष्यभोज्यान्नपानाद्यैः क्षीराज्यमधुमांसकैः।
कदलीनारिकेरादिफलैस्तां परितोषयेत्॥५०६॥
सशक्तिकः स्वयं देवि यौवनोल्लाससंयुतः।
यथाशक्ति जपेदेकोत्तरवृद्ध्या स्वकं मनुम्॥५०७॥

बालामलङ्कृतां पश्चाच्चिन्तयेत् स्वेष्टदेवताम्।
ततस्ता देवताबुद्ध्या नमस्कृत्य विसर्जयेत् ॥५०८॥
त्रितारद्यैर्नमोऽन्तैश्च देवतापदपश्चिमैः।
नामभिः सचतुर्थ्यन्तैः पूजयेत्ताः पृथक्पृथक् ॥५०९॥
बटुकं पञ्चवर्षं च नववर्षं गणेश्वरम्।
क्रमादन्ते तथादौ च गन्धाद्यैः परिपूजयेत् ॥५१०॥
नवरात्रकृतां पूजां ततो देव्यै समर्पयेत्।
ताम्बूलं दक्षिणां दत्त्वा कुमारीं तां विसर्जयेत् ॥५११॥
एवं नवकुमारीणां पूजनं प्रतिवत्सरम्।
यः करोति सुखी चात्र मृतो देवो भवेत्स तु ॥५१२॥

उक्त कुमारियों को प्रात:काल निमन्त्रित करके भक्तिपूर्वक देवता का अर्चन सम्पन्न कर अभ्यंगस्नान से शुद्ध उन कुमारियों को पूजागृह में लाकर देवता के निकट आसीन कराकर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप एवं कुलदीपक के द्वारा सम्यक् रूप से उनका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर भक्ष्य, भोज्य, अन्न-पान, दूध, घी, मधु, मांस, केला, नारियल आदि फलों से उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये।

तत्पश्चात् यौवन के उल्लास से उल्लसित साधक को अपनी पत्नी के साथ स्वयं भी यथाशक्ति अपने मन्त्र का अधिकाधिक जप करना चाहिये। इसके बाद समस्त बालाओं को सर्वविध अलंकृत करके अपने इष्टदेवता का चिन्तन करते हुये उन कुमारियों को देवताबुद्धि से प्रणाम करके पूजा का विसर्जन करना चाहिये।

सर्वप्रथम त्रितार अर्थात् 'ऐं ह्रीं श्रीं' इसके बाद चतुर्थ्यन्त नाम, फिर चतुर्थ्यन्त देवता पद (देवतायै) और अन्त में 'नम:' कहकर पृथक्-पृथक् उनका पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ ॐ ॐ शुद्धायै देवतायै नम: से शुद्धा का पूजन करे।
२. ॐ ॐ ॐ बालायै देवतायै नम: से बाला का पूजन करे।
३. ॐ ॐ ॐ ललितायै देवतायै नम: से ललिता का पूजन करे।
४. ॐ ॐ ॐ मालिन्यै देवतायै नम: से मालिनी का पूजन करे।
५. ॐ ॐ ॐ वसुन्धरायै देवतायै नम: से वसुन्धरा का पूजन करे।
६. ॐ ॐ ॐ सरस्वत्यै देवतायै नम: से सरस्वती का पूजन करे।
७. ॐ ॐ ॐ रमायै देवतायै नम: से रमा का पूजन करे।
८. ॐ ॐ ॐ गौर्यै देवतायै नम: से गौरी का पूजन करे।
९. ॐ ॐ ॐ दुर्गायै देवतायै नम: से दुर्गा का पूजन करे।

कुमारी-पूजन के पूर्व नव वर्ष के बालक का गणेश्वर के रूप में एवं कुमारी-पूजन के पश्चात् पाँच वर्ष के बालक का बटुकरूप में गन्ध आदि पञ्चोपचार से पूजन करना चाहिये। इसके बाद कृत नवरात्र-पूजन देवी को समर्पित करके कुमारियों को भी पान के साथ दक्षिणा देकर विसर्जित करना चाहिये। इस प्रकार जो व्यक्ति प्रतिवर्ष नव कुमारियों का पूजन करता है, वह यावज्जीवन इस लोक में सुखी रहकर मरणोपरान्त देवता होता है।।५०४-५१२।।

अथवा यौवनारूढाः प्रमदा नव सुन्दरीः।
मनोज्ञा पूजयेद्भक्त्या नवमातृषु मन्त्रवित्।।५१३।।
हृल्लेखामङ्गनां रक्तां महोच्छुष्मां करालिकाम्।
इच्छा ज्ञानां क्रियां दुर्गां बटुकं च गणेश्वरम्।।५१४।।
पूर्ववत्पूज्य मद्याद्यैः पदार्थैः परितोषयेत्।
सर्वैश्वर्य्यसमृद्धात्मा स भवेदावयोः प्रियः।।५१५।।

दूसरे प्रकार से कुमारी-पूजन—अथवा मन्त्रज्ञ साधक नवयौवन-समन्विता, परम सुन्दरी, मन को आकृष्ट करने वाली नव प्रमदाओं का नव मातृकाओं के साथ इस प्रकार पूजन करे—

१. हृल्लेखा—ॐ ॐ ॐ हृल्लेखायै मातृकायै नमः।
२. अङ्गना—ॐ ॐ ॐ अङ्गनायै मातृकायै नमः।
३. रक्ता—ॐ ॐ ॐ रक्तायै मातृकायै नमः।
४. महोच्छुष्मा—ॐ ॐ ॐ महोच्छुष्मायै मातृकायै नमः।
५. करालिका—ॐ ॐ ॐ करालिकायै मातृकायै नमः।
६. इच्छा—ॐ ॐ ॐ इच्छायै मातृकायै नमः।
७. ज्ञाना—ॐ ॐ ॐ ज्ञानायै मातृकायै नमः।
८. क्रिया—ॐ ॐ ॐ क्रियायै मातृकायै नमः।
९. दुर्गा—ॐ ॐ ॐ दुर्गायै मातृकायै नमः।

इनके साथ ही पूर्ववत् बटुक एवं गणेश का भी पूजन करने के उपरान्त पूर्ववत् मद्यादि पदार्थों को समर्पित कर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये। ऐसा करने वाला साधक आयुपर्यन्त ऐश्वर्य और समृद्धि से युक्त होता है एवं हम दोनों (शिव-पार्वती) का प्रिय होता है।।५१३-५१५।।

भृगुवारे तु वारेन्द्रे कान्तामारूढयौवनाम्।
सर्वलक्षणसम्पन्नामनुकूलां मनोहराम्।।५१६।।

कुलाकुलाङ्गनां वापि निमन्त्र्याहूय पुष्पिणीम्।
अभ्यङ्गस्नानशुद्धाङ्गीमासने चोपवेशयेत्॥५१७॥
गन्धपुष्पैरलङ्कारैरलङ्कृत्य विधानतः।
आत्मानं गन्धपुष्पाद्यैरलङ्कुर्य्याच्च साधकः॥५१८॥
आवाह्य देवतां तस्यां यजेन्मासक्रमेण च।
कृत्वा कर्मार्चनं धूपं दीपाँश्च कुलदीपकान्॥५१९॥
प्रदर्श्य देवताबुद्ध्या पदार्थैः षड्रसान्वितैः।
मांसादिभक्ष्यभोज्याद्यैस्तोषयेदतिभक्तितः॥५२०॥
प्रौढां तूल्लाससहितां पश्येच्च प्रजपेन्मनुम्।
यौवनोल्लाससहितः स्वयं तद्ध्यानतत्परः॥५२१॥
निर्विकारेण चित्तेन अष्टोत्तरसहस्रकम्।
जपादिकं समर्प्याथ तया सह निशां नयेत्॥५२२॥

वारों में श्रेष्ठ शुक्रवार को सर्वलक्षणसम्पन्न, मनोहर, अनुकूल नवयुवति को अथवा कुल-अकुल की रजस्वला रमणी को निमन्त्रित करके बुलाकर उसे अभ्यङ्गस्नान से शुद्ध शरीर वाला कराकर आसन पर आसीन कराकर विधिपूर्वक गन्ध-पुष्प-अलंकार से अलंकृत करके साधक स्वयं को भी गन्ध-पुष्प आदि से अलंकृत करने के उपरान्त उस रमणी में देवता का आवाहन करके मासक्रम से यजन करे। तदनन्तर कर्मार्चन करने के पश्चात् धूप, दीप, कुलदीपक दिखाकर छहों रसों से युक्त मांसादि भक्ष्य, भोज्यादि पदार्थ देवताबुद्धि से भक्तिसहित समर्पित कर पूर्णतः सन्तुष्ट करके उस प्रफुल्लित प्रौढ़ा को देखते हुये स्वयं भी यौवन के उल्लास से उल्लसित होकर उस रमणी के ध्यान में तत्पर होकर निर्विकार चित्त से एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करे। तदनन्तर जप आदि को देवता को समर्पित करने के उपरान्त उस प्रौढ़ा रमणी के साथ रात्रि व्यतीत करे।।५१६-५२२।।

कृत्वेदं भृगुवारेषु ब्रह्मस्वात्परिमुच्यते।
दारिद्र्यस्य तु नाशः स्यात्पञ्चभिर्भृगुवासरैः॥५२३॥
सन्ततिश्चाक्षता तस्य सम्पत्तिर्भृगुसप्तभिः।
नवभिर्भृगुवारैस्तु देवसायुज्यमाप्नुयात्॥५२४॥

शुक्रवार के इस पूजन से साधक ब्रह्मस्व से पूर्णतः मुक्त हो जाता है। पाँच शुक्रवार को इस प्रकार पूजन करने से दरिद्रता का नाश होता है और उसकी सन्तति अक्षत रहती है। सात शुक्रवारों में एवंविध पूजन करने से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है एवं नव शुक्रवार को इस प्रकार के पूजन करने से देवता का सायुज्य प्राप्त होता है।

मिथुनार्चनम्

वक्ष्येऽथ सर्वकामानां साधनं मिथुनार्चनम्।
संक्रान्तौ विषुवत्यां वायने वा तत्समाचरेत् ॥५२५॥
गौरीशिवौ रमाविष्णू वाणीसरसिजासनौ।
शचीन्द्रौ रोहिणीचन्द्रौ स्वाहाग्नी च तथैव च ॥५२६॥
भद्रकालीवीरभद्रौ भैरवीभैरवावपि।
मिथुनानि नवाभ्यर्च्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना ॥५२७॥
त्रितारादिनमोऽन्तेन तत्तन्नाम्ना विधानवित्।
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्मद्याद्यैः परितोषयेत् ॥५२८॥
प्रौढान्तोल्लासयुक्तानि कुर्वीत मिथुनानि च।
एवं कृते न सन्देहस्तुष्टाः स्युर्नव देवताः ॥५२९॥

मिथुनार्चन—अब समस्त कामनाओं के साधक युगलपूजन को कहता हूँ; यह पूजन संक्रान्ति में, विषुवति में अथवा अयन में करना चाहिये। विधिज्ञ साधक को गौरी-शिव, रमा-विष्णु, वाणी-ब्रह्मा, शची-इन्द्र, रोहिणी-चन्द्र, स्वाहा-अग्नि, भद्रकाली-वीरभद्र और भैरवी-भैरव—इन नव[1] मिथुनों (जोड़ियों) का पूर्वोक्त रीति से अर्चन करके त्रितारी (ॐ ॐ ॐ) के पश्चात् चतुर्थ्यन्त नाम और अन्त में 'नमः' लगाकर प्रत्येक के नाममन्त्रों से गन्ध-पुष्पादि द्वारा सबका पूजन करके मद्य आदि प्रदान करके उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये। नाम-सहित पूजन मन्त्र क्रमशः इस प्रकार होता है—

१. गौरी—ॐ ॐ ॐ गौर्यै नमः।
२. शिव—ॐ ॐ ॐ शिवाय नमः।
३. रमा—ॐ ॐ ॐ रमायै नमः।
४. विष्णु—ॐ ॐ ॐ विष्णवे नमः।
५. वाणी—ॐ ॐ ॐ वाण्यै नमः।
६. ब्रह्मा—ॐ ॐ ॐ ब्रह्मणे नमः।
७. शची—ॐ ॐ ॐ शच्यै नमः।
८. इन्द्र—ॐ ॐ ॐ इन्द्राय नमः।
९. रोहिणी—ॐ ॐ ॐ रोहिण्यै नमः।
१०. चन्द्र—ॐ ॐ ॐ चन्द्राय नमः।

---

१. मूल में श्लोकसंख्या ५२६-५२७ में यद्यपि नव मिथुनों के पूजन करने का निर्देश किया गया है; जबकि गणनाक्रम में आठ मिथुनों की ही गणना की गई है। नवें मिथुन का निर्देश नहीं किया गया है।

११. स्वाहा—ॐ ॐ ॐ स्वाहायै नमः।
१२. अग्नि—ॐ ॐ ॐ अग्नये नमः।
१३. भद्रकाली—ॐ ॐ ॐ भद्रकाल्यै नमः।
१४. वीर भद्र—ॐ ॐ ॐ वीरभद्राय नमः।
१५. भैरवी—ॐ ॐ ॐ भैरव्यै नमः।
१६. भैरव—ॐ ॐ ॐ भैरवाय नमः।

यह पूजन मद्यपान कराकर उन्मत्त बनाये गये प्रौढ़ोल्लास-युक्त स्त्री-पुरुष की जोड़ी को बिठाकर किया जाता है। इस विधि से मिथुनों का पूजन करने पर असन्दिग्ध रूप से नव देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं।।५२५-५२९।।

वर्षे वर्षे तु यः कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्।
पुत्रार्थं नववारन्तु धनार्थं प्रतिमासकम्।।५३०।।
अयने विषुवे चैव कारागृहविमुक्तये।
नपुंसकस्य पुंस्त्वार्थमष्टवारान् समाचरेत्।।५३१।।

प्रति वर्ष जो इस पूजा को करता है, उसे कभी दुःख की प्राप्ति नहीं होती। पुत्र की प्राप्ति के लिये नव बार, धन की प्राप्ति के लिये प्रत्येक मास में, कारागार से मुक्ति के लिये अयन एवं विषुव संक्रान्ति में तथा नपुंसक को पुंस्त्व-विशिष्ट बनाने के लिये आठ बार इस पूजन को करना चाहिये।।५३०-५३१।।

कौलमार्गस्थदेवता

अथ कौलिकमार्गाणां देवता सापि वक्ष्यते।
पापनाशे सुखोत्पत्तिस्तद्वर्षे पक्षपूजनम्।।५३२।।
माघशुक्लप्रतिपदि दिवा चाहारवर्जितः।
स्नात्वा शुक्लाम्बरधरः सायं सन्ध्यामुपास्य च।।५३३।।
सूर्यार्चनं तु मार्गेण सर्वद्रव्यसमन्वितः।
चन्द्रास्तमानपर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।।५३४।।
एवं प्रतिदिनं शुक्लचतुर्दश्यां समर्चयेत्।
पूर्णमास्यां यथाशक्ति पूजयेच्छक्तिकौलिकान्।।५३५।।
यौवनोल्लाससहितश्चन्द्रस्थां देवतां स्मरेत्।
एवं शुक्लार्चनं कृत्वा रात्रिपापैः प्रमुच्यते।।५३६।।
शुक्लपक्षार्चनं यद्वत्तद्वत्पक्षे सितेतरे।
यः करोति विधानेन सर्वान् कामान् समश्नुते।।५३७।।

कौलमार्ग के देवता—अव कौलिक मार्ग के देवताओं का भी वर्णन करता हूँ। पाप का विनाश होकर सुख की प्राप्ति के लिये उनका पूजन प्रत्येक वर्ष के प्रत्येक पक्ष में करना चाहिये। माघ शुक्ल प्रतिपदा को सम्पूर्ण दिन उपवास रहकर सायंकाल स्नान करके श्वेत वस्त्र धारण करने के उपरान्त सायंसन्ध्या का अनुष्ठान करके विहित मार्ग से समस्त द्रव्यों से सूर्य का अर्चन करने के बाद जब तक चन्द्रमा अस्त को न प्राप्त हो जाय तब तक सावधानमना होकर मन्त्रजप करना चाहिये।

इसी प्रकार प्रत्येक शुक्ल चतुर्दशी को अर्चन करना चाहिये। पूर्णिमा के दिन यथाशक्ति कौलिक शक्तियों का पूजन करना चाहिये एवं चन्द्रमा में अवस्थित यौवनोल्लास से युक्त देवता का स्मरण करना चाहिये। इस प्रकार शुक्लार्चन करके साधक रात्रिकृत पापों से मुक्त हो जाता है।

शुक्लपक्ष के समान ही कृष्णपक्ष में भी जो विधिपूर्वक पूजन करता है, वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।५३२-५३७।।

अथ वैशाखमासस्य शुक्लप्रतिपदीश्वरी।
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय स्नानं सन्ध्यामुपास्य च ।।५३८।।
मनोज्ञे रहसि स्थाने पूर्वाशाभिमुखः स्थितः।
आत्मानं गन्धपुष्पाद्यैरलङ्कृत्य च वर्त्तयेत् ।।५३९।।
सन्ध्याद्यमुद्गते सूर्यमण्डले त्विष्टदेवताम्।
ध्यात्वा सावरणां सर्वैरुपचारैः प्रपूजयेत् ।।५४०।।
चक्रपूजां ततः कृत्वा कुलदीपान् प्रदर्शयेत्।
शिवाय गुरुरूपाय मत्स्यमांसादिभक्ष्यकम् ।।५४१।।
देव्यै निवेद्य तच्छेषं पिबेच्छक्त्या युतः स्वयम्।
यौवनोल्लाससहितो निर्विकल्पेन चेतसा ।।५४२।।
ध्यायेत्तां मण्डले देवीमष्टोत्तरसहस्रकम्।
जप्त्वा समर्प्य तां पूजां देवताश्च समुद्वसेत् ।।५४३।।

वैशाख मास का पूजन—हे ईश्वरि! वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा तिथि को ब्राह्म मुहूर्त में उठकर स्नान-सन्ध्यावन्दनादि करके एकान्त में मनोरम स्थान में पूर्वाभिमुख बैठकर स्वयं को गन्ध-पुष्पादि से अलंकृत करने के उपरान्त सन्ध्या की समाप्ति के अनन्तर निकले हुये सूर्यमण्डल में इष्टदेवता का ध्यान करते हुये समस्त उपचारों से आवरण-सहित देवता का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर चक्रपूजन करके कुलदीपों को दिखाकर 'शिवाय गुरुरूपाय' कहते हुये

मत्स्य-मांस आदि भक्ष्य पदार्थों को देवी को निवेदित करने के उपरान्त अवशिष्ट नैवेद्य को अपनी शक्ति-सहित स्वयं पान करना चाहिये। तत्पश्चात् यौवनोल्लास से उल्लसित साधक को स्थिर चित्त से सूर्यमण्डल में देवी का ध्यान करके एक हजार आठ बार मन्त्रजप करने के बाद उस कृत जप को देवी के लिये समर्पित करके पूजा और देवता का सम्यक् रूप से उद्वासन (विसर्जन) करना चाहिये।।५३८-५४३।।

एवं शुक्लप्रतिपदं समारभ्य दिने दिने।
कुर्याज्जपार्चनं कृष्णचतुर्दश्यां च सुस्थिरः ।।५४४।।
अमावास्यादिने पूज्यास्त्र्याद्या विषमकौलिकाः।
युग्मीभूतास्तदा घस्रकृतं पापं व्यपोहति ।।५४५।।
एवं मध्याह्नवेलायामर्च्चयित्वा प्रतापवान्।
सायाह्ने तु समभ्यर्च्य कीर्तिर्याति दिगन्तरम् ।।५४६।।
सन्ध्ययोरर्च्चयेद्यस्तु तस्य श्रीः सर्वतोमुखी।
पूजयेद्यस्त्रिसन्ध्यासु योगिन्यस्तस्य वश्यगाः ।।५४७।।

इसी प्रकार शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ करके कृष्ण चतुर्दशी तक प्रतिदिन स्थिरमति से जप एवं अर्चन करना चाहिये। अमावस्या के दिन तीन, पाँच, सात आदि विषम संख्या में कौलिकमिथुनों का पूजन करने से साधक दिन में किये गये पाप को विनष्ट कर देता है।

इसी प्रकार का पूजन-अर्चन मध्याह्न में करने से साधक प्रतापी होता है एवं सायंकाल में करने से उसकी कीर्ति समस्त दिशाओं में प्रसरित होती है। प्रातः एवं सायं दोनों सन्ध्याओं में अर्चन करने वाले को सर्वतोमुखी लक्ष्मी की प्राप्ति होती है एवं जो तीनों सन्ध्याओं में पूजन करता है, योगिनियाँ उसके वशीभूत हो जाती हैं।।५४४-५४७।।

श्रीकण्ठादीनि पञ्चाशन्मिथुनानि समर्चयेत्।
पूर्वोक्तेन विधानेन धनलोभविवर्जितः ।।५४८।।
प्रौढान्तोल्लासयुक्तानि मिथुनान्यत्र कारयेत्।
सन्तुष्टाय प्रयच्छन्ति साधकायेप्सितं फलम् ।।५४९।।

पचास मिथुनार्चन—धन के लोभ से विरहित होकर पूर्वोक्त विधान से श्रीकण्ठ आदि पचास मिथुनों को प्रौढ़ोल्लास-युक्त करके सम्यक् रूप से अर्चन करने पर वे मिथुन सन्तुष्ट साधक को उसके इच्छानुरूप फल प्रदान करते हैं।।५४८-५४९।।

केशवादिपीठार्चनफलानि

केशवादिगणेशादिकामपीठादिकानि च।
श्रीकण्ठादिवदभ्यर्च्य तत्तल्लोके महीयते॥५५०॥
खभूमिदिग्जलगिरिव्योमसर्वचरास्तु याः।
सहस्रकोटियोगिन्यस्तावन्तो भैरवा अपि॥५५१॥
नियुक्ताः सर्व एवैते कुलसंरक्षणाय च।
दिवसेषु विशेषेषु सर्वे मुदितमानसाः॥५५२॥
साधकान्नैव पीड्यन्ति स्वस्वपूजानुलिप्सया।
अपूजितास्तु विघ्नन्ति प्रसीदन्ति हि पूजिताः॥५५३॥
गुरुभक्तान् सदाचारान् गुप्तधर्मानवन्ति च।
भक्तिहीनान् दुराचारान्नाशयन्ति प्रकाशकान्॥५५४॥

केशवादि पीठार्चन का फल—जो केशवादि, गणेशादि एवं कामपीठादि का श्रीकण्ठादि मिथुनार्चन के समान अर्चन करता है, वह उन-उन लोकों में पूजित होता है।

अन्तरिक्ष, भूमि, दिशा, जल, पर्वत, आकाश सब जगह विचरण करने वाली एक हजार करोड़ योगिनियाँ हैं एवं इतने ही भैरव भी हैं। ये सभी कुल की रक्षा के लिये नियुक्त किये गये हैं। प्रसन्न मन वाली ये योगिनियाँ एवं भैरव विशेष दिनों में अपने-अपने पूजन की कामना से युक्त होने के कारण साधकों को किसी भी प्रकार से पीड़ा नहीं पहुँचाते। पूजा न किये जाने पर ये सभी नाना प्रकार के विघ्न उपस्थित करते हैं एवं पूजित होने पर प्रसन्न होते हैं।

ये सभी गुरुभक्तों, सदाचारियों एवं गोपनीय धर्मों की रक्षा करते हैं तथा गुरुभक्ति-विहीनों, दुराचारियों एवं गोपनीय धर्म को प्रकाशित करने वालों का विनाश करते हैं।।५५०-५५४।।

कुलाचारमार्गशास्त्रार्थनिर्णयः

अथ वक्ष्ये कुलाचारमार्गशास्त्रार्थनिर्णयम्।
कौलिकानां कुले जातो ज्येष्ठो यदि न दीक्षितः॥५५५॥
कनिष्ठो दीक्षितश्चेत्स्यात्स कुर्यात्कुलपूजनम्।
पूजान्ते शेषमादाय ज्येष्ठे तत्तु निवेदयेत्॥५५६॥
तस्योच्छिष्टन्तु गृह्णीयात्कनिष्ठ इति निर्णयः।
पूजामध्ये गुरौ ज्येष्ठे पूज्ये वापि समागते॥५५७॥

नत्वा ब्रूयात्स्थितिं शेषमाचरेत्तदनुज्ञया।

कुलाचार मार्ग—अब कुलाचार मार्ग के विषय में शास्त्रों के अर्थनिर्णय का वर्णन करता हूँ। कौलिक के कुल में उत्पन्न ज्येष्ठ पुत्र यदि दीक्षित नहीं हो और कनिष्ठ पुत्र दीक्षित हो तो कनिष्ठ को ही कुलपूजन करना चाहिये और पूजन सम्पन्न करने के पश्चात् शेष द्रव्य को उठाकर ज्येष्ठ को समर्पित कर देना चाहिये। फिर ज्येष्ठ के उच्छिष्ट को कनिष्ठ को ग्रहण करना चाहिये; यही शास्त्रों का निर्णय है। कनिष्ठ द्वारा क्रियमाण पूजा के मध्य में यदि गुरु, ज्येष्ठ अथवा कोई पूज्य व्यक्ति आ जाय तो उन्हें प्रणाम करके पूजा की तात्कालिक स्थिति से अवगत कराकर आगे की जाने वाली शेष क्रिया उनकी आज्ञानुसार करनी चाहिये।।५५५-५५७।।

नित्यार्चनं दिवा कुर्याद्रात्रौ नैमित्तिकार्चनम्।।५५८।।
काम्यार्चनं प्रोक्तकाले बहवो यत्र सङ्गताः।
नत्वा स्वस्वगुरून्मन्त्रं स्वस्वमार्गेण तर्पयेत्।।५५९।।
विनासनं विना स्नानं गन्धपुष्पाक्षतान्विना।
विना मद्यं विना मांसं कुलपूजां न कारयेत्।।५६०।।
न कुर्यात्प्रलपन्वापि विना मन्त्रेण पूजनम्।
शक्त्या विना तथा पानमेकहस्तेन नार्चयेत्।।५६१।।
न पिबेदेकहस्तेन चक्रे निष्ठीवनं चरेत्।
प्रणम्य प्रविशेच्चक्रं विनिर्गच्छेत्प्रणम्य च।।५६२।।

नित्य पूजन दिन में, नैमित्तिक पूजन रात्रि में एवं काम्य पूजन अनेक लोगो के साथ मिलकर विहित काल में करना चाहिये। पूजन के उपरान्त सम्मिलित सभी लोगों को अपने-अपने गुरु को प्रणाम करके अपने-अपने मार्ग के अनुसार मन्त्र से तर्पण करना चाहिये।

विना आसन के, विना स्नान किये, विना गन्ध, पुष्प एवं अक्षत के, विना मद्य के और विना मांस के कुलपूजा नहीं करनी चाहिये। न तो प्रलाप (वार्तालाप) करते हुये पूजन करना चाहिये और न ही विना मन्त्र के पूजन करना चाहिये।

शक्ति के विना अकेले पान नहीं करना चाहिये एवं एक हाथ से अर्चन भी नहीं करना चाहिये। एक हाथ से पान नहीं करना चाहिये। चक्र के भीतर थूकना चाहिये। प्रणाम करके चक्र में प्रवेश करना चाहिये एवं प्रणाम करके ही चक्र से बाहर आना चाहिये।

श्रीचक्रे नासने तिष्ठेन्न च वीरासने क्वचित्।
श्रीचक्रमेकतः कुर्यादेकपात्रे च नार्चयेत्।।५६३।।

श्रीचक्रदर्शनन्नृणां नेत्रयोः पापहारकम्।
तन्नास्ति चेद् व्रणद्वन्द्वं कौलिकस्याक्षियुग्मकम् ॥५६४॥
अनाचारान् सदाचाराँश्चक्रस्थाञ्छक्तिकौलिकान्।
शिवगौरीधिया सर्वान् भावयेन्नावमानयेत् ॥५६५॥

श्रीचक्र में न तो आसन पर बैठना चाहिये और न ही कभी वीरासन पर बैठना चाहिये। श्रीचक्र में अकेले एक पात्र से अर्चन नहीं करनां चाहिये। जो मनुष्य आँखों से श्रीचक्र का दर्शन करता है, उसके पाप नष्ट हो जाते हैं। दर्शन न करने पर कौलिक की दोनों आँखों में व्रण हो जाता है। चक्रस्थ शक्तियों एवं कौलिकों के समस्त अनाचार और सदाचार को शिव एवं गौरी द्वारा किया गया जानना चाहिये; कभी भी किसी भी दशा में उनका तिरस्कार नहीं करना चाहिये।।५६३-५६५।।

कुलाचार्यगृहं गत्वा भक्त्या पापविशुद्धये।
याचयेदमृतं चान्नं तदभावे जलं पिबेत् ॥५६६॥
कुलाचार्येण चेच्छक्त्या दत्तं पात्रं तु भक्तितः।
नमस्कृत्य प्रगृह्णीयादन्यथा नरकं व्रजेत् ॥५६७॥

पापों की शुद्धि के लिये कुलाचार्य के घर जाकर भक्तिपूर्वक मद्य एवं अन्न की याचना करनी चाहिये और दोनों की प्राप्ति न होने पर जल-पान करना चाहिये। कुलाचार्य यदि शक्तिपात्र प्रदान करता है तो उसे भक्तिपूर्वक नमस्कार करके ग्रहण करना चाहिये; अन्यथा नरकगामी होना पड़ता है।।५६६-५६७।।

उष्णीषी कञ्चुकी नग्नो मुक्तकेशश्च भुक्तवान्।
अस्नातो नातिभक्तश्च विवादे च पराङ्मुखः ॥५६८॥
नेदं यस्य कुले जातं यश्च संस्कारवान्द्विजः।
वेदाध्यायी कुलद्रव्यसेवनान्निर्धनो भवेत् ॥५६९॥

जिसके कुल में शिर पर पगड़ी बाँधने वाला, कञ्चुक (कवच अथवा पोशाक) धारण करने वाला, नग्न रहने वाला, केश खुला रखने वाला, विना स्नान के भोजन करने वाला, अधिक भक्ति न करने वाला और विवाद से दूर रहने वाला उत्पन्न न हुआ हो एवं जो द्विज संस्कारवान् तथा वेदों का अध्ययन करने वाला हो, वह कुलद्रव्य का सेवन करने पर निर्धन (दरिद्र) होता है।।५६८-५६९।।

योगामृतस्य निष्ठीवान् मद्यभाण्डपरिक्रमात्।
ऊर्ध्वं गलेन पानाच्च देवताशापमाप्नुयात् ॥५७०॥

एकासने निविष्टा ये भुञ्जानाश्चैकभाजने।
एकपात्रे पिबन्तो ये ते यान्ति निरयं ध्रुवम् ॥५७१॥

योगामृत का कुल्ला करने से, मद्यभाण्ड की परिक्रमा करने से एवं कण्ठ के ऊपर तक मद्यपान करने से देवता के शाप की प्राप्ति होती है। जो लोग एक आसन पर बैठकर एक ही पात्र में भोजन करते हैं और एक ही पात्र से पान करते हैं, उन्हें निश्चित ही नरक में जाना पड़ता है।।५७०-५७१।।

ये सेवन्ते कुलद्रव्यमेकग्रामे स्थिते गुरौ।
तत्कुलजे च तत्पुत्रे स्वज्येष्ठे कुलदेशिके ॥५७२॥
विनानुज्ञां स पापात्मा रौरवं निरयं व्रजेत्।
उच्छिष्टो न स्पृशेच्चक्रं कुलद्रव्यं तथा गुरुम् ॥५७३॥
बहिः प्रक्षाल्य च जलैः कुलद्रव्याणि दापयेत्।
मद्यभाण्डं समुद्धृत्य न पात्रं परिपूजयेत् ॥५७४॥

गुरु, गुरुकुल में उत्पन्न, गुरुपुत्र, अपने ज्येष्ठ और कुलदेशिक के साथ एक ही ग्राम में स्थित रहने पर भी जो लोग उनकी विना आज्ञा प्राप्त किये कुलद्रव्य का सेवन करते हैं, वे पापात्मा रौरव नरक में गमन करते हैं।

जूठे हाथ-मुँह से चक्र, कुलद्रव्य एवं गुरु का स्पर्श नहीं करना चाहिये; अपितु बाहर जल से हाथ-मुँह धोकर कुलद्रव्य का स्पर्श करना चाहिये। मद्यभाण्ड को उठाकर पात्र का पूजन नहीं करना चाहिये।।५७२-५७४।।

भोगपात्रं सुराकुम्भं निक्षिपेन्न कदाचन।
चक्रमध्ये शुचिधिया करास्यक्षालनादिकम् ॥५७५॥
यः करोति च मूढात्मा स भवेदापदां पदम्।
निष्ठीवनं मलं मूत्रमधोवायुविसर्जनम् ॥५७६॥
श्रीचक्रमध्ये यः कुर्यात्स भवेद्योगिनीपशुः।
चक्रमध्ये घटे भिन्ने पात्रे वा स्खलिते तथा ॥५७७॥
दीपनाशे राष्ट्रपीडा गच्छेद्वै चक्रपूजनम्।
परिहासं प्रलापं च विडम्बं बहुभाषणम् ॥५७८॥
औदासीन्यं भयं क्रोधं चक्रमध्ये विवर्जयेत्।

भोगपात्र और सुराभाण्ड को कभी भी बाहर नहीं फेंकना चाहिये। जो मूढ़ प्राणी चक्र के मध्य में पवित्रता-हेतु हाथ-मुँह का प्रक्षालन आदि करता है, उसे विपत्तियों

की प्राप्ति होती है। श्रीचक्र के मध्य में जो व्यक्ति थूकता है अथवा मल-मूत्र-अधोवायु का त्याग करता है, वह योगिनियों का पशु होता है। चक्र के मध्य में घट के भग्न होने पर, पात्र के गिर जाने पर एवं दीपक के बुझ जाने पर राष्ट्रपीड़ा होती है; अतः ऐसी स्थिति उपस्थित होने पर निश्चित ही चक्रपूजन करना चाहिये। चक्र के मध्य में अवस्थित होकर परिहास, प्रलाप, विडम्ब (नकल अथवा अनुकरण), बहुत बोलना, उदासीनता, भय और क्रोध नहीं करना चाहिये।।५७५-५७८।।

पात्रहस्तश्चक्रमध्ये न नमेत्पूर्णपात्रकम् ।।५७९।।
चिरं न स्थापयेद्धस्ते नालभेत्पात्रपाणिकः ।
पादाभ्यां न स्पृशेत्पात्रं न च भिन्द्यात्कदाचन ।।५८०।।
नैकहस्तेन दातव्यं न बिन्दुं पातयेदधः ।
पात्रं न चालयेत्स्थानान्न मुद्रावर्जितं पिबेत् ।।५८१।।

हाथों में पात्र लेकर चक्रमध्य में पूर्णपात्र को प्रणाम नहीं करना चाहिये। देर तक पात्र को हाथ में नहीं रखना चाहिये और न ही हाथ में पात्र लिये हुये व्यक्ति का स्पर्श करना चाहिये। पैर से पात्र का स्पर्श नहीं करना चाहिये, न ही कभी पात्र को फोड़ना चाहिये और न ही एक हाथ से किसी को पात्र प्रदान करना चाहिये। पात्र से एक बूँद भी मद्य पृथ्वी पर नहीं गिरने देना चाहिये। पात्र को न तो अपने स्थान से इधर-उधर करना चाहिये और न ही विना मुद्रा प्रदर्शित किये मद्यपान करना चाहिये।

जल्पन्नापि पिबेन्मद्यं न कुर्यात्पात्रसङ्करम् ।
पात्रस्यांशद्वयं मद्यपूर्णं त्र्यंशन्तु रिक्तकम् ।।५८२।।
नान्योन्यं ताडयेत्पात्रं न पात्रं ताडयेदधः ।
साधारं नोद्धरेत्पात्रमनाधारे न निक्षिपेत् ।।५८३।।
रिक्तं पात्रं न कुर्वीत न पात्रं लङ्घयेत्तथा ।
प्रक्षाल्य गोमये पात्रं नमोऽन्ते विप्रमीक्षयेत् ।।५८४।।

वार्तालाप करते हुये मद्यपान नहीं करना चाहिये। पात्रों का मिश्रण नहीं करना चाहिये अर्थात् दो या अधिक पात्रों को एक साथ नहीं मिलाना चाहिये। पात्र में उसके दो तिहाई भाग तक मद्य भरना चाहिये एवं एक तिहाई भाग खाली रखना चाहिये।

दो पात्रों को आपस में नहीं टकराना चाहिये और न ही पात्र को नीचे जमीन पर पटकना चाहिये। आधार-सहित पात्र को न तो उठाना चाहिये और न ही विना आधार के पात्र को रखना चाहिये। पात्र को पूरा खाली नहीं करना चाहिये और न ही पात्र को लाँघना चाहिये। पञ्चगव्य से पात्र का प्रक्षालन करके 'नमः' कहकर ब्राह्मण पर दृष्टिपात करना चाहिये।।५८२-५८४।।

कथनं धर्मशास्त्रस्य ह्यकुलस्त्रीनिषेवणम्।
श्रोत्रियाणां च सङ्गस्तु करणं श्रौतकर्मणाम् ॥५८५॥
कामार्थायुर्यशोलाभज्ञानसौख्यादिनाशकम्।
तस्मात्कौलपथे गच्छन्न कुर्वीत कदाचन ॥५८६॥
श्रीचक्रस्थकुलद्रव्यं दद्याद्यो वाऽकुले जने।
स महापातकी ज्ञेयो रौरवं नरकं व्रजेत् ॥५८७॥
रिपुणापि न कर्तव्यो वाग्वादश्चक्रमध्यतः।
पितृमातृसमं पश्येत्तेनोक्तं परुषं सहेत् ॥५८८॥

धर्मशास्त्र के वचन का पालन, अकुल स्त्रियों का सेवन, श्रोत्रियों की संगति, श्रौत कर्म का अनुष्ठान—ये सभी कौलिक के काम, अर्थ, आयु, यश:प्राप्ति, ज्ञान, सौख्य आदि का विनाश करने वाले होते हैं; अत: कौलमार्ग का अनुसरण करने वाले को उपर्युक्त कर्म कभी नहीं करना चाहिये।

जो कौलिक श्रीचक्र पर रखे कुलद्रव्य को किसी अकुल व्यक्ति को प्रदान करता है, उसे महान् पापी समझना चाहिये; वह रौरव नरक में जाता है।

चक्र के मध्य में शत्रु से भी वाद-विवाद नहीं करना चाहिये; अपितु उसे अपने पिता-माता के समान समझना चाहिये और उसके द्वारा कथित कठोर वचनों को भी सहन करना चाहिये।।५८५-५८८।।

श्रीगुरुं कुलशास्त्राणि पूज्यस्थानानि यानि च।
भक्त्या श्रीपूर्वकं विद्वान् प्रणम्य परिकीर्तयेत् ॥५८९॥
पारम्पर्यं समास्थाय मन्त्राचारादिकं पुनः।
सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं सफलं स्यान्न चान्यथा ॥५९०॥

विद्वान् को श्रीगुरु, कुलशास्त्रों एवं समस्त पूज्यस्थानों को भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये एवं उनका कथन करते समय उनके नाम के आगे 'श्री' लगाना चाहिये।

परम्परा में स्थित होकर गुरुमुख से मन्त्रोच्चारादि की प्राप्ति होने पर ही सफलता हस्तगत होती है; अन्यथा सफलता नहीं मिलती।।५८९-५९०।।

श्रीशास्त्रं पूजयेन्नित्यं पशुगेहे न निक्षिपेत्।
स्वदारवन्निषेवेत कुलशास्त्राणि तान्त्रिकः ॥५९१॥
पशुशास्त्राणि सर्वाणि वर्जयेत्परदारवत्।
संस्कारार्थं छिन्नभिन्नान् व्यस्तवर्णांश्च वैदिकान् ॥५९२॥

मन्त्रान् पठेत्सम्प्रदायात्तैः स्यादत्र व्यवस्थितिः।
धर्मशास्त्रविरुद्धो य आचारः स तु कौलिकः ॥५९३॥
चक्रे नाकारयेदेता देवीवत्ताः प्रपूजयेत्।
गमनं नैव कुर्वीत कृत्वा निरयमाप्नुयात् ॥५९४॥

श्रीशास्त्र का नित्य पूजन करना चाहिये; उन्हें पशुगृह में नहीं फेंकना चाहिये। तान्त्रिक को कुलशास्त्रों का सेवन अपनी पत्नी के समान करना चाहिये और समस्त पशुशास्त्रों का परायी स्त्री के समान त्याग कर देना चाहिये। संस्कार के लिये छिन्न-भिन्न एवं व्यस्त वर्णों वाले जिन वैदिक मन्त्रों को पढ़ा जाता है, उन्हें यहाँ सम्प्रदायानुसार व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया गया है। जो आचार धर्मशास्त्र-विरुद्ध होता है, वही कौलिकाचार होता है। इसलिये चक्र में धर्मशास्त्रीय आचारों का पालन नहीं करना चाहिये; अपितु देवी के समान उनकी पूजा करनी चाहिये। धर्मशास्त्र का अनुगमन कभी नहीं करना चाहिये; अनुगमन करने पर नरक की प्राप्ति होती है।।५९१-५९४।।

मातरं गुरुपत्नीं च भगिनीं भगिनीसुताम्।
भ्रातृजायां वीरभार्यां कुमारीं व्रतधारिणीम् ॥५९५॥
व्यङ्गाङ्गीं विकृताङ्गीं च क्षुब्धां प्रीतां समाहृताम्।
स्नुषां सकृत्कामगतां वृद्धां नैवामनोहराम् ॥५९६॥
मनोहरां यौवनस्थां सुवेशां चारुहासिनीम्।
रक्तान्तनयनां श्यामां पूजयेत्कौलिकाङ्गनाम् ॥५९७॥

माता, गुरुपत्नी, बहन, बहन की पुत्री (भाँजी), भाई की पत्नी, वीरपत्नी, कुमारी, व्रतधारिणी, अङ्गहीना, विकृताङ्गी, क्षुब्धा, प्रेम-पूर्वक लायी गयी, पुत्रवधू, एक बार भोग की गई, मनोहारिणी वृद्धा, मनोहारिणी युवति, सुन्दर वेश वाली, सुन्दर हँसने वाली, लाल आँखों वाली, साँवली कौलिक स्त्रियों का पूजन करना चाहिये।

अकस्माच्च न सेवेत बलेन कुलयोगिनीम्।
चक्रमध्ये स्वयं क्षुब्धां वा स्वतः प्रार्थिनीं लभेत् ॥५९८॥
आममांसं सुराकुम्भं मत्तेभं सिद्धदर्शनम्।
सहकारमशोकं च क्रीडालुब्धाः कुमारिकाः ॥५९९॥
एकवृक्षं श्मशानं च समूहं योषितामपि।
नारीं च रक्तवसनां दृष्ट्वा वन्देत भक्तितः ॥६००॥

कुलयोगिनी का सेवन अकस्मात् बलपूर्वक नहीं करना चाहिये; अपितु चक्रमध्य में जो स्वयं क्षुब्ध हो जाय अथवा स्वयं प्रार्थना करे, उसी का सेवन करना चाहिये।

कच्चा मांस, मद्यभाण्ड, मत्त हाथी, सिद्ध, सहकार (आम्र) एवं अशोक का वृक्ष, क्रीड़ारत कुमारियाँ, एकाकी वृक्ष, श्मशान, नारियों का समूह एवं लाल वस्त्र धारण की हुई स्त्री—इनको देखकर भक्तिभाव से प्रणाम करना चाहिये।।५९८-६००।।

गुरुशक्तिमुत ज्येष्ठं कनिष्ठं कुलदेशिकान्।
कुलदर्शनशास्त्राणि कुलद्रव्याणि कौलिकान्॥६०१॥
प्रेरकान् सूचकांश्चापि वाचकान् दर्शकाँस्तथा।
शिक्षकान् बोधकान् योगियोगिनीसिद्धपूरुषान् ॥६०२॥
कन्यां कुमारिकां नग्नामुन्मत्तानपि योषितः।
न निन्देन्न जुगुप्सेत न हसेन्नापमानयेत्॥६०३॥
नाप्रियं नानृतं ब्रूयात्कस्यापि कुलयोगिनः।
कुरूपेत्यतिकृष्णोति न वदेत्कुलयोषितम्॥६०४॥

गुरुशक्ति (गुरुपत्नी) अथवा स्वयं से बड़े या छोटे कुलदेशिक, कुलदर्शनशास्त्र, कुलद्रव्य, कौलिक, प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक, बोधक, योगी, योगिनी, सिद्धपुरुष, कन्या, कुमारी, नग्न अथवा उन्मत्त स्त्री की न तो निन्दा करनी चाहिये, न उनसे घृणा करनी चाहिये, न उन्हें देखकर हँसना चाहिये और न ही उनका अपमान करना चाहिये। किसी भी कुलयोगी से न तो अप्रिय वचन बोलना चाहिये, न हीं झूठ बोलना चाहिये। कुलस्त्रियों को न तो कुरूप कहना चाहिये और न ही उन्हें अत्यधिक काली कहना चाहिये।।६०१-६०४।।

परीक्षयेन्न भक्तानां वीराणां च कृताकृते।
न पश्येत्पतितां नग्नामुन्मत्तां प्रकटस्तनीम्॥६०५॥
न दिवा सेवयेन्नारीं तद्योनिं न निरीक्षयेत्।
स्त्रियं शतापराधां वा पुष्पेणापि न ताडयेत्॥६०६॥
दोषान्न गणयेत्स्त्रीणां गुणानेव प्रकाशयेत्।

भक्तों और वीरों द्वारा किये गये अथवा न किये गये कार्यों की परीक्षा नहीं करनी चाहिये। गिरी हुई, नग्न, उन्मत्त (पागल), अनावृत (खुले) स्तन वाली स्त्री की ओर नहीं देखना चाहिये। दिन में स्त्रियों का सेवन (उनके साथ मैथुन) नहीं करना चाहिये और न ही उसकी योनि पर दृष्टिपात करना चाहिये। सैकड़ों अपराध करने पर भी स्त्रियों

को फूल से भी नहीं मारना चाहिये। स्त्रियों के दोषों की ओर ध्यान न देकर केवल उनके गुणों को ही प्रकाशित करना चाहिये।।६०५-६०६।।

तिष्ठन्ति कुलयोगिन्यः कुलवृक्षेषु सर्वदा ।।६०७।।
तत्पत्रेषु न भोक्तव्यमर्कपत्रे विशेषतः ।
न स्वप्यात्कुलवृक्षाधो न चोपद्रवमाचरेत् ।।६०८।।
दृष्ट्वा भक्त्या नमस्कुर्याच्छेदयेन्न कदाचन ।
श्लेष्मान्तककरञ्जाक्षनिम्बाश्वत्थकदम्बकाः ।।६०९।।
बिल्वो वटोदुम्बरौ च चिञ्चा चेति दश स्मृताः ।

कुलयोगिनियाँ सदा-सर्वदा कुलवृक्षों पर ही निवास करती हैं; अतः उनके पत्तों का उपभोग नहीं करना चाहिये, विशेषतया अर्कपत्र (अकवन के पत्ते) को नहीं तोड़ना चाहिये। कुलवृक्ष के नीचे न तो शयन करना चाहिये और न ही कोई उपद्रव करना चाहिये। कुलवृक्षों को देखकर भक्तिपूर्वक प्रणाम करना चाहिये, कभी भी उनको काटना नहीं चाहिये।

लिसोड़ा, करंज, मदार, नीम, पीपल, कदम्ब, बेल, वट, गूलर और चिञ्चा (इमली)—ये दस वृक्ष कुलवृक्ष कहे गये हैं।।६०७-६०९।।

प्रायश्चित्तं भृगोः प्रोक्तं सन्न्यासं व्रतधारणम् ।।६१०।।
तीर्थयात्रादिगमनं कौलिकस्तु विवर्जयेत् ।
एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं चावमन्यते ।।६११।।
स श्वयोनिशतं गत्वा चाण्डालत्वमवाप्नुयात् ।
एकस्य हननात्क्षेमं बहूनां चेच्छुभा गतिः ।।६१२।।

भृगु द्वारा संन्यास एवं व्रतधारण ही कौलिकों के लिये प्रायश्चित्त कहा गया है। कौलिकों को तीर्थयात्रा नहीं करनी चाहिये। एक अक्षर भी प्रदान करने वाले गुरु का जो अपमान करता है, वह सौ जन्मों तक श्वान योनि में भ्रमण करने के वाद चाण्डालत्व को प्राप्त करता है। एक चाण्डाल का वध करने से क्षेम (कुशलता) एवं बहुत का वध करने से शुभ गति की प्राप्ति होती है।।६१०-६१२।।

अन्तः कौलं बहिः शैवं जनमध्ये तु वैष्णवम् ।
कौलं तु गोपयेद्देवि नारिकेलफलाम्बुवत् ।।६१३।।
गुरुं प्रकाशयेद्धीमान्मन्त्रं यत्नेन गोपयेत् ।
अप्रकाशप्रकाशाभ्यां क्षीयन्ते सम्पदायुषः ।।६१४।।

सर्वाचारपरिभ्रष्टं कुलाचारं समाश्रयेत्।
कुलाचारपरिभ्रष्टो रौरवं नरकं व्रजेत् ।।६१५।।

कौलिक को अन्दर से कौल, बाहर से शैव एवं लोगों के बीच में वैष्णव-सदृश रहना चाहिये। इस प्रकार हे देवि! नारियल-जल के समान कौल को भी स्वयं को गुप्त रखना चाहिये। बुद्धिमान् व्यक्ति को अपने गुरु को सबके समक्ष प्रकाशित करना चाहिये; लेकिन अपने मन्त्र को सब प्रकार से गुप्त रखना चाहिये। गोपनीय विषयों को प्रकाशित करने से सम्पत्ति और आयु का क्षरण होता है।

समस्त आचारों से सर्वविध पतित कुलाचार का आश्रय ग्रहण करना चाहिये; लेकिन कुलाचार से पतित होने पर रौरव नरक की प्राप्ति होती है।।६१३-६१५।।

वामाचारं न कथयेदकुलीनाय सद्गुरुः।
आचारात्पतिते शिष्ये पातकी स गुरुर्भवेत् ।।६१६।।
इष्टः कश्चित्कौलिकस्य महोपद्रवमास्थितः।
तस्य दुःखापहाराय कुर्यादष्टाष्टपूजनम् ।।६१७।।

सद्गुरु को अकुलीन से वामाचार का कथन नहीं करना चाहिये; क्योंकि शिष्य यदि आचारभ्रष्ट होता है तो वह गुरु पाप का भागी होता है। किसी कौलिक का प्रिय यदि भयंकर उपद्रव में पड़ जाय तो उसके दुःख को दूर करने के लिये अष्टाष्टक पूजन (चौंसठ योगिनी-पूजन) करना चाहिये।।६१६-६१७।।

एकस्मिन्दिवसे वाष्टदिनं वा षोडशाहकम्।
दन्ताहं वा चतुष्षष्टिदिनं कार्यं गुरुत्वतः ।।६१८।।
कारयेद्वा स्वयं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः।
तत्रोपोष्य विशुद्धात्मा कृत्वा न्यासान्पुरोदितान् ।।६१९।।
प्रसुप्ते जीवलोके तु मुदितात्मा महामनाः।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।।६२०।।
वाराही च तथेन्द्राणी चामुण्डा महती रमा।
एता एव समाख्याता मया ते चाष्टमातरः ।।६२१।।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोधोन्मत्तकपालिनः।
भीषणश्चाथ संहार एतेऽष्टौ भैरवा मताः ।।६२२।।
आचम्य मिथुनेऽष्टौ तान्परमैः पूर्ववद्यजेत्।
प्रौढान्तोल्लासपर्यन्तं कार्यं सिद्ध्यत्यसंशयम् ।।६२३।।

एक दिन अथवा आठ दिन अथवा सोलह दिन अथवा बत्तीस दिन अथवा चौंसठ दिन तक गुरु द्वारा अष्टाष्टक पूजन कराना चाहिये अथवा वित्तशाठ्य (कृपणता) से रहित होकर साधक को स्वयं ही अष्टाष्टक पूजन करना चाहिये। अष्टाष्टक पूजन करने के लिये पूजनारम्भ के पूर्व दिन उपवास करके स्वयं को पूर्णतः शुद्ध बनाकर पूर्वकथित न्यासों को सम्पन्न करके सम्पूर्ण प्राणिजगत् के शयन करते रहने पर अर्थात् अर्धरात्रि में प्रसन्न चित्त वाला मनस्वी साधक आचमन करके मेरे द्वारा कथित ब्राह्मी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी, वाराही, इन्द्राणी, चामुण्डा और महालक्ष्मीरूपा अष्टमातृकाओं एवं असिताङ्ग, रुरु, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भीषण और संहारस्वरूप अष्टभैरवों के मिथुन (युगल) का उनके मन्त्रों से पूर्ववत् पूजन करना चाहिये। प्रौढ़ान्तोल्लास-पर्यन्त पूजन करने से कार्य की सिद्धि होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये।।६१८-६२३।।

सर्वमार्गेषु गुरोर्महत्त्वम्

कृता चेद्देवतोषाय पुरश्चर्या विशिष्यते।
गुरुभक्तिविहीनस्य तपोविद्याव्रतं कुलम् ।।६२४।।
व्यर्थं सर्वं शवस्येव नानालङ्कारभूषणम्।
तस्माद्गुरुः सदा सेव्यो मनोवाक्कायकर्मभिः ।।६२५।।
गुरौ मनुष्यबुद्धिं च मन्त्रे वाक्षरशेमुषीम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धिं कुर्वाणो नरकं व्रजेत्।
कुलागमत्वमार्गोऽयं गुरुणा सम्प्रदर्शितः ।।६२६।।
सम्यगाचरितश्चेत्स्याद्भुक्तिमुक्त्योस्तु साधनम् ।।६२७।।

समस्त मार्गों में गुरु का महत्त्व-कथन—देवता को तुष्ट करने के लिये पुरश्चरण अत्यावश्यक है। गुरुभक्ति से विहीन व्यक्ति के लिये तप, विद्या, व्रत आदि सभी उसी प्रकार व्यर्थ होते हैं, जैसे कि शव के लिये नानाविध अलङ्कार एवं आभूषण व्यर्थ होते हैं; इसलिये मन, वचन एवं कर्म से गुरु सदैव सेवनीय होता है।

जो गुरु में मनुष्यबुद्धि, मन्त्र में अक्षरबुद्धि एवं प्रतिमा में शिलाबुद्धि रखता है अर्थात् गुरु को साधारण मानव, मन्त्र को अक्षरमात्र एवं देवमूर्ति को मात्र पत्थर मानता है, वह नरक होता में जाता है। कुलागम का यह मार्ग गुरु के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इसका सम्यक् रूप से पालन करने पर यह भोग एवं मोक्ष—दोनों का साधक होता है।।६२४-६२७।।

विप्रोऽपि गुणयुक्तोऽपि न भक्तश्चेन्न शस्यते।
म्लेच्छोऽपि गुणहीनोऽपि भक्तिमाञ्छिष्य उच्यते ।।६२८।।

गुरोर्हितं हि कर्तव्यं वाङ्मनःकायकर्मभिः ।
अहिताचरणाच्छिष्यो विष्ठायां जायते कृमिः ॥६२९॥
गुरुत्यागाद्भवेन्मृत्युर्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता ।
गुरुमन्त्रपरित्यागाद्रौरवं नरकं व्रजेत् ॥६३०॥
गुरूक्तं परुषं वाक्यमाशिषं चिन्तयेद्धृदि ।
नमेत्सन्ताडितो वापि प्रसादमिति संस्मरेत् ॥६३१॥
भोगभोज्यानि वस्तूनि गुरवे सर्वमर्पयेत् ।
तच्छेषमिति सञ्चिन्त्य ग्राह्यं तस्याज्ञया मुदा ॥६३२॥

गुणवान होते हुये भी जो विप्र भक्ति से रहित होता है, वह शिष्य बनने के योग्य नहीं होता और गुणहीन म्लेच्छ भी यदि भक्तियुक्त हो तो वह शिष्य बनाने के योग्य होता है। वाणी, मन एवं कर्म से गुरु का हित करना चाहिये; गुरु के विरुद्ध आचरण करने से शिष्य विष्ठा का कीड़ा होता है।

गुरु का त्याग करने से मृत्यु होती है और मन्त्र का त्याग करने से दरिद्रता होती है। गुरु और मन्त्र—दोनों का त्याग करने से रौरव नरक की प्राप्ति होती है। गुरु के कठोर वचनों को भी आशीर्वाद समझकर अपने हृदय में धारण करना चाहिये। गुरु के द्वारा प्रताड़ित होने पर भी उनका नमन करना चाहिये एवं उनके द्वारा दी गई ताड़ना को उनका प्रसाद समझना चाहिये। समस्त भोग्य एवं भोज्य वस्तुओं को प्रथमतः गुरु के लिये समर्पित कर देना चाहिये और उनसे शेष बचे भोग्य-भोज्य वस्तुओं को उनकी आज्ञा प्राप्त कर प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण करना चाहिये।।६२८-६३२।।

ऋणादानं तथा दानं वस्तूनां क्रयविक्रये ।
न कुर्याद्गुरुभिः सार्द्धं नोद्वहेत्तत्कुलोद्भवाम् ॥६३३॥
समासोक्तं रहस्यार्थं न वदेद्यस्य कस्यचित् ।
यदि ब्रूयात्स उभयच्युत एव न संशयः ॥६३४॥
सर्वस्वमपि यो दद्याद्गुरौ भक्तिविवर्जितः ।
शिष्यो न फलमाप्नोति भक्तिरेव हि कारणम् ॥६३५॥
यस्मिन्द्रव्ये गुरोरस्ति स्पृहा नानुभवेच्च तत् ।
अवश्यं यदि वापि स्यादनुभूयात्तदाज्ञया ॥६३६॥
अत्यल्पं हि गुरोर्द्रव्यमदत्तं स्वीकरोति यः ।
तिरश्चां योनिमापन्नः क्रव्यादैः स तु भक्ष्यते ॥६३७॥

गुरु से न तो ऋण लेना चाहिये और न ही गुरु को ऋण देना चाहिये। गुरु के

साथ न तो वस्तुओं का क्रय-विक्रय करना चाहिये और न ही गुरुकुल में उत्पन्न कन्या से विवाह करना चाहिये।

बातचीत में गुरु द्वारा कथित रहस्य को जिस किसी से नहीं कहना चाहिये। यदि उस गुरु-कथित रहस्य को किसी के समक्ष कोई कहता है तो वह निःसन्दिग्ध रूप से दोनों लोकों से पतित होता है।

भक्ति से रहित होकर गुरु के लिये अपना सर्वस्व समर्पित कर देने से भी शिष्य को किसी भी प्रकार के फल की प्राप्ति नहीं होती; क्योंकि फलप्राप्ति में एकमात्र भक्ति ही कारण-स्वरूपा होती है। जिस द्रव्य में गुरु की स्पृहा हो, उसे ग्रहण नहीं करना चाहिये; यदि आवश्यक हो तो गुरु की आज्ञा प्राप्त करके ही उसका उपभोग करना चाहिये। गुरु के बहुत थोड़े धन को भी विना गुरु द्वारा दिये जो ग्रहण करता है, वह तिर्यक् योनि को प्राप्त होकर क्रव्यादों (सिंहों) द्वारा भक्षण किया जाता है।।६३३-६३७।।

आज्ञाभङ्गोऽर्थहरणं गुरोर्विप्रियवर्त्तनम्।
गुरुद्रोहमिमं प्राहुर्यः कुर्यात्स तु पातकी।
गुरुमित्रसुहृद्दासदास्यादीन् नावमानयेत्॥६३८॥
न निन्देदन्यसमयान् वेदशास्त्रागमादिकान्।
पादुकासनं च वस्त्रं वाहनं चामरादिकम्।
दृष्ट्वा गुरुं नमस्कुर्यान्नानाभोगाय कामयेत्॥६३९॥
सदसद्यद् गुरुर्ब्रूयात्तत्कार्यमवशश्चरेत्।
निग्रहेऽनुग्रहे वापि गुरुः सर्वस्य कारणम्॥६४०॥
निर्गतं यद्गुरोर्वक्त्रात् सर्वं शास्त्रं तदुच्यते।
गुरुकार्ये स्वयं शक्तो नापरं प्रेषयेत्क्वचित्॥६४१॥
बहुकृत्यं परैः कुर्यात्सहितोऽप्यतिभक्तिमान्।
तिष्ठञ्जाग्रत्स्वपन्खादन्प्रपिबँश्चिन्तयेद् गुरुम्॥६४२॥

गुरु की आज्ञा का पालन न करना, गुरु के धन का हरण करना, गुरु के विरुद्ध व्यवहार करना—ये सभी गुरुद्रोह कहे गये हैं; जो ऐसा करता है, वह पातकी होता है।

गुरु के मित्र, सुहृद्, दस, दासी आदि का अपमान नहीं करना चाहिये। अन्य समयाचारियों, वेद, शास्त्र, आगम आदि की निन्दा नहीं करनी चाहिये। गुरु की पादुका (खड़ाऊँ), वस्त्र, वाहन, चामर आदि को देखकर प्रणाम करना चाहिये और उनसे नाना प्रकार के भोग-प्राप्ति की कामना करनी चाहिये।

उचित-अनुचित जो भी गुरु का आदेश हो, उसका पालन अवश्य करना चाहिये;

क्योंकि निग्रह-अनुग्रह सबका कारण गुरु ही होता है। गुरु के मुख से जो भी वचन निकलते हैं, वे सभी शास्त्र के समान होते हैं। गुरु द्वारा प्रदत्त कार्य को करने में यदि स्वयं समर्थ हो तो उस कार्य को करने हेतु कभी भी किसी दूसरे को प्रेषित नहीं करना चाहिये। अतिशय भक्ति-सम्पन्न होते हुये भी कार्य यदि अधिक हो तो दूसरे से भी कराना चाहिये। बैठे हुये, जागते हुये, सोते हुये, भोजन करते हुये एवं पान करते हुये अर्थात् हर समय गुरु का चिन्तन करना चाहिये।।६३८-६४२।।

गुर्वाज्ञामेव कुर्वीत तद्गतेनान्तरात्मना ।
अभिमानो न कर्त्तव्यो जातिविद्याधनादिभिः ।।६४३।।
तत्पापं समवाप्नोति गुर्वग्रेऽनृतभाषणात् ।
गोब्राह्मणवधं कृत्वा न यत्पापमवाप्नुयात् ।।६४४।।
गुरोः सिंहासनं देयं ज्येष्ठानामुत्तमासनम् ।
विध्यासनं कनिष्ठानामितरेषां समासनम् ।।६४५।।

गुरु के प्रति समर्पित होकर उसकी आज्ञा का पालन करना चाहिये; गुर्वाज्ञा का पालन करते हुये अपनी जाति, विद्या, धन आदि का अभिमान नहीं करना चाहिये। गुरु के सामने झूठ बोलने से जितना भयंकर पाप लगता है, उतना भयंकर पाप तो गौ एवं ब्राह्मण का वध करने पर भी नहीं लगता। बैठने के लिये गुरु को सिंहासन, अपने से ज्येष्ठों को उत्तम आसन, कनिष्ठों को उनके लिये विहित आसन एवं अन्य जनों को अपने समान आसन प्रदान करना चाहिये।।६४३-६४५।।

जातिविद्याधनाढ्यो वा दूराद् दृष्ट्वा गुरुं मुदा ।
दण्डप्रणामं कृत्वैकं त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत् ।।६४६।।
गुरुतो गुरुयोगे तु वन्देत्तत्र स्वकं गुरुम् ।
ततो वन्देद्गुरुं सोऽपि ततः शिष्यैः प्रवादयेत् ।।६४७।।
गुरोः प्रणामत्रितयं ज्येष्ठानामेक एव च ।
पूज्यानामञ्जलिस्तद्वदन्येषां बाह्यवन्दनम् ।।६४८।।

जाति, विद्या अथवा धन से सम्पन्न होने पर भी दूर से ही गुरु को देखकर सहर्ष दण्डवत् प्रणाम करके उसकी तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिये। अपने गुरु से दूसरे गुरु के मिलन के समय पहले अपने गुरु को प्रणाम करने के उपरान्त ही दूसरे गुरु को प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद शिष्यों से वार्तालाप करना चाहिये। गुरु को तीन बार प्रणाम करना चाहिये और अपने से बड़ों को एक बार प्रणाम करना चाहिये। उसी प्रकार पूज्यजनों को हाथ जोड़कर प्रणाम करना चाहिये एवं दूसरों को केवल वचन से प्रणाम करना चाहिये।।६४६-६४८।।

देवान् गुरून् कुलाचार्यान्ज्येष्ठान् वृद्धांस्तपोधनान्।
विद्याधिकान् स्वकर्मस्थाञ्छ्रोत्रियान् प्रणमेत्सदा ॥६४९॥
स्त्रीदिष्टं गुरुशप्तं च पाखण्डं पतितं शठम्।
विकर्मिणं कृतघ्नं चानाश्रमस्थं नमेन्न च ॥६५०॥
भुङ्क्ते निवेद्य गुरवे यस्त्वेकग्रामसंस्थितः।
तेन भुक्तममेध्यं स्यान्मृतो जायेत सूकरः ॥६५१॥

देवताओं, गुरुओं, कुलाचार्यों, अपने ज्येष्ठों, वृद्धों, तपस्वियों, विद्या में अपने से श्रेष्ठों, अपने कर्म को सम्पादित करने वालों एवं वेदाध्यायियों को बरावर प्रणाम करना चाहिये। स्त्री के वश में रहने वाले, गुरु द्वारा अभिशप्त, पाखण्डी, पतित, मूर्ख, दुष्कर्मी, कृतघ्न एवं आश्रमधर्म का पालन न करने वाले को कभी भी प्रणाम नहीं करना चाहिये।

यदि गुरु और शिष्य दोनों एक ही ग्राम के निवासी हों तो गुरु को निवेदित करने के बाद ही शिष्य को भोजन करना चाहिये। गुरु को निवेदन किये विना ही शिष्य यदि भोजन करता है, तो वह शिष्य अपवित्र होता है और मृत्यु के पश्चात् शूकर योनि में जन्म ग्रहण करता है।।६४९-६५१।।

एकग्रामे स्थितः शिष्यस्त्रिसन्ध्यं प्रणमेद्गुरुम्।
क्रोशमात्रस्थितो भक्त्या गुरुं प्रतिदिनं नमेत् ॥६५२॥
अर्धयोजनतः शिष्यः प्रणमेत्पञ्चपर्वसु।
एकयोजनमारभ्य योजनद्वादशावधि ॥६५३॥
दूरदेशे स्थितः शिष्यो भक्त्या तत्सन्निधिं गतः।
तत्तद्योजनसङ्ख्याकमासेषु प्रणमेद्गुरुम् ॥६५४॥

गुरु और शिष्य—दोनों के एक ही ग्राम में स्थित रहने पर शिष्य द्वारा गुरु को तीनों सन्ध्याओं में प्रणाम करना चाहिये। एक कोस की दूरी पर रहने वाले गुरु को भक्तिपूर्वक प्रतिदिन प्रणाम करना चाहियें। दो कोस की दूरी पर रहने वाले गुरु को पाँचों पर्वों पर प्रणाम करना चाहिये। एक योजन से लेकर बारह योजन तक की दूरी पर रहने वाले गुरु के समीप जाकर शिष्य को योजन की संख्या के अनुसार प्रत्येक मास में प्रणाम करना चाहिये।।६५२-६५४।।

अतिदूरस्थितं शिष्यो यदेच्छा स्यात्तदा व्रजेत्।
रिक्तहस्तो न पश्येच्च राजानं देवतां गुरुम् ॥६५५॥

फलपुष्पाम्बरार्थादीन् यथाशक्ति समर्पयेत्।
एवं यो नार्चयेद्विप्रो ब्रह्मराक्षसतां व्रजेत् ॥६५६॥
गुरुशक्तिश्च तत्पुत्रा ज्येष्ठभ्राता गुरोः समाः।
आत्मवच्च कनिष्ठानां पुत्रवत्परिपालकः ॥६५७॥

अधिक दूर रहने वाले गुरु के पास जब इच्छा करे तब जाना चाहिये। राजा, देवता और गुरु के समीप उनके दर्शन-हेतु कभी भी खाली हाथ नहीं जाना चाहिये; अपितु उन्हें यथाशक्ति फल, फूल, वस्त्र, धन आदि समर्पित करना चाहिये। जो विप्र इस प्रकार से गुरु का अर्चन नहीं करता है, वह ब्रह्मराक्षस होता है। गुरुपत्नी, गुरुपुत्र एवं ज्येष्ठ भ्राता गुरु के समान ही होते हैं। इन सबका अपने समान एवं कनिष्ठों का अपने पुत्र के समान सर्वविध पालन करना चाहिये।।६५५-६५७।।

स्वविद्यानुष्ठानतपोधर्माणामप्रकाशकः ।
वर्णाश्रमज्ञानतपोधर्माणां च प्रकाशकः ॥६५८॥
षट्कर्मसु सुसिद्धो यो दाता भोक्ता न याचकः।
स एव कौलिकाचार्यस्त्वन्यः कुलविडम्बकः ॥६५९॥

अपनी विद्या, अपना अनुष्ठान, अपने तप एवं धर्म को प्रकाशित न करने वाला एवं वर्ण, आश्रम, ज्ञान, तप एवं धर्म को प्रकाशित करने वाला होना चाहिये। छहो कर्मों में दक्षता-प्राप्त होते हुये भी जो दाता, भोक्ता एवं याचक नहीं होता, वही कौलिकाचार्य होता है; दूसरे तो मात्र कुलविडम्बक होते हैं।।६५८-६५९।।

पिण्डं पदं तथा रूपं रूपातीतं निरञ्जनम्।
यस्तु सम्यग्विजानाति स गुरुश्चोद्धरेत्परम् ॥६६०॥
पाशस्तम्भं वेददीक्षां पशुग्रहणमेव च।
त्रिविधं यो विजानाति स गुरुः कथितः प्रिये ॥६६१॥
पशुपाशपशूनाञ्च रहस्यार्थविधानवित्।
यो जानाति वरारोहे स गुरुः परिकीर्तितः ॥६६२॥
घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शीलं तथा शक्तिरष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः ॥६६३॥
पाशबद्धः पशुः प्रोक्तः पाशमुक्तो महेश्वरः।
तस्मात्पाशहरो योऽत्र स गुरुर्नान्य उच्यते ॥६६४॥

जिसे पिण्ड, पद, रूप, रूपातीत, निरञ्जन का ज्ञान सम्यक् रूप से होता है, वही

उद्धार करने वाला गुरु होता है। हे प्रिये! पाश-स्तम्भन, वेद-दीक्षा, पशु-ग्रहण—इन तीनों का जिसे ज्ञान होता है, उसी को गुरु कहा जाता है। हे वरारोहे! पशु, पाश एवं पशुओं के रहस्यार्थ-विधान को जो जानता है, वही 'गुरु' पदवाच्य होता है।

घृणा, शंका, भय, लज्जा, निन्दा, कुल, शील और शक्ति—ये आठ पाश कहे गये हैं। पाशों से जो बद्ध होता है, वह पशु कहा गया है एवं पासे जो मुक्त है, वही महेश्वर है। इसलिये इस लोक में जो पाशों का उच्छेद करता है, वही गुरु कहा जाता है; दूसरा नहीं।।६६०-६६४।।

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं सप्ताम्भोजदलेषु यः।
जीवचालफलं वेत्ति स गुरुर्नापरः प्रिये ।।६६५।।
संसारभयभीतस्य शिष्यस्य गुरुरादरात्।
व्रतोपवासनियमैर्भियो हन्ता गुरुर्मतः ।।६६६।।
यः क्षणेनात्मसामर्थ्यं स्वशिष्याय ददाति हि।
क्रियाया आदिरहितं स गुरुर्दुर्लभः कलौ ।।६६७।।

हे प्रिये! मूलाधार से आरम्भ कर ब्रह्मरन्ध्र तक स्थित सात पद्मदलों में जीवचालन के फल को जो जानता है, वही गुरु होता है; दूसरा नहीं।

संसार के भय से ड़रे हुये शिष्य के भय को आदरपूर्वक व्रत, उपवास एवं नियमों के द्वारा जो दूर करता है, वही गुरु कहा गया है।

जो क्रिया आदि का प्रयोग किये विना भी क्षणमात्र में अपने समान सामर्थ्य शिष्य को प्रदान करता हो, ऐसा गुरु मिलना कलियुग में दुर्लभ है।।६६५-६६७।।

गुरोर्यस्यैव सम्पर्कात्परानन्दोऽभिजायते।
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः ।।६६८।।
शङ्कया भक्षितं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम्।
सा शङ्का भक्षिता येन स गुरुर्दुर्लभः क्षितौ ।।६६९।।
मधुभुक्च यथा भृङ्गः पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ।।६७०।।

जिस गुरु का सान्निध्य प्राप्त होते ही चित्त में परमानन्द का प्रादुर्भाव होता हो, मतिमान व्यक्ति को उसी का वरण गुरु के रूप में करना चाहिये; अन्य किसी दूसरे का नहीं।

चर-अचर के सहित तीनों लोक शंका के द्वारा पूर्ण रूप से उदरस्थ कर लिया गया है, उस शंका को जो उदरस्थ कर ले, ऐसा गुरु कलियुग में दुर्लभ है।

जिस प्रकार मधु का भक्षण करने वाला भौंरा एक फूल से उड़कर दूसरे फूल पर जाता है, उसी प्रकार ज्ञानपिपासु शिष्य को (ज्ञान-प्राप्ति न होने पर) एक गुरु को छोड़कर दूसरे गुरु के पास जाना चाहिये।।६६८-६७०।।

गुरुः शिष्याधिकारार्थं विरक्तोऽपि शिवाज्ञया।
कञ्चित्कालं प्रतीक्ष्यैव पश्चाच्छिष्ये समर्पयेत्।।६७१।।
सम्प्रदायमविच्छिन्नं कौलं कुर्यान्न कुत्रचित्।
यावच्च सम्प्रदायोऽस्ति तावत्स्याद्योगिनीपदम्।।६७२।।
गुरुशिष्यावुभौ मोहादपरीक्ष्य परस्परम्।
उपदेशं ददद् गृह्णन् प्राप्नुयातां पिशाचताम्।।६७३।।

विरक्त (राग से रहित) गुरु को भी शिष्य को अधिकार प्रदान करने के लिये कुछ समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिये अर्थात् उसके अधिकार-प्राप्ति के योग्य होने का चिन्तन करना चाहिये; इसके पश्चात् ही भगवान् शिव की आज्ञा प्राप्त कर शिष्य को अधिकार प्रदान करना चाहिये।

सम्प्रदाय से विच्छिन्न कौल को कभी भी गुरु नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि जब तक सम्प्रदाय विद्यमान रहता है तभी तक योगिनीपद भी रहता है।

गुरु और शिष्य दोनों मोह के वशीभूत होकर एक-दूसरे की परीक्षा किये विना यदि उपदेश देते हैं और ग्रहण करते हैं तो वे दोनों ही पिशाच योनि को प्राप्त होते हैं।।६७१-६७३।।

असंस्कृत्योपदेशं तु यः करोति स मूढधीः।
विनश्यत्येव तन्मन्त्रः सैकते शालिबीजवत्।।६७४।।
धनेच्छाभयलोभाद्यैरयोग्यं यदि दीक्षयेत्।
देवताशापमाप्नोति कृतं च विफलं भवेत्।।६७५।।
कुलद्रव्यैः समभ्यर्च्य कुलचक्रं विधानतः।
शिष्याय दर्शयेत्सम्यग्दीक्षैषा कौलिकी मता।।६७६।।

संस्कार किये विना ही जो शिष्य के लिये मन्त्र का उपदेश करता है, वह मूर्ख होता है; उसका मन्त्र उसी प्रकार विनष्ट हो जाता है, जैसे कि बालू पर बोया गया धान्यबीज विनष्ट हो जाता है।

धन की इच्छा, भय, लोभ आदि के कारण गुरु यदि किसी अयोग्य को दीक्षित करता है, तो उसे देवता से शाप की प्राप्ति होती है और उसके द्वारा किया गया दीक्षाकार्य भी विफल हो जाता है।

कुलद्रव्य से विधि-पूर्वक कुलचक्र का पूजन करने के पश्चात् शिष्य को उसका भली प्रकार दर्शन करना चाहिये, यही कौलिकी दीक्षा कही गई है।।६७५-६७६।।

पूर्णाभिषेकविधिनिरूपणम्

सिद्धद्रव्यं मुखे पूर्य पञ्चगव्यामृतान्वितम्।
अभिषिञ्चेत्प्रियं शिष्यं गण्डूषाख्येयमीरिता ॥६७७॥
सञ्जीवमीनयुक्तेन सुरया पूरितेन च।
पञ्चामृतैः सुसम्पूर्णशङ्खेन कलशेन वा ॥६७८॥
अभिषेकं ततः कुर्यात्कुलवृक्षोत्थपल्लवैः।
अयं पूर्णाभिषेकोऽत्र कुलमार्गे प्रकीर्तितः ॥६७९॥
पूर्णाभिषेकहीनाश्चेन्म्रियन्ते यदि कौलिकाः।
प्राप्नुवन्ति पिशाचत्वं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥६८०॥
उपपातकलक्षाणि महापातककोटयः।
क्षणाद्दहति दीक्षेयं विधिना गुरुणा कृता ॥६८१॥

पूर्णाभिषेक-विधि—पञ्चगव्यरूपी अमृत से युक्त सिद्धद्रव्यों को मुख में भरकर उससे अपने प्रिय शिष्य का अभिषेक करना चाहिये; यह गण्डूषाभिषेक कहा गया है। तदनन्तर सम्यक् रूप से जीवित मत्स्य के साथ मद्य भरकर ऊपर से पञ्चामृत से पूरित शंख अथवा कलश से कुलवृक्षों के सद्यः निःसृत पल्लवों से अभिषेक करना चाहिये। कुलमार्ग में यही पूर्णाभिषेक कहा गया है। पूर्णाभिषेक हुये विना ही कौलिक यदि मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो वह प्रलय-पर्यन्त पिशाच योनि को प्राप्त होता है। विधिपूर्वक गुरु द्वारा की गई यह पूर्णाभिषेक दीक्षा लाखों उपपातकों एवं करोड़ों महापातकों को क्षणमात्र में भस्मीभूत कर देती है।।६७७-६८१।।

रसेन्द्रेण यथा विद्धमयः सौवर्णतां व्रजेत्।
दीक्षाविद्धस्तथा ह्यात्मा शिवत्वं लभते द्रुतम् ॥६८२॥
दीक्षाग्निदग्धकर्माऽसौ मायाविच्छिन्नबन्धनः।
यातः परां ज्ञानकाष्ठां निर्विण्णः स शिवो भवेत् ॥६८३॥
गतं शूद्रस्य शूद्रत्वं गता विप्रस्य विप्रता।
दीक्षासंस्कारसम्पन्ने जातिभेदो न विद्यते ॥६८४॥
दार्वश्मलोहमृद्रत्नजातिलिङ्गं प्रतिष्ठितम्।
यथोच्यते महादेवस्तथा वर्णास्तु दीक्षिताः ॥६८५॥

अन्त्यजो दीक्षितः पूर्वं द्विजः पश्चाच्च दीक्षितः।
तदा ज्येष्ठोऽन्त्यजः प्रोक्तः कुलशास्त्रविनिश्चये ॥६८६॥
गुरुशक्तिसुतानां च यो भवेत्पूर्वदीक्षितः।
गुरुवत्तेन ते पूज्या नावमान्याः कदाचन ॥६८७॥

जिस प्रकार पारद द्वारा विद्ध किया गया लौह सुवर्ण बन जाता है, उसी प्रकार दीक्षा द्वारा विद्ध आत्मा सद्यः ही शिवत्व को प्राप्त कर लेता है। दीक्षारूपी अग्नि से दग्ध समस्त कर्मों वाला यह आत्मा माया के बन्धन को तोड़कर ज्ञान की पराकाष्ठा को प्राप्त करके संसार से उदासीन होकर साक्षात् शिव हो जाता है। दीक्षा-प्राप्ति के पश्चात् शूद्र का शूद्रत्व और विप्र का विप्रत्व—दोनों ही समाप्त हो जाता है। दीक्षासंस्कार से सम्पन्न हो जाने पर किसी भी प्रकार का जातिभेद नहीं रह जाता। जिस प्रकार लकड़ी, पत्थर, लोहा, मिट्टी, रत्न में प्रतिष्ठित होने पर लिंग महादेव कहा जाता है, उसी प्रकार समस्त वर्ण भी दीक्षित होने पर शिवस्वरूप हो जाते हैं। अन्त्यज पहले दीक्षित हुआ हो और द्विज उसके बाद दीक्षा प्राप्त करता है तो ऐसी स्थिति में कुलशास्त्र के निर्णयानुसार अन्त्यज ही ज्येष्ठ होता है। गुरु, शक्ति एवं पुत्र में जो पहले दीक्षित हुआ हो, वह बाद में दीक्षितों के द्वारा गुरु के समान पूज्य होता है और उसका तिरस्कार कभी नहीं करना चाहिये।।६८२-६८७।।

कौलिके वाममार्गे च वेधदीक्षा फलप्रदा।
अन्यास्ता दक्षिणे मार्गेऽन्यथा तु पतितो भवेत् ॥६८८॥
दीक्षापूर्वं गुरोः सिद्धं पारम्पर्यक्रमागतम्।
योग्यं योग्येन यल्लब्धं तच्च सिद्ध्यत्यसंशयम् ॥६८९॥
मासमात्रं जपेन्मन्त्रं भूतलिप्या तु सम्पुटम्।
क्रमोत्क्रमात्सहस्रन्तु तस्य सिद्धो भवेन्मनुः ॥६९०॥
मण्डलं पूजयेन्मन्त्री मातृकाक्षरसंयुतम्।
अनुलोमविलोमाभ्यां षण्मासात्सिद्ध्यते मनुः ॥६९१॥

कौलमार्ग एवं वाममार्ग में वेधदीक्षा फलवती होती है तथा अन्य सभी दीक्षायें दक्षिणमार्ग में प्रशस्त होती हैं; अतः मार्गानुसारी दीक्षा से ही दीक्षित करना चाहिये; अन्यथा करने वाला गुरु निश्चित रूप से पतित होता है। दीक्षा से पूर्व परम्पराक्रम से प्राप्त सिद्ध योग्य गुरु द्वारा योग्य शिष्य को जो प्राप्त होता है, वह निश्चित रूप से सिद्ध होता है।

क्रम-उत्क्रम से भूतलिपि से सम्पुटित मन्त्र का जो एक मास तक प्रतिदिन एक

हजार की संख्या में जप करता है, उसका वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। अनुलोम-विलोम मातृकाक्षरों से युक्त मन्त्र से जो छः मास तक मण्डल का पूजन करता है, तो उसका वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।।६८८-६९१।।

त्रितत्त्वाक्षरपूर्वं तु मातृकाक्षरपूर्वकम्।
क्रमोत्क्रमाच्छतं जप्त्वा मासात्सिद्धो भवेन्मनुः ॥६९२॥
मातृकाजपमात्रेण मन्त्राणां कोटिकोटयः।
जपिताः स्युर्न सन्देहस्तत्त्वं सर्वं तदुद्भवम् ॥६९३॥
जातसूतकमादौ स्यादन्ते च मृतसूतकम्।
न पुरश्चरणं यस्य स मन्त्रो नैव सिद्ध्यति ॥६९४॥
यस्यान्नपानपुष्टाङ्गः कुरुते धर्मसञ्चयम्।
अन्नदातुः फलं चार्धं कर्तुश्चार्धं न संशयः ॥६९५॥
सुगन्धपुष्पाभरणगन्धादिभिरलङ्कृतः।
तस्य हस्तगता सिद्धिर्नान्यथा जन्मकोटिभिः ॥६९६॥

पहले त्रितत्त्व का संयोजन करके मातृकाक्षर-पूर्वक क्रम-उत्क्रम से मन्त्र का एक मास तक प्रतिदिन एक सौ बार जप किये जाने पर वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

मात्र मातृकाक्षर का जप करने से करोड़ों-करोड़ मन्त्रों का जप सम्पन्न हो जाता है; इसमें कोई सन्देह नहीं है; क्योंकि सभी तत्त्वों की उत्पत्ति मातृकाओं से हीं हुई है।

जिस मन्त्र के आदि में जातसूतक और अन्त में मृतसूतक हो और जिसका पुरश्चरण भी न कहा गया हो, वह मन्त्र कभी भी सिद्ध नहीं होता।

जिसके अन्न एवं पान से स्वस्थ शरीर वाला होकर धर्म का उपार्जन किया जाता है, उस अन्नदाता को उपार्जित धर्म का आधा फल प्राप्त होता है और आधा फल उपार्जित-कर्ता को प्राप्त होता है; इसमें कोई संशय नहीं है।

जो साधक सुगन्ध, पुष्प, आभरण, गन्धादि से अलंकृत होकर साधना करता है, उसे सिद्धि अवश्य प्राप्त होती है; अन्यथा करोड़ों जन्मों में भी सिद्धि नहीं प्राप्त होती।।६९२-६९६।।

तन्निष्ठस्तद्गतप्राणस्तच्चित्तस्तत्परायणः।
तत्परार्थानुसन्धानं कुर्वन्मन्त्रं शनैर्जपेत् ॥६९७॥
जपाच्छ्रान्तः पुनर्ध्यायेद्ध्यानाच्छ्रान्तः पुनर्जपेत्।
जपध्यानादियुक्तस्य क्षिप्रं मन्त्रः प्रसिद्ध्यति ॥६९८॥

मन्त्र में पूर्णत: निष्ठा रखकर, मन्त्र में ही अपने प्राण को समाहित करके, मन्त्र को अपने चित्त में धारण करके, मन्त्रपरायण होकर, मन्त्र के परमार्थ का अनुसन्धान करते हुये धीरे-धीरे मन्त्र का जप करना चाहिये। जप से थक जाने पर पुन: ध्यान एवं ध्यान से थक जाने पर पुन: जप करना चाहिये। इस प्रकार जप, ध्यान आदि में जो निरन्तर लगा रहता है, उसका मन्त्र शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है।।६९७-६९८।।

अथ मन्त्री प्रयोगार्थं शुद्धहृन्नियमान्वितः।
शापप्रसाददं मन्त्रं तत्त्वलक्षमितं जपेत्।।६९९।।
मधुरत्रयसंयुक्तैः सतिलैः शालितण्डुलैः।
दशांशं जुहुयात्पश्चात्संस्कृते हव्यवाहने।।७००।।
गन्धपुष्पाक्षताकल्पनववस्त्रादिभिः पुनः।
भक्ष्यभोज्यान्नपानाद्यैः कुलद्रव्यैर्मनोहरैः।
तोषयेद्योगिनीचक्रं यथाविधि सविस्तरम्।।७०१।।
एवं न्यासं जपं ध्यानं सहोमार्चनतर्पणम्।
कृत्वा प्रयोगान् कुर्वीत तस्य सिद्धिर्न संशयः।।७०२।।
प्रयोगान्ते चक्रपूजां विधिनैव समाचरेत्।
एकलक्षं जपेन्मन्त्रं ध्यानन्याससमन्वितम्।।७०३।।

मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर प्रयोग करने के लिये साधक को शुद्ध हृदय से नियमपूर्वक शाप और अनुग्रह प्रदान करने वाले मन्त्र का पाँच लाख जप करना चाहिये। तदनन्तर कृत जप का दशांश मधुरत्रय (घी-मधु-शर्करा) से समन्वित तिल और चावल से संस्कृत अग्नि में हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् चक्रस्थित योगिनियों को यथाविधि विस्तारपूर्वक गन्ध, पुष्प, अक्षत, यथासम्भव नूतन वस्त्र, भक्ष्य-भोज्य अन्न-पान आदि के साथ-साथ मनोहर कुलद्रव्यों के द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार न्यास, जप, ध्यान, होम-सहित अर्चन एवं तर्पण करने के उपरान्त जो प्रयोग किया जाता है, उसकी सिद्धि में कोई सन्देह नहीं होता। प्रयोग के अन्त में विधिपूर्वक चक्रपूजा करके न्यास-ध्यान करने के उपरान्त मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये।।६९९-७०३।।

प्रयोगदोषशान्त्यर्थमात्मनोऽर्थार्थमेव च।
स्वरवर्णपदद्वित्वबिन्दुचैतन्यसूचकम्।।७०४।।
ह्रस्वदीर्घप्लुताद्याँश्च ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत्।
मूलं प्रासादबीजं तु तरुणादित्यसुप्रभम्।।७०५।।

उत्तमाङ्गे पराबीजं चन्द्रायुतसमप्रभम्।
परस्परकरस्पर्शमिलितानन्दनिर्भरैः ॥७०६॥
मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तमनवच्छिन्नदीप्तिभिः।
परामृतरसासक्तैः सिक्तमापादमस्तकम्।
आत्मानं भावयेन्नित्यं स प्रयोगैर्न बाध्यते ॥७०७॥

प्रयोग में हुये दोषों की शान्ति और अपने मनोरथ के लिये एक-एक स्वर एवं व्यञ्जन वर्ण को चैतन्यसूचक बिन्दु से समन्वित करके उनके ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत आदि को ज्ञात करके कर्मों को साधित करना चाहिये। अपने हाथों को परस्पर संयुक्त कर अतिशय आनन्द से परिपूर्ण होकर तरुण सूर्य-सदृश कान्तिमान प्रासादबीज (हौं) एवं हजारो चन्द्रप्रभा से युक्त पराबीज (सौः) को शीर्ष पर धारण कर मूलाधार से ब्रह्मरन्ध्र-पर्यन्त अनवच्छिन्न कान्तिमान परामृतरस से स्वयं को आपाद मस्तक सराबोर समझकर साधनात्मक प्रयोगों के द्वारा साधक बद्ध नहीं होता।।७०४-७०७।।

अथ लोकोपकाराय वक्ष्ये ध्यानजपादिकम्।
स्वस्य रोगादिके जाते शान्तिर्येनाभिजायते ॥७०८॥
स्थित्वा मृद्वासने ध्यायेद् गुरुवन्दनपूर्वकम्।
मस्तकान्तं च सम्पूर्णचन्द्रमण्डलमध्यकम् ॥७०९॥
श्रीप्रासादपराबीजं षोडशस्वरसंयुतम्।
मुक्तास्फटिककर्पूरकुन्देन्दुधवलं शुभम् ॥७१०॥
सचन्द्रबीजसञ्ज्ञातसुधाप्लावितविग्रहम्।
आत्मानं भावयेदेवं परस्यात्मानमेव वा ॥७११॥
श्रीप्रासादपरामन्त्रमष्टोत्तरसहस्रकम्।
तरुणोल्लाससहितो मण्डलं पूजयेद्यदा ॥७१२॥
अपमृत्युमहारोगजरामरणजं भयम्।
ग्रहापस्मारवेतालभूतोन्मादादिसम्भवम्।
तस्य नो जायते देवाः कदाचिदिति निश्चयः ॥७१३॥
जराधिव्याधिरहितः पुत्रपौत्रादिसंयुतः।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं पूजितः सर्वमानवैः ॥७१४॥

लोकोपकारार्थ ध्यान-जप का कथन—अब लोकोपकार के लिये ध्यान-जप आदि का वर्णन करता हूँ; जिसके करने से अपने शरीर में रोग आदि के हो

जाने पर उनकी शान्ति होती है। कोमल आसन पर आसीन होकर गुरु की वन्दना करने के उपरान्त ध्यान करना चाहिये। तदनन्तर अपने मस्तक पर चन्द्रमण्डल के मध्य-स्थित सोलह स्वरों से समन्वित प्रासाद एवं पराबीज 'ह्रौं सौः' को विराजमान समझते हुये मोती, स्फटिक, कपूर, कुन्द, इन्दु के समान धवल शुभ्र चन्द्रबीज से निःसृत अमृत से स्वयं अपने को एवं दूसरे को भी सराबोर होने की भावना करनी चाहिये। तत्पश्चात् श्रीप्रासादीज एवं पराबीजमन्त्र का एक हजार आठ बार जप करके तारुण्य के उल्लास से युक्त होकर मण्डल का पूजन करने से कभी भी अपमृत्यु, महान् रोग, जरा-मरण, ग्रह-अपस्मार-वेताल-भूत-उन्माद आदि से उत्पन्न भय नहीं होता; यह निश्चित है। इस प्रकार के पूजन से साधक सभी द्वारा अग्रपूज्य होता हुआ जरा-व्याधि से हींन रहते हुये पुत्र-पौत्रादि से संयुक्त होकर सौ वर्षों तक जीवित रहता है।।७०८-७१४।।

ज्वरोन्मादादिरोगेषु जपेच्छिरसि चिन्तयन्।
मूले वा ब्रह्मणो ग्रन्थौ तत्तत्स्थाने विचिन्तयेत् ।।७१५।।
पूर्ववत्तां महारोगे सर्वाङ्गव्यापिनीं स्मरेत्।
तत्क्षणाच्छान्तिमायान्ति सर्वरोगा न संशयः ।।७१६।।
दशेन्द्रियेषु यो ध्यायेल्लभेदिन्द्रियसौष्ठवम्।
सदा सञ्चिन्तयेन्मूर्ध्नि स भवेदजरामरः ।।७१७।।

ज्वर-उन्माद आदि रोगों के होने पर मूर्धा में, मूल में अथवा ब्रह्मग्रन्थि में चिन्तन करते हुए जप करना चाहिये। इसी प्रकार महान् रोग उपस्थित पर अपने शरीर के समस्त अंगों में चिन्तन करना चाहिये। ऐसा करने से समस्त रोगों की स्थिति में भी अविलम्ब शान्ति प्राप्त होती है; इसमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। दशों इन्द्रियों में ध्यान करने से समस्त इन्द्रियाँ बलवान होती हैं एवं जो व्यक्ति सदा-सर्वदा मूर्धा में उनका चिन्तन करता है, वह अजर-अमर हो जाता है।।७१५-७१७।।

हृत्पद्मकर्णिकामध्ये सूर्यमण्डलसंस्थितम्।
पराप्रासादबीजं तत्तरुणादित्यसन्निभम् ।।७१८।।
जपाबन्धूकसिन्दूरपद्मरागाम्बुजप्रभम्।
एवं विंशतिभिः स्पर्शाक्षरैः संवीतमन्त्रतः ।।७१९।।
तत्प्रभापटलच्छायारक्तीकृतजगत्त्रयम्।
आत्मानं संस्मरेदित्थं यौवनोल्लाससंयुतः ।।७२०।।

हृदयकमल की कर्णिका के मध्य में सूर्यमण्डल में संस्थित प्रखर सूर्य के समान कान्तिमान परा-प्रासाद बीज एवं अड़हुल, बन्धूक, सिन्दूर, पद्मराग एवं रक्तकमल की प्रभा से युक्त क ख ग घ ङ च छ ज झ ञ ट ठ ड ढ ण त थ द ध न—इन बीस स्पर्शवर्णों से वेष्टित मन्त्र की कान्ति से तीनों लोकों को चकाचौंध करने वाला होकर स्वयं को यौवन के उल्लास से उल्लसित मानकर चिन्तन करना चाहिये।

अष्टोत्तरसहस्रं तु मण्डलं प्रजपेत्सदा।
देवदानवगन्धर्वसिद्धचारणगुह्यकान् ॥७२१॥
विद्याधरान् मुनीन् यक्षान्नागानप्सरसः स्त्रियः।
सिंहव्याघ्रोरगैणादीनन्यान् दुष्टमृगानपि ।
वशीकरोत्यसन्देहः किम्पुनर्मानवादिकान् ॥७२२॥
स ईहैश्वर्यमाप्नोति स्वर्गभोगादिकं तथा।
यस्य मूर्ध्नि स्मरञ्जप्यात्स वश्यो जायतेऽचिरम् ॥७२३॥

तदनन्तर सदा मन्त्रमण्डल का एक हजार आठ बार जप करने से देव, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, चारण, गुह्यक, विद्याधर, मुनि, यक्ष, नाग, अप्सरायें, स्त्रियाँ, सिंह, बाघ, सर्प, मृग आदि एवं अन्य दुष्ट मृग भी निश्चित रूप से साधक के वशीभूत हो जाते हैं; फिर मनुष्यादिकों का तो कहना ही क्या है?

ऐसा करने वाला साधक इस लोक में ऐश्वर्य को प्राप्त कर परलोक-गमन के पश्चात् स्वर्ग का भोग करता है। जिसके मूर्धा का स्मरण करते हुए मन्त्र जप किया जाता है, वह तत्काल वशीभूत हो जाता है।।७२१-७२३।।

मूलाधारसरोजान्तवह्निमण्डलमध्यगम् ।
पराप्रासादबीजं तत्कल्पाग्निसदृशं स्मरेत् ॥७२४॥
प्रतिलोमैस्तु संवीतं दशभिर्व्यापकाक्षरैः।
स्वयं कालानलसमः सर्वभूतभयङ्करः ॥७२५॥
दक्षिणैशान्यभिमुखो यौवनोल्लाससंयुतः।
मन्त्रन्तु मण्डलं जप्यादष्टोत्तरसहस्रकम् ॥७२६॥
अनिष्टकारिणः क्रूरान् वृथा विद्वेषकारिणः।
भूतोग्रग्रहवेतालपिशाचान् ब्रह्मराक्षसान् ॥७२७॥

तद्वह्निमध्यपतितानग्निदग्धाँश्च चिन्तयेत् ।
क्षणेन नाशमायान्ति शलभा इव सर्वतः ।
यस्य मूर्ध्नि स्मरेद्बीजं स मृत्युमधिगच्छति ॥७२८॥

मूलाधार पद्म के अन्त में अवस्थित अग्निमण्डल के मध्य में विद्यमान एवं प्रतिलोम दस व्यापक अक्षरों से आच्छादित पराप्रासाद बीज का प्रज्ज्वलित कल्पाग्नि के समान स्मरण करते हुये स्वयं को समस्त प्राणियों के लिये कालानल के समान भयंकर समझते हुये यौवनोल्लास से युक्त होकर दक्षिण या ईशान की ओर मुख करके मन्त्रमण्डल का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये।

ऐसा करने के फलस्वरूप अनिष्टकारी, क्रूर, व्यर्थ विद्वेष करने वाले भूत, उग्र ग्रह, वेताल, पिशाच, ब्रह्मराक्षस आदि सबों को उस प्रज्ज्वलित अग्नि में गिरकर भस्म होने का चिन्तन करने से वे सभी क्षणमात्र में उसी प्रकार पूर्ण रूप से नष्ट हो जाते हैं, जैसे कि दीपक पर गिरकर फतिंगे नष्ट हो जाते हैं। जिसकी मूर्धा पर पराप्रासादबीज का चिन्तन किया जाता है, वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।।७२४-७२८।।

खदिरश्वेतमन्दारामृता भानुसमिद्वरैः ।
पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षापामार्गजैश्च वा ॥७२९॥
नन्द्यावर्तसिताम्भोजहयारिकुसुमैश्च वा ।
एकेन वार्धश्लोकोक्तैस्तिलतण्डुलसंयुतैः ॥७३०॥
मधुरत्रययुक्तैर्वा भक्ष्यैर्वा पायसैरपि ।
सहस्रादयुतान्तं च यथाकार्यं तथाचरेत् ॥७३१॥
पूर्वोक्तस्य जपस्यात्र सिद्धये सात्त्विकस्य तु ।
शान्तिकं पौष्टिकं सन्धिरुपकारश्च सात्त्विके ॥७३२॥

पूर्वोक्त सात्त्विक जप की सिद्धि के लिये खैर, श्वेत मन्दार एवं गिलोय की श्रेष्ठ समिधाओं से अथवा कटहल, गूंलर, पीपल, पाकड़, चिड़चिड़ा की समिधाओं से अथवा नन्द्यावर्त, श्वेत कमल, कनैल के फूलों से तिल-चावल को संयुक्त करके एक श्लोक से या आधे श्लोक से अथवा मधुरत्रय या भक्ष्य खीर से एक हजार या दस हजार हवन करके कार्य के अनुसार प्रयोग करना चाहिये। पूर्वोक्त जप के करने से सात्त्विक कर्म, शान्तिकर्म, पौष्टिक कर्म, सन्धि एवं उपकार फलीभूत होते हैं।।७२९-७३२।।

कदम्बाशोकबकुलपुन्नागाम्रमधूकजैः ।
चम्पकद्वयपालाशपाटलश्रीकपित्थजैः ॥७३३॥

मालतीमल्लिकाजातिबन्धूकारुणपङ्कजैः ।
कुमार्य्यरुणमन्दारजातीकुन्दजपादिभिः ॥७३४॥
सनारिकेलकदलीद्राक्षेक्षुपृथुकैरपि ।
चन्दनागुरुकर्पूररोचनाकुङ्कुमादिभिः ॥७३५॥
युक्तैरन्यैः शुभद्रव्यैः शमीपत्रफलाम्बुना ।
पृथक्छ्लोकार्धसम्प्रोक्तैः प्राग्वद्धोमस्तु राजसे ॥७३६॥
कुर्यात्कार्यस्य वशतः सहस्राद्ययुतान्तकम् ।
स्तम्भो वश्यं मोहनं च कौतुकं राजसं मतम् ॥७३७॥

राजस कार्यों में सफलता-प्राप्ति के लिये कदम्ब, अशोक, मौलसिरी, पुन्नाग, आम, महुआ, चम्पा, पलाश, गुलाब, कपित्थ, मालती, मल्लिका, जाति, वन्धूक, लाल कमल, घृतकुमारी, लाल मन्दार, जाती, कुन्द, अड़हुल, नारियल, केला, द्राक्षा, ईख के टुकड़े, चन्दन, अगर, कपूर, गोरोचन, कुंकुमादि से समन्वित अन्य शुभ द्रव्यों से युक्त शमीपत्र एवं फलों के रस से कार्य के अनुसार एक हजार से दश हजार तक की संख्या में पूर्वोक्त श्लोकार्ध से पूर्ववत् हवन करना चाहिये। राजसिक कार्यों में स्तम्भन, वशीकरण, मोहन एवं कौतुक आते हैं।।७३३-७३७।।

निम्बाक्षभास्करोन्मत्तकरवीरबिषदण्डिभिः ।
कुटजैः कृष्णवर्णैश्च ह्यग्निकुन्दर्क्षवृक्षकैः ॥७३८॥
गृहधूमचिताङ्गारविषोपविषसंयुतैः ।
उन्मत्तरससम्पिष्टैश्चिताभस्मान्वितैस्तथा ।
मध्यपादरजोभिश्च शत्रोः प्रतिकृतिं चरेत् ॥७३९॥
यद्वा तन्मनसः क्षेत्रवृक्षकाष्ठभवामपि ।
सम्यक्प्रतिष्ठितप्राणां कुण्डस्योपरि लम्बयेत् ॥७४०॥
खनेन्मृत्प्रतिमां मन्त्री कुण्डस्याधो यथाविधि ।
मलीमसेन मनसात्युग्रदृष्टिरमर्षणः ॥७४१॥
चित्रमाले विषतरूद्भवकाष्ठसमेधिते ।
जुहुयात्तामसं कर्म सिद्ध्यत्यत्र न संशयः ।
मारणोच्चाटनद्वेषं तामसं स्यात्पिशाचता ॥७४२॥
राजीलवणहोमेन स्त्रीणामाकर्षणं भवेत् ।
आत्मरक्षां पुरस्कृत्य पश्चात्कर्माणि साधयेत् ॥७४३॥

नीम, अकवन, धतूरा, कनैल, विषदण्डी, काला कूठ, कुन्द, अर्क की समिधा को गृहधूम, चिताङ्गार, विष-उपविष से संयुक्त करके धतूरे के रस में पीसकर चिताभस्म मिलाकर उसमें शत्रु के चरणतल की धूल मिलाकर शत्रु की प्रतिमा का निर्माण करके शत्रु के मनपसन्द क्षेत्र के वृक्ष की लकड़ी से निर्मित उसकी प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा करने के पश्चात् उस प्रतिमा को कुण्ड के ऊपर लम्बा लिटा देना चाहिये।

प्रतिमा के लम्बायमान लिटाने के पश्चात् साधक द्वारा कुण्ड के नीचे विधिपूर्वक मिट्टी की प्रतिमा के आकार का गड्ढा खोदकर मलिन मन से उग्र दृष्टि से क्रोधपूर्वक विषवृक्षों की समिधा से हवन करने से निश्चित रूप से तामसिक कर्म सिद्ध होते हैं। तामसिक कर्मों में मारण, उच्चाटन, विद्वेषण एवं पैशाच कर्म आते हैं।

राई और नमक से हवन करने पर स्त्रियों का आकर्षण होता है। आत्मरक्षा का विधान करने के बाद ही इन कर्मों का साधन करना चाहिये।।७३८-७४३।।

पूर्णाभिषेकयन्त्रकथनम्

लिखेत्रिकोणं षट्कोणमष्टारं च महीपुरम्।
मूलमन्त्रं लिखेन्मध्ये साध्यनामसमन्वितम्।।७४४।।
षडङ्गानि च षट्कोणे स्वरान्वै केशरेषु च।
वर्गान् पत्रेषु भूगेहे चतुष्कोणेषु मन्त्रकम्।।७४५।।
पञ्चवर्णरजोभिश्च लिखेद् दृष्टिमनोहरम्।
एकत्रिषड्वसुचतुष्कलशान् स्थापयेत्क्रमात्।।७४६।।
मध्यादिचतुरस्रान्तं द्वाविंशतिघटान् क्रमात्।
अथवाष्टादश दश सप्त वा चतुरेककम्।।७४७।।

पूर्णाभिषेक यन्त्र एवं उसका पूजन—त्रिकोण के बाहर षट्कोण, षट्कोण के बाहर अष्टदल और उसके बाहर भूपुर का निर्माण करके त्रिकोण के मध्य में मन्त्र और साध्य का नाम अंकित करना चाहिये।

तत्पश्चात् षट्कोण में छः अंगमन्त्रों को, कमलकेशरों में स्वरों को, पत्रों में अष्टवर्गों एवं भूपुर के चारों कोणों में मन्त्र को अत्यन्त रमणीय पाँच रंग के चूर्णों से लिखना चाहिये।

इसके बाद क्रमशः मध्य में एक कलश, त्रिकोण के तीनों कोनों पर तीन कलश, षट्कोण के छः कोणों पर छः कलश, अष्टार के पत्रों पर आठ कलश एवं भूपुर के चारों कोणों पर चार—इस प्रकार कुल बाईस कलश स्थापित करना चाहिये। अथवा अट्ठारह, दस, सात, चार अथवा केवल एक कलश स्थापित करना चाहिये।

अभिषेक यन्त्र
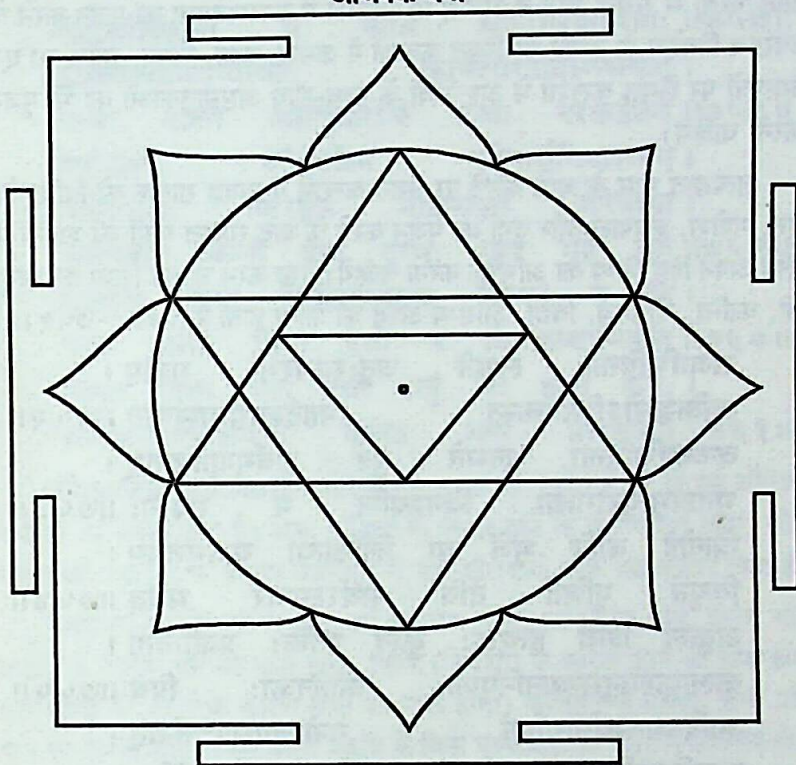
अस्थिरत्नं शिरातन्त्रं मृन्मांसं रुधिरं जलम्।
चर्म वस्त्रं शिखा कूर्च्च नारिकेरफलं शिरः ॥७४८॥
मन्त्रप्राणसमायुक्तां यजेत्कलशदेवताम्।
सा च त्रिमूर्तिरंशादिमातरो भैरवान्विताः ॥७४९॥
विदिक्षु गुरुविघ्नेशदुर्गाक्षेत्रपतीनपि।
कलशेषु समभ्यर्च्य विधिवन्मन्त्रवित्तमः ॥७५०॥
अभिषिञ्चेत्प्रियं शिष्यं सर्वपापप्रशान्तये।
आयुःश्रीकान्तिसौभाग्यविद्यारोग्यादिकं भवेत् ॥७५१॥

कलशों में हड्डी, शिरा (अँतड़ी), शवमांस, रक्त एवं जल ड़ालकर ऊपर से चर्मरूपी वस्त्र लपेटने के बाद कलश के ऊपर दाढ़ी की चोटी बनाकर उसके ऊपर नारियल रखने के पश्चात् कलशदेवता को मन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठित करके उनका पूजन करना चाहिये। वे कलशदेवता ब्रह्मा, विष्णु, महेश के साथ-साथ अष्टमातृकाओं एवं

आठ भैरवों से संयुक्त रहते हैं अर्थात् मध्यकलश में कलशदेवता का पूजन करने के उपरान्त त्रिकोण के कोणों पर स्थित कलशों में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, महेश का एवं अष्टपत्रों पर स्थित कलशों में अष्टभैरवों के साथ-साथ अष्टमातृकाओं का भी पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् भूपुर के चारो कोणों पर स्थित कलशों में मन्त्रज्ञ साधक को विधिपूर्वक गुरु, गणेश, क्षेत्रपाल और दुर्गा का पूजन करने के बाद समस्त पापों की शान्ति के लिये अपने प्रिय शिष्य का अभिषेक करना चाहिये। ऐसा करने से उस शिष्य को आयु, श्री, कान्ति, सौभाग्य, विद्या, आरोग्य आदि की प्राप्ति होती है।।७४८-७५१।।

राजाभिषिक्तो लभते चतुःसागरगां महीम्।
अकिञ्चनोऽभिषिक्तस्तु महदैश्वर्यमाप्नुयात् ।।७५२।।
वन्ध्याभिषिक्ता लभते पुत्रं सर्वगुणान्वितम्।
भूतापमृत्युरोगाद्या विनश्यन्ति न संशयः ।।७५३।।
त्रिलोहे वापि भूर्जे वा लिखित्वा यन्त्रमुत्तमम्।
विधृतं पूजितं देवि सर्वरक्षाकरं भवेत् ।।७५४।।
अकुलं शिव इत्युक्तः कुलं शक्तिः प्रकीर्तिता।
कुलाकुलानुसन्धाननिपुणाः कौलिकाः प्रिये ।।७५५।।
आदित्वात्सर्वमार्गाणां मनोल्लासप्रवर्त्तनात्।
यज्ञादिसर्वहेतुत्वादाम्नाय इति कीर्तितः ।।७५६।।
इति कौलिकमार्गस्य प्रपञ्चोऽयं प्रदर्शितः।

इस अभिषेक से राजा को चारो सागरों तक प्रसृत भूमि की प्राप्ति होती है। दरिद्र व्यक्ति भी इस प्रकार अभिषेक करने पर प्रभूत ऐश्वर्य से सम्पन्न हो जाता है। इस अभिषेक से वन्ध्या स्त्री सर्वगुण-सम्पन्न पुत्र प्राप्त करती है एवं इस अभिषेक के प्रभाव से भूत, अपमृत्यु, रोगादि का असन्दिग्ध रूप से विनाश हो जाता है। हे देवि! यह उत्तम यन्त्र त्रिलोहपत्र (सुवर्ण, रजत् अथवा ताम्बा के पत्र) पर या भोजपत्र पर लिखकर पूजन करके धारण करने से सभी प्रकार से रक्षा करने वाला होता है।

हे प्रिये! शिव को अकुल और शक्ति को कुल कहा गया है। कुल और अकुल के अनुसन्धान में जो निपुण होता है, उसे ही कौलिक कहा जाता है।

सभी मार्गों का आरम्भक होने के कारण, मानोल्लास का प्रवर्तक होने के कारण एवं यज्ञ-यागादि सबका हेतुस्वरूप होने के कारण आम्नाय कहा जाता है। इस प्रकार यह कौलिक मार्ग का प्रपञ्च (विस्तार) यहाँ प्रदर्शित किया गया।।७५२-७५६।।

वेदधर्मविहीना ये तेऽत्र धर्मेऽधिकारिणः ॥७५७॥
इन्द्रियाणामधृष्यत्वात् कामलोभादिसम्भवात्।
प्रायः कलौ कौलिकोऽयं पन्था नरकहेतवे ॥७५८॥
धर्मनाशः कौलिकेन रसेनार्थविनाशनम्।
कामनाशः फिरङ्गेन मोक्षनाशो जनेर्ष्यया।
भविष्यति कलौ देवा दम्भः पापं गृहे गृहे ॥७५९॥
पुरुषेण विना किञ्चित्प्रकृत्या क्रियते न हि।
तथा शक्तिं विना देवो न किञ्चित्कर्तुमर्हति ॥७६०॥
विना शक्तिं फलं देवो दातुं नैव क्षमो ह्यतः।
तस्मात्पुंशक्तिसंयोगं कृत्वा मन्त्रं प्रसाधयेत् ॥७६१॥

कौलधर्म के अधिकारी—वैदिक धर्म से जो रहित होते हैं, वे ही इस कौलिक धर्म के अधिकारी होते हैं। प्रायः इन्द्रियों के सबल होने के कारण एवं काम, लोभ आदि की प्रबलता के कारण कलियुग में यह कौलमार्ग नरक का कारण होता है।

कलियुग में कौलिकों के द्वारा धर्म का नाश होगा, रस (काम, प्रेम, प्रीति, वीर्य आदि) के कारण धन का नाश होगा, फिरंग (विदेशी) के कारण काम का नाश होगा एवं लोगों की ईर्ष्या के कारण मोक्ष का नाश होगा। कलियुग में देवता, दम्भ और पाप घर-घर में रहेंगे। जिस प्रकार प्रकृति के विना पुरुष कुछ भी करने में अशक्य होता है, उसी प्रकार शक्ति के विना देवता भी कुछ करने में सक्षम नहीं होते। शक्ति के विना देवता फल देने में सक्षम नहीं होते; इसलिये स्त्री-पुरुष को संयुक्त होकर मन्त्र की साधना करनी चाहिये।।७५७-७६१।।

कौलिके वाममार्गे च पुमान् देवो न सिद्ध्यति।
आत्मानं तु शिवं ध्यायेद्देवतां शक्तिरूपिणीम् ॥७६२॥
क्रीडेत्पञ्चमकारैश्च सुप्रीता तस्य देवता।
दक्षमार्गे मातृबुद्धिः स्त्रीबुद्धिः कौलिके पथि ॥७६३॥
यस्य जाता दृढतरा तस्य तुष्टा तु देवता।
एतद्रहस्यमाख्यातं गोप्यं मातरि जारवत् ॥७६४॥

कौलमार्ग एवं वाममार्ग में पुरुषदेवता सिद्ध नहीं होते; इसलिये जो साधक अपने को शिवस्वरूप और देवता को शक्तिस्वरूप मानकर मत्स्य, मांस, मदिरा, मुद्रा एवं मैथुन—इन पाँच मकारों से क्रीड़ा करता है, उसके देवता अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं।

दक्षिणमार्ग में शक्ति में मातृबुद्धि और कौलिक मार्ग में स्त्रीबुद्धि जिसकी अतिशय

दृढ़ होती है, उसके देवता सन्तुष्ट होते हैं। इस प्रकाशित रहस्य को मातृजारवत् गुप्त रखना चाहिये।।७६२-७६४।।

अन्यद्गुह्यतमं वक्ष्ये सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
यथा दद्याद्देवतैव मन्त्रं तत्प्रब्रवीम्यहम्।।७६५।।
वर्णानाम्नायपठितान् विद्धि चन्द्रादिवाचकान्।
युक्तान् स्वरचतुष्केणाथोत्तरोत्तरसङ्ख्यकान्।।७६६।।
पूर्वदैवतसङ्केतो मयायं समुदीरितः।
अनामाद्याश्चात्र वर्णा ग्राह्याश्चाङ्कयुतौ तथा।।७६७।।
अङ्कास्तु दक्षिणाम्नाये त्वनामाद्यर्णवर्जिताः।
द्वौ द्वावेकः पुनर्द्वौ च वर्गौ सङ्केतवाचकौ।।७६८।।
आम्नायक्रमतो वर्णा मन्त्रादिक्रमतस्तथा।
अचः स्वरास्तत्क्रमेण पश्चिमोत्तरदेवयोः।।७६९।।
चतुराम्नायसङ्केताद्वर्णैर्वर्गैक्ययोजनम्।
ऊर्ध्वाम्नाये प्रकर्तव्यं वैदिकेन तु किञ्चन।।७७०।।
येन क्रमेण यद्देशे ये वर्णाः परिकीर्तिताः।
तेन क्रमेण ते ग्राह्या वर्णा एकादिसङ्ख्यकाः।।७७१।।
मन्त्रवर्णाङ्कसंयोगः स्वनामाङ्केन संयुतः।
तस्य मूलं यदायाति तदा स्वप्नः प्रजायते।।७७२।।
मूलाभावे देवताया नामाङ्कान् योजयेत्पुनः।
ग्राह्यं मूलं नैव यदा पीठे नामाङ्कयोजनम्।।७७३।।
पुनर्मूलं नैति यदा तदा स्वप्नो न जायते।
गुरोरपि गृहीतश्चेत्स मन्त्रो नाशको भवेत्।।७७४।।

सभी तन्त्रों में गुप्त दूसरे रहस्यों का वर्णन करता हूँ। जिस प्रकार देवता मन्त्र प्रदान करते हैं, उसे मैं अब कहता हूँ। स्वरचतुष्क से युक्त चन्द्र आदि के वाचक उत्तरोत्तर संख्या वाले वर्णों को आम्नाय में पढ़ा गया जानना चाहिये। यहाँ अंकों से समन्वित होने पर अनामाद्य वर्ण देवता का संकेत करने वाले हैं, यह पूर्व में मेरे द्वारा कहा गया है। दक्षिणाम्नाय में अंक अनामा आदि वर्ण से रहित होते हैं। वर्णों के दो, दो, एक और पुनः दो वर्ग—ये देवता के संकेतवाचक हैं। पश्चिमाम्नाय और उत्तराम्नाय के देवों के लिये वर्णों का योजन आम्नाय एवं मन्त्रक्रम से करके उनके साथ क्रम से स्वरों का योजन करना चाहिये। चतुराम्नाय के संकेतक वर्णों का योजन

वर्ग के क्रम से करना चाहिये। ऊर्ध्वाम्नाय में यदा-कदा वैदिक मन्त्रों के साथ भी इसी प्रकार योजन करना चाहिये। जिस देश में जैसा वर्णक्रम कहा गया है, उसी क्रम से एकादि संख्या वाले उन वर्णों को ग्रहण करना चाहिये। मन्त्र एवं वर्णों के योग के साथ साधक द्वारा अपने नामाक्षर के अंकों के योग को मिलाने पर जब उसका मूल प्राप्त होता है तब स्वप्न का प्रादुर्भाव होता है। मूल की प्राप्ति न होने पर उसके साथ देवता के नामांकों को मिलाना चाहिये और इसके बाद भी यदि मूल की प्राप्ति न हो तब उसके साथ पीठ के नामांकों को मिलाना चाहिये। इसके बाद भी यदि मूल न मिले तो स्वप्न नहीं होता। ऐसा मन्त्र गुरु द्वारा प्राप्त होने पर भी साधक का विनाश करने वाला होता है।।७६५-७७४।।

याम्योत्तरं प्रागपरं मूलाङ्कसमकोष्ठकान्।
लिखित्वैकादिकाँल्लेखेद्वर्णान् स्याद्गणना यथा ।।७७५।।
सर्वतः समसङ्ख्याकाँस्तद्युक्तिरधुनोच्यते।
पश्चिमः प्रथमो लेख्य उदङ्मध्ये तथान्तिकम् ।।७७६।।
अश्वगत्या द्वितीयः स्यान्मन्त्रिगत्या ततः परम्।
आदिगन्तं लिखेत्पश्चादश्वगत्येव पूर्ववत् ।।७७७।।
मन्त्रिगत्याथ तद्रोधे नृपस्य गमनं भवेत्।
पुनर्मन्त्रिगतिं कुर्यात्प्रागवदश्वगतिं पुनः ।।७७८।।
एवं पुनः पुनः कार्यं गुरुदर्शितवर्त्मना।
अङ्गानां जायते पूर्त्तिः सर्वतः सम्मता क्रमात् ।।७७९।।

दक्षिण-उत्तर-पूरब-पश्चिम के मूलांक के बराबर कोष्ठ बनाकर 'भ' से प्रारम्भ करके एकादि गणना के अनुसार वर्णों को लिखना चाहिये। सर्वत्र समसंख्या की स्थिति में ग्रहण की जाने वाली युक्ति को अब मैं कहता हूँ। पहले पश्चिम, तब दक्षिण, फिर पूरब और तब उत्तर में लिखना चाहिये। शतरंज की गति के समान पहले अश्वगति से, फिर मन्त्री-गति से, फिर आदिगति से और फिर पूर्ववत् अश्वगति से लिखना चाहिये। मन्त्रीगति से उसका रोध होने पर राजा का गमन होता है। इसलिये फिर मन्त्रीगति से लिखने के बाद पूर्ववत् अश्वगति से लिखना चाहिये। इसी प्रकार गुरु द्वारा बताये गये मार्ग से बार-बार करने पर सर्वत्र सम्मत अंगों की पूर्ति क्रमशः हो जाती है।।७७५-७७९।।

चतुर्णां वर्गकोष्ठेषु लिखेन्मन्त्रान् समानिति।
एतन्मध्यं प्रकल्प्याथ माहेश्यामन्तिमं न्यसेत् ।।७८०।।

उपान्तिमं तथाग्नेय्यां नैर्ऋत्यां प्रथमं न्यसेत्।
वायव्यां तु द्वितीयं स्यात्ततः सङ्ख्या यथा भवेत्॥७८१॥
पूर्णास्तथैव सन्धार्याः काष्ठायामम्बिकेऽङ्कका:।
तत्प्रतिस्पर्द्धिनः स्थाप्यास्तत्स्पर्धिन्यां तथा दिशि॥७८२॥
एवं तु समपत्राणां परिपूर्तिः प्रकीर्तिता।
भाज्यभाजकपत्राणामथवा लेखयेत्क्रमम्॥७८३॥
प्रज्ञायते विनाचार्यं यथा दिव्यं विनाखिलम्।

चार वर्गकोष्ठों में मन्त्रों को बराबर-बराबर लिखकर इनमें मध्य की कल्पना करके मन्त्र के अन्तिम वर्ण को ईशान कोण में, उससे पूर्व वाले वर्ण को अग्निकोण में, प्रथम वर्ण को नैर्ऋत्य कोण में एवं द्वितीय वर्ण को वायव्य कोण में लिखने पर जिस प्रकार की पूर्ण संख्या होती हो, उसी प्रकार से कोष्ठों में अंकों को स्थापित करना चाहिये। उसके प्रतिस्पर्धि अंकों को प्रतिस्पर्धि दिशाओं में रखने पर समपत्रों की परिपूर्ति कही गई है। अथवा क्रमशः भाज्य-भाजकपत्रों को लिखना चाहिये। इस प्रकार करने से जैसे समस्त लोको का ज्ञान न रहने पर भी अलौकिक प्राणी का स्वतः ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार विना आचार्य के भी उपयुक्त मन्त्र का ज्ञान साधक को हो जाता है।।७८०-७८३।।

आदित्यवासरे स्नात्वा प्राक्सूर्योदयतस्ततः॥७८४॥
सूर्योदये तदर्घ्याणि दत्त्वा नत्वा गृहं विशेत्।
स्वतो नीचं तु नेक्षेत शब्दं नैव प्रयोजयेत्॥७८५॥
सुमुहूर्तेऽखिलं यन्त्रं भूर्जे वा ताम्रपत्रके।
तत्तद्देवाष्टगन्धेन दले वा मण्डले लिखेत्॥७८६॥
आदौ गणेशं सम्पूज्य ततः खेटांश्च दिक्पतीन्।
एकान्ते च लिखेद्यन्त्रं तद्दिने मौनमाचरेत्॥७८७॥
न पश्येन्निन्दितं द्रव्यं ब्रह्मचारी हविष्यभुक्।
यन्त्रोर्ध्वं विलिखेन्मन्त्रं तदुदग्वाथ ठद्वयम्॥७८८॥
ङेऽन्ते साध्यतले दक्षे ठद्वयं विलिखेदिति।
कौसुम्भे पीतवसने चक्रं कृष्णे सिते तथा॥७८९॥
नीले प्रादेशमात्रे तु प्रासाद्याम्नायदैवतम्।
यन्त्रं संवेष्टयेत्तत्र स्नेहः कुडवसम्भवः॥७९०॥
तिलतैलं महिष्याज्यमेतस्याः खाखसं तथा।
गोघृतं च वसा चेति पूर्वादिष्वेव कल्पयेत्॥७९१॥

रविवार को सूर्योदय होने से पूर्व स्नान करके सूर्योदय होने पर उसे अर्घ्य प्रदान करने के पश्चात् उसका नमन करके गृह में प्रवेश करते समय अपने से निकृष्ट लोगों की ओर न तो दृष्टिपात करना चाहिये और न ही उनसे कुछ बोलना चाहिये। इस प्रकार घर में प्रवेश करके शुभ मुहूर्त में सभी यन्त्रों को भोजपत्र अथवा ताम्रपत्र पर यन्त्राधिष्ठातृ देवता के अष्टगन्ध से दल या मण्डल में अंकित करना चाहिये।

सर्वप्रथम गणेश का पूजन करने के बाद ग्रहों एवं दिक्पालों का पूजन सम्पन्न कर एकान्त में यन्त्र का लेखन करना चाहिये तथा उस दिन मौन धारण किये रहना चाहिये। उस दिन निन्दित द्रव्यों को देखना नहीं चाहिये एवं ब्रह्मचर्य धारण करके मात्र हविष्यान्न का ही भोजन ग्रहण करना चाहिये। यन्त्र के ऊपर मन्त्र, उसके उत्तर में 'ठः ठः', नीचे चतुर्थ्यन्त साध्यनाम एवं दक्षिण दिशा में 'ठः ठः' लिखना चाहिये।

आम्नायदेवता को प्रसन्न करने वाले कौसुम्भ, पीले, काले, श्वेत अथवा नीले रंग के वितस्ति परिमाण वाले कपड़े में यन्त्र को लपेटकर उस पर यन्त्रलेखन से पूर्व-संगृहीत सरसो तेल, तिल तैल, भैंस का घी, अफीम, गोघृत, चर्वी का लेप करना चाहिये।।७८४-७९१।।

अक्षतैर्विलिखेद्भूमौ पद्ममष्टदलं तथा।
कर्णिकायामुत्तरतोऽथ विघ्नगणपं यजेत्।।७९२।।
इष्टदेवं तथा मध्ये क्षेत्रपालं च दक्षिणे।
अष्टौ दिगीशान् पत्रेषु पूजयित्वा विसर्जयेत्।।७९३।।
ततः पश्चात्कर्णिकायां स्थापयेद्दीपिकां शुभाम्।
तत्र दीपं प्रतिष्ठाप्य ज्वालयेत्पूजयेत्ततः।।७९४।।
सावधानः स्वपेत्तत्र ह्यम्नायामरदिक्छिराः।
तस्मिन्नहनि निष्पापः प्राप्नुयाद्देवतागणम्।।७९५।।

तदनन्तर भूतल पर अक्षतों से अष्टदल कमल का निर्माण करके उसकी कर्णिका के उत्तर में विघ्न-गणेश का, मध्य में इष्टदेव का, दक्षिण में क्षेत्रपाल का एवं पत्रों पर आठो दिक्पालों का पूजन करने के उपरान्त विसर्जन करना चाहिये।

तत्पश्चात् उस अष्टदल कमल की कर्णिका में सुन्दर दीपिका (मशाल अथवा प्रकाशोत्पादक अन्य कोई यन्त्र) स्थापित करना चाहिये। फिर वहाँ पर दीपक रखकर उसे प्रज्ज्वलित कर उसका पूजन करने के पश्चात् रात्रि में सावधानीपूर्वक अपने आम्नायदेवता की दिशा में शिर करके शयन करना चाहिये। ऐसा करने पर उस दिन वह निष्पाप (पवित्र) साधक देवता का गणरूप हो जाता है।।७९२-७९५।।

तन्मन्त्रं येन रूपेण देवता सम्प्रयच्छति।
तद्रूपं च गुरोर्ध्यायेत्तज्जातीयाँश्च मानयेत् ॥७९६॥
आद्येऽर्के मध्यपापोऽथ द्वितीये बहुपातकी।
तृतीयेऽर्के मर्त्यगणो निष्पापः प्राप्नुयान्मनुम् ॥७९७॥
मध्यपापश्चतुर्थे तु पञ्चमे बहुपातकी।
सप्तमे राक्षसोऽपापो मध्यः षष्ठे स पापकः ॥७९८॥
अवश्यमेव प्राप्नोति मन्त्रं सप्तमभास्करे।
एतद्गुह्यतमं प्रोक्तं सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥७९९॥
म्लेच्छायापि प्रदातव्यं स्वधर्मे तत्पराय च।
विप्रायापि न दातव्यं स्वधर्मत्यागिने सुराः।
लोभात्कामात्प्रदद्याद्यः स लोकद्वयतश्च्युतः ॥८००॥

उस मन्त्र से जिस रूप में देवता की प्राप्ति होती है, उसी रूप में गुरु का भी ध्यान करना चाहिये एवं गुरु को भी देवस्वरूप ही मानना चाहिये।

मनुष्य प्रथम प्रहर के सूर्य में किञ्चित् पापी एवं द्वितीय प्रहर के सूर्य में महापातकी होता है; किन्तु तृतीय प्रहर के सूर्य में निष्पाप होकर मन्त्र प्राप्त करता है। एवमेव चतुर्थ प्रहर के सूर्य में किञ्चित् पातकी, पञ्चम प्रहर के सूर्य में बहुपातकी होता है। षष्ठ प्रहर के सूर्य में पातकी एवं सातवें प्रहर के सूर्य में पापरहित राक्षस-सदृश होता है। अतः सप्तम सूर्य में मनुष्य अवश्य ही मन्त्र की प्राप्ति कर लेता है। यह अत्यन्त गोपनीय रहस्य समस्त तन्त्रों में गुप्त रखा गया है।

इस मन्त्र को अपने धर्म में तत्पर म्लेच्छ को प्रदान करना चाहिये; किन्तु ब्राह्मण होते हुये भी यदि वह अपने धर्म एवं देवता का त्याग करने वाला है तो उसे नहीं देना चाहिये। लोभ या काम के वश में होकर जो धर्मद्रोही एवं देवद्रोही ब्राह्मण को इस मन्त्र को प्रदान करता है, वह दोनों लोकों से च्युत हो जाता है।।७९६-८००।।

पीठसम्भवरहस्यकथनम्

अथ गुह्यतमं वक्ष्ये रहस्यं पीठसम्भवम्।
यज्ज्ञात्वा साधकाः सर्वे सिद्धिं यान्ति न चान्यथा ॥८०१॥
पीठानि चैकपञ्चाशत्पञ्चाम्नायस्थदेवताः।
तत्र तिष्ठन्ति भो देवास्त्रयस्त्रिंशन्मितानि च ॥८०२॥
उपपीठानि यत्प्रोक्ताः षष्ठाम्नाये तु देवताः।
तत्तेषां तु समुद्दिष्टं तत्राथ हृदयोर्ध्वतः ॥८०३॥

तेऽङ्गपाते यत्र जातस्तत्र तिष्ठन्ति वैदिकाः ।
तथा दक्षिणमार्गश्च सिद्धयेऽन्यत्र वामकः ॥८०४॥

पीठ-रहस्य का वर्णन—अब पीठों में होने वाले अत्यन्त गुह्य रहस्यों का वर्णन करता हूँ; जिसका ज्ञान प्राप्त करके ही समस्त साधक सिद्धियाँ प्राप्त करते हैं। पाँचों आम्नाय में स्थित देवताओं के इक्यावन पीठ हैं, जहाँ तैंतीस देवता वास करते हैं। छठे आम्नाय में कथित उपपीठों के देवताओं का वास होता है, उन्हीं को उद्देश्य करके कहा गया है कि उनके हृदय से ऊपर के अंगों का जहाँ पर पतन हुआ, वहाँ पर वैदिकों का निवास होता है और वहीं पर दक्षिणमार्ग की सिद्धि प्राप्त की जा सकती है तथा हृदय से नीचे के अंगों का जहाँ पर पतन हुआ, वहाँ पर वाममार्ग का आश्रयण करने वाले लोगों को सिद्धियों की प्राप्ति होती है।।८०१-८०४।।

अकारः कामरूपाख्यमादिपीठं तदुच्यते ।
यस्मिन्पीठे मया देवि कुलमार्गः प्रवर्तितः ॥८०५॥
तत्र ते पतिता योनिस्तां दृष्ट्वा तत्प्रियं कृतम् ।
कुलशास्त्रं तु कौलानां ज्ञानिनां मुक्तिदायकम् ॥८०६॥
पञ्चमानां द्रुतं सिद्धिरन्येषां नैव जायते ।
तद् द्रष्टुं ह्यणिमादीनां सिद्धिकामैश्च गम्यताम् ॥८०७॥
श्रीविद्यायास्तु तन्मूलं मासि मासि क्षरेद्रजः ।
कुलसिद्धस्य लोपे तु रजस्तम्भः प्रजायते ॥८०८॥
अस्योपपीठद्वितयं समन्तात्तव सूचनात् ।
वंशाख्यं लोमतो जातं सिद्धिः शाबरचेरकी ॥८०९॥

कामाख्या पीठ—हे देवि! अकार आदिपीठ कामाख्या है, जिस पीठ पर मेरे द्वारा कुलमार्ग का प्रवर्तन किया गया है। कामाख्या में तुम्हारी योनि का पतन हुआ था, जिसे देखकर मैंने कौलों को उपकृत किया है। यह कुलशास्त्र ज्ञानी कौलों को मुक्ति प्रदान करने वाला है। ज्ञानी कौलों को ही पञ्च मकारों की सद्यः सिद्धि प्राप्त होती है; दूसरे को नहीं। अणिमा आदि की सिद्धि के आकांक्षियों को उस कामाख्या पीठ का दर्शन करने के लिये अवश्य जाना चाहिये। श्रीविद्या का भी मूल वही है। वहाँ प्रत्येक मास में रजःस्राव होता रहता है; किन्तु कुलसिद्धों की अनुपस्थिति में रजःस्राव बन्द हो जाता है। इस कामाख्या पीठ के दो उपपीठ हैं, जहाँ लोमवंश के लोगों को शाबरमन्त्र की सिद्धि होती है।।८०५-८०९।।

आकारः काशिकापीठस्त्वद्दत्तो भेदतां गतः ।
प्रलयेऽपि न नाशोऽस्य यत्प्रोक्तः स महेश्वरः ॥८१०॥

न पापं यत्र पुण्यं न देहत्यागात्परं पदम्।
द्वयमेव फलं तत्र मुक्तिस्तस्योपपीठके ॥८११॥
यातना भैरवी या या तत्र पीठे पदे पदे।
मया न शक्यते पातुं तत्र ते स्तनकुम्भतः।
निःसृतं धारयोर्युग्मं सासिश्च वरुणाभवत् ॥८१२॥
काश्यां बहिर्योजनैकं देवभूमिरिति स्मृता।
तत्र चाराधिता मन्त्रास्तत्कालं फलदायकाः ॥८१३॥
यथास्थानं चतुर्दिक्षु तत्र ह्याम्नायदेवताः।
तिष्ठन्ति देवास्तत्सिद्धिः पुरश्चरणमात्रतः ॥८१४॥
गङ्गायाः परपारीणः काशीभागो पवित्रतः।
व्यासशापेन तज्जातं गर्दभक्षेत्रमद्भुतम् ॥८१५॥
तत्कालं तत्र संसिद्धिस्तत्राम्नायस्य जायते।
उपपीठमसेस्तीरे सारनाथस्तु दक्षिणः।
तत्र दक्षिणमार्गस्य मन्त्राः सिद्धिप्रदायकाः ॥८१६॥
वरुणायाः सौम्यभागे सारनाथस्तथोत्तरः।
तच्चोपपीठं वामस्य मार्गस्यातीवसिद्धिकृत् ॥८१७॥

काशीपीठ—तुम्हारे द्वारा प्रदत्त भेद को प्राप्त आकार काशीपीठ है, जिसके सम्बन्ध में महेश्वर द्वारा कहा गया है कि प्रलय में भी इसका विनाश नहीं होता। जहाँ न पाप होता है और न ही पुण्य होता है; अपितु शरीरत्याग के उपरान्त परमपद की प्राप्ति हो जाती है एवं इसके उपपीठों में मुक्ति की प्राप्ति होती है; इस प्रकार वहाँ केवल दो ही फल मिलते हैं।

भैरवी की जो-जो यातनायें होती हैं, वे उस पीठ में पग-पग पर प्राप्त होती हैं और उन यातनाओं से रक्षा करने में मैं भी समर्थ नहीं हो पाता। उन योगिनियों के स्तनरूपी कुम्भ से प्रवहमान दो धारायें ही असी और वरुणा हुई हैं।

काशी से बाहर एक योजन तक की भूमि देवभूमि कही जाती है और वहाँ पर जिन मन्त्रों की आराधना की जाती है, वे मन्त्र सद्यः फलप्रद होते हैं। वहाँ पर चारो दिशाओं में यथास्थान आम्नायदेवता अवस्थित हैं; जिनकी सिद्धि केवल उनके मन्त्र का पुरश्चरण करने से ही सम्पन्न हो जाती है।

गंगा के दूसरी ओर काशी का पवित्र भूभाग व्यास के शाप के फलस्वरूप अद्भुत गर्दभक्षेत्र हो गया है। उस क्षेत्र में तत्क्षण ही आम्नाय-सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सारनाथ

से दक्षिण में असी के तीर पर उपपीठ स्थित है, जहाँ पर दक्षिणमार्ग के मन्त्र साधना करने पर सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं। वरुणा के उत्तर दिशा में सौम्य सारनाथ क्षेत्र में भी एक उपपीठ है, जो कि वाममार्गियों के लिये अत्यन्त सिद्धि प्रदान करने वाला है।।८१०-८१७।।

नेपालं तु इकारः स्याद्गुह्यं तत्र तु पार्वति।
तस्माद्वामस्य मार्गस्य मूलस्थानं तदुच्यते ॥८१८॥
षट्पञ्चाशल्लक्षमिता भैरव्यो भैरवास्तथा।
शक्तीनां च सहस्रे द्वे पीठानां च शतत्रयम् ॥८१९॥
चतुर्दश श्मशानानि तत्र सन्निहितानि च।
दक्षमार्गे सिद्धिदानि पीठान्यष्टौ च तत्र तु ॥८२०॥
सिद्धिर्वैदिकमन्त्राणां तत्र पीठचतुष्टये।
तन्मलं यत्र पतितं जातं तदुपपीठकम् ॥८२१॥
नेपालात् पूर्वदेशे तत्किरातैरुपवेष्टितम्।
त्रिंशत्तत्र सहस्राणि देवयोनीनि सन्ति हि ॥८२२॥

नेपालपीठ—हे पार्वति! इकार नेपालपीठ है, जहाँ पार्वती के गुह्यस्थान का पात हुआ है। इसीलिये उसे वाममार्ग का मूल स्थान कहा जाता है। वहाँ छप्पन लाख भैरवियाँ एवं भैरव, दो हजार शक्तियाँ, तीन सौ पीठ त्तथा चौदह श्मशान विद्यमान हैं; साथ ही दक्षिणमार्ग में सिद्धि प्रदान करने वाले आठ पीठ भी वहाँ पर हैं। वहाँ के चार पीठों पर वैदिक मन्त्रों की सिद्धि होती है।

सती के मल का जहाँ-जहाँ पतन हुआ था, वहाँ-वहाँ उपपीठ हुये। नेपाल से पूरब देश में वे उपपीठ किरातों से घिरे हुये हैं। वहाँ पर तीन हजार देवयोनियाँ रहती हैं।।८१८-८२२।।

ईकारस्य समुत्पत्तिस्थानं स्याद्रौद्रपर्वतम्।
पतितं वामनेत्रं ते महत्पीठं तदुच्यते ॥८२३॥
यस्य कस्यापि मन्त्रस्य जपात्सिद्धिः प्रजायते।
वामाचारात्तत्र देवा देवतादर्शनं भवेत् ॥८२४॥

रौद्रपर्वत पीठ—ईकार का उत्पत्तिस्थान रौद्र पर्वत है। वहाँ पर तुम्हारा बाँयाँ नेत्र गिरा था; अत: उसे महापीठ कहा जाता है। वहाँ पर सभी मन्त्रों की सिद्धि मात्र जप करने से ही मिल जाती है। वामाचार से वहाँ पर देवताओं का दर्शन प्राप्त होता है (रुद्र पर्वत पर नेपाल में धरान नाम का बाजार है। यह विराटनगर के पास स्थित है)।

उकारस्य समुत्पत्तिस्थानं काश्मीरमीरितम् ।
कर्णो निपतितो वामस्तस्मात्पीठोत्तमं तु तत् ।।८२५।।
यस्य कस्यापि देवस्य तं तं मन्त्रं जपेन्नरः ।
विद्यानां पारदर्शी स्यात्तत्त्वज्ञानी भवेत्तथा ।।८२६।।
वैदिकाद्वा कौलिकाद्वा स्मार्ताद्वा दक्षमार्गतः ।
च्युतानां तत्र देवेशि प्रायश्चित्तकराणि च ।।८२७।।
मया कृतानि तीर्थानि सद्यः प्रत्ययदान्यपि ।
करिष्याम्यतिगुप्तानि कलौ म्लेच्छावृतानि च ।।८२८।।

काश्मीर पीठ—उकार का उत्पत्ति-स्थान काश्मीर कहा गया है; यहाँ पर सती का बाँयाँ कान गिरा था; इसलिये यह उत्तम पीठ माना जाता है। यहाँ पर जिस-किसी भी देवता के मन्त्र का जप करके साधक विद्याओं का पारदर्शी एवं तत्त्वज्ञानी हो जाता है।

हे देवेशि! वैदिक मार्ग, कौलिक मार्ग, स्मार्त मार्ग अथवा दक्षिणमार्ग से जो च्युत हो जाते हैं, उनके लिये प्रायश्चित्त करने का वह उत्तम स्थान है। मेरे द्वारा निर्मित वहाँ के तीर्थ तुरन्त फल देने वाले हैं। कलियुग में काश्मीर के म्लेच्छों से आवृत हो जाने के कारण उन तीर्थों को मैं अत्यन्त गुप्त कर दूँगा।।८२५-८२८।।

ऊकारस्य समुत्पत्तिस्थानं स्यात्कान्यकुब्जकम् ।
तत्र ते दक्षकर्णस्तु पतितोऽतीवशोभनः ।।८२९।।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये तदन्तर्वेदिसञ्ज्ञितम् ।
तत्क्षेत्रं सोमपानां हि निवासायोपकल्पितम् ।।८३०।।
तत्र ब्रह्मादयो देवाः स्वस्वतीर्थानि चक्रिरे ।
तत्र वैदिकमन्त्राणां सिद्धिर्देवाः पदे पदे ।।८३१।।
तस्य देवि मलाज्जातं यमुनातटमास्थितम् ।
इन्द्रप्रस्थं नाम लोके प्रसिद्धमुपपीठकम् ।।८३२।।
ब्रह्मणा विस्मृता वेदा यत्पीठस्य प्रभावतः ।
पुनर्लब्धास्ततो जातं तीर्थं निगमबोधकम् ।।८३३।।
तत्र काली तपस्तेपे तोषयिष्यन्ति ये च माम् ।
पञ्चमैस्तदयुक्ता वा तद्वद्वेद्यद्वरेच्छया ।।८३४।।
सा तु तत्र वरं प्राप्य महाकालाज्जगत्तदा ।
पञ्चमे प्रेरयामास सिद्धिं च प्रकटा ददौ ।।८३५।।

कान्यकुब्ज पीठ—ऊकार का उत्पत्तिस्थान कान्यकुब्ज अर्थात् कन्नौज है, जहाँ

पर अत्यन्त शोभायमान सती का दाहिना कान पतित हुआ था। गंगा-यमुना के बीच में दोनों की अन्तर्वेदी के नाम से ख्यात यह क्षेत्र सोमपान करने वालों के लिये उपकल्पित है। वहाँ पर ब्रह्मादि देव अपने-अपने तीर्थों में भ्रमण करते रहते हैं। हे देवताओं! वहाँ पग-पग पर वैदिक मन्त्र सिद्ध होते हैं।

हे देवि! वहाँ दक्षिण कर्ण से नि:सृत मल से बना यमुनातट पर स्थित इन्द्रप्रस्थ-नामक प्रसिद्ध उपपीठ है, जिस पीठ के प्रभाव से ब्रह्मा को विस्मृत वेद पुन: प्राप्त हुये थे। तब से ही वह तीर्थ वेदों का बोध कराने वाला कहलाता है। वहीं पर काली ने तप करके मुझे सन्तुष्ट किया था। अथवा पञ्च मकारों से युक्त न होने पर भी उन्हें जब वर पाने की इच्छा हुई तब महाकाल से उन्होंने वर प्राप्त करके जगत् को पञ्च मकारों के प्रति प्रेरित किया और प्रत्यक्ष सिद्धि प्रदान किया।।८२९-८३५।।

ऋकारोऽभूत्पूर्णगिरौ पतिता तत्र नासिका।
अतो योगस्य संसिद्धिस्तत्र पूर्णा प्रजायते।
तत्र प्रत्यक्षतां यान्ति मन्त्राधिष्ठानदेवता: ।।८३६।।

पूर्णगिरिपीठ—ऋकार पूर्णगिरि पीठ हुआ। वहाँ पर सती की नासिका गिरी थी; इसलिये वहाँ पर साधना करने से योग की सम्पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती है। वहाँ पर मन्त्राधिष्ठित देवता प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं।।८३६।।

ॠकारस्य समुत्पत्तिस्थानं स्यादर्बुदाचल: ।
वामस्ततो निपतितस्त्वत एव च वल्लभ: ।।८३७।।
शक्तिस्तत्राम्बिका नाम स्वस्वाचारप्रिया सदा।
पुरश्चर्य्या यदैकापि भोगकाले प्रजायते।
तस्मिन्पीठे भवेन्मुक्ति: सहस्रभगसङ्गमात् ।।८३८।।
दिव्यस्त्रीणां तु तत्स्थानं तेऽवतारस्य पार्वति।
प्रतिज्ञा महती जाता तया देव्या मया सह ।।८३९।।
निर्वाहयेन्मम क्षेत्रे ब्रह्मचर्यन्तु य: पुमान्।
द्वादशाब्दन्तु मद्धर्त्ता स एवैको भविष्यति ।।८४०।।
बौद्धोऽपि स्खलितस्तत्र त्रिदिनोनैकवत्सरे।
निर्वाहस्तत्र वामस्य दक्षे विघ्ना भवन्ति हि ।।८४१।।

अर्बुदाचल पीठ—ॠकार की उत्पत्ति का स्थान अर्बुदाचल (अरावली) पर्वत है। यहाँ पर सती के बाँयें कपोल का पतन हुआ था; इसलिये वाममार्गी के लिये यह सर्वप्रिय पीठ है। यहाँ की शक्ति का नाम अम्बिका है। इन्हें स्वच्छन्दाचार प्रिय है।

भोगकाल में यदि यहाँ एक पुरश्चरण भी सम्पन्न कर लिया जाता है तो एक हजार भगों से संगम होने पर भी इस पीठ पर मोक्ष प्राप्त हो जाता है। दिव्य स्त्रियों का यह वास-स्थान है।

हे पार्वति! तुम्हारे अवतार के लिये उन देवियों ने मेरे साथ महान् प्रतिज्ञा की थी। मेरे क्षेत्र में जो पुरुष बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का निर्वाह करेगा, वह मेरा एकमात्र स्वामी होगा। स्खलित बौद्ध भी यदि वहाँ तीन दिन से रहित एक वर्ष अर्थात् तीन सौ बासठ दिनों तक वाममार्ग का निर्वाह करता है तो निश्चित रूप से दक्षमार्ग में विघ्न होते हैं।।८३७-८४१।।

लृकारस्य समुत्पत्तिर्यत्र चाम्रातकेश्वरः ।
दक्षो गण्डो निपतितस्तत्पीठे महदद्भुतम् ।।८४२।।
धनदाद्यास्तत्र यक्षा यक्षिण्यो धनदादिकाः ।
वसन्ति तत्र जपतस्तेषां सिद्धिः प्रजायते ।।८४३।।

आम्रातकेश्वर पीठ—लृकार के उत्पत्तिस्थान आम्रातकेश्वर में सती का दाँयाँ कपोल गिरा था। यह पीठ अत्यन्त ही अद्भुत है। यहाँ पर धन आदि प्रदान करने वाले यक्षों और यक्षिणियों का निवास है। इनके मन्त्रों का जप करने से ही यहाँ सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।८४२-८४३।।

लॄकारस्य समुत्पत्तिरेकाम्रे तु पुराभवत् ।
नखास्ते गलितास्तत्र तप्तं विद्याधरैर्बहु ।।८४४।।
विद्यार्थिनान्तु तत्पीठमिष्टविद्याविधायकम् ।
अश्रुतो बुध्यते ग्रन्थस्तत्र सारस्वताज्जपात् ।।८४५।।

एकाम्र पीठ—प्राचीन काल में लॄकार की उत्पत्ति एकाम्र में हुई थी। यहाँ पर देवी के नख गिरे थे। यहाँ पर विद्याधरों ने घोर तपस्या की थी। यह पीठ विद्यार्थियों के लिये उनकी अभीष्ट विद्या का विधान करने वाला है। यहाँ पर यदि सारस्वत मन्त्र का जप किया जाय तो जापक द्वारा भूतकाल में कभी न सुना गया ग्रन्थ भी उसे ज्ञात हो जाता है।।८४४-८४५।।

एकारजन्म त्रिस्रोते पातिता त्रिवली तव ।
त्रिवाते वसनं जातं प्राक्पश्चाद्दक्षिणेऽपतत् ।।८४६।।
त्रीणि तान्युपपीठानि गृहस्थस्तत्र सिद्ध्यति ।
द्विजश्च नेतरो वर्णो मनवः पौष्टिके स्थिताः ।।८४७।।

त्रिस्रोता—एकार का जन्म-स्थान त्रिस्रोता है। यहाँ पर तुम्हारी त्रिवली का पतन

हुआ था। यहाँ पर देवी के वस्त्र तीन हवाओं के कारण पूरब, पश्चिम और दक्षिण में गिरे थे; जिससे यहाँ तीन उपपीठों की उत्पत्ति हुई। यहाँ पर गृहस्थों को सिद्धि मिलती है। द्विजों को यहाँ पुष्टि की सिद्धि होती है, अन्य वर्णों को नहीं।।८४६-८४७।।

ऐकारोऽभूत्कामकोटे नाभिस्तत्र तु तेऽपतत्।
तत्र सर्वेऽपि सिद्ध्यन्ति काममन्त्रा न संशयः।।८४८।।
कामनीं त्वां समाराध्य च्छाछिकातीरसङ्गताम्।
षोडशस्त्रीसहस्राणां भोगे सामर्थ्यवान् भवेत्।।८४९।।
चतुर्दिक्षूपपीठानि तत्र जातानि पार्वति।
स्थानमप्सरसां तत्र ये मन्त्राः स्त्रीप्रसङ्गिकाः।।८५०।।
सर्वे ते तत्र सिद्ध्यन्ति क्षिप्रमेव न संशयः।
दर्शनेनापि लभते सिद्धिमिष्टां मनोरमाम्।।८५१।।

कामकोट पीठ—ऐंकार का जन्मस्थान कामकोट है; वहाँ पर तुम्हारी नाभि का पतन हुआ था। वहाँ पर सभी काममन्त्र निःसन्दिग्ध रूप से सिद्ध होते हैं। कामी पुरुष तुम्हारी आराधना करके छाछिका (?) के तीर पर एकत्रित सोलह हजार स्त्रियों का भोग करने के सामर्थ्य से युक्त हो जाता है। हे पार्वति! यहाँ इसकी चारो दिशाओं में चार उपपीठ हैं, जो अप्सराओं के स्थान हैं। स्त्री-सम्बन्धी समस्त मन्त्र यहाँ शीघ्र सिद्ध होते हैं, इसमें कोई विचिकित्सा नहीं करनी चाहिये। इस पीठ के दर्शन करने से भी मनोरम इष्ट की सिद्धि हो जाती है।।८४८-८५१।।

ओकारोऽभूच्च कैलासे हिमाचलनगोदरे।
अङ्गुल्यः पतितास्तत्र पर्वभिर्लिङ्गताङ्गताः।।८५२।।
करमालिकया तत्र यं यं मन्त्रं जपेद् द्विजः।
पुरश्चरणमात्रेण तुष्टा भवति देवता।।८५३।।

कैलास पीठ—हिमाचल पर्वत के उदर में अवस्थित कैलास पर ओकार का जन्म हुआ है; वहाँ पर देवी की पर्वप्रमाण वाली अँगुलियों का पतन हुआ था। वहाँ पर द्विज करमाला से जिस-जिस मन्त्र का जप करता है, उस जप के पुरश्चरणमात्र से ही देवता सन्तुष्ट हो जाते हैं।।८५२-८५३।।

औकारस्य समुत्पत्तिर्भृगुपीठेऽभवत्पुरा।
तत्र ते पतिता दन्तास्तत्पीठं महदद्भुतम्।।८५४।।
समस्ता वैदिका मन्त्राः कल्पोक्ताश्च स्वरूपतः।
तत्र तिष्ठन्ति सेवातः सद्यः सिद्धा भवन्ति हि।।८५५।।

भृगुपीठ—प्राचीन काल में औंकार की उत्पत्ति भृगुपीठ पर हुई है; जहाँ पर देवी के दाँत गिरे थे। यह महान् पीठ अत्यन्त अद्भुत है। यहाँ पर कल्प में उक्त समस्त वैदिक मन्त्र साकार रूप में विद्यमान रहते हैं। वे समस्त मन्त्र आराधना करने पर निश्चित ही तत्काल सिद्ध हो जाते हैं।।८५४-८५५।।

अन्तु केदारसम्भूतं दक्षं करतलं तव।
पतितं तत्र पीठे तु सिद्धयः करसंस्थिताः ।।८५६।।
तस्य दक्षे चोपपीठमगस्त्याश्रमसञ्ज्ञितम्।
कङ्कणं पतितं तत्र सर्वसिद्धिविधायकम् ।।८५७।।
तत्पश्चान्मुद्रिकायास्ते जातं तत्पीठमद्भुतम्।
इन्द्राक्षी नाम यत्तत्र सेन्द्रेणोपासिता पुरा ।।८५८।।
तत्पश्चाद्रेवतीतीरे पतिता वलयस्तव।
पतितोऽपि विमुच्येत राजराजेश्वरीति च ।।८५९।।
वामाचारेण तत्रापि सिद्धिस्तूर्णं प्रजायते।
जपादेव तु यक्षिण्यास्तत्र स्युर्दृष्टिगोचराः ।।८६०।।

केदार पीठ—अंकार केदार से उत्पन्न है; जहाँ पर तुम्हारा दाँयाँ करतल गिरा था। इस पीठ पर साधना करने से सिद्धियाँ हस्तगत होती हैं।

केदार के दक्षिण में अगस्त्याश्रम-नामक उपपीठ है; जहाँ पर समस्त सिद्धियों का विधान करने वाला तुम्हारा कंगन गिरा था। उसके पश्चात् इन्द्राक्षी नामक अद्भुत पीठ पर तुम्हारी अँगूठी का पतन हुआ था, इस पीठ की उपासना प्राचीन काल में इन्द्र ने की थी। उसके पश्चात् रेवती नदी के तीर पर तुम्हारे वलय का पतन हुआ था। यहाँ की देवी राजराजेश्वरी हैं। यहाँ पतितों का भी उद्धार हो जाता है। वामाचार-साधना से यहाँ शीघ्र सफलता मिलती है। यहाँ पर जप करने-मात्र से ही यक्षिणियाँ प्रत्यक्ष दिखाई देने लगती हैं।।८५६-८६०।।

अःकारोऽभूच्चन्द्रपुरे पतितो वामगण्डकः।
तत्र सर्वेऽपि मनवः सिद्ध्यन्त्यत्र न संशयः ।।८६१।।

चन्द्रपुर पीठ—अ:कार का जन्मस्थान चन्द्रपुर है; जहाँ पर वाम कपोल का पतन हुआ था। वहाँ पर सभी मन्त्र सिद्ध होते हैं, इसमें कोई शंका नहीं है।।८६१।।

श्रीपीठे तु ककारोऽभून्मस्तकं पतितं तव।
प्रायस्तत्र सपापानां गमनं दुर्लभं कलौ ।।८६२।।

समस्ता: शक्तयो यत्र रमन्ते निशि चेच्छया।
अप्रमत्तं न बाधन्ते विधर्मं भक्षयन्ति च ॥८६३॥
कर्णाभरणमतो जातमुपपीठं तु पूर्वत:।
ब्राह्मी तत्र स्थिता शक्तिर्ब्रह्मविद्याप्रकाशिका ॥८६४॥
कर्णार्धाभरणाद्वह्निकोणेऽभूदुपपीठकम्।
माहेश्वरी तत्र शक्तिर्मुखशुद्धिकरा मता ॥८६५॥
पत्रवल्यस्तु तद्दक्षे पतितास्ते तदाभवत्।
उपपीठं तत्र शक्ति: कौमारी जयकारिणी ॥८६६॥
कण्ठमाला तु नैर्ऋत्यां पतिता चोपपीठकम्।
वैष्णव्यावस्थितं जातमिन्द्रजाले सुसिद्धिदम् ॥८६७॥
नासा मुक्ता तु तत्पश्चात्पतिता चोपपीठकम्।
वाराह्यधिष्ठितं जातं शत्रुमर्दनकारकम् ॥८६८॥
मस्तकाभरणं वायौ पतितं चोपपीठकम्।
चामुण्डाधिष्ठितं जातं क्षुद्रदैवतसिद्धिदम् ॥८६९॥
केशाभरणतस्तेऽभूदैशान्यामुपपीठकम्।
अधिष्ठितं महालक्ष्म्या सूक्तानां तत्र सिद्धये ॥८७०॥

श्रीपीठ—ककार का उत्पत्तिस्थान श्रीपीठ है, जहाँ तुम्हारे मस्तक का पतन हुआ था। कलियुग में पापियों के लिये वहाँ जाना प्राय: दुर्लभ है। रात्रि में इस पीठ पर सभी शक्तियाँ इच्छानुसार विचरण करती हैं। वे धर्माचरण करने वालों को किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचातीं; लेकिन विधर्मियों का भक्षण कर जाती हैं।

इसके पूर्व दिशा में कर्णाभरण के गिरने से वहाँ उपपीठ हुआ। वहाँ पर ब्रह्मविद्या को प्रकाशित करने वाली ब्राह्मी शक्ति विद्यमान है। इसके अग्निकोण में कर्णाभरण का पतन हुआ था, जिससे उपपीठ बना। यहाँ माहेश्वरी शक्ति का वास है, जो कि मुख को शुद्ध करने वाली कहलाती है।

उसके दक्षिण में पत्रवल्ली का पतन होने से उपपीठ बना, जिसकी शक्ति विजय प्रदान करने वाली कौमारी है। नैर्ऋत्य कोण में कण्ठमाला के गिरने से उपपीठ बना, जहाँ पर इन्द्रजाल की सम्यक् रूप से सिद्धि प्रदान करने वाली वैष्णवी देवी विद्यमान है। उसके पश्चात् नाक की मोती के गिरने से जो उपपीठ बना, वह उपपीठ शत्रुओं का मर्दन करने वाली वाराही शक्ति द्वारा अधिष्ठित है।

वायव्यकोण में मस्तक के आभूषण के गिरने से जो उपपीठ बना, उसकी

अधिष्ठात्री चामुण्डा शक्ति है, जो कि क्षुद्र देवताओं की सिद्धि प्रदान करने वाली है। ईशान कोण में केशाभरण के गिरने से जो उपपीठ बना, उसकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी हैं। वहाँ साधना करने से सूक्तों की सिद्धि प्राप्त होती है।।८६२-८७०।।

खकारोऽभूत्तथोङ्कारे क्षेत्रे चामरकण्टके।
त्वद्बाहुपतनात्पीठो नर्मदाधिष्ठितोऽभवत् ।।८७१।।

तत्र सर्वैर्मुनिवरैः प्रणतैः समुपासकैः।
कृतं महत्तपो जाता जीवन्मुक्ता महर्षयः ।।८७२।।

तदुत्तरे चोपपीठं कञ्चुकीपतनादभूत्।
ज्योतिष्मत्या निवासोऽसौ ज्योतिर्मन्त्रप्रकाशतः ।।८७३।।

अमरकण्टक पीठ (ॐकारेश्वर)—खकार की उत्पत्ति का स्थान अमरकण्टक क्षेत्र में अवस्थित ॐकारेश्वर है। तुम्हारे बाहु का पतन होने के कारण नर्मदा के किनारे यह पीठ बना। यहाँ पर सभी मुनिवर प्रणत होकर सम्यक् रूप से उपासना करते हुये महान् तप करके जीवन्मुक्त हुये हैं। इसके उत्तर में तुम्हारी कंचुकी का पतन होने के कारण उपपीठ बना। यह ज्योतिर्मन्त्रों को प्रकाशित करने वाली ज्योतिष्मती का आवासस्वरूप है।।८७१-८७३।।

वक्षो निपतितं यत्र जातं पीठं महाद्भुतम्।
विख्यातो ज्वालया तत्र वह्निना च तपः कृतम् ।।८७४।।
स देवमुखतां प्राप्तः स्थितस्तस्योपपीठके।
ज्वालामुखीति विख्यातं स वह्निर्देवतामुखम् ।।८७५।।
पुरचर्योक्तद्रव्यस्य पुरश्चरणसङ्ख्यया।
तत्र होमः प्रकर्तव्यो मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ।।८७६।।
गोरक्षेण तु तत्रैव प्राप्तं सिद्ध्यष्टकं पुरा।
दर्शनादेव तन्नृणां सर्वसिद्धिविधायकम् ।।८७७।।

ज्वालामुखी पीठ—'ग'कार की उत्पत्ति का स्थान ज्वालामुखी है। वक्ष का पतन होने के कारण यह अत्यन्त अद्भुत पीठ हुआ और यहाँ पर अग्नि ने तप किया था। इससे देवमुखत्व को प्राप्त होकर उस उपपीठ में अवस्थित वह अग्नि ज्वालामुखी नाम से विख्यात हुआ। यहाँ पर पुरश्चर्योक्त द्रव्यों से पुरश्चरण की संख्या में हवन करने से मन्त्र की सिद्धि होती है। प्राचीन काल में गोरखनाथ ने यहीं पर आठों सिद्धियाँ प्राप्त की थी। उसके दर्शन से ही मनुष्यों को सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं।।८७४-८७७।।

मालवं तु घकारस्य वामस्कन्धोऽत्र संस्थितः ।
उपासितं तु गन्धर्वै रागज्ञानकसञ्ज्ञितम् ॥८७८॥

मालव पीठ—घकार का उत्पत्तिस्थान मालवा है, यहाँ पर देवी का बाँयाँ कंधा गिरा था। गन्धर्वों द्वारा उपासित होने के कारण यह राग का ज्ञान कराने वाले के नाम से ख्यात है।।८७८।।

कुलान्तके ङकारोऽभूत्कक्षो निपतितस्तव ।
द्वेषोच्चाटनमृत्यूनां प्रयोगास्तत्र सिद्धिदाः ॥८७९॥

कुलान्तक पीठ—ङकार का उत्पत्तिस्थान कुलान्तक पीठ है, जहाँ पर देवी की दक्ष कुक्षि का पतन हुआ था। यहाँ पर विद्वेषण, उच्चाटन और मारण प्रयोग सिद्धिदायक होते हैं।।८७९।।

कोट्टके च चकारोऽभूद्वामकक्षः प्रतिष्ठितः ।
लब्धा तु राक्षसैस्तत्र सिद्धिर्देवजयाभिधा ॥८८०॥

कोट्टक पीठ—चकार का उत्पत्तिस्थान कोट्टक पीठ है, जहाँ पर देवी की वाम कुक्षि का पतन हुआ था। यहाँ पर उपासना करके राक्षसों ने देवजय-नामक सिद्धि प्राप्त की थी।।८८०।।

छकारस्य समुत्पत्तिर्गोकर्णे परिकीर्तिता ।
जठरं पतितं यत्र तच्च पीठं महाद्भुतम् ॥८८१॥

गोकर्ण पीठ—छकार की उत्पत्ति का स्थान गोकर्ण पर कहा गया है। इस अत्यन्त अद्भुत पीठ पर देवी का जठर गिरा था।।८८१।।

मातुरीश्वरसञ्ज्ञो यो जकारस्तत्र ते बलिः ।
प्रथमा पतिता पीठं शिवमन्त्रप्रकाशकम् ॥८८२॥

मातुरीश्वर पीठ—जकार की उत्पत्ति का स्थान मातुरीश्वर पीठ है। यहाँ पर देवी की प्रथम वलि गिरी थी। यह पीठ शिवमन्त्र को प्रकाशित करने वाला कहा गया है।।८८२।।

अट्टहासं झकारस्य स्थानं तत्र परा बलिः ।
पतिता तद्गणेशस्य मन्त्रसिद्धिकरं मतम् ॥८८३॥

अट्टहास पीठ—झकार का उत्पत्ति-स्थान अट्टहास है, जहाँ पर देवी की दूसरी वलि गिरी थी। यह पीठ गणेशमन्त्र की सिद्धि प्रदान करने वाला कहा गया है।।८८३।।

विरजस्तु अकारस्य स्थानं तत्र परा बलिः।
समस्तविष्णुमन्त्राणां तत्र सिद्धिरदूरतः ॥८८४॥

विरज पीठ—अकार का उत्पत्तिस्थान विरज पीठ है, जहाँ पर तीसरी वलि गिरी थी। यहाँ पर जप करने से समस्त विष्णुमन्त्रों की शीघ्र सिद्धि हो जाती है।।८८४।।

टस्योत्पत्ती राजगृहे बस्तिपातस्तु तत्र ते।
तदधस्तात्क्षुद्रघण्टा पतिता चोपपीठकम् ॥८८५॥
तद्घण्टिकाभिधं प्रोक्तमिन्द्रजालं प्रसिद्ध्यति।
उपवेदार्थनिष्पत्तिर्भवेद्राजगृहे तथा ॥८८६॥

राजगृह पीठ—टकार की उत्पत्ति का स्थान राजगृह है, जहाँ तुम्हारी बस्ति का पतन हुआ था। उसके नीचे क्षुद्रघण्टिका के गिरने से एक उपपीठ बना। इस उपपीठ का नाम घंटिका है। इन्द्रजाल की सिद्धि यहाँ होती है। साथ ही राजगृह में उपवेदों के अर्थ की निष्पत्ति भी हुई है।।८८५-८८६।।

महापथे ठकारोऽभून्नितम्बः पतितस्तव।
जातिदुष्टैर्द्विजैस्तत्र स्वशरीरं समर्पितम् ॥८८७॥
प्राप्य जन्मान्तरं तैस्तु वेदमार्गप्रलुम्पकाः।
अघोराद्याः कलौ मार्गाश्चालिता देहसौख्यदाः ॥८८८॥

महापथ पीठ—ठकार की उत्पत्ति का स्थान महापथ पीठ है, जहाँ पर तुम्हारे नितम्ब का पतन हुआ था। जातिदुष्ट ब्राह्मणों द्वारा वहाँ पर अपने शरीर का त्याग करके कलियुग में दूसरा जन्म प्राप्त कर वैदिक मार्ग का पूर्णतः लोप करने वाला एवं शरीरसुख प्रदान करने वाला अघोरादि मार्ग का प्रचलन किया गया।।८८७-८८८।।

डकारोऽभूत्कोल्लगिरौ जघनं पतितं तव।
समस्तवनदेवानां तत्र सिद्धिरदूरतः ॥८८९॥

कोल्लगिरि पीठ—डकार की उत्पत्ति कोल्लगिरि पर हुई है, जहाँ तुम्हारी जंघा का पतन हुआ था। यहाँ पर समस्त वनदेवताओं के मन्त्र शीघ्र सिद्ध होते हैं।।८८९।।

एलापुरे ढकारोऽभूद्दक्षोरुः पतितस्तव ॥८९०॥

एलापुर पीठ—ढकार की उत्पत्ति एलापुर में हुई है, जहाँ तुम्हारा दक्ष ऊरू गिरा था।।८९०।।

कालेश्वरे णकारोऽभूद्वामोरुः पतितस्तव।
मृत्युञ्जयायुष्करणमन्त्राः सिद्ध्यन्ति तत्र तु ॥८९१॥

कालेश्वर पीठ—णकार की उत्पत्ति कालेश्वर में हुई है, जहाँ तुम्हारे वाम जंघा का पतन हुआ था। आयुष्करण एवं मृत्युञ्जय मन्त्र यहाँ पर सिद्ध होते हैं।।८९१।।

जयन्ती तु तकारस्य स्थानं जानु निपातितम्।
तत्र दक्षो जपात्सिद्ध्येर्द्धनुर्वेदो न संशयः ॥८९२॥

जयन्ती पीठ—तकार का उत्पत्ति-स्थान जयन्ती है, जहाँ तुम्हारे दक्ष घुटने का पतन हुआ था। यहाँ पर दक्षमन्त्र का जप करने से निश्चित ही धनुर्वेद सिद्ध होता है।।८९२।।

उज्जयिन्यां थकारोऽभूद्वामं जानु तु तत्र ते।
सिद्ध्यै कवचमन्त्राणामवन्तीति निगद्यते ॥८९३॥

उज्जयिनी पीठ—थकार की उत्पत्ति उज्जयिनी में हुई है, जहाँ पर तुम्हारे वाम घुटने का पतन हुआ था। यहाँ पर कवच-मन्त्र सिद्ध होते हैं, इसीलिये इसे 'अवन्ती' कहा जाता है।।८९३।।

दस्योत्पत्तिस्तु योगिन्यां तत्र जङ्घा निपातिता।
कौलिका वामका मन्त्रास्तत्र सिद्ध्यन्ति नेतरे ॥८९४॥

योगिनी पीठ—दकार की उत्पत्ति योगिनी में हुई है; जहाँ पर तुम्हारी दक्ष जँघा का पतन हुआ था। वहाँ पर मात्र कौलिक और वाममार्गी मन्त्र ही सिद्ध होते हैं; दूसरे मन्त्र सिद्ध नहीं होते।।८९४।।

धकारोऽभूत्क्षीरिकायां वामजङ्घा तु तत्र ते।
तत्र वैतालिका मन्त्राः सिद्धिं यान्ति च शाबराः ॥८९५॥

क्षीरिका पीठ—धकार की उत्पत्ति का स्थान क्षीरिका है। वहाँ पर तुम्हारी वाम जंघा का पतन हुआ था। वहाँ पर वैतालिक और शाबर मन्त्र सिद्ध होते हैं।।८९५।।

हस्तिनापुर उत्पत्तिर्नकारस्य प्रकीर्त्यते।
दक्षस्ते पतितो गुल्फो नूपुरश्चैव तत्र हि ॥८९६॥
उपपीठन्तु तज्जातं यत्ख्यातं नूपुरार्णवम्।
पीठोपपीठयोस्तत्र मन्त्राः सिद्ध्यन्ति भास्कराः ॥८९७॥

हस्तिनापुर पीठ—नकार की उत्पत्ति हस्तिनापुर में कही गई है। वहाँ पर तुम्हारा दक्ष गुल्फ गिरा था और वहीं पर नूपुर भी गिरा था। इससे नूपुरार्णव-नामक उपपीठ हुआ। इस पीठ और उपपीठ में जप करने से सूर्यमन्त्र सिद्ध होते हैं।।८९६-८९७।।

उड्डीशाख्यं पकारस्य पीठं तत्र तु वामकः।
गुल्फो निपतितस्तत्र कृतसाधकसिद्धिदम् ॥८९८॥
उड्डीशाख्यं महातन्त्रं सिद्धम्भवति तत्र तु।
नूपुरः पतितो यत्र डामरश्चोपपीठकम् ॥८९९॥

उड्डीश पीठ—पकार का प्रादुर्भाव उड्डीश-नामक स्थान में हुआ था। वहाँ पर वाम गुल्फ का पतन हुआ था। वहाँ पर उड्डीश-नामक महातन्त्र सिद्ध होता है। जिस स्थान पर नूपुर गिरा था, उस उपपीठ पर डामरमन्त्र सिद्ध होते हैं।।८९८-८९९।।

प्रयागस्तु फकारस्य स्थानं देहरसोऽत्र तु।
यत्रैव पतितस्तत्र दृश्यते श्वेतमृत्तिका ॥९००॥
गङ्गायमुनयोर्मध्ये पारावारे तथैव च।
एवं स्थानेषु तेऽस्थीनि पतितानि द्विजोत्तमैः ॥९०१॥
कृतानि तानि भूम्यन्तस्तत्र पीठानि जज्ञिरे।
गङ्गायाः प्राक् च बगलाद्युपपीठं महाद्भुतम् ॥९०२॥
उत्तरेऽस्यास्तु चामुण्डाद्युपपीठं महाद्भुतम्।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये राजराजेश्वरीश्वरम् ॥९०३॥
यमुनादक्षिणे कूले भुवनेशी समाश्रिता।
प्रयागोऽतस्तीर्थराजः पीठराजश्च कथ्यते ॥९०४॥

प्रयाग पीठ—फकार का प्रादुर्भाव प्रयाग पीठ में हुआ था। यहाँ पर जहाँ-जहाँ तुम्हारे शरीर के रस का पात हुआ था, वहाँ की मिट्टी श्वेत दिखाई देती है। गंगा-यमुना के मध्य में और आर-पार की भूमि में जहाँ अन्यान्य हड्डियों का पतन हुआ, वहाँ द्विजोत्तमों ने पीठ बनाकर यज्ञ किया। गंगा के पूरब में अत्यन्त अद्भुत बगला उपपीठ है और इसके उत्तर में चामुण्डा आदि का उपपीठ है। गंगा-यमुना के मध्य में राजराजेश्वरीश्वर का वास है। यमुना के दक्षिण तट पर भुवनेशी विराजमान है। इसीलिये प्रयाग को तीर्थराज एवं पीठराज कहा जाता है।।९००-९०४।।

षष्ठीशस्तु बकारस्य स्थानं पृष्णिस्तु तत्र ते।
दक्षिणः पतितो देवि पादुकासिद्धिरत्र तु ॥९०५॥

षष्ठीश पीठ—बकार का प्रादुर्भाव षष्ठीश पीठ में हुआ था, यहाँ तुम्हारी दाँयीं एड़ी गिरी थी। यहाँ पर पादुकामन्त्र सिद्ध होते हैं।।९०५।।

मायापुरे वामपार्ष्णिः पतितो भस्थलन्तु तत्।
देवदानवगन्धर्वमायाः सिद्ध्यन्ति तत्र तु ॥९०६॥

मायापुर पीठ—भकार का उत्पत्तिस्थान मायापुर है। यहाँ पर बाँयीं एड़ी गिरी थी। यहाँ पर देव, दानव, गन्धर्व एवं माया की सिद्धि होती है।।१०६।।

मलयाख्ये मकारोऽभूत्पीठेऽसृग्यत्र तेऽपतत्।
रक्ताम्बरादिबौद्धानां मन्त्रसिद्धिस्थलन्तु तत् ।।१०७।।

मलयगिरि पीठ—मकार की उत्पत्ति मलय पीठ में हुई है, जहाँ पर तुम्हारे रक्त का पतन हुआ था। लाल वस्त्रधारी बौद्धों के मन्त्रों की सिद्धि का स्थल यही कहा गया है।।१०७।।

श्रीशैले तु यकारोऽभूत्तत्र पित्तं तवाम्बिके।
सर्वमन्त्रास्तत्र सिद्धा वैष्णवास्तु विशेषत: ।।१०८।।

श्रीशैल पीठ—यकार का प्रादुर्भाव श्रीशैल पीठ पर हुआ था। हे अम्बिके! वहाँ पर तुम्हारा पित्त गिरा था। यहाँ पर सभी मन्त्र सिद्ध होते है। विशेषत: वैष्णवमन्त्रों की सिद्धि यहाँ होती है।।१०८।।

रस्थानन्तु हिमागस्य मेरुनामकशृङ्गकम्।
त्वन्मेद: पतितं सिद्ध्येत्स्वर्णाकर्षणभैरव: ।।१०९।।

मेरुशृंग पीठ—रकार का प्रादुर्भाव हिमालय के मेरु-नामक शृंग पर हुआ था, जहाँ पर तुम्हारा मेद गिरा था। यहाँ पर स्वर्णाकर्षणभैरव के मन्त्र सिद्ध होते हैं।।१०९।।

लकारस्य समुत्पत्तिर्गिरिपीठे तु यत्र ते।
जिह्वाग्रं पतितन्तत्र जपाद्वाक्सिद्ध्यति ध्रुवम् ।।११०।।

गिरिपीठ—लकार का प्रादुर्भाव गिरिपीठ पर हुआ था; जहाँ पर तुम्हारी जिह्वा के अग्रभाग का पतन हुआ था। यहाँ पर जप करने से निश्चित ही वाक्सिद्धि प्राप्त होती है।।११०।।

माहेन्द्रस्तु वकारस्य स्थानं मज्जाऽपतत्तव।
सर्वेषां शक्तिमन्त्राणां सिद्धिस्तत्र न संशय: ।।१११।।

माहेन्द्र पीठ—वकार का आविर्भाव माहेन्द्र पीठ पर हुआ है; जहाँ पर तुम्हारी मज्जा गिरी थी। वहाँ पर सभी शक्तिमन्त्र सिद्ध होते हैं; इसमें कोई सन्देह नहीं है।।१११।।

वामनन्तु शकारस्य स्थानमङ्गुष्ठतोऽभवत्।
जपात्तत्र तु मुख्यत्वं मन्त्रिषु प्राप्नुयादपि ।।११२।।

वामनपीठ—शकार का प्रादुर्भाव वामनपीठ पर हुआ था; जहाँ पर तुम्हारा दाँयाँ

अँगूठा गिरा था। यहाँ पर जप करने से जापक मन्त्रियों में प्रधानता प्राप्त करता है।।९१२।।

हिरण्यपुरसम्भूतः षकारो वामतोऽभवम्।
अङ्गुष्ठादेव तत्पीठो वाममार्गेऽधिकोऽभवत् ।।९१३।।

हिरण्यपुर पीठ—षकार का प्रादुर्भाव हिरण्यपुर में हुआ था; जहाँ पर तुम्हारे बाँये अँगूठे का पतन हुआ था। इसीलिये यह पीठ वाममार्गियों के लिये अतिशय प्रिय है।।९१३।।

पीठे चापि महालक्ष्म्याः सकारोऽभूद्रुचिस्तव।
शरीरात्पतिता तत्र सर्वसिद्धिः प्रजायते ।।९१४।।

महालक्ष्मी पीठ—सकार का प्राकट्य महालक्ष्मी पीठ पर हुआ है; जहाँ पर तुम्हारे शरीर से तुम्हारी शोभा का पतन हुआ था। यहाँ पर सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं।।९१४।।

हकारश्चात्रिस्थानेऽभूद्धमनी तत्र तेऽपतत्।
दृग्गोचरास्तु यावन्त्यः सिद्धयस्तत्र संस्थिताः ।।९१५।।

अत्रिपीठ—हकार का प्राकट्य अत्रिपीठ में हुआ है। यहाँ पर तुम्हारी धमनी का पतन हुआ था। सभी ज्ञात सिद्धियाँ यहाँ विद्यमान रहती हैं।।९१५।।

छायापीठे ळकारोऽभूद् दृष्टा छाया मया तव।
सतीवेषं तु लब्ध्वाऽभूच्छायापीठमतस्तु तत् ।।९१६।।

छायापीठ—ळकार का प्राकट्य छायापीठ में हुआ था। यहाँ पर तुम्हारी छाया का मुझे। दर्शन हुआ था। यहीं पर तुम्हारे द्वारा सती का वेष प्राप्त करने के कारण यह छायापीठ कहलाता है।।९१६।।

छत्रपीठे समुत्पन्नः क्षकारः केशपाशकः।
यत्र ते पतितो देवि तत्र सिद्धिरदूरतः ।।९१७।।
एतद्देवि मया प्रोक्तं रहस्यं पीठसम्भवम्।

छत्रपीठ—क्षकार का प्राकट्य छत्रपीठ में हुआ था। हे देवि! यहाँ पर तुम्हारे केशपाश का पतन हुआ था; अतः यहाँ सभी सिद्धियाँ शीघ्र मिलती हैं। इस प्रकार हे देवि! मेरे द्वारा पीठों की उत्पत्ति का विवेचन किया गया।।९१७।।

परमाद्भुतान्यरहस्यकथनम्

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् ।।९१८।।

कलौ लुब्धास्तु गुरवः शिष्या सिद्ध्यभिलाषिणः ।
तस्मान्न सिद्धिः कुत्रापि नाश एव दिने दिने ॥११९॥
वक्ष्यामि सिद्धये तस्मात्सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।
सुभक्ताय सुशिष्याय देयं नान्यत्र कुत्रचित् ॥१२०॥
तारमायारमाकामबीजपूर्वं तु रामकम् ।
विप्राद्यैश्च चतुर्थ्यन्तं नमोऽन्तं प्रजपेदिति ॥१२१॥
वृद्धाद्विप्राद् ग्राह्यमेतदेकदा तन्तु तोषयेत् ।
सिद्धोऽयं मन्त्र उद्दिष्टो गोप्यं मातरि जारवत् ॥१२२॥
षडङ्गन्यासमाद्येन बीजेन रचयेत्पुनः ।
पूर्वोक्तमातृकाणां तु न्यासमादौ समाचरेत् ॥१२३॥

अत्यन्त अद्भुत अन्य रहस्यों का कथन—अब अत्यन्त अद्भुत अन्य रहस्यों को कहता हूँ। कलियुग के गुरु लोभी होते हैं और शिष्य सिद्धियों के अभिलाषी होते हैं; फलस्वरूप कहीं भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती; अपितु दिनोंदिन नाश ही होता जाता है। इसलिये सभी तन्त्रों में गोपित सिद्धि के उपाय का वर्णन करता हूँ। इसे सुयोग्य भक्त शिष्य को ही बतलाना चाहिये; दूसरे किसी को नहीं वतलाना चाहिये। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं रामाय नमः' मन्त्र का जप विप्रादि चारो वर्णों को करना चाहिये। इस मन्त्र को वृद्ध विप्र से ग्रहण करके उसे पूर्णरूपेण सन्तुष्ट करना चाहिये। यह सिद्ध मन्त्र है और इसे मातृजारवत् गुप्त रखना चाहिये। आद्य बीज से षडङ्गन्यास करने के पश्चात् पहले पूर्वोक्त मातृकान्यास करना चाहये।।११८-१२३।।

गजानने देवयोनौ गणेशस्य च मातृकाः ।
शाक्तके लघुमात्राणां श्रीकण्ठाद्याः शिवादिषु ॥१२४॥
केशवाद्या विष्णुसूर्यग्रहादौ परिकीर्तिताः ।
पीठन्यासस्तु सर्वत्र कर्त्तव्यो देहशुद्धये ॥१२५॥
पूजादिकन्तु प्राग्वत्स्यात्पुरश्चर्या तथैव हि ।
षट्कर्माणि तु तत्स्तोत्रं भक्तस्थाने स्वयं भवेत् ॥१२६॥
नाश्यस्थाने तथा शत्रुं स्वस्थाने देवतां स्मरेत् ।
सर्वे प्रयोगाः सिद्ध्यन्ति मोक्षमन्ते लभेत सः ॥१२७॥
नैव त्याज्यस्स्वस्य धर्मः पोष्यवर्गान्प्रपूजयेत् ।
अप्रियं नैव कुर्वीत मातरम्पितरं तथा ॥१२८॥
देववत्सेवयेदेतद्रहस्यं सम्प्रकाशितम् ।

गाणपत्यों को गणेशमातृका का न्यास करना चाहिये। शाक्तों को लघु मात्रा का मातृकान्यास करना चाहिये। शैवों को श्रीकण्ठादि मातृकान्यास करना चाहिये। वैष्णवों को केशवादि न्यास करना चाहिये। सूर्योपासकों को ग्रहमातृका का न्यास करना चाहिये। देहशुद्धि के लिये सबों को पीठन्यास करना चाहिये।

पूर्ववत् पूजा आदि करके पुरश्चरण भी पूर्ववत् करना चाहिये। पूर्ववत् ही षट्कर्मों का भी सम्पादन करके स्तोत्रपाठ करना चाहिये। मन्त्रजप के समय भक्त के स्थान पर स्वयं का, नाशस्थान पर शत्रु का एवं अपने स्थान पर देवता का स्मरण करना चाहिये।। ऐसा करने से सभी प्रयोग सिद्ध होते हैं और अन्त में साधक मोक्ष प्राप्त करता है।

साधक को अपने धर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिये। पोष्यवर्गों का पूजन करना चाहिये एवं कभी भी माता-पिता का अप्रिय नहीं करना चाहिये। देवता के समान इस मन्त्र का सेवन करना चाहिये। इस प्रकार इस रहस्य को मैंने तुम्हें बतलाया।

मन्त्रप्रदः सदा दुःखी मन्त्रग्राही च निर्धनः ।।९२९।।
भविष्यति कलौ प्रायोऽविवेकाद्गुरुशिष्ययोः ।
ज्ञात्वा शास्त्रं गुरुं कुर्यात्तदा सुखमवाप्नुयात् ।।९३०।।
इति दीक्षाविधिः प्रोक्तः कुलाचारसमन्वितः ।
अर्थवादं विना देवि किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।।९३१।।
मेरौ शिवप्रणीतेऽस्मिन्मेरुणा प्रकटीकृते ।
मेरुभूते च तन्त्राणां पुरश्चर्यादिनिर्णयः ।।९३२।।

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
पुरश्चर्य्याकौलिकाचारप्रकाशो दशमः ।।१०।।

•

कलियुग में मन्त्र का दाता सदैव दुःखी रहेगा एवं मन्त्र ग्रहण करने वाला सदैव निर्धन होगा। प्रायः गुरु और शिष्य—दोनों के अविवेकी होने के कारण शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् ही गुरु बनाने से साधक सुख प्राप्त करेगा। हे देवि! इस प्रकार अर्थवाद का आश्रयण किये विना कुलाचार-समन्वित दीक्षाविधि को कहा गया। अब अन्य क्या सुनना चाहती हो? शिवप्रणीत इस मेरुतन्त्र में मेरु द्वारा प्रकट किये गये मेरुभूत तन्त्रों का पुरश्चर्या आदि निर्णय बतलाया गया।।९२९-९३२।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'पुरश्चरण कौलिकाचार' नामक दशम प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

•

अथैकादशः प्रकाशः

(कलिसंस्थितसविधिमन्त्रकथनप्रकाशः)

श्रीदेव्युवाच

महादेव महाघोरे कलौ के के च वैदिकाः ।
स्थास्यन्ति मनवः कुत्र कल्पाः के च फलप्रदाः ॥१॥
कियच्च वैदिकं कर्म ब्राह्मे पाद्मे च कथ्यते ।
शाखाः स्थास्यन्ति काश्चैव उपशाखास्तथा च काः ॥२॥

श्रीदेवी ने कहा—हे महादेव! इस घोर कलियुग में कौन-कौन लोग वैदिक हैं? कहाँ पर मन्त्रों की अवस्थिति रहती है और कौन-कौन कल्प फल प्रदान करने वाले हैं? ब्राह्म और पाद्म के अनुसार किनको वैदिक कर्म कहा जाता है? कौन-कौन उसकी शाखा है और कौन-कौन उपशाखा है?।।१-२।।

श्रीमहेश्वर उवाच

वैदिके कर्मणि कलौ नराणां धीः सुदुर्लभा ।
यथा नावं विना सिन्धुपारमिच्छन्ति मानवाः ॥३॥
तेनाज्ञानात्कलौ देवि वामे कौले कृतादराः ।
अतत्त्वज्ञा विनश्यन्ति ते तु मानुष्यवर्जिताः ॥४॥
केचित्त्वद्भक्तियोगेन उपदिष्टाः प्रतारकैः ।
वैदिकं कर्म ते त्यक्त्वा जायन्ते यवनाधिपाः ॥५॥
कलेर्दशसहस्रेषु विष्णुः स्थास्यति मध्यमम् ।
देशे स देवो भवति विन्ध्ये हिमवति क्वचित् ॥६॥
यावत्पूर्णः कलेः सन्धिस्तावत्स्थास्यत्यतः परम् ।
स्त्रीमांसमद्यनिरते लोके धर्मपराङ्मुखे ॥७॥
सर्व एव हि ते मन्त्राश्चतुर्वेदेषु संस्थिताः ।
स्थास्यन्ति पृथिवीमध्ये यावत्पूर्णः कलिर्भवेत् ॥८॥

श्रीमहेश्वर ने कहा—वैदिक कर्मों में निष्ठा रखने वाले मनुष्य कलियुग में अत्यन्त

दुर्लभ हैं; मानो विना नाव के ही मनुष्य समुद्र को पार करना चाहते हैं। हे देवि! इसीलिये अज्ञान के कारण कलियुग में कौल और वाममार्ग में श्रद्धा रखने वाले जो अतत्त्वज्ञ लोग विनाश को प्राप्त हो रहे हैं, वे मनुष्यता से रहित हैं। कुछ लोग आपमें भक्ति रखने के फलस्वरूप धोखेबाजों द्वारा उपदेश प्राप्त करके वैदिक कर्मों का परित्याग कर यवनों के स्वामी हो गये हैं।

कलियुग के दस हजार वर्षों तक विष्णु मध्यम स्थान में स्थित रहते हैं, वह स्थान विन्ध्य और हिमाचल के मध्य में कहीं पर स्थित है। कलियुग के सन्धिकाल तक वे वहीं विद्यमान रहते हैं। उसके पश्चात् स्त्री, मांस एवं मद्य में लिप्त लोगों द्वारा धर्म से विमुख हो जाने पर वे समस्त मन्त्र चारो वेदों में सम्यक् रूप से स्थित होकर जब तक कलियुग का अन्त नहीं हो जाता तब तक पृथ्वी के भीतर विद्यमान रहते हैं।।३-८।।

कलियुगान्ते त्रिंशद्वेदमन्त्रावस्थितितत्साधनार्थं प्राजापत्यादिचतुर्दशव्रतनिरूपणम्

सन्ध्यांशे तु कलेः सर्वे त्रिंशन्मन्त्रा भुवि स्थिताः।
तदा कल्किस्वरूपस्य विष्णोर्जन्म भविष्यति ॥९॥
ये तिष्ठन्ति कलौ देवि तत्साधनमहं ब्रुवे।
स्वाध्यायाभ्यसनस्यादौ व्रतान्येव चतुर्दश ॥१०॥

कलि के अन्त में वर्तमान वेदमन्त्र एवं उनकी साधना के उपाय—कलियुग के सन्ध्याकाल में जब सभी तीस वैदिक मन्त्र पृथ्वी पर विद्यमान रहेंगे, उसी समय कल्किस्वरूप विष्णु का जन्म होगा। हे देवि! जो मन्त्र कलयुग में विद्यमान रहते हैं, उनको सिद्ध करने के साधन को अब मैं कहता हूँ। उन मन्त्रों के स्वाध्याय एवं अभ्यास करने के पूर्व चौदह व्रतों का अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये।।९-१०।।

केशश्मश्रु वापयित्वा शुचिर्गुर्वाज्ञया चरेत्।
अथवा पूर्वविधिना निष्पापः सन्समभ्यसेत् ॥११॥
तानध्यायान् प्रदोषेषु देवि शिष्यः पुरःसरम्।
शुचिस्थले तथैकान्ते नम्रो गुर्वाज्ञया पठेत् ॥१२॥
त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यव्रतं त्विदम् ॥१३॥

प्राजापत्य व्रत—केश एवं दाढ़ी-मूँछ कटवा कर अर्थात् क्षौरकर्म सम्पन्न कराकर पवित्र होकर गुरु की आज्ञा का पालन करना चाहिये अथवा पूर्वोक्त विधि से निष्पाप रहते हुये उनका सम्यक् रूप से अभ्यास करना चाहिये। हे देवि! विनीत शिष्य

को प्रदोषकाल में शुद्ध पवित्र एकान्त स्थान में वैठकर गुरु द्वारा आज्ञा प्राप्त करके उन अध्यायों का पाठ करना चाहिये।

तीन दिनों तक प्रात:काल में, तीन दिनों तक सायंकाल में एवं तीन दिनों तक विना माँगे जो प्राप्त हो जाय, उसका भोजन करना चाहिये। इसके बाद तीन दिनों तक भोजन नहीं करना चाहिये। यही प्राजापत्य व्रत कहलाता है।।११-१३।।

एकैकं ग्रासमश्नीयात्त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्।
त्र्यहं चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं व्रतं त्विदम्॥१४॥

अतिकृच्छ्र व्रत—पूर्ववत् तीन-तीन दिनों के तीन त्र्यह में एक-एक ग्रासमात्र भोजन ग्रहण करने के पश्चात् अगले तीन दिनों तक उपवास करना चाहिये। यह अतिकृच्छ्र व्रत कहलाता है।।१४।।

स्नानं सन्ध्यामुपासीत प्रत्यहं विधिपूर्वकम्।
उपवासश्च सप्ताहं शिशुसान्तपनं व्रतम्॥१५॥

शिशुसान्तपन व्रत—एक सप्ताह तक प्रतिदिन विधिपूर्वक स्नान, सन्ध्योपासन एवं उपवास रहने को शिशुसान्तपन व्रत कहते हैं।।१५।।

प्रतित्र्यहं पिबेदुष्णजलक्षीरघृतानि च।
समाहितः सकृत्स्नायी तप्तकृच्छ्रं व्रतं त्विदम्॥१६॥

तप्तकृच्छ्र व्रत—प्रत्येक तीन दिनों तक सावधानी-पूर्वक गर्म जल, दूध एवं घृत का पान तथा केवल एक ही बार स्नान करना तप्तकृच्छ्र व्रत कहलाता है।।१६।।

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रसान्तपनं व्रतम्॥१७॥

कृच्छ्रसान्तपन व्रत—गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, दधि, गोघृत और कुशोदक का पान करके एक रात्रि उपवास करना कृच्छ्रसान्तपन व्रत कहलाता है।।१७।।

त्र्यहं त्र्यहं तु गोमूत्रादिकं सेव्यं त्र्यहं पुनः।
उपवासस्तदा प्रोक्तं महासान्तपनं व्रतम्॥१८॥

महासान्तपन व्रत—प्रत्येक तीन-तीन दिनों तक गोमूत्र आदि का सेवन करने के उपरान्त पुन: तीन दिनों तक उपवास करना महासान्तपन व्रत कहा गया है।।१८।।

एकैकं ह्रासयेत्पिण्डं कृष्णेऽमायां न भोजनम्।
शुक्लेऽपि वर्धयेच्चापि प्रोक्तं चान्द्रायणं व्रतम्॥१९॥

चान्द्रायण व्रत—पूर्णिमा को पूर्ण भोजन ग्रहण करने के बाद कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से चतुर्दशी तक भोजन में क्रमशः एक-एक ग्रास की कमी (प्रतिपदा को एक ग्रास कम, द्वितीया को दो ग्रास कम—इस क्रम से) करते हुये अमावस्या को निराहार रहना और पुनः शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से पूर्णिमा तक क्रमशः एक-एक ग्रास बढ़ाते हुये (प्रतिपदा को एक ग्रास, द्वितीया को दो ग्रास—इस क्रम से) भोजन करना चान्द्रायण व्रत कहा गया है।।१९।।

पलप्रमाणमन्नं तु ग्रासं शुक्लेऽपि वर्धयेत्।
ह्रसेत्कृष्णे व्रतं चान्द्रायणं स्यादेव मध्यमम् ॥२०॥

मध्यम चान्द्रायण व्रत—शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को एक पल अर्थात् साठ ग्राम अन्न का एक ग्रास, द्वितीया को उसी प्रमाण का दो ग्रास; इसी प्रकार एक-एक ग्रास के क्रम से बढ़ाते हुये पूर्णिमा को उक्त प्रमाण में पन्द्रह ग्रास भोजन ग्रहण करके पुनः कृष्णपक्ष की प्रतिपदा से एक-एक ग्रास कम करते हुये अमावास्या को एक ग्रास भोजन करना मध्यम चान्द्रायण व्रत होता है।।२०।।

चतुरः प्रातरश्नीयाद्विप्रः पिण्डान् कृताह्निकः।
चतुरोऽस्तमिते सूर्ये शिशुचान्द्रायणं व्रतम् ॥२१॥

शिशुचान्द्रायण व्रत—ब्राह्मण द्वारा नित्यकृत्य सम्पन्न करने के बाद प्रातः एवं सायंकाल चार-चार ग्रास भोजन करना शिशुचान्द्रायण व्रत कहलाता है।।२१।।

अष्टावष्टौ समश्नीयात्पिण्डान्मध्यगते रवौ।
नियतात्मा हविष्यस्य यतिचान्द्रायणं व्रतम् ॥२२॥

यतिचान्द्रायण व्रत—व्रती मनुष्य द्वारा (एक मास तक प्रतिदिन) मध्याह्न वेला में हविष्यान्न के आठ-आठ ग्रास का भक्षण करना यतिचान्द्रायण व्रत कहलाता है।।२२।।

स्नानसन्ध्यादिकं कृत्वा द्वादशाहं न भोजनम्।
स्थिरचित्तोऽप्रमत्तश्च पराकाख्यमिदं व्रतम् ॥२३॥

पराक व्रत—बारह दिनों तक स्नान-सन्ध्या आदि करने के उपरान्त भोजन न करते हुये भी स्थिरचित्त एवं अप्रमत्त रहना पराक व्रत कहलाता है।।२३।।

पिण्याकमधुतक्राम्बुसक्तूपोषणकं क्रमात्।
षड्भिर्दिनैः सौम्यकृच्छ्रनामकं व्रतमुत्तमम् ॥२४॥

सौम्यकृच्छ्र व्रत—छः दिनों तक क्रमशः पिण्याक (शिलाजीत), मधु, तक्र

(मट्ठा), जल, सत्तू एवं पोषण करने वाले पदार्थ का भक्षण करना सौम्यकृच्छ्र व्रत कहलाता है।।२४।।

एवं त्रिरात्रमभ्यासादेकैकस्य यथाविधि।
तुलापुरुषवत्त्रीणि स्तोमायनमिदं व्रतम्॥२५॥

स्तोमायन व्रत—इसी प्रकार एक-एक का विधिपूर्वक तीन-तीन रातों तक तुलापुरुष के सदृश अभ्यास करने से यह स्तोमायन व्रत कहलाता है।।२५।।

त्रींस्त्रीन् पिण्डान् समश्नीयान्नियतात्मा दृढव्रतः।
हविष्यान्नस्य वै भागमृषिचान्द्रायणं व्रतम्॥२६॥

ऋषिचान्द्रायण व्रत—दृढ़ व्रत में अवस्थित पुरुष तीस दिनों तक प्रतिदिन हविष्यान्न के निश्चित भाग के तीन-तीन ग्रास का यदि भक्षण करता है तो वह ऋषिचान्द्रायण व्रत कहलाता है।।२६।।

सप्तसप्तदिने चैवं त्रिदिने गोस्तनं पिबेत्।
षड्दिने वायुभक्षश्च स्तोमायनमिदं व्रतम्॥२७॥

स्तोमायन व्रत—मास के दोनों पक्षों में उपर्युक्त रीति से ही सात-सात दिन हविष्य-भक्षण, उसके बाद तीन-तीन दिन गोदुग्ध-पान और फिर छः-छः दिनों तक वायु-भक्षण करके रहना स्तोमायन व्रत कहलाता है।।२७।।

पर्णदूर्वायवस्वर्णबिल्वपत्रकुशोदकैः।
प्रत्येकं प्रत्यहं पीतैः पर्णकृच्छ्रव्रतं त्विदम्॥२८॥

पर्णकृच्छ्र व्रत—पत्ता, दूब, यव, स्वर्ण, बेलपत्र एवं कुश के जल का क्रमशः एक-एक दिन पान करके रहना पर्णकृच्छ्र व्रत कहलाता है।।२८।।

एतैर्व्रतैस्तु शुद्धात्मा गुरुशुश्रूषणे रतः।
भिक्षाशी वा हविष्याशी भुञ्जन् मौनं समास्थितः॥२९॥
प्रतिलोमान् पुष्पवतीं यवनान् बौद्धकौलिकान्।
आचारहीनाञ्छूद्रांश्च दृष्ट्वा नैव पठेच्छ्रुतिम्॥३०॥
रात्रेश्चतुर्थप्रहरे पादप्रक्षालनादिकम्।
कृत्वासने समाविश्य ज्ञातं वेदं समुद्धरेत्॥३१॥
निन्दां स्तुतिं न कस्यापि कुर्यादनृतभाषणम्।
नारीं रूपवतीं दृष्ट्वा ध्यायेद्विष्णुं सनातनम्॥३२॥

हरिरोम्पठनादौ च तस्यान्ते च समुच्चरेत्।
साष्टाङ्गं तु नमस्कारमादावन्ते गुरोश्चरेत् ॥३३॥

व्यक्ति को इन उपर्युक्त चौदह व्रतों से शुद्ध अन्तःकरण वाला होकर गुरुसेवा में रत रहते हुये भिक्षा में प्राप्त अन्न का अथवा हविष्यान्न का भक्षण करते हुये मौन रहना चाहिये। प्रतिलोमज, रजस्वला स्त्री, यवन, बौद्ध, कौलिक, आचारहीन एवं शूद्र को देखकर वेदपाठ नहीं करना चाहिये। रात्रि के चतुर्थ प्रहर में हाथ-पाँव धोकर आसन पर बैठकर ज्ञात वेदमन्त्र का पाठ करना चाहिये। किसी की भी निन्दा अथवा प्रशंसा नहीं करनी चाहिये और न ही झूठ बोलना चाहिये। रूपवती नारी को देखकर सनातन विष्णु का ध्यान करना चाहिये। वेदपाठ के पहले और बाद में 'हरिः ओम्' का उच्चारण करना चाहिये; साथ ही दोनों बार गुरु के निकट जाकर उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये।।२९-३३।।

आद्ये यामे चतुर्थी च गणेशानं सरस्वतीम्।
प्रयाति रात्रौ यत्तस्मात्पूजनीयो गणाधिपः ॥३४॥
अह्नश्चतुर्थप्रहरे पूजयित्वा विसर्जयेत्।
सरस्वतीं तोषयित्वा गणेशं पुनरागताम् ॥३५॥
मम वक्त्रे स्थितां चेति ध्यात्वा यामे चतुर्थके।
पुनः पठेदनध्यायस्तदा पाठं न कारयेत् ॥३६॥

चतुर्थी तिथि को रात्रि के प्रथम प्रहर में गणेश के पास सरस्वती प्रस्थान करती हैं; अतः रात्रि में गणपति का पूजन करना चाहिये; फिर दिन के चौथे प्रहर में पूजन करने के पश्चात् पूजा का विसर्जन करना चाहिये। पुनः सरस्वती को स्तोत्रों द्वारा प्रसन्न करके 'गणेश पुनः आयें और मेरी जिह्वा पर विराजमान हों' इस प्रकार का ध्यान करके रात्रि के चौथे प्रहर में पुनः वेदपाठ करना चाहिये। यदि अनध्याय हो तो पाठ नहीं करना चाहिये।।३४-३६।।

सार्धयामे प्रतिष्ठा चेत्सप्तमी याति भारती।
निकटे कार्त्तिकेयस्य गातुं तस्मात्प्रपूजयेत् ॥३७॥
सरस्वत्या युतं स्कन्दं तत्प्रभावाच्च धारयेत्।
शेषं रात्रौ पुनर्ध्यात्वा स्वागतान्तां पुनः पठेत् ॥३८॥

सप्तमी की रात्रि में डेढ़ प्रहर के बाद सरस्वती गायन करने के लिये कार्तिकेय के निकट जाती हैं; इसलिये उनका पूजन करना चाहिये। उस पूजन के प्रभाव से सरस्वती से समन्वित कार्तिकेय को धारण करना चाहिये। फिर शेष रात्रि में ध्यान करके उनके स्वागत में पाठ करना चाहिये।।३७-३८।।

त्रयोदशी चेत्पूर्वार्धं रात्रेः स्पष्टा तदा तु गीः।
कैलासं याति नृत्यन्ती प्रदोषव्रतकारिणी ॥३९॥
शिवस्याराधनार्थं तु तस्मात्तत्र पठेन्न हि।
हठात् पठति तद्यावद् वृथात्वमुपगच्छति ॥४०॥
अस्मिन् प्रदोषसमये तत्पूजाध्यानतत्परः।
प्राणायाम्यथवा मौनी त्र्यब्दाच्छाक्तस्तु सिद्ध्यति ॥४१॥

रात्रि के पूर्वार्द्ध में यदि प्रदोष व्रत करने वाली स्पष्ट त्रयोदशी हो तो सरस्वती शिव की आराधना करने के लिये नृत्य करती हुई कैलास जाती है; इसलिये उस समय वेदमन्त्रों का पाठ नहीं करना चाहिये। हठपूर्वक उस समय यदि कोई पाठ करता है तो वह व्यर्थ होता है। इस त्रयोदशी के प्रदोषकाल में शिव के पूजन और ध्यान में तत्पर होकर तीन वर्षों तक प्राणायाम-परायण अथवा मौन धारण करने से शाक्त मन्त्रों की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।।३९-४१।।

सन्ध्यालोपं न कुर्वीत कदाचिदपि कुत्रचित्।
प्रातःसन्ध्या सनक्षत्रा ससूर्या सायमुच्यते ॥४२॥
मुहूर्तपञ्चकादूर्ध्वं विंशत्यर्वाग्यथा यथा।
आसन्नोऽभिजितः कालः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्तथा तथा ॥४३॥
सन्ध्याकालस्य लोपेन मुख्यस्याग्निक्रियान्तरम्।
प्रायश्चित्तं त्वेकमर्प्यमधिकं सम्प्रदीयते ॥४४॥
परसन्ध्याकालतोऽर्वाग्गते काले ततोऽधिके।
अष्टोत्तरशतं तत्र गायत्र्या जप इष्यते ॥४५॥
राज्ञा रुद्धो गतो वापि चात्यावश्यककर्मणि।
प्राणायामत्रयं कृत्वा गायत्र्यष्टोत्तरं शतम् ॥४६॥
परान्ते भोजनं चैवमनिन्द्यं निष्कृतिः स्मृता।

कभी भी कहीं भी सन्ध्या का लोप नहीं करना चाहिये। प्रात:सन्ध्या नक्षत्रों के सहित एवं सायंसन्ध्या सूर्य-सहित करनी चाहिये अर्थात् ब्राह्म मुहूर्त में प्रात:सन्ध्या एवं सूर्यास्त के पूर्व सायंसन्ध्या करनी चाहिये। पाँच मुहूर्त के बाद बीस मुहूर्त के पूर्व तक के अभिजित् मुहूर्त का समय क्रमश: श्रेष्ठ होता है। सन्ध्याकाल के लोप होने पर मुख्य अग्निक्रिया करने के पश्चात् प्रायश्चित्तस्वरूप एक और अग्निक्रिया करनी चाहिये। सायंसन्ध्या के निर्धारित समय से अधिक समय व्यतीत हो जाने पर एक सौ आठ बार गायत्री का जप करना चाहिये।

राजा के द्वारा रोके जाने पर या आवश्यक कार्यवश कहीं चले जाने के कारण सन्ध्या का लोप होने पर तीन प्राणायाम करके एक सौ आठ बार गायत्री का जप करना चाहिये। आधी रात के बाद भोजन करना निन्द्य नहीं होता; लेकिन उसके लिये प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।।४२-४६।।

गायत्रीमन्त्रविधानम्

अथ वक्ष्यामि मन्त्राणां गायत्रीं वेदमातरम् ।।४७।।
यथा च सगुणं ब्रह्म गीयते प्रतिपाद्यते ।
निर्गुणं यां विना मुक्तिर्न कस्यापि प्रजायते ।।४८।।
महामायास्वरूपं यन्महाकालः स्वयं जपेत् ।
यत्प्रभावादहं त्वञ्च जातः काल इवापरः ।।४९।।
गायत्र्या मुनिराख्यातो विश्वामित्रोऽत्रितापसः ।
गायत्रीच्छन्द इत्युक्तं देवता सविता स्मृतः ।।५०।।

गायत्री मन्त्र-विधान—अब वेदमाता गायत्री-स्वरूपा मन्त्रों की गायत्री का वर्णन करता हूँ। जैसे कि सगुण ब्रह्म का गान एवं निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करने पर भी गायत्री के विना किसी को भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। जिस महामायास्वरूपा गायत्री का स्वयं महाकाल भी जप करते हैं एवं जिसके प्रभाव से ही मैं और तुम भी दूसरे काल के समान हैं। इस गायत्री मन्त्र के विश्वामित्र एवं तपस्वी अत्रि ऋषि कहे गये हैं, गायत्री छन्द कहा गया है एवं देवता सविता कहे गये हैं।।४७-५०।।

व्याहृतीः सप्त भूराद्या हृन्मुखांसोरुयुग्मकैः ।
जठरे च क्रमान्न्यस्य न्यासोऽयं प्रथमः स्मृतः ।।५१।।

प्रथम व्याहृति न्यास—भूः आदि सात व्याहृतियों से हृदय, मुख, दोनों अंस, दोनों ऊरुओं एवं जठर में न्यास करना ही इसका प्रथम न्यास कहा गया है, जो इस प्रकार किया जाता है—

१. ॐ भूः हृदयाय नमः।
२. ॐ भुवः मुखाय नमः।
३. ॐ स्वः दक्षांसाय नमः।
४. ॐ महः वामांसाय नमः।
५. ॐ जनः दक्षोरवे नमः।
६. ॐ तपः वामोरवे नमः।
७. ॐ सत्यम् जठरे नमः।।५१।।

पादाङ्गुल्यङ्घ्रिसन्धौ च सन्धौ स्याद्गुल्फपादयोः ।
गुल्फजान्वोस्तथा सन्धौ तथा जानूरुसन्धिषु ।।५२।।

लिङ्गे नाभौ च हृदये कण्ठे वर्णान्न्यसेत्क्रमात्।
कराङ्गुलीमूलसन्धौ मणिबन्धे च कूर्परे ॥५३॥
भुजमूले मुखे नासिकायाञ्चापि कपोलयोः।
नेत्रयुग्मे भ्रुवोः शीर्ष्णि चूडाधो वामकर्णके ॥५४॥
दक्षकर्णे मुखे मस्तके च वर्णान् क्रमान्न्यसेत्।
गायत्र्या अक्षरन्यासो द्वितीयः सम्प्रकीर्तितः ॥५५॥

द्वितीय गायत्री अक्षरन्यास—गायत्री के अक्षरों का शरीर के तत्तत् स्थानों पर किया जाने वाला द्वितीय न्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ तं नमः पादाङ्गुल्यग्रे।
२. ॐ त्सं नमः पादाङ्गुलिसन्धौ।
३. ॐ विं नमः पादगुल्फसन्धौ।
४. ॐ तुं नमः गुल्फजानुसन्धौ।
५. ॐ वं नमः जानूरुसन्धौ।
६. ॐ रें नमः लिङ्गे।
७. ॐ ण्यं नमः नाभौ।
८. ॐ भं नमः हृदये।
९. ॐ गों नमः कण्ठे।
१०. ॐ दें नमः कराङ्गुलिमूले।
११. ॐ वं नमः मणिबन्धे।
१२. ॐ स्यं नमः कूर्परे।
१३. ॐ धीं नमः भुजमूले।
१४. ॐ मं नमः मुखे।
१५. ॐ हिं नमः नासिकायाम्।
१६. ॐ धिं नमः कपोलयोः।
१७. ॐ यों नमः नेत्रयुग्मे।
१८. ॐ यों नमः भ्रुवोः।
१९. ॐ नं नमः शिरसि।
२०. ॐ प्रं नमः शिखायाम्।
२१. ॐ चों नमः वामकर्णे।
२२. ॐ दं नमः दक्षकर्णे।
२३. ॐ यां नमः मुखे।
२४. ॐ तं नमः मस्तके।

पदानि दश गायत्र्याः शिरो भ्रूमध्यदृङ्मुखे।
कण्ठहृन्नाभिगुल्फेषु जान्वोरङ्घ्र्योरथ न्यसेत् ॥५६॥
शिरोदेशे तु गायत्र्याः शिरोन्यासस्तृतीयकः।

तृतीय पदन्यास—गायत्री के दस पदों का शिर, भ्रूमध्य, नेत्र, मुख, कण्ठ, हृदय, नाभि, गुल्फ, जानुओं एवं चरणों में इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ भूः नमः शिरसि।
२. ॐ भुवः नमः भ्रूमध्ये।
३. ॐ स्वः नमः नेत्रे।
४. ॐ महः नमः मुखे।
५. ॐ जनः नमः कण्ठे।
६. ॐ तपः नमः हृदये।
७. ॐ सत्यं नमः नाभौ।
८. ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं नमः गुल्फे।
९. ॐ भर्गो देवस्य धीमहि जान्वोः।
१०. ॐ धियो यो नः प्रयोदयात् पादयोः।

शिर:प्रदेश में सम्पूर्ण गायत्री का न्यास करना चाहिये। यही तृतीय शिरोन्यास कहा गया है।।५६।।

हृदयं ब्रह्मणे प्रोक्तं विष्णवे शिर ईरितम् ।।५७।।
शिखा रुद्राय कवचमीश्वराय समीरितम् ।
नेत्रे सदाशिवायोक्तमस्त्रं सर्वात्मने स्मृतम् ।।५८।।
अयं षडङ्गन्यासस्तु चतुर्थः परिकीर्तितः ।

षडङ्गन्यास—ब्रह्मा के लिये हृदय में, विष्णु के लिये शिर पर, रुद्र के लिये शिखा में, सदाशिव के लिये नेत्र में न्यास करके सर्वात्मा के लिये अस्त्रमन्त्र से इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

१. ॐ ब्रह्मणे हृदयाय नमः।
२. ॐ विष्णवे शिरसे स्वाहा।
३. ॐ रुद्राय शिखायै वषट्।
४. ॐ ईश्वराय कवचाय हुम्।
५. ॐ सदाशिवाय नेत्राय वौषट्।
६. ॐ सर्वात्मने अस्त्राय फट्।

पज्जानुकटिनाभौ च हृदये कण्ठभालयोः ।।५९।।
क्रमाद्व्याहृतयो न्यस्याः परब्रह्म च शीर्षके ।
पुनर्व्याहृतिन्यासोऽयं पञ्चमः परिकीर्तितः ।।६०।।

पञ्चम व्याहृतिन्यास—पैर, जानु, कटि, नाभि, हृदय, कण्ठ एवं ललाट में क्रमशः व्याहृतियों का तथा मस्तक में परब्रह्म का न्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ भूः नमः पादयोः।
२. ॐ भुवः नमः जान्वोः।
३. ॐ स्वः नमः कटिस्थाने।
४. ॐ महः नमः नाभौ।
५. ॐ जनः नमः हृदये।
६. ॐ तपः नमः कण्ठे।
७. ॐ सत्यः नमः भाले।
८. ॐ परब्रह्मणे नमः शिरसि।

तत्सवितुर्हृदयाय वरेण्यं शिरसे तथा ।
भर्गो देवस्य च शिखा कवचं धीमहि स्मृतम् ।।६१।।
धियो यो नो नेत्रमुक्तमस्त्रं शेषेण कीर्तितम् ।
अयं न्यासस्तु षष्ठः स्यात्षडेते पापहारकाः ।।६२।।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ततो ध्यानं समाचरेत् ।
तद् ब्रवीमीह गायत्र्या ध्यानं भक्तमनोरमम् ।।६३।।

षष्ठ षडङ्गन्यास—हृदय, शिर, शिखा आदि में छठा षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ तत्सवितुर्हृदयाय नमः। ४. ॐ धीमहि कवचाय हुम्।
२. ॐ वरेण्यं शिरसे स्वाहा। ५. ॐ धियो यो नः नेत्रत्रया वौषट्।
३. ॐ भर्गो देवस्य शिखायै वषट्। ६. ॐ प्रचोदयात् अस्त्राय फट्।

ये छहो न्यास पापों का हरण करने वाले होते हैं। उक्त न्यास करने के अनन्तर ध्यान करना चाहिये। अब यहाँ मैं भक्तों के लिये मनोरम गायत्री के ध्यान को कहता हूँ।।६१-६३।।

मुक्ताविद्रुमहेमनीलधवलच्छायैर्मुखैस्त्रीक्षणै-
र्युक्तामिन्दुकलानिबद्धमुकुटां तत्त्वार्थवर्णात्मिकाम्।
गायत्रीं वरदाभयाङ्कुशकशाः शुद्धं कपालं गुणं
शङ्खं चक्रमथारविन्दयुगलं हस्तैर्वहन्तीं भजे।।६४।।

ध्यान—मोती, मूँगा एवं सुवर्ण से नील एवं श्वेत आभायुक्त मुखों वाली, तीन नेत्रों वाली, चन्द्रकला से समन्वित मुकुट धारण करने वाली, तत्त्वार्थ का प्रकाशन करने वाली, हाथों में वरद, अभय, अंकुश, चाबुक, त्रिशूल, कपाल, शंख, चक्र और दो कमलों को धारण करने वाली गायत्री का मैं ध्यान करता हूँ।।६४।।

ततस्तु पूजयेद्देवीमष्टावरणसंयुताम्।
आदौ सम्पूज्य देवेशीं कोणाग्रे पूजयेत्ततः।।६५।।
त्रिकोणस्याग्निकोणैस्तु प्रादक्षिण्येन देवताः।
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी प्रथमावृतिः।।६६।।
तस्याग्रतस्त्वष्टदिक्षु क्रमादष्टौ प्रपूजयेत्।
आदित्यमूषां च रविं प्रज्ञां भानुं प्रभां तथा।
भास्करं चापि सन्ध्यां च द्वितीयावरणं त्विदम्।।६७।।
ततोऽर्चयेदष्टदलकेशरेष्वङ्गषट्ककम्।
गायत्र्याश्च तृतीयोक्तं दलमध्ये यजेदिमाः।।६८।।
प्रह्लादिनीं प्रभां नित्यां बिल्वरुद्रां विलासिनीम्।
प्रभावतीं जयां शान्तां चतुर्थावरणं त्विदम्।।६९।।
ततो यजेद्दलाग्रेषु कान्तिं दुर्गां सरस्वतीम्।
बिल्वरूपां विशालां च ईशानीं व्यापिनीं क्रमात्।
विमलां च क्रमात्प्रोक्तं पञ्चमावरणं त्विदम्।।७०।।
तदग्रिमे त्वष्टदले एताः पूज्यास्तु शक्तयः।
तमोहारिणिका पूज्या विश्वयोनिर्जयावहा।।७१।।

पद्मालया पराशोभा पद्मरूपा च षष्ठकम्।
भवेदावरणं चाग्रे ब्राह्म्याद्याः सप्त मातरः।
अष्टमी त्वरुणा प्रोक्ता प्रोक्तमावरणं त्विदम् ॥७२॥
रविः सितः कुजो राहुः शनिश्चन्द्रो बुधो गुरुः।
अष्टमावरणं चैतच्चतुरस्रदिगष्टके ॥७३॥
दिक्पालाः सप्तमे प्रोक्तास्तदस्त्राणि तथाष्टमे।
एवं सम्पूजयेद्देवीं तस्या मुद्राः प्रदर्शयेत् ॥७४॥

तदनन्तर आठ आवरणों से समन्वित देवी की पूजा करनी चाहिये। प्रथमतः देवेशी का पूजन करने के उपरान्त कोण के अग्रभाग में अग्निकोण से प्रारम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से ब्राह्मी, माहेश्वरी एवं वैष्णवी का पूजन करना चाहिये। यह प्रथम आवरण का पूजन होता है।

तदनन्तर द्वितीय आवरण में कोणों से आगे आठो दिशाओं में क्रमशः आदित्य, ऊषा, रवि, प्रज्ञा, भानु, प्रभा, भास्कर एवं सन्ध्या की पूजा करने से द्वितीय आवरण का पूजन सम्पन्न होता है।

तदनन्तर अष्टदल के केशरों में छः अङ्गदेवताओं के साथ-साथ गायत्री का पूजन करना चाहिये। इन सबका पूजन दल के मध्य में करना चाहिये। इस प्रकार यह तृतीय आवरण की पूजा होती है।

चतुर्थ आवरण में प्रह्लादिनी, प्रभा, नित्या, बिल्वरुद्रा, विलासिनी, प्रभावती, जया एवं शान्ता का पूजन करना चाहिये।

तदनन्तर दलों के आगे कान्ति, दुर्गा, सरस्वती, बिल्वरूपा, विशाला, ईशानी, व्यापिनी एवं विमला का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार यह पञ्चम आवरण का पूजन कहा गया है।

तदनन्तर षष्ठ आवरण में उसके आगे अष्टदल में इनकी शक्तियों—तमोहारिणी, सूक्ष्मा, विश्वयोनि, जयावहा, पद्मालया, परा, शोभा एवं पद्मरूपा का पूजन करना चाहिये।

तत्पश्चात् सप्तम आवरण में ब्राह्मी आदि सप्त मातृकाओं एवं अरुणा का पूजन करना चाहिये। इस प्रकार यह सप्तम आवरण की पूजा सम्पन्न होती है।

तदनन्तर चतुरस्र की आठो दिशाओं में रवि, सित, कुज, राहु, शनि, चन्द्र, बुध एवं गुरु का पूजन करने से अष्टम आवरण की पूजा पूर्ण होती है। दिक्पालों का पूजन

नवम आवरण में एवं दिक्पालों के अस्त्रों का पूजन दशम आवरण में करना चाहिये। आवरण-सहित पूजन यन्त्र में गायत्री का पूजन इस प्रकार किया जाता है—

पूजन-यन्त्र
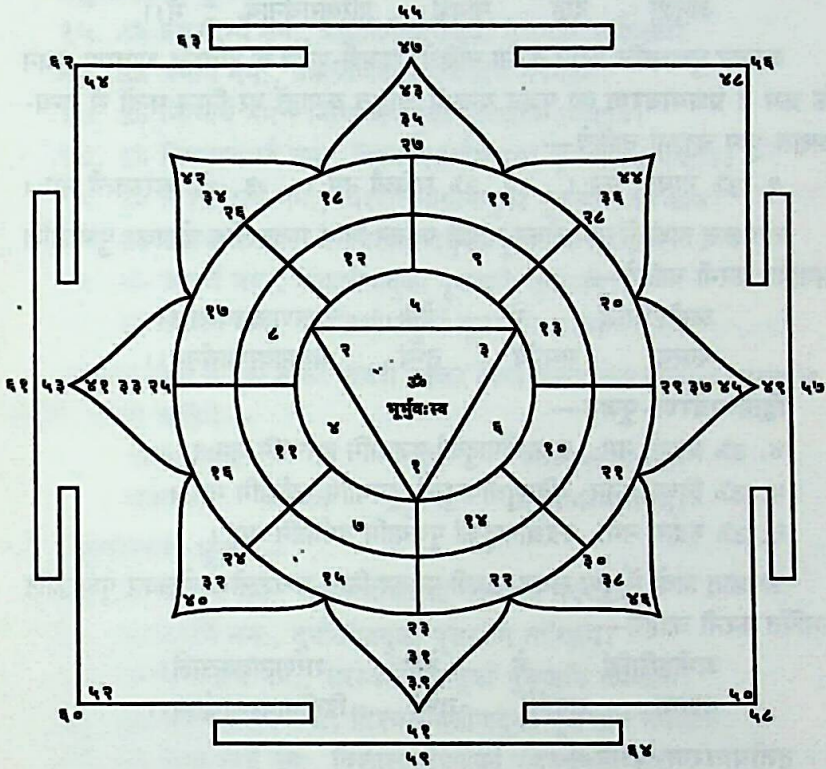
गायत्री-पूजन—श्रीगायत्रीं ध्यायामि आवाहयामि गायत्रीदेव्यै नम: आवाहनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धं समर्पयामि। गायत्रीदेव्यै नम:, नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि। ॐ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुवरिण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रयोदयात् श्रीगायत्रीपादुकां पूजयामि, तर्पयामि नम:। गायत्रीदेव्यै नम:, धूपमाघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं उत्तरापोशानं, हस्तप्रक्षालनं, पादप्रक्षालनं, आचमनीयं ताम्बूलं च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि। ॐ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुवरिण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्। गायत्रीदेव्यै नम:, मन्त्रपुष्पं समर्पयामि। प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवती गायत्री सुप्रसन्ना वरदा भवतु।

इस प्रकार पूजन करने के पश्चात् पुष्पाञ्जलि लेकर 'ॐ भूर्भुव: स्व: तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो न: प्रचोदयात्'।

ॐ संविन्मये परे देवि परामृतरसप्रिये।
अनुज्ञां देहि गायत्री परिवारार्चनाय मे।।

कहकर पुष्पाञ्जलि प्रदान करना चाहिये। गायत्री-पूजन के उपरान्त आवरण-पूजन के क्रम में **प्रथमावरण** का पूजन यन्त्र में अङ्कित क्रमाङ्कों पर निम्न मन्त्रों से गन्ध-अक्षत-पुष्प चढ़ाना चाहिये—

१. ॐ गायत्र्यै नम:। २. ॐ सवित्र्यै नम:। ३. ॐ सरस्वत्यै नम:।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

द्वितीयावरण-पूजन—

४. ॐ ब्रह्मणे नम:, ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
५. ॐ विष्णवे नम:, विष्णुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
६. ॐ रुद्राय नम:, रुद्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तृतीयावरण-पूजन—

७. ॐ आदित्याय नम:, आदित्यश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
८. ॐ भानवे नम:, भानुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
९. ॐ भास्कराय नम:, भास्करश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१०. ॐ रवये नम:, रविश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
११. ॐ ऊषायै नम:, ऊषाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१२. ॐ प्रज्ञायै नम:, प्रज्ञाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१३. ॐ प्रभायै नम:, प्रभाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१४. ॐ सन्ध्यायै नम:, सन्ध्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या सर्मपये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

चतुर्थावरण-पूजन—

१५. ॐ प्रह्लादिन्यै नमः, प्रह्लादिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१६. ॐ प्रभायै नमः, प्रभाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१७. ॐ नित्यायै नमः, नित्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१८. ॐ विश्वम्भरायै नमः, विश्वम्भराश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१९. ॐ विशालिन्यै नमः, विशालिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२०. ॐ प्रभावत्यै नमः, प्रभावतीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२१. ॐ जयायै नमः, जयाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२२. ॐ शान्त्यै नमः, शान्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।।

पञ्चमावरण-पूजन—

२३. ॐ कान्त्यै नमः, कान्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२४. ॐ दुर्गायै नमः, दुर्गाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२५. ॐ सरस्वत्यै नमः, सरस्वतीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२६. ॐ विश्वरूपायै नमः, विश्वरूपाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२७. ॐ विशालायै नमः, विशालाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२८. ॐ ईशान्यै नमः, ईशानीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२९. ॐ चापिन्यै नमः, चापिनीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३०. ॐ विमलायै नमः, विमलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।।

षष्ठावरण-पूजन—

३१. ॐ अपहारिण्यै नमः, अपहारिणीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३२. ॐ सूक्ष्मायै नमः, सूक्ष्माश्रीपादुकां पूजयामि तंर्पयामि।

३३. ॐ विश्वयोन्यै नमः, विश्वयोनिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३४. ॐ जयावहायै नमः, जयावहाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३५. ॐ पद्मालयायै नमः, पद्मालयाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३६. ॐ परायै नमः, पराश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३७. ॐ शोभायै नमः, शोभाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३८. ॐ पद्मरूपायै नमः, पद्मरूपाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।।

सप्तमावरण-पूजन—

३९. ॐ ब्राह्म्यै नमः, ब्राह्मीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४०. ॐ माहेश्वर्यै नमः, माहेश्वरीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४१. ॐ कौमार्यै नमः, कौमारीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४२. ॐ वैष्णव्यै नमः, वैष्णवीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४३. ॐ वाराह्यै नमः, वाराहीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४४. ॐ इन्द्राण्यै नमः, इन्द्राणीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४५. ॐ चामुण्डायै नमः, चामुण्डाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।
४६. ॐ महालक्ष्म्यै नमः, महालक्ष्मीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।।

अष्टमावरण-पूजन—

४७. ॐ सों सोमाय नमः, सोमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
४८. ॐ बुं बुधाय नमः, बुधश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
४९. ॐ गुं गुरवे नमः, गुरुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५०. ॐ शुं शुक्राय नमः, शुक्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५१. ॐ भौं भौमाय नमः, भौमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५२. ॐ शं शनैश्चराय नमः, शनैश्चरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५३. ॐ रां राहवे नमः, राहुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

५४. ॐ कें केतवे नमः, केतुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम्।।

नवमावरण-पूजन—

५५. ॐ इन्द्राय नमः, इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५६. ॐ अग्नये नमः, अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५७. ॐ यमाय नमः, यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५८. ॐ निर्ऋतये नमः, निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५९. ॐ वरुणाय नमः, वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६०. ॐ वायवे नमः, वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६१. ॐ कुबेराय नमः, कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६२. ॐ ईशानाय नमः, ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६३. ॐ ब्रह्मणे नमः, ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६४. ॐ अनन्ताय नमः, अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम्।।

दशमावरण-पूजन—

६५. ॐ वज्राय नमः, वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६६. ॐ शक्तये नमः, शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६७. ॐ दं दण्डाय नमः, दण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६८. ॐ खं खड्गाय नमः, खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६९. ॐ पां पाशाय नमः, पाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
७०. ॐ अं अङ्कुशाय नमः, अङ्कुशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
७१. ॐ गं गदायै नमः, गदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
७२. ॐ त्रिं त्रिशूलाय नमः, त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
७३. ॐ पं पद्माय नमः, पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
७४. ॐ चं चक्राय नमः, चक्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् हाथों में पुष्प लेकर गायत्री पढ़कर निम्न मन्त्रश्लोक बोलकर पुष्पाञ्जलि समर्पित करनी चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं दशमावरणार्चनम्।।

इस प्रकार गन्ध-अक्षत-पुष्प चढ़ाकर धूप, दीप, नैवेद्य आदि समर्पित करते हुये सम्यक् रूप से पूजन सम्पन्न करके उनकी तत्तत् मुद्राओं का प्रदर्शन करना चाहिये।

व्याहृतित्रयसंयुक्तां गायत्रीं सर्वदा जपेत् ।
चतुर्विंशतिलक्षाणि पुरश्चरणमुच्यते ।।७५।।

पूजन करते समय बराबर तीनों व्याहृतियों से समन्वित गायत्री का जप करते रहना चाहिये। चौबीस लाख जप से इसका पुरश्चरण कहा गया है।।७५।।

क्षीरौदनं तिलान्दूर्वां सिद्धौदनसमिद्वराः ।
पृथग्द्रव्यं सहस्रं तु जुहुयान्मन्त्रसिद्धये ।।७६।।
तर्पणादि ततः कृत्वा गुरुं सन्तोष्य यत्नतः ।
प्रयोगानाचरेद्विद्वांस्तदनुज्ञापुरःसरम् ।।७७।।

मन्त्र को सिद्ध करने के लिये पायस, तिल, दूब, भात—इन श्रेष्ठ समिधाओं से अलग-अलग एक-एक हजार हवन करना चाहिये। इसके पश्चात् तर्पण आदि करके यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करने के उपरान्त उनकी (गुरु की) आज्ञा प्राप्त करके विद्वान् को प्रयोग करना चाहिये।।७६-७७।।

तत्त्वसङ्ख्यासहस्राणि मन्त्री प्रजुहुयात्तिलैः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो दीर्घमायुः स विन्दति ।।७८।।
आयुषे चाज्यहविषा केवलेनाथ सर्पिषा ।
दूर्वान्वितैस्तिलैर्मन्त्री जुहुयात्त्रिसहस्रकम् ।।७९।।
प्रतिद्रव्यमथो मासषट्कं वै जुहुयाद् द्विजः ।
अरुणार्कैश्च श्वेतार्कैरयुतं नियतेन्द्रियः ।।८०।।
ब्रह्मश्रिये च जुहुयात्प्रसूनैर्ब्रह्मवृक्षजैः ।

तिल से पाँच हजार की संख्या में हवन करने से मन्त्रज्ञ साधक सभी पापों से मुक्त होकर दीर्घ आयु प्राप्त करता है। आयुवृद्धि के लिये गोघृत एवं पायस से अथवा केवल गोघृत से अथवा तिल एवं दूब से तीन हजार की संख्या में हवन करना चाहिये; अथवा द्विज को ब्रह्मचर्य का आचरण करते हुये छः मास तक अलग-अलग प्रत्येक

द्रव्य के साथ लाल अथवा श्वेत मदार (अकवन) का पुष्प मिलाकर हवन करना चाहिये। ब्रह्मश्री की प्राप्ति के लिये ब्रह्मवृक्ष (पलाश) के पुष्प से हवन करना चाहिये।।७८-८०।।

जपेन्मुमुक्षुर्गायत्रीं तुर्यपादेन संयुताम् ।।८१।।
परोरजसे सावदोमिति तुर्यः प्रकीर्तितः ।
विमलोऽस्य ऋषिश्छन्दो गायत्री देवता स्मृतः ।।८२।।
परमात्मा प्रथमतः प्रणवन्यासमाचरेत् ।
सप्तव्याहृतिगायत्रीन्यासाद्यान् पूर्ववच्चरेत् ।।८३।।
ब्रह्मात्मने तु हृदयं शिरो विष्ण्वात्मने तथा ।।८४।।
शिखा रुद्रात्मने चेति कवचं चेश्वरात्मने ।
सदाशिवात्मने नेत्रमस्त्रं सर्वात्मने इति ।।८५।।
नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरं तपः ।
तृणायन्ते महाविद्यादयः सर्वे यदग्रतः ।।८६।।

मोक्षकामी साधक को चतुर्थ पाद-संयुक्त गायत्री का जप करना चाहिये। 'परोरजसे सावदोम्' इसे गायत्री मन्त्र का चतुर्थ पाद कहा गया है। गायत्री के इस चतुर्थ पाद के ऋषि विमल, छन्द गायत्री एवं देवता परमात्मा कहे गये हैं। जप आरम्भ करने के पूर्व प्रणव से न्यास करने के अनन्तर पूर्ववत् सप्तव्याहृति न्यास, गायत्रीन्यास आदि करना चाहिये। षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ ब्रह्मात्मने हृदयाय नमः।
ॐ विष्ण्वात्मने शिरसे स्वाहा।
ॐ रुद्रात्मने शिखायै वषट्।
ॐ ईश्वरात्मने कवचाय हुम्।
ॐ सदाशिवात्मने नेत्राय वौषट्।
ॐ सर्वात्मने अस्त्राय फट्।

गायत्री से बढ़कर न कोई मन्त्र है और न ही कोई तप है। इसके सामने सभी मन्त्र तिनके के समान हो जाते हैं।।८१-८६।।

अथ गोप्यं प्रवक्ष्यामि गोप्यं मातरि जारवत् ।
सर्वेषां वेदमन्त्राणां यच्च संसिद्धिकारकम् ।।८७।।
लोलुपाय कृतघ्नाय नास्तिकाय शठाय च ।
सगर्वाय गुरुद्वेष्ट्रे प्रोच्य शापमवाप्नुयात् ।।८८।।

गोप्य गायत्री-साधन-विधान—जो समस्त वैदिक मन्त्रों का सम्यक् रूप से सिद्धि प्रदान करने वाला है, उस अत्यन्त गोपनीय विधान को अब मैं कहता हूँ; इसे अपनी माता की योनि के समान ही गोपनीय रखना चाहिये। इसे लोलुप, कृतघ्न, नास्तिक, शठ (धूर्त), घमण्डी एवं गुरुद्रोही के समक्ष प्रकट करने से देवता का शाप प्राप्त होता है।।८७-८८।।

येषां वैदिकमन्त्राणां चलनं कर्मसूचितम् ।
तानादिपादसहितान् गायत्र्यास्तु सदा जपेत् ।।८९।।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु तद्वत्पालनमन्त्रकान् ।
मध्यपादेन संयुक्तानन्तिमेन तु नाशकान् ।।९०।।
अवश्यं जायते सिद्धिर्गायत्री तेजसा इति ।
अयं संक्षेपतः प्रोक्तो गायत्र्या गोपितो विधिः ।।९१।।

विविध कर्मों के लिये जिन वैदिक मन्त्रों का प्रचलन कहा गया है, उन मन्त्रों के प्रथम पाद के सहित गायत्री का बराबर एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। इसी प्रकार पालक मन्त्रों को मध्य पाद से समन्वित कर एवं विनाशक मन्त्रों को अन्तिम पाद से समन्वित कर जप करना चाहिये। इस प्रकार विधिपूर्वक जप करने से गायत्री के तेज से उस मन्त्र की सिद्धि अवश्य प्राप्त हो जाती है। संक्षेप में यही गायत्री की परम गोपनीय विधि कही गई है।।८९-९१।।

पद्ममष्टदलं लेख्यं ह्रींकारं कर्णिकास्थितम् ।
द्वौ द्वौ स्वरौ दिग्विदिशं प्रतिपत्रं समालिखेत् ।।९२।।
किञ्जल्केषु तदग्रेषु गायत्र्यर्णांस्त्रिशस्त्रिशः ।
तद्बहिर्वृत्तयुगलान्तराले तु समालिखेत् ।।९३।।
ककाराद्यांस्तथोमापो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म ।
भूर्भुवः स्वरोमिति च यन्त्रं सर्वार्थसिद्धिदम् ।।९४।।

अष्टदल कमल बनाकर उसकी कर्णिका में 'ह्रीं' लिखकर कमल के आठों दलों में दो-दो स्वरों को लिखना चाहिये। दलों के आगे किञ्जल्कों में गायत्री के तीन-तीन वर्णों को लिखकर उसके बाहर के वृत्तयुग्म के अन्तराल में ककारादि मातृकाओं के साथ 'आपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्मं भूर्भुवः स्वरोम्' लिखना चाहिये। यह यन्त्र सर्वार्थ-सिद्धिदायक होता है।।९२-९४।।

सर्वार्थसिद्धिदायक यन्त्र
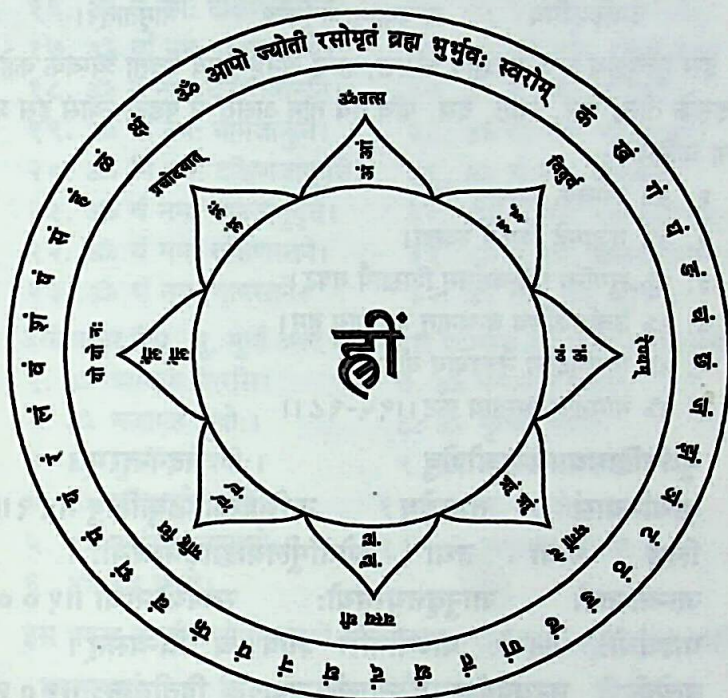
मृत्युञ्जयमन्त्रविधानम्

मृत्योर्भयं तु सर्वेषां सर्वदा सर्वकर्मसु ।
तस्मिञ्जिते तु देवादीन् मोक्षान्तं साधयेज्जनः ॥९५॥
तदर्थं सम्प्रवक्ष्यामि मन्त्रं मृत्युञ्जयाभिधम् ।
उपासना तस्य तस्माद्वंशेऽल्पायुश्च नो भवेत् ॥९६॥
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीयमामृतात् ॥९७॥
वशिष्ठोऽस्य मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्देवस्तु त्र्यम्बकः ।
त्रिचतुर्वसुगोपञ्चत्रिभिर्वर्णैः षडङ्गकम् ॥९८॥

मृत्युञ्जय मन्त्र-विधान—सबों को सभी कर्मों में सदैव मृत्यु का भय बना रहता है। मृत्यु को विजित कर लेने पर मनुष्य देवादिकों से लेकर मोक्ष तक का साधन कर सकता है; अतः उसके लिये मृत्युञ्जय-नामक मन्त्र को कहता हूँ, इसकी उपासना करने से उपासक के वंश में कोई भी अल्पायु नहीं होता। मन्त्र है—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

इस मृत्युञ्जय मन्त्र के ऋषि वसिष्ठ, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता त्र्यम्बक कहे गये हैं। इसके तीन, चार, आठ, दस, पाँच एवं तीन अक्षरों से षडङ्ग-न्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ त्र्यम्बकं हृदयाय नमः।
२. ॐ यजामहे शिरसे स्वाहा।
३. ॐ सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् शिखायै वषट्।
४. ॐ उर्वारुकमिव बन्धनात् कवचाय हुम्।
५. ॐ मृत्युर्मुक्षीय नेत्रत्रयाय वौषट्।
६. ॐ मामृतात् अस्त्राय फट्।।९५-९८।।

पूर्वपश्चिमयाम्येन्दुकोणेषु तदनन्तरम्।
कुर्यान्न्यासं तथाङ्गेषु नाभिहृत्कण्ठकुक्षिषु ।।९९।।
लिङ्गे पायौ तथा चोर्वोर्मूलयोश्चोरुमध्ययोः।
जान्वोस्ततो जानुवृत्तयुग्मयोः स्तनयोस्तथा ।।१००।।
पार्श्वयोः पादयोः पाण्योर्नसि शीर्षे च विन्यसेत्।
प्रत्येकं मनुवर्णांश्च न्यासोऽयन्तु द्वितीयकः ।।१०१।।
पदान्येकादशान्येव शिरोभ्रूयुगलाक्षिषु।
वक्त्रे गण्डयुगे भूयो हृदये जठरे पुनः ।।१०२।।
गुल्फोरुजानुपादेषु न्यासमेवं समाचरेत्।
एवं न्यासत्रयं कुर्यान्मातृकान्यासपूर्वकम् ।।१०३।।

तदनन्तर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिणकोणों एवं नाभि, हृदय आदि स्थानों में मन्त्र के प्रति वर्ण का न्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ त्र्यं नमः पूर्वमुखे।
२. ॐ बं नमः पश्चिममुखे।
३. ॐ कं नमः दक्षिणमुखे।
४. ॐ यं नमः उत्तरमुखे।
५. ॐ जां नमः उरसि।
६. ॐ मं नमः कण्ठे।
७. ॐ हें नमः मुखे।
८. ॐ सुं नमः नाभौ।
९. ॐ गं नमः हृदि।
१०. ॐ न्धिं नमः पृष्ठे।
११. ॐ पुं नमः कुक्षौ।
१२. ॐ ष्टिं नमः लिङ्गे।
१३. ॐ वं नमः गुदे।
१४. ॐ र्धं नमः दक्षिणोरुमूले।

१५. ॐ नं नम: वामोरुमूले।
१६. ॐ उं नम: दक्षिणोरुमध्ये।
१७. ॐ र्वां नम: वामोरुमध्ये।
१८. ॐ रुं नम: दक्षिणजानुनि।
१९. ॐ कं नम: वामजानुनि।
२०. ॐ मिं नम: दक्षिणजानुवृत्ते।
२१. ॐ वं नम: वामजानुवृत्ते।
२२. ॐ वं नम: दक्षिणस्तने।
२३. ॐ धं नम: वामस्तने।
२४. ॐ नां नम: दक्षिणपार्श्वे।
२५. ॐ मृं नम: वामपार्श्वे।
२६. ॐ त्यों नम: दक्षिणपादे।
२७. ॐ मुं नम: वामपादे।
२८. ॐ क्षीं नम: दक्षिणकरे।
२९. ॐ यं नम: वामकरे।
३०. ॐ मां नम: दक्षनासायाम्।
३१. ॐ मृं नम: वामनासायाम्।
३२. ॐ तात् नम: मूर्ध्नि।

इसी प्रकार शिर, भ्रू, मूर्धा आदि में एकादश पदन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ त्र्यम्बकं शिरसि।
२. ॐ यजामहे भ्रुवो:।
३. ॐ सुगन्धिं नेत्रयो:।
४. ॐ पुष्टिवर्द्धनं मुखे।
५. ॐ उर्वारुकं गण्डयो:।
६. ॐ इव हृदये।
७. ॐ बन्धनात् जठरे।
८. ॐ मृत्यो: लिङ्गे।
९. ॐ मुक्षीय हृदये।
१०. ॐ मा जान्वो:।
११. ॐ अमृतात् पादयो:।

इस प्रकार उपर्युक्त तीनों न्यासों को मातृका-न्यास करते हुये करना चाहिये।

हस्ताभ्यां कलशद्वयामृतरसैरापूरयन्तं शिरो
द्वाभ्यां तौ दधतं मृगाक्षवलयौ द्वाभ्यां वहन्तं परम्।
अङ्कन्यस्तकरद्वयामृतभरं कैलासकान्तं शिवं
स्वच्छाम्भोजनिभं सदेन्दुमुकुटं देवं त्रिनेत्रं भजे ॥१०४॥

ध्यान—मृगाक्ष एवं वलय द्वारा अपने दोनों हाथों में उठाये गये कलश के अमृतरस से मस्तक पर सिञ्चित होते हुये, अमृत से परिपूर्ण अपने दोनों हाथों को अपनी गोद में रखे हुये, स्वच्छ कमल के सदृश चन्द्रमुकुट को सदा शिर पर धारण किये हुये, तीन नेत्रों वाले, कैलास के प्रिय भगवान् शिव को मैं प्रणाम करता हूँ।।१०४।।

पञ्चाक्षरोदिते पीठे पूजयेद्वृषभध्वजम्।
मूर्त्तिं मूलेन सङ्कल्प्य वक्ष्यमाणेन वर्त्मना ॥१०५॥
पूर्वमङ्गानि सम्पूज्य मूर्त्तिं पश्चात्तु पूजयेत्।
पूर्वादिप्रादक्षिण्येनेशानाय सूर्यमूर्तये ॥१०६॥
महादेवाय सोमेति मूर्त्तयेऽन्ते समुच्चरेत्।
भवाय क्षितिमूर्त्तये शर्वाय जलमूर्त्तये ॥१०७॥

रुद्राय चाग्निमूर्त्तये उग्राय वायुमूर्त्तये ।
भीमायाकाशमूर्त्तये ङेऽन्तं पशुपतिं तथा ॥१०८॥
यजमानमूर्त्तये चेति दलाग्रेषु ततो यजेत् ।
रमा राका प्रभा ज्योत्स्ना पूर्णैषा पूरणी सुधा ॥१०९॥
तृतीयावरणे चैताश्चतुर्थावरणे त्विमाः ।
विद्या विश्वा सिता युक्ता सारा साध्या शिवा निशा ॥११०॥
आर्या प्रज्ञा प्रभा मोहा शान्तिः कान्तिर्धृतिर्मतिः ।
पञ्चमावरणे चैताः षष्ठावरणगा अथ ॥१११॥
धरा माया सती पद्मा शान्ता माघो द्व्यामला ।
सप्तमे लोकपालाश्च तदस्त्राणि तथाष्टमे ॥११२॥

पूजन यन्त्र
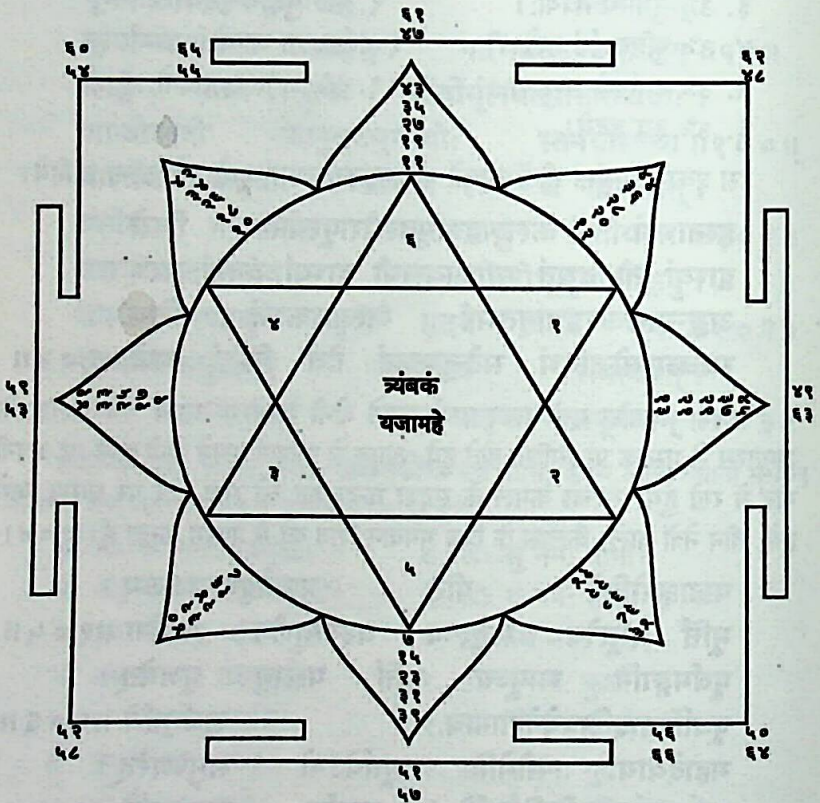
'नमः शिवाय' इस पञ्चाक्षर मन्त्र के पीठ पर मूल मन्त्र से वृषभध्वज की मूर्ति कल्पित करके वक्ष्यमाण क्रम से पूजन करना चाहिये। सोना, चाँदी या ताँबा का यन्त्र चौकी पर रखकर प्राणप्रतिष्ठा करके 'नमो भगवते सकलगुणनिधानात्मशक्तियुक्ताय अनन्ताय योगपीठात्मने नमः' कहकर पुष्पासन देकर गन्ध-अक्षत-पुष्प चढ़ाकर निम्न मन्त्र का उच्चारण कर देव से आवरण-पूजन की अनुज्ञा प्राप्त करनी चाहिये—

ॐ संविन्मयः परो देवः परामृतरसप्रियः।
अनुज्ञां शिव मे देहि परिवारार्चनाय मे।।

प्रथम आवरण में अङ्कित क्रम से इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ त्र्यम्बकं हृदयाय नमः हृदयश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

२. ॐ यजामहे शिरसे स्वाहा शिरःश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

३. ॐ सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् शिखायै वषट् शिखाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

४. ॐ उर्वारुकमिव बन्धनात् कवचाय हुं कवचश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

५. ॐ मृत्योर्मुक्षीय नेत्रत्रयाय वौषट् त्रिनेत्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

६. ॐ मामृतात् अस्त्राय फट् अस्त्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नमः।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

द्वितीय आवरण के पूजनक्रम में अष्टदल में अङ्कित क्रम से इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

७. ॐ अर्कमूर्तये नमः अर्कमूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

८. ॐ चन्द्रमूर्तये नमः चन्द्रमूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

९. ॐ वसुधामूर्तये नमः वसुधामूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

१०. ॐ जलमूर्तये नमः जलमूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

११. ॐ अग्निमूर्तये नमः अग्निमूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

१२. ॐ वायुमूर्तये नमः वायुमूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

१३. ॐ आकाशमूर्तये नमः आकाशमूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

१४. ॐ यजमानमूर्तये नमः यजमानमूर्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तृतीयावरण में अङ्कित क्रम से इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१५. ॐ रमायै नमः रमाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१६. ॐ राकायै नमः राकाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१७. ॐ प्रभायै नमः प्रभाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१८. ॐ ज्योत्स्नायै नमः ज्योत्स्नाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
१९. ॐ पूर्णायै नमः पूर्णाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२०. ॐ ऊषायै नमः ऊषाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२१. ॐ पूरण्यै नमः पूरणीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२२. ॐ सुधायै नमः सुधाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

चतुर्थावरण में अङ्कित क्रम से इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

२३. ॐ विश्वायै नमः विश्वाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२४. ॐ विद्यायै नमः विद्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२५. ॐ सितायै नमः सिताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२६. ॐ प्रह्वायै नमः प्रह्वाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२७. ॐ सारायै नमः साराश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२८. ॐ सन्ध्यायै नमः सन्ध्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
२९. ॐ शिवायै नमः शिवाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
३०. ॐ निशायै नमः निशाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहना चाहिये—

पञ्चमावरण में निर्धारित क्रम से इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

३१. ॐ आर्यायै नम: आर्याश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३२. ॐ प्रज्ञायै नम: प्रज्ञाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३३. ॐ प्रभायै नम: प्रभाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३४. ॐ मेधायै नम: मेधाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३५. ॐ शान्त्यै नम: शान्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३६. ॐ कान्त्यै नम: कान्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३७. ॐ धृत्यै नम: धृतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३८. ॐ मत्यै नम: मतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिता: तर्पिता: सन्तु नम:' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।।

षष्ठावरण में निम्नांकित क्रम से पूजन करना चाहिये—

३९. ॐ धरायै नम: धराश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४०. ॐ मायायै नम: मायाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४१. ॐ अवन्यै नम: अवनिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४२. ॐ पद्मायै नम: पद्माश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४३. ॐ शान्तायै नम: शान्ताश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४४. ॐ मोक्षायै नम: मोक्षाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४५. ॐ जयायै नम: जयाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४६. ॐ अमलायै नम: अमलाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिता: तर्पिता: सन्तु नम:' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।।

सप्तमावरण में निर्धारित क्रम से इन्द्रादि लोकपालों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

४७. ॐ इन्द्राय नम: इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४८. ॐ अग्नये नम: अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४९. ॐ यमाय नम: यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

५०. ॐ निर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५१. ॐ वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५२. ॐ वायवे नमः वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५३. ॐ कुबेराय नमः कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५४. ॐ ईशानाय नमः ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५५. ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५६. ॐ अनन्ताय नमः अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।।

अष्टमावरण में लोकपालों के अस्त्रों का पूजन इस प्रकार कहना चाहिये—

५७. ॐ वज्राय नमः वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५८. ॐ शक्तये नमः शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
५९. ॐ दण्डाय नमः दण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६०. ॐ खड्गाय नमः खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६१. ॐ पाशाय नमः पाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६२. ॐ अङ्कुशाय नमः अङ्कुशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६३. ॐ गदायै नमः गदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६४. ॐ त्रिशूलाय नमः त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६५. ॐ पद्माय नमः पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।
६६. ॐ चक्राय नमः चक्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

आवरण-पूजन के पश्चात् मृत्युञ्जय मन्त्र पढ़ने के बाद निम्न मन्त्र पढ़कर पुष्पाञ्जलि समर्पित करके 'पूजिताः तर्पिताः सन्तु नमः' कहना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं अष्टमावरणार्चनम्।।

जपेल्लक्षमिमं मन्त्रमेवं ध्यायेज्जितेन्द्रियः।
जुहुयाद्दशभिर्द्रव्यैरयुतं घृतसंयुतैः ।।११३।।
बिल्वं पलाशं खदिरं वटं च तिलसर्षपौ।
पायसं दधि दूर्वां च तथैकेन सहस्रकम् ।।११४।।

तर्पयित्वाभिषिच्याथ ब्राह्मणांस्तर्पयेद्गुरुम्।
एवं कृते प्रयोगार्हो जायतेऽयं महाभनुः ॥११५॥

तदनन्तर जितेन्द्रिय रहकर इस प्रकार ध्यान-पूजन करने के उपरान्त एक लाख की संख्या में इस मन्त्र का जप करना चाहिये। जप पूर्ण हो जाने के पश्चात् घृत से युक्त बेल, पलाश, खैर, वट, तिल, सरसों, खीर, दधि और दूब—इन दस द्रव्यों से दस हजार हवन करने के उपरान्त पुनः उक्त द्रव्यों से अलग-अलग एक-एक हजार हवन करना चाहिये।

हवन के पश्चात् तर्पण एवं अभिषेक करने के वाद ब्राह्मणों और गुरु का तर्पण करना चाहिये। ऐसा करने से यह महामन्त्र प्रयोग के योग्य हो जाता है।।११३-११५।।

अयुतं जुहुयाद्बिल्वसमिद्भिः सम्पदे सुधीः।
जुहुयाद् ब्रह्मवृक्षस्य समिद्भिर्ब्रह्मतेजसे ॥११६॥
खदिरैरयुतं हुत्वा शान्तिं पुष्टिमवाप्नुयात्।
समिद्भिर्वटवृक्षस्य जुहुयाच्च यथाविधि ॥११७॥
धनधान्यसमृद्धः स्यादयुतेन तु साधकः।
तिलैस्तत्सङ्ख्यया हुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥११८॥
सिद्धार्थैरयुतं हुत्वा शत्रून् विजयते नृपः।
अनेनैव विधानेन न स्यान्मृत्युरकालतः ॥११९॥
पायसेन कृतो होमो रक्षाश्रीकीर्तिकान्तिदः।
गोदुग्धेन च सिद्धान्नं हुत्वा कृत्यां विनाशयेत् ॥१२०॥
अयमेव मतो होमः शान्तिश्रीसम्पदावहः।
दधिहोमेन संवादं कुर्याद्विद्वेषिणोर्मिथः ॥१२१॥
प्रत्यहं जुहुयान्मन्त्री दूर्वामष्टोत्तरं शतम्।
आमयान्निखिलाञ्जित्वा दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१२२॥

विद्वान् साधक को सम्पत्ति-प्राप्ति के लिये बेल की समिधा से दस हजार हवन करना चाहिये। ब्रह्मतेज की प्राप्ति-हेतु पलाश की समिधा से हवन करना चाहिये। खैर की समिधा से दस हजार हवन करने पर शान्ति और पुष्टि की प्राप्ति होती है। वटवृक्ष की समिधा से विधिपूर्वक दस हजार हवन करने से साधक धन-धान्य से समृद्ध होता है। तिलों से दस हजार हवन करने पर साधक सभी पापों से मुक्त हो जाता है। सरसों से दस हजार हवन करने पर राजा को शत्रुओं पर विजय प्राप्त होती है; साथ ही इसी विधान से हवन करने पर अकालमृत्यु की प्राप्ति भी नहीं होती। खीर से दस हजार

हवन करने पर रक्षा, श्री, कीर्ति एवं कान्ति की प्राप्ति होती है। गाय के दूध और भात से हवन करने पर कृत्या का विनाश होता है। शान्ति, श्री एवं सम्पदा की प्राप्ति के लिये भी यही होम करना कहा गया है। दधि के हवन से दो विरोधियों के मध्य बातचीत होने लगती है। प्रतिदिन दूब से एक सौ आठ बार हवन करने वाला साधक समस्त रोगों पर विजय प्राप्त करके दीर्घायु होता है।।११६-१२२।।

जुहुयाज्जन्मदिवसे पायसान्नैर्घृतान्वितैः ।
इच्छन्ननिन्दितां लक्ष्मीमारोग्यं विपुलं यशः ।।१२३।।
गव्यदुग्धघृताक्ताभिर्दूर्वाभिर्जुहुयाद्वशी ।
सविंशति शतं सम्यग्यज्जन्मदिवसे सुधीः ।
आमयैः सकलैर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं सुखी ।।१२४।।
काश्मरीसमिधः सर्पिः पयोऽन्नं त्रिशतं पृथक् ।
जुहुयाद् ब्राह्मणानन्ते भोजयेन्मधुरान्वितम् ।।१२५।।
प्रीणयेद्बहुधान्याद्यैरात्मनो गुरुमादरात् ।
अनामयमवाप्नोति दीर्घमायुः श्रिया सह ।।१२६।।
सघृतेन पयोऽन्नेन हुत्वा पर्वणि पर्वणि ।
राज्यश्रियमवाप्नोति षण्मासान्नात्र संशयः ।।१२७।।
लाजैर्विशुद्धैर्जुहुयात्कन्या चैव वराप्तये ।
क्षीरद्रुमसमिद्धोमाद् ब्राह्मणादीन् वशं नयेत् ।।१२८।।
स्नात्वा सहस्रं प्रजपेदादित्याभिमुखो मनुम् ।
आधिव्याधिविनिर्मुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
अनेन मनुना सर्वं साधयेदिष्टमात्मनः ।।१२९।।

अनिन्द्य लक्ष्मी, आरोग्य एवं प्रभूत यश की कामना से अपने जन्मदिन पर घृत-मिश्रित पायसान्न से हवन करना चाहिये। गोदुग्ध एवं घृत से सिक्त दूब से अपने जन्मदिन पर एक सौ बीस बार सम्यक् रूप से हवन करने पर जितेन्द्रिय साधक सभी रोगों से मुक्त होकर एक सौ वर्ष का सुखी जीवन प्राप्त करता है। काश्मरी समिधा से एक सौ आठ बार, गाय के घी से एक सौ आठ बार एवं दूध-मिश्रित अन्न से एक सौ आठ बार हवन करने के उपरान्त ब्राह्मणों को खीर-पूआ का भोजन कराकर अपने गुरु को आदरपूर्वक बहुत अन्न आदि देकर प्रसन्न करने पर साधक रोग-रहित रहते हुये प्रभूत धन-धान्य से सम्पन्न होकर दीर्घकाल तक जीवित रहता है। छः मास तक पर्व-पर्व पर घी-दूध-मिश्रित अन्न से हवन करने से राज्यश्री की प्राप्ति होती है; इसमें कोई संशय नहीं है।

जो कन्या केवल धान के लावा से हवन करती है, उसे सुन्दर योग्य वर प्राप्त होता है। दूध वाले वृक्षों की समिधा से हवन करने पर ब्राह्मण आदि को वश में किया जा सकता है।

स्नान करके सूर्य की ओर मुख करके जो मृत्युञ्जय मन्त्र का जप करता हैं, वह आधि-व्याधि से मुक्त होकर दीर्घकाल तक जीवित रहता है। इस मन्त्र से अपने सभी अभीष्ट कार्य सिद्ध किये जा सकते हैं।।१२३-१२९।।

धनेशमन्त्रविधिः

अथ दारिद्र्यनाशाय वक्ष्ये मन्त्रं धनेशितुः।
मेधातिथिर्ऋषिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम्।।१३०।।
अङ्गन्यासकरन्यासा देवता सदसस्पतिः।
जपं कुर्याच्च मासे तु चत्वारिंशत्सहस्रकम्।।१३१।।
देवताप्रीतये कार्यः षण्मासं तु मनोर्जपः।
पुरश्चरणमेतत्स्यात्स्वशक्त्या विप्रभोजनम्।।१३२।।

धनेश मन्त्र-विधान—अब दरिद्रता के नाश के लिये धनेश के मन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि मेधातिथि, छन्द गायत्री और देवता सदसस्पति कहे गये हैं। अङ्गन्यास और करन्यास करके एक महीने में चालीस हजार मन्त्रजप करना चाहिये। देवता को प्रसन्न करने के लिये छः महीने तक मन्त्रजप करना चाहिये। यही इस मन्त्र का पुरश्चरण होता है। तत्पश्चात् अपनी शक्ति के अनुसार ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये।।१३०-१३२।।

अश्वारूढं कुन्तपाणिं कुबेरं चित्रिणीप्रियम्।
निधीश्वरं स्वर्णवर्णं वन्दे गन्धर्वनायकम्।।१३३।।

ध्यान—अश्व पर विराजमान, हाथों में कुन्त धारण किये, निधियों के अधिपति, चित्रिणी के प्रिय, गन्धर्वों के प्रधान, सुवर्ण के सदृश वर्ण वाले कुबेर की मैं वन्दना करता हूँ।।१३३।।

अथ मन्त्रः

सदसस्पतिमद्भुतं प्रेयमिन्द्रस्य काम्यत्सनिं ते धामयाशिषम्।।१३४।।
चत्वारिंशत्सहस्रं यः प्रतिमासं जपेन्नरः।
महाभाण्डारिकः कुर्यात्तस्य दारिद्र्यनाशनम्।।१३५।।

कुबेर का मन्त्र है—'सदसस्पतिमद्भुतं प्रेयमिन्द्रस्य काम्यत्सनिं ते धामयाशिषम्।'

इस मन्त्र का छः मास तक प्रतिमास चालीस हजार की संख्या में जो मनुष्य जप करता है, उसकी दरिद्रता का महाभाण्डारिक (कुबेर) विनाश कर देते हैं।।१३४-१३५।।

सर्वार्थसाधकं वक्ष्ये संग्रामविजयप्रदम्।
जलन्धरवधायाहं यत्स्मरामि शृणुष्व तत् ॥१३६॥
जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः।
स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१३७॥
त्रिष्टुप्छन्दो मुनिश्चास्य मरीचिः कश्यपो मतः।
देवता जातवेदोऽग्निः षडङ्गानि समाचरेत् ॥१३८॥

संग्राम-विजयप्रद मन्त्र—अब मैं सर्वार्थसाधक एवं संग्राम में विजय प्रदान करने वाले मन्त्र को कहता हूँ, जिसका स्मरण मैंने जलन्धर-वध के लिये किया था; उसे तुम सुनो। मन्त्र है—'जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।'

इस मन्त्र के ऋषि मरीचि कश्यप, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता जातवेदा अग्नि कहे गये हैं। इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
२. ॐ सोममरातीयतः तर्जनीभ्यां नमः।
३. ॐ निदहाति वेदः मध्यमाभ्यां नमः।
४. स नः परिषदति अनामिकाभ्यां नमः।
५. दुर्गाणि विश्वा नावेव कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
६. सिन्धुं दुरितात्यग्निः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादि न्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम हृदयाय नमः।
२. ॐ सोममरातीयतः शिरसे स्वाहा।
३. ॐ निदहाति वेदः शिखायै वषट्।
४. स नः परिषदति कवचाय हुम्।
५. दुर्गाणि विश्वा नावेव नेत्रत्रयाय वौषट्।
६. सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट्।।१३६-१३८।।

नवागषट्सप्तनागसप्तभिर्मनुवर्णकैः।
अङ्गुष्ठयोर्गुल्फयोश्च जङ्घयोर्जानुनोस्तथा ॥१३९॥
ऊर्वोः कट्योर्लिङ्गनाभ्योर्हृदये स्तनयोस्तथा ॥१४०॥

पार्श्वयोश्च तथा पृष्ठे स्कन्धयोरन्तरे तयोः।
बाह्वोश्चैवोपबाह्वोश्च द्वयोः कूर्परयोरपि ॥१४१॥
प्रकोष्ठद्वितये चापि मणिबन्धद्वये तथा।
करयोस्तलयोरास्ये नस्यक्ष्णोश्चैव कर्णयोः ॥१४२॥
भ्रुवोश्चैव तु मास्तिक्ये मूर्द्धनीति द्वितीयकः।

द्वितीय मन्त्रवर्ण न्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. ॐ जां नम: दक्षपादाङ्गुष्ठे।
२. ॐ तं नम: वामपादाङ्गुष्ठे।
३. ॐ वें नम: दक्षगुल्फे।
४. ॐ दं नम: वामगुल्फे।
५. ॐ सें नम: दक्षजङ्घायाम्।
६. ॐ सुं नम: वामजघने।
७. ॐ नं नम: दक्षजानुनि।
८. ॐ वां नम: वामजानुनि।
९. ॐ मं नम: दक्षोरौ।
१०. ॐ सों नम वामोरौ।
११. ॐ मं नम: कट्याम्।
१२. ॐ मं नम: लिङ्गे।
१३. ॐ रां नम: नाभौ।
१४. ॐ तीं नम: हृदये।
१५. ॐ यं नम: दक्षस्तने।
१६. ॐ तों नम: वामस्तने।
१७. ॐ निं नम: दक्षपार्श्वे।
१८. ॐ दं नम: वामपार्श्वे।
१९. ॐ हां नम: पृष्ठे।
२०. ॐ तिं नम: दक्षस्कन्धे।
२१. ॐ वें नम: वामस्कन्धे।
२२. ॐ द: नम: दक्षस्कन्धान्तरे।
२३. ॐ सं नम: वामस्कन्धान्तरे।
२४. ॐ नां नम: दक्षबाहौ।
२५. ॐ पं नम: वामवाहौ।
२६. ॐ रिं नम: वामोपबाहौ।
२७. ॐ षं नम: वामोपबाहौ।
२८. ॐ दं नम: दक्षकूर्परि।
२९. ॐ तिं नम: वामकूर्परि।
३०. ॐ दुं नम: दक्षप्रकोष्ठे।
३१. ॐ गां नम: वामप्रकोष्ठे।
३२. ॐ णिं नम: दक्षमणिबन्धे।
३३. ॐ विं नम: वाममणिवन्धे।
३४. ॐ श्वां नम: दक्षकरतले।
३५. ॐ नां नम: वामकरतले।
३६. ॐ वें नम: मुखे।
३७. ॐ वं नम: नासिकायाम्।
३८. ॐ सिं नम: दक्षनेत्रे।
३९. ॐ न्धुं नम: वामनेत्रे।
४०. ॐ दुं नम: दक्षकर्णे।
४१. ॐ रिं नम: वामकर्णे।
४२. ॐ तां नम: भ्रुवोर्मध्ये।
४३. ॐ त्यं नम: मस्तके।
४४. ॐ ग्नि: नम: मूर्द्धनि।

शिखायां च ललाटे च नेत्रयोः कर्णयोस्तथा ॥१४३॥
ओष्ठेऽधरे च जिह्वायां कण्ठे बाह्वोस्तथा हृदि।
कुक्षौ कटौ च गुह्ये च ऊर्वोर्जान्वोश्च जङ्घयोः।
पादयोश्च पदन्यासः प्रोक्तोऽयं ध्यानमुच्यते ॥१४४॥

तृतीय मन्त्रपदन्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. ॐ जातवेदसे शिखायाम्।
२. ॐ सुनवाम ललाटे।
३. ॐ सोमं नेत्रयोः।
४. ॐ अरातीयतः कर्णयोः।
५. ॐ निदहाति ओष्ठे।
६. ॐ वेदः अधरे।
७. ॐ सः जिह्वायाम्।
८. ॐ नः कण्ठे।
९. ॐ परिषदति बाह्वोः।
१०. ॐ दुर्गाणि हृदि।
११. ॐ विश्वा कुक्षौ।
१२. ॐ नावा कट्याम्।
१३. ॐ इव गुह्ये।
१४. ॐ सिन्धुं ऊर्वोः।
१५. ॐ दुरिता जान्वोः।
१६. ॐ अति जंघयोः।
१७. ॐ अग्निः पादयोः।

इस प्रकार यह पदन्यास कहा गया; अब ध्यान कहा जा रहा है।।१४३-१४४।।

विद्युद्दामसमप्रभां मृगपतिस्कन्धस्थितां भीषणां
कन्याभिः करवालखेटविलसद्धस्ताभिरासेविताम्।
हस्तैश्चक्रगदासिखेटविशिखां पाशाङ्कुशां तर्जनीं
बिभ्राणामनलात्मिकां शशिधरां दुर्गां त्रिनेत्राम्भजे ॥१४५॥

ध्यान—दीप्तिमान विद्युत् के सदृश कान्ति वाली, मृगपति अर्थात् सिंह के कन्धे पर विराजमान, भयंकर दिखाई देने वाली, करवाल (तलवार) एवं खेट (ढ़ाल) से सुशोभित हाथों वाली कन्याओं द्वारा चारो ओर से घिरी हुई, हाथों में चक्र, गदा, तलवार, ढ़ाल, धनुष, पाश, अंकुश एवं तर्जनी मुद्रा धारण की हुई, अग्निमय स्वरूप वाली, शिर पर चन्द्रमा का मुकुट धारण करने वाली, तीन नेत्रों वाली दुर्गा का मैं ध्यान करता हूँ।।१४५।।

कृत्वा तु सर्वतोभद्रं पूर्वोक्तं मण्डलं शुभम्।
तत्कर्णिकायां षट्कोणे मण्डूकाद्यान् समर्चयेत् ॥१४६॥
पूर्वोक्तान् परतत्त्वांस्तान् केशरेषु तदग्रतः।
जयाञ्च विजयां भद्रां रुद्रां कालीं च पूर्वतः ॥१४७॥
सुमुखीं दुर्मुखीं चन्द्रमुखीं सिंहमुखीं तथा।
मध्ये दुर्गां यजेत्पश्चादासनं सिंहमन्त्रतः ॥१४८॥
तारमुक्त्वा वज्रनखदंष्ट्राय च महा ततः।
सिंहाय हुं फट् हृच्चेति मन्त्रः सप्तदशाक्षरः ॥१४९॥
मूर्त्तिं मूलेन सङ्कल्प्य तस्यामावाह्य पूजयेत्।

पूर्वोक्त सुन्दर सर्वतोभद्रमण्डल बनाकर उसकी कर्णिका के षट्कोण में मण्डूक से लेकर परतत्त्व तक पीठशक्तियों का पूजन करना चाहिये। सोना, चाँदी अथवा ताँवा का यन्त्र बनाकर प्राणप्रतिष्ठापूर्वक पूजन करना चाहिये।

पूजन यन्त्र
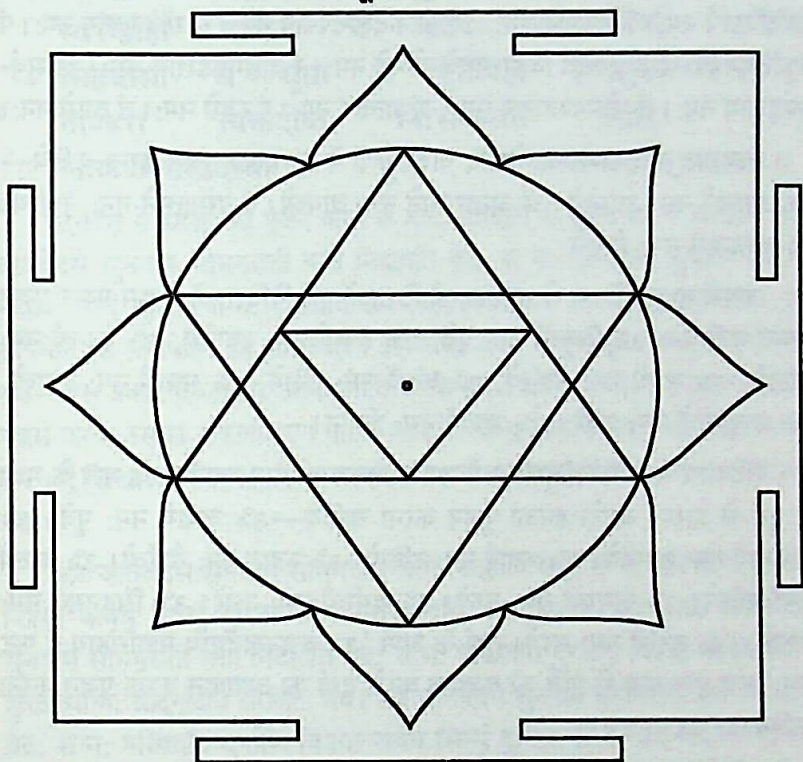
षट्कोण के मध्य में पीठपूजन इस प्रकार करना चाहिये—मं मंडूकाय नमः। कां कालाग्निरुद्राय नमः। मूं मूलप्रकृत्यै नमः। आं आधारशक्त्यै नमः। कूं कूर्माय नमः। अं अनन्ताय नमः। वं वराहाय नमः। पृं पृथिव्यै नमः। अं अमृतार्णवाय नमः। अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं नवरत्नमणिद्वीपाय नमः। नं नन्दनोद्यानाय नमः। स्वं स्वर्णप्रकाराय नमः। चिं चिन्तामणिमण्डपाय नमः। रं रत्नसिंहासनाय नमः।

तदनन्तर मण्ड़ल के चारो कोणों में इस प्रकार पूजन करना चाहिये—धं धर्माय नमः आग्नेये। ज्ञां ज्ञानाय नमः नैर्ऋत्ये। वैं वैराग्याय नमः वायव्ये। ऐं ऐश्वर्याय नमः ईशाने।

तत्पश्चात् मण्ड़ल के पूर्वादि चारो दिशाओं में इस प्रकार पूजन करना चाहिये— अं अधर्माय नमः पूर्वे। अं अज्ञानाय नमः दक्षिणे। अं अवैराग्याय नमः पश्चिमे। अं अनैश्वर्याय नमः उत्तरे।

तत्पश्चात् मण्ड़ल के मध्य में पुनः इस प्रकार पूजन करना चाहिये—ह्रीं आदिविद्यायै नमः। विं विद्यायै नमः। आं आनन्दकन्दपद्माय नमः। सं संविन्नालाय नमः। पं प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः। विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः। रं वह्निमण्डलाय नमः। अं सूर्य-मण्डलाय नमः। उं सोममण्डलाय नमः। सं सत्वाय नमः। रं रजसे नमः। तं तमसे नमः।

तत्पश्चात् मण्ड़ल के आग्नेयादि चारो कोणों में इस प्रकार पूजन करना चाहिये— आं आत्मने नमः आग्नेये। अं अन्तरात्मने नमः वायव्ये। पं परमात्मने नमः नैर्ऋत्ये। ह्रीं ज्ञानात्मने नमः ईशाने।

तत्पश्चात् पूर्वादिक्रम से मण्डल की दिशाओं एवं विदिशाओं में इस प्रकार पूजन करना चाहिये—ॐ विभूत्यै नमः पूर्वे, ॐ उन्नत्यै नमः आग्नेये, ॐ कान्त्यै नमः दक्षिणे, ॐ सृष्ट्यै नमः नैर्ऋत्ये, ॐ कीर्त्यै नमः पश्चिमे, ॐ सन्नत्यै नमः वायव्ये, ॐ उत्कृष्ट्यै नमः उत्तरे, ॐ ऋद्ध्यै नमः ईशाने।

तदनन्तर मध्य में 'श्रीदुर्गासनाय नमः' कहकर पुष्पासन प्रदान करके यन्त्र के मध्य में पूर्व से प्रारम्भ करके इनका पूजन करना चाहिये—ॐ जयायै नमः पूर्वे। ॐ विजयायै नमः आग्नेये। ॐ भद्रायै नमः दक्षिणे। ॐ रुद्राय नमः नैर्ऋत्ये। ॐ काल्यै नमः पश्चिमे। ॐ सुमुख्यै नमः मध्ये। ॐ दुर्मुख्यै नमः उत्तरे। ॐ सिंहमुख्यै नमः ईशाने। ॐ दुर्गायै नमः मध्ये। दुर्गा के आगे 'ॐ वज्रनखदंष्ट्राय महासिंहाय हुं फट् नमः' इस मूल मन्त्र से मूर्ति की कल्पना करके दुर्गा का आवाहन करके पूजन करना चाहिये।।१४६-१४९।।

केशरेषु षडङ्गानि पूर्वतोऽष्टदले पुनः ॥१५०॥
जातवेदाः सप्तजिह्वो द्वितीयो हव्यवाहनः ।
ततश्चोदरजं वैश्वानरकौमारतेजसम् ॥१५१॥
विश्वमुखं देवमुखं पीठे कोष्ठचतुष्टये ।
धरात्मानं जलात्मानं वह्न्यात्मानं निरात्मकम् ॥१५२॥
निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्या शान्तिश्च गौणिका ।
पूषावाण्यौ ततो वीथी शची तोयात्मिका तथा ॥१५३॥
नित्या दयावती चैव ह्यष्टमीकारिणीमता ।
तथैव नवमी नाम्ना प्रोक्ता चैव तिरस्क्रिया ॥१५४॥

देवमाता च दमना प्रिया पश्चान्निरूप्यते।
समाराध्या नन्दिनी च शरीरेषु विमर्दिनी ॥१५५॥
पद्माख्या दण्डिनी तिग्मा दुर्गा गायत्र्यतः परम्।
निरवद्या विशालाक्षी सौम्या सायं निरूप्यते ॥१५६॥
स्वरोद्वाहा नादिनी च वेदना वह्निगर्भिणी।
सिंहवासा च धूम्रा च दुर्विषहा रिरंसुका ॥१५७॥
तापहरा त्यक्तदोषा निःसपत्नेति तद्बहिः।
लोकपालाँस्तदस्त्राणि पूजां प्राग्वत्समापयेत् ॥१५८॥

षट्कोण में षडङ्गों का पूजन करने के बाद अष्टदलों में पूजन करना चाहिये। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः दुर्गादेवि इहागच्छ इहागच्छ। इह तिष्ठ इह तिष्ठ। इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि। इह सन्निरुद्धस्व इह सन्निरुद्धस्व सम्मुखीकृता भव सम्मुखीकृता भव—इस प्रकार देवता का आवाहनादि करके हृदय आदि अंगों में षडङ्ग मन्त्रों का न्यास करके उसका सकलीकरण करना चाहिये। दां हृच्छक्त्यै नमः। दीं शिरःशक्त्यै नमः। दूं शिखाशक्त्यै नमः। दैं नेत्रशक्त्यै नमः। दौं कवचशक्त्यै नमः। दः अस्त्रशक्त्यै नमः।

ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गादेवि अवगुण्ठिता भव। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गादेवि संरक्षिता भव। ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः वद वद वाग्वादिनि ऐं क्लीं क्लिन्ने क्लेदिनि क्लेदय महाक्षोभं कुरु कुरु सौः मोक्षं कुरु कुरु हसौ स्हौं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं दुं दुर्गादेवि अमृतीकृता भव। परमीकृता भव।

इसके बाद इस प्रकार प्राण-प्रतिष्ठा करे—अं आं ह्रीं क्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः हौं श्रीदुर्गायाः पञ्चप्राण इह स्थितः। अं आं ह्रीं क्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः हौं श्रीदुर्गायाः जीव इह स्थितः। अं आं ह्रीं क्रीं यं रं लं वं शं षं सं हं हंसः हौं श्रीदुर्गायाः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनश्चक्षुश्रोत्रघ्राणप्राणपदानि इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा।

इसके बाद षोडशोपचार पूजन करने के क्रम में पहले देवता का स्वागत करे—

श्रीदुर्गामातः आगतं सुस्वागतम्। इसके बाद 'ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गादेवि इदमासनं आस्यताम्' कहकर एक पुष्प प्रदान करे।

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः पाद्यं समर्पयामि।

२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः इदं अर्घ्यं समर्पयामि।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः इदं आचमनं स्वधा।

४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः इदं मधुपर्कं स्वधा, इदं आचमनं स्वधा।

५. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः इदं स्नानं समर्पयामि।

६. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः इदं वस्त्रं समर्पयामि।

७. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः इदं यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

८. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः आभूषणानि समर्पयामि।

९. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः गन्धं समर्पयामि चन्दनादि समर्पयामि।

१०. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः अक्षतान् समर्पयामि।

११. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः पुष्पं समर्पयामि।

१२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः धूपं समर्पयामि।

१३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः दीपं समर्पयामि।

१४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः नैवेद्यं समर्पयामि।

१५. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः पादयोः पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि/ जलं समर्पयामि।

१६. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः श्रीदुर्गायै नमः ताम्बूलं समर्पयामि।

इसके बाद पुष्पाञ्जलि प्रदान करके तर्पण करने के पश्चात् आवरण-पूजन करना चाहिये।

प्रथम आवरण में षडङ्ग-पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः हृदयाय नमः हृदयशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः शिरसे स्वाहा शिरःशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः शिखायै वषट् शिखाशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः कवचाय हुम् कवचशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

५. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

६. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

द्वितीय आवरण में अष्टदल के आठ दलों में पूर्व से प्रारम्भ करके क्रमशः इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे स्वाहा। ५. ॐ वैश्वानराय स्वाहा।
२. ॐ सप्तजिह्वाय स्वाहा। ६. ॐ कौमारतेजसे स्वाहा।
३. ॐ हव्यवाहनाय स्वाहा। ७. ॐ विश्वमुखाय स्वाहा।
४. ॐ अश्वोदरजाय स्वाहा। ८. ॐ देवमुखाय स्वाहा।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तृतीय आवरण में चारो कोणों में क्रमशः इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः धरात्मने नमः।

२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः जलात्मने नमः।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः वह्न्यात्मने नमः।

४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः निरात्मने नमः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

चतुर्थ आवरण में अष्टदल में क्रमशः इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ निवृत्यै नमः।

२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ प्रतिष्ठायै नमः।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ विद्यायै नमः।

४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ शान्त्यै नमः।

५. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ पूषायै नमः।

६. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ वारायै नमः।

७. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ शच्यै नमः।

८. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ दयावत्यै नमः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।।

पञ्चम आवरण में अष्टदल में क्रमशः इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ तिरस्करिण्यै नमः।

२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ देवमातायै नमः।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ दमन्यै नमः।

४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ प्रियायै नमः।

५. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ नन्दिन्यै नमः।

६. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ विमर्दिन्यै नमः।

७. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ पद्मायै नमः।

८. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ दण्डिन्यै नमः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।।

पुनः षष्ठ आवरण में अष्टदल में क्रमशः इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ दुर्गायै नमः।

२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ गायत्र्यै नमः।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ निरवद्यायै नमः।

४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ विशालाक्ष्यै नमः।

५. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ सौम्यायै नमः।

६. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ स्वरोद्वाहायै नमः।

७. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ नन्दिन्यै नमः।

८. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ वेदनायै नमः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।।

सप्तम आवरण में इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ वह्निगर्भिण्यै नमः।

२. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ सिंहवासायै नमः।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ धूम्रायै नमः।

४. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ दुर्विषहरायै नमः।

५. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीं यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ रिरंसुकायै नमः।

६. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीं यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ तापहरायै नमः।

७. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीं यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति· दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ त्यक्तदोषायै नमः।

८. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीं यतो निदहाति वेदः स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॐ निःसपत्न्यै नमः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।।

अष्टम आवरण में भूपुर के बाहर अष्ट दिक्पालों का इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

१. ॐ इन्द्राय नमः पूर्वे।
२. ॐ अग्नये नमः आग्नेये।
३. ॐ यमाय नमः दक्षिणे।
४. ॐ निर्ऋतये नमः नैर्ऋत्ये।
५. ॐ वरुणाय नमः पश्चिमे।
६. ॐ वायवे नमः वायव्ये।
७. ॐ कुबेराय नमः उत्तरे।
८. ॐ ईशानाय नमः ईशाने।
९. ॐ ब्रह्मणे नमः पूर्वेशानमध्ये।
१०. ॐ अनन्ताय नमः नैर्ऋत्यपश्चिममध्ये।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम्।।

नवम आवरण में भूपुर के बाहर दिक्पालों के अस्त्रों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ वज्राय नमः पूर्वे।
२. ॐ शक्तये नमः आग्नेये।
३. ॐ दण्डाय नमः दक्षिणे।
४. ॐ खड्गाय नमः नैर्ऋत्ये।
५. ॐ पाशाय नमः पश्चिमे।
६. ॐ अङ्कुशाय नमः वायव्ये।
७. ॐ गदायै नमः उत्तरे।
८. ॐ त्रिशूलाय नमः ईशाने।
९. ॐ पद्माय नमः ईशानपूर्वमध्ये।
१०. ॐ चक्राय नमः नैर्ऋत्यपश्चिममध्ये।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम्।।

इस प्रकार गन्ध-अक्षत-पुष्प से सबों का पूजन करके धूप-दीप-नैवेद्य समर्पित कर पूजन का समापन करना चाहिये।।१५०-१५८।।

मन्त्रं वर्णसहस्राणि जपेद्धोमं पृथक्पृथक् ।
वेदवेदाब्धिसङ्ख्याकं तिलसिद्धार्थचित्रजैः ।।१५९।।
मूलैश्च समिधाभिश्च वटोदुम्बरपैप्पलैः ।
अर्कप्लक्षोद्भवैश्चापि घृतेन हविषान्नकैः ।।१६०।।
सर्वैर्घृताक्तैर्जुहुयात्तिलैश्चान्ते घृताहुतीः ।
ततः सन्तर्प्य सतिलैः कृत्वा चात्माभिषेचनम् ।।१६१।।
समाराध्य धरादेवीं तोषयेद्गुरुमात्मनः ।
इत्थञ्जपादिभिः सिद्धे मन्त्रेऽस्मिन् साधकोत्तमः ।।१६२।।
आग्नेयास्त्राधिकारी स्यात्तद्विधानमितीर्यते ।

जातवेदस् मन्त्र में कुल चौवालीस अक्षर हैं। प्रत्येक वर्ण का एक हजार जप करने पर कुल चौवालीस हजार जप करना चाहियें; इतने जप से इस मन्त्र का पुरश्चरण सम्पन्न हो जाता है। जप के उपरान्त इन अग्रलिखित सामग्रियों से पृथक्-पृथक् ४४४-४४४ बार हवन करना चाहिये—तिल-सरसों-चित्रक, वटमूल, गूलरमूल, पीपलमूल, अकवनमूल, पाकड़मूल, घृत-मिश्रित हविष्यान्न। फिर समस्त सामग्रियों को घृतसिक्त करके ४४४ आहुति, घृतसिक्त तिल से ४४४ आहुति एवं अन्त में केवल घृत से ४४४ आहुति देनी चाहिये। इस प्रकार कुल आहुतियों की संख्या ४४४० होती है।

तदनन्तर तिल-सहित जल से सम्यक् रूप से तर्पण करके स्वयं का अभिषेक करना चाहिये। इस प्रकार देवी पृथ्वी की आराधना करके साधक को अपने गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार जप आदि द्वारा इस मन्त्र को सिद्ध करके श्रेष्ठ साधक आग्नेयास्त्र प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता है। अब आग्नेयास्त्र का विधान कहा जा रहा है।।१५९-१६२।।

आग्नेयास्त्रमिति प्रोक्तं विलोमप्रथितो मनुः ।।१६३।।
पूर्वोक्ता एव मुन्याद्याः षडङ्गानि विलोमतः ।
ग्नित्यतारिदुधुं सिं प्रोच्चार्यात्र हृदयं मतम् ।।१६४।।
ववेनाश्वा विणिर्गादु शिरोन्यासः प्रकीर्तितः ।
एवमग्रेऽपि जानीहि पूर्वोक्तार्णविलोमतः ।।१६५।।
पूर्वोक्तसङ्ख्यकैर्वर्णैर्वर्णन्यासस्तथैव च ।
तथैव च पदन्यासो जपः पूजा च पूर्ववत् ।।१६६।।

पञ्चगव्यसुपक्वेन चरुणा तस्य सिद्धये।
चतुःसहस्रं च शतं चत्वारिंशच्चतुष्टयम् ॥१६७॥
होमयेदर्चनं प्राग्वज्जपश्च प्रतिलोमतः।
सर्वत्र देशिकः कुर्याद्गायत्र्या द्विगुणं जपम् ॥१६८॥

आग्नेयास्त्र-विधान—जातवेदस मन्त्र के विलोम पाठ को आग्नेयास्त्र कहा गया है। इसमें पूर्वोक्त ऋष्यादि का न्यास भी विलोमात्मक होता है। विलोम षडङ्ग न्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. ॐ ग्नित्यतारिदुर्धुं सिं हृदयाय नमः।
२. ॐ ववेनाश्वा विणिर्गादु शिरसे स्वाहा।
३. ॐ तिदषरिप नः स शिखायै वषट्।
४. ॐ दः वेतिहादनि कवचाय हुम्।
५. ॐ तोयतीराममसो नेत्रत्रयाय वौषट्।
६. ॐ मवानसु सेदवेतजा अस्त्राय फट्।

पूर्वोक्त संख्या में वर्णन्यास भी इसी प्रकार विलोमतः करना चाहिये और इसी प्रकार विलोमात्मक पद-न्यास भी करना चाहिये। जप-पूजा पूर्ववत् करनी चाहिये।

तदनन्तर उस आग्नेयास्त्र की सिद्धि के लिये पञ्चगव्य में सम्यक् रूप से पाक किये गये चरु से चार हजार चार सौ चालीस आहुति प्रदान करते हुये हवन करना चाहिये। यह हवन एवं जप भी प्रतिलोम मन्त्र से ही करना चाहिये। इस प्रक्रिया में साधक को सर्वत्र द्विगुणित संख्या में गायत्री का जप करना चाहिये।।१६३-१६८।।

क्रूरकर्मणि कुर्वीत प्रतिलोमविधानतः।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म कर्त्तव्यमनुलोमतः ॥१६९॥
ग्न्याद्यः पञ्चाक्षरः पादो ज्ञेयो ज्ञानेन्द्रियात्मकः।
धुमाद्यः पञ्चवर्णो द्वितीयः कर्मेन्द्रियात्मकः ॥१७०॥
श्वाद्यस्तृतीयः पञ्चार्णः सर्वभूतमयः स्मृतः।
त्याद्यः सप्ताक्षरः पादश्चतुर्थो धातुरूपकः ॥१७१॥
दःपूर्वः पञ्चमः पाद ऊर्मिरूपः षडक्षरः।
तोवर्णादिः षडर्णोऽन्यः षट्कौशिकमयो मतः ॥१७२॥
सोपूर्वः पञ्चवर्णोऽन्यः शब्दादिमय ईरितः।
सेवर्णाद्योऽष्टमो ज्ञेयः पञ्चार्णा वचनादिकः ॥१७३॥
एवं तत्त्वसमायोगात् परिक्लृप्तिरुदीरिता।
तत्तत्पादाक्षरोत्पन्नाः ताराद्या वह्निदेवताः ॥१७४॥

प्रतिलोम-विधान से क्रूर कर्म तथा अनुलोम-विधान से शान्तिक एवं पौष्टिक कर्म का साधन करना चाहिये। विलोम मन्त्र के वर्णों में क्रमशः 'ग्नित्यतारिदु' ये पाँच वर्ण ज्ञानेन्द्रियों (आँख, कान, नाक, जिह्वा, त्वक्) के बोधक होते हैं। इसी प्रकार 'धुं शिववेना' ये पाँच वर्ण कर्मेन्द्रियों (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ) के; 'श्वाविणिर्गादु' ये पाँच वर्ण पञ्चमहाभूतों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) के; 'तिदषरिपनः स' ये सात वर्ण सप्त धातुओं (त्वक्, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र); 'दः वेतिहादनि' ये छः वर्ण ऊर्मियों (प्राण, चित्त एवं शरीर के भूख, प्यास, लोभ, मोह, सर्दी तथा गर्मी-रूप छः क्लेशों) के; 'तोयतीरामम' ये छः वर्ण शरीर के छः कोशों (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय आदि) के; 'सोमवानसु' ये पाँच वर्ण पञ्चतन्मात्राओं (शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श) के; 'सेदवेतजा' ये पाँच वर्ण पाँच कर्मों (वचन, आदान, गमन आदि) के बोधक होते हैं। इस प्रकार तत्त्वसमायोग से मन्त्रवर्णों की परिक्लृप्ति कही गई है। मन्त्र के उन-उन पादों के एक-एक अक्षरों से तारा आदि अग्निदेवता उत्पन्न हुए हैं।।१६९-१७४।।

प्रधानमूर्तिप्रतिमाः स्व-स्वकर्मेरितप्रभाः ।
प्रज्वलत्केशवसना भीमदंष्ट्रा भयावहाः ।।१७५।।
देवता इन्द्रियोत्पन्ना ऊर्ध्वदृष्टय ईरिताः ।
देवता भूतपादोत्थास्तिर्यग्नेत्राः प्रकीर्तिताः ।।१७६।।
धातुरूपाक्षरोत्पन्ना उभयात्मदृशो मताः ।
ऊर्मिजा ऊर्ध्ववदनाः कोशोत्थास्तिर्यगाननाः ।।१७७।।
अर्थसङ्ख्यासमुत्पन्ना देवता द्विदिगाननाः ।
एताः सर्वाः स्मृताः क्लीबा इन्द्रियार्थोद्भवाः स्त्रियः ।।१७८।।
याभ्यो मन्त्री दहेच्छत्रो राष्ट्रं सगिरिकाननम् ।
अस्त्रं मनुष्यनक्षत्रे प्रारभेत विचक्षणः ।।१७९।।
आसुरेषु प्रयुञ्जीयाद्देवतासु शुभं हरेत् ।
उपक्रमेत नन्दासु रिक्तास्वस्त्रं विसर्जयेत् ।।१८०।।
भद्रास्वाहरणं कुर्याज्जपादेः कार्यमुत्तमम् ।

प्रधान मूर्ति की प्रतिमायें अपने-अपने कर्म के अनुरूप कान्ति वाली होती हैं। दीप्तिमान केश एवं वस्त्रों वाले, विशाल दाँतों वाले एवं भयोत्पादक देवता इन्द्रियों (ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों) से प्रादुर्भूत एवं ऊर्ध्व दृष्टि वाले कहे गये हैं। भूतपाद से उत्पन्न देवता तिर्यक् दृष्टि वाले कहे गये हैं। मन्त्र के धातुरूप पादाक्षरों से उत्पन्न

देवताओं की दृष्टि ऊपर-नीचे दोनों ओर होती है। ऊर्मिपाद के वर्णों से उत्पन्न देवता ऊर्ध्वमुखी होते हैं एवं कोशपादस्थ वर्णों से उत्पन्न देवता तिर्यक् मुख वाले होते हैं। तन्मात्रारूपी पादवर्णों से उत्पन्न देवता दो दिशाओं में मुख वाले होते हैं। ये समस्त देवता क्लीब (नप्रुसक) कहे गये हैं। इन्द्रियार्थोद्भूत स्त्रीदेवताओं से साधक पर्वतों एवं जंगलों-सहित शत्रुदेश को भस्म कर सकता है।

विचक्षण साधक को इस आग्नेयास्त्र-विधान का प्रारम्भ मनुष्यनक्षत्र में करना चाहिये। देवताओं के देवत्व का हरण करने के लिये असुरनक्षत्रों में इसका प्रयोग करना चाहिये। इस अस्त्रमन्त्र का नन्दा आदि तिथियों में प्रारम्भ करना चाहिये एवं रिक्ता आदि तिथियों में विसर्जन करना चाहिये। जप आदि कार्य करने के लिये भद्रा आदि तिथियों में इस अस्त्रमन्त्र का ग्रहण करना चाहिये।।१७५-१८०।।

उपक्रमो भौमवारे शनिवारे विसर्जयेत् ।।१८१।।
प्रतिसंहरणं वारे गुरोः शुक्रस्य वा भवेत् ।
स्थिरेषु राशिष्वारम्भश्चरेषु स्याद्विसर्जनम् ।।१८२।।
अस्त्रसंहरणं कुर्यादुभयेषु विचक्षणः ।
कृष्णपक्षे चरेदस्त्रं विसृजेच्छशिना पुनः ।।१८३।।
शुक्लपक्षक्रमादस्त्रं पुनरात्मनि संहरेत् ।
भानुना मोक्षसंहारौ कुर्यात्पक्षद्वये सुधीः ।।१८४।।
पश्चिमाभिमुखो भूत्वा सर्वकर्माणि साधयेत् ।

इस अस्त्रमन्त्र का अनुष्ठान मंगलवार को प्रारम्भ करना चाहिये एवं शनिवार को विसर्जन करना चाहिये। गुरुवार को अथवा शुक्रवार को इसका प्रतिसंहरण (त्याग अथवा वापस लेने की क्रिया) करना चाहिये। स्थिरराशि में प्रारम्भ, चर राशि में विसर्जन एवं स्थिर अथवा चर—दोनों ही राशियों में अस्त्र के संहरण (त्याग) की क्रिया सम्पन्न करनी चाहिये। कृष्णपक्ष में अस्त्र का प्रयोग एवं शुक्लपक्ष में विसर्जन करना चाहिये। शुक्लपक्ष में इस अस्त्र का प्रयोगारम्भ करने पर साधक स्वयं का संहार तथा शुक्ल और कृष्ण दोनों पक्षों की द्वादशी तिथि में प्रयोगारम्भ करने पर मोक्ष एवं संहार दोनों कर सकता है। इस आग्नेयास्त्रमन्त्र द्वारा समस्त कर्मों का साधन पश्चिम की ओर मुख करके करना चाहिये।।१८१-१८४।।

नक्षत्रवृक्षसकलान् साध्याख्यान् कर्मसंयुतान् ।।१८५।।
राजीतैलेन सतिलान् पृथक्सप्तसहस्रकम् ।
जुहुयात्संयतो भूत्वा रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ।।१८६।।

सप्तरात्रं प्रजुहुयात् सिद्धार्थस्नेहसंयुतैः ।
आर्द्रवस्त्रो वृष्टिकाले मरीचैर्मनुनामुना ।।१८७।।
निगृह्यते ज्वरेणारिः प्रलयाग्निसमेन सः ।
तालपत्रे समालिख्य शत्रुनाम यथाविधि ।।१८८।।
आग्नेयास्त्रेण संवेष्ट्य कुण्डमध्ये निखन्यते ।
मरिचैश्च हुनेत्क्रुद्धो ज्वराक्रान्तः स जायते ।।१८९।।
तदादाय क्षिपेत्तोये शीतले स वशो भवेत् ।

साध्य नामाक्षर के नक्षत्रवृक्षों की लकड़ी के साथ राई के तेल और तिल मिश्रित करके व्रतनिष्ठ होकर सात हजार की संख्या में हवन करने से शत्रु यमपुरी को प्रस्थान कर जाता है। वर्षाकाल में भीगे वस्त्रों को धारण करके सात रात्रियों में इस मन्त्र द्वारा सरसों के तेल से संयुक्त काली मिर्च का हवन करने से प्रलयाग्नि के समान तीव्र ज्वर से शत्रु की मृत्यु हो जाती है। ताड़पत्र पर विधिपूर्वक शत्रु का नाम लिखकर उसे आग्नेयास्त्र से संवेष्टित करके उस नामांकित ताड़पत्र को कुण्ड के मध्य में गाड़ करके उस पर क्रुद्ध होकर काली मिर्च से हवन करने पर शत्रु ज्वर से आक्रान्त हो जाता है। फिर वहाँ से उस ताड़पत्र को निकालकर ठण्ढ़े जल में ड़ाल देने से वह ज्वराक्रान्त शत्रु साधक के वशीभूत हो जाता है।।१८५-१८९।।

सामुद्रसलिलं हिङ्गुं विषं जीरकलोहिते ।।१९०।।
क्वथिते पुत्तलिं कृत्वा नक्षत्रतरुनिर्मिताम् ।
अधोवक्त्रां विनिक्षिप्य यष्ट्या विषतरूत्थया ।।१९१।।
तच्छिरस्ताडनं कुर्याज्जपन्मन्त्रं विलोमतः ।
सप्ताहान्मरणं याति शत्रुर्ज्वरविमोहितः ।।१९२।।
आदित्यरथनागेन्द्रग्रस्ताङ्घ्रिं तद्विषाततम् ।
नग्नं तैलेन लिप्ताङ्गं दग्धं भानुमरीचिभिः ।।१९३।।
अधोमुखं निजरिपुं ध्यात्वा क्वथितवारिणा ।
तर्पयेद्भानुमालोक्य शत्रुर्मृत्युप्रियो भवेत् ।।१९४।।

साध्यनक्षत्रवृक्ष के पिष्ट से शत्रु की पुत्तली बनाकर उसे समुद्र के जल में हींग, विष, जीरा और लोहबान से बने क्वाथ में नीचे मुख लटकाकर विलोम-मन्त्र का जप करते हुये विषवृक्ष की छड़ी से उसके शिर पर प्रहार करने से ज्वर से मूर्च्छित वह शत्रु एक सप्ताह के भीतर ही काल-कवलित हो जाता है।

सूर्य के रथ पर अवस्थित तक्षक के द्वारा ग्रसित पैरों वाले, तक्षकविष से चारो

ओर से आच्छादित, तेल से लिप्त नग्न शरीर वाले, सूर्यकिरणों से दग्ध होकर निम्नाभिमुख शत्रु का ध्यान करके सूर्य को देखते हुये उक्त क्वथित जल से तर्पण करने पर शत्रु मृत्यु का प्रिय हो जाता हैं।।१९०-१९४।।

बिभ्रतीं मुसलं शूलं ध्यायेत्कालघनप्रभाम्।
कार्पासबीजैर्निम्बस्य पत्रैर्मेषीघृतप्लुतैः।
हुत्वा विद्वेषयेच्छत्रुं नखेनाहृत्य देशिकः ॥१९५॥

काले बादल वाले रंग के काल के हाथों में घूमते हुये मुसल और शूल का ध्यान करते हुए कपास के बीज एवं नीम की पत्ती को भेड़ी के घी से तर करके साधक द्वारा उसे अपने नखां से उठाकर हवन करने से दो शत्रुओं में विद्वेषण (अलगाव) हो जाता हैं।।१९५।।

बिभ्राणां तर्जनीं शूलं ध्यात्वा दुर्गां भयङ्कराम् ॥१९६॥
महिषीघृतसंसिक्तैः पल्लवैर्विषवृक्षजैः।
हुत्वा रिपोर्महासेनामुच्चाटयति मन्त्रवित् ॥१९७॥
ध्यात्वा देवीं पुरा प्रोक्तां चरुभिर्मरिचान्वितैः।
अजारुधिरसंसिक्तैर्जुहुयाद्दिवसत्रयम्।
रिपोरुच्चाटनं कुर्यात्सेनाया नात्र संशयः ॥१९८॥

मन्त्रज्ञ साधक द्वारा तर्जनी एवं शूल को नचाती भयानक आकृति वाली दुर्गा का चिन्तन करते हुए विषवृक्ष के पत्रों को भैंस के घी से तर करके हवन करने से शत्रु की महान् सेना का उच्चाटन हो जाता है।

उक्त रूप में ही देवी का ध्यान करते हुए मरिच-मिश्रित चरु (खीर) को बकरी के दूध से अच्छी प्रकार से सिक्त कर तीन दिनों तक हवन करने से साधक शत्रु की सेना का उच्चाटन कर देता है; इसमें कोई संशय नहीं है।।१९६-१९८।।

अग्निशूलाकुलां दुर्गां ज्वलन्तीं प्रलयाग्निवत्।
ध्यात्वा सर्षपतैलाढ्यैर्बीजैर्धत्तूरसम्भवैः।
हुत्वा विमोहयेच्छत्रुं मरिचैर्वा ससर्षपैः ॥१९९॥
कालाञ्जननिभां दुर्गां शूलखड्गकरां स्मरेत्।
नक्षत्रवृक्षसम्भूतैर्व्रणवृक्षजसञ्ज्ञकैः।
समिद्वरैः प्रजुहुयाज्जयेन्मासेन वैरिणम् ॥२००॥

अग्निशूल से आकुल एवं प्रलयाग्नि के समान जाज्वल्यमान दुर्गा का ध्यान करते

हुए सरसों तेल में सिक्त धत्तूर के बीज अथवा सरसों एवं काली मिर्च से हवन करने पर शत्रु मोहित हो जाता है।

हाथों में खड्ग और शूल धारण की हुई काले अञ्जन के समान काली दुर्गा का ध्यान करते हुए व्रणवृक्ष-नामक साध्य के नामाक्षर के नक्षत्रवृक्ष की समिधा से एक महीने तक हवन करने पर शत्रु पर विजय प्राप्त होती है।।१९९-२००।।

सिंहारूढां प्रधावन्तीं धावमानां रिपुं प्रति।
शरान् कार्मुकनिर्मुक्तान् वह्निज्वालामुखाकलान् ॥२०१॥
मुञ्चन्तीं संस्मरन्दुर्गां तर्पयेदुष्णवारिणा।
भानुबिम्बं समालोक्य शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ॥२०२॥
अतिदुर्गाममोघर्ष्टिगदाहस्तां विचिन्तयेत्।
विद्युद्दामसहस्राभां महिषीघृतसम्प्लुतैः।
पुरोक्तैर्जुहुयान्निम्बबिभीतकसमिद्वरैः।
कोद्रवैरथ शत्रोश्च सेनायाः स्तम्भनं भवेत् ॥२०३॥

सिंह पर सवार होकर भागते हुए शत्रु के प्रति अग्निज्वाला निकलते बाणों को धनुष के द्वारा प्रक्षिप्त करती दुर्गा का ध्यान करते हुए सूर्य को देखकर गर्म जल से दुर्गा का तर्पण करने से शत्रु का उच्चाटन होता है।

हाथों में अमोघ ऋष्टि (तलवार) एवं गदा धारण की हुई हजारों बिजली की आभा से युक्त दुर्गा का चिन्तन करते हुए नीम एवं बहेड़ा की समिधा में पूर्वोक्त काली मिर्च और सरसों को मिश्रित करके अथवा कोद्रव (कोदो) से हवन करने से सेना-सहित शत्रु का स्तम्भन होता है।।२०१-२०३।।

इषुजालाङ्कुशाढ्याङ्गां नित्यं दुर्गामनुस्मरेत्।
लवणैर्मधुरैः साध्यकाष्ठैर्वा ह्येधितेऽनले।
जुहुयान्निशि सप्ताहान्मन्त्रविद्वशयेन्नृपान् ॥२०४॥
पाशाङ्कुशधरां रक्तां विश्वदुर्गां विचिन्तयेत्।
फलिनीकुसुमैः फलैश्चन्दनाम्भः समुक्षितैः।
जुहुयान्निशि यो मन्त्री तस्य विश्वं वशं भवेत् ॥२०५॥

बाणों के जाल और अङ्कुशों से घिरी दुर्गा का नित्य ध्यान करते हुए साध्य नामाक्षर की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में एक सप्ताह तक रात्रि में नमक और गुड़ से हवन करने पर मन्त्रज्ञ साधक राजाओं को अपने वशीभूत कर लेता है।

जो मन्त्रज्ञ साधक पाश और अङ्कुश धारण करने वाली रक्तवर्ण की विश्वदुर्गा का चिन्तन करते हुए रात्रि में चन्दनजल में डुबोये गये प्रियंगु-पुष्प और प्रियंगुफल द्वारा हवन करता है, समस्त विश्व उसके वशीभूत हो जाता है।।२०४-२०५।।

शरच्चन्द्रनिभां देवीं विराजत्परमामृताम्।
पाशाङ्कुशकरां ध्यात्वा सिन्धुदुर्गां समिद्वरैः।
वेतसैर्मधुरासिक्तैर्जुहुयाद्वृत्तिसिद्धये ॥२०६॥
जपाकुसुमसङ्काशामग्निदुर्गां विचिन्तयेत्।
हुनेल्लवणपुत्तल्या मधुरत्रययुक्तया।
आकर्षेद्वाञ्छितां साध्यां मन्त्रविन्नात्र संशयः ॥२०७॥

पाश एवं अंकुश धारण की हुई परमामृत-स्वरूप शरत्पूर्णिमा के चन्द्र के समान कान्ति वाली देवी सिन्धुदुर्गा का ध्यान करते हुए घृत-सिक्त वेंत की समिधा से हवन करने पर वृत्तिसिद्धि अर्थात् आजीविका की प्राप्ति होती है।

अड़हुल के फूल के समान अग्निदुर्गा का चिन्तन करते हुए नमक की पुत्तली को मधुरत्रय (दूध, घी, मधु) से तर करके हवन करने से मन्त्रवित् साधक वाञ्छित स्त्री को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है; इसमें कोई शंका नहीं करनी चाहिये।

अतिदुर्गेयमत्याद्या षडन्तादिः समीरिता।
दुवर्णान्ता तथान्याद्या गानि दुर्गा प्रकीर्तिता ॥२०८॥
विश्वाद्या चैव मन्त्रेऽस्मिन्विश्वदुर्गा समीरिता ॥२०९॥
सिन्ध्वाद्या सावकारान्ता सिन्धुदुर्गा निगद्यते।
त्यान्तामग्न्यादिकामेवमग्निदुर्गां विदुर्बुधाः ॥२१०॥

अतिदुर्गामन्त्र में 'अति' से प्रारम्भ कर 'षट्' से अन्त होने वाला यह अतिदुर्गा मन्त्र कहा गया है। अन्त में 'दु' वर्ण एवं आदि में अन्य वर्ण रहने पर गानि दुर्गा का मन्त्र होता है और इसी में आरम्भ में विश्व रहने पर विश्वदुर्गा मन्त्र कहा जाता है। सिन्धु से प्रारम्भ होने वाले पद को सिन्धु-दुर्गा कहते हैं। त्य से अन्त होने वाले एवं अग्नि से आरम्भ होने वाले मन्त्र को अग्निदुर्गा मन्त्र जानना चाहिये।।२०८-२१०।।

अङ्गणे स्थण्डिलं कृत्वा सुगन्धिकुसुमादिभिः।
देवीं तत्रार्चयेन्नित्यं प्रागुक्तेनैव वर्त्मना ॥२११॥
आहरेद्रात्रिषु बलिं चरुणा सर्वसिद्धिदम्।
कृत्यारोगभयद्रोहभूतानि नाशयेदयम् ॥२१२॥

यथावदग्निमाराध्य गन्धैः पुष्पैर्मनोहरैः ।
स्थित्वा तस्याग्रतो मन्त्री जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
जपोऽयं सर्वसिद्ध्यै स्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥२१३॥

आँगन में स्थण्डिल बनाकर सुगन्धित पुष्प आदि के द्वारा पूर्ववर्णित विधि से देवी का नित्य अर्चन करना चाहिये। रात में चरु की बलि देने से सभी सिद्धियाँ मिलती हैं। इससे कृत्या, रोग, भय, द्रोह एवं भूत-प्रेतों का नाश होता है।

मनोहर गन्ध-पुष्प से अग्नि का यथावत् अर्चन करके उसके आगे बैठकर एकाग्रचित्त से मन्त्र का जप करने पर मन्त्रज्ञ साधक को समस्त सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं; इसमें कोई विचिकित्सा नहीं करनी चाहिये।।२११-२१३।।

लवणैर्मधुरासिक्तैर्जुहुयात्पश्चिमामुखः ।
मन्त्रार्णसङ्ख्यया मन्त्री रिपुमात्मवशं नयेत् ॥२१४॥
शालीन् प्रक्षाल्य संशोध्य शुद्धान् कुर्वीत तण्डुलान् ।
निवास्य पञ्चगव्येषु संस्कृते हव्यवाहने ॥२१५॥
पाचयेच्च जपन्मन्त्रमवतार्य पुनः सुधीः ।
अर्चयित्वा विशदधीः समिद्धेऽग्नौ यथा पुरा ॥२१६॥
जुहुयाच्चरुणाज्येन तथा चाष्टसहस्रकम् ।
पत्रे सन्तापनं कुर्यात्साध्यं तत्प्राशयेद्गुरुः ॥२१७॥
शिष्यं तं पूजयेद्वारि सम्पातं प्राङ्गणान्तरे ।
कृत्यावेगा विनश्यन्ति सह भूतग्रहामयैः ।
परैरुत्सादिता कृत्या पुनस्तानेव भक्षयेत् ॥२१८॥
व्रीहिभिर्हविषा क्षीरैः पयोवृक्षसमिद्वरैः ।
आज्यैर्मधुत्रयोपेतैर्मन्त्रैर्दशशतं पृथक् ।
जुहुयात्सम्पदां भूमिः साधिका भवति ध्रुवम् ॥२१९॥

पश्चिम की ओर मुख करके घृत-सिक्त नमक से मन्त्रवर्ण की संख्या में (चौवालीस बार) प्रतिदिन हवन करने से साधक शत्रु को अपने वश में कर लेता है।

शालि धान्य को धोकर शुद्ध करके चावल बनाकर उसे पञ्चगव्य में डालकर मन्त्र का जप करते हुये संस्कृत अग्नि में पाक करके अग्नि पर से उतारने के पश्चात् स्वच्छ मति वाले विद्वान् साधक को समिधा में पूर्ववत् अग्नि का पूजन करके उस चरु में गाय का घी मिलाकर आठ हजार हवन करने के उपरान्त पत्ते पर साध्य का संतापन

करके उसे गुरु को खिलाना चाहिये। फिर शिष्य को उसका पूजन करके आँगन से बाहर ले जाकर जल में ड़ाल देना चाहिये। ऐसा करने से भूत, ग्रह, रोग के साथ-साथ कृत्या का आवेग भी विनष्ट हो जाता है। साथ ही इसके प्रभाव से दूसरे के द्वारा प्रेषित कृत्या वापस जाकर पुनः उस प्रेषक का ही भक्षण कर जाती है।

हविर्धान्य को क्रमशः दुग्ध, गोघृत एवं मधुरत्रय से संयुक्त कर दुग्धवृक्ष की समिधा में अलग-अलग एक-एक हजार की संख्या में मन्त्र द्वारा हवन करने से निश्चित हीं साधक को भूमि और सम्पदा की प्राप्ति होती है।।२१४-२१९।।

भास्करे मेषराशिस्थे मन्त्रज्ञानगुणे दिने।
गत्वा नद्यां जपन्मन्त्रं सततं पुष्कलाम्भसि ।।२२०।।
उद्धृत्यादाय सिकताः संशोध्य परिशोधयेत्।
न्यस्य ताः पञ्चगव्येषु सम्भूते हव्यवाहने।
भर्जयेन्मनुना सिद्ध्यै दर्व्या ब्रह्मतरूत्थया ।।२२१।।
सिंहमेषधनुःस्थेऽर्के कृष्णपक्षेऽष्टमीतिथौ।
विशाखाकृत्तिकामूलहस्तोत्तरमघास्वथ ।।२२२।।
रोहिण्यां श्रवणे वारे मन्दवाक्पतिदैवते।
विहायान्येषु कुर्वीत सिकतास्थापनं सुधीः ।।२२३।।
गृहग्रामादिराष्ट्राणां रक्षार्थं सिकताः शुभाः।

सूर्य के मेष राशि में स्थित रहने एवं मन्त्रज्ञान के उपयुक्त दिन में नदी में जाकर निरन्तर मन्त्रजप करते हुये प्रचुर जल में प्रवेश कर बालू निकालकर उसे लाकर साफ करके उसका परिशोधन करके उन बालुओं को पञ्चगव्य में ड़ालकर पलाश के लकड़ी की आग में सिद्धि-हेतु मन्त्रजप-पूर्वक उसे भूँजे। फिर उसे शुद्ध स्थान में रख दे। तदनन्तर सूर्य के सिंह, मेष अथवा धनु राशि में रहने पर कृष्णपक्ष की अष्टमी तिथि को विशाखा, कृत्तिका, मूल, हस्त, उत्तरा, मघा, रोहिणी अथवा श्रवण नक्षत्र में शनिवार या गुरुवार के दिन विद्वान् साधक को उस बालू को स्थापित करना चाहिये। गृह, ग्राम आदि के साथ-साथ राष्ट्र की रक्षा के लिये वे बालू शुभ होते हैं।।२२०-२२३।।

प्रस्थाढकघटोन्माना मध्यादिष्ववरेष्विमाः ।।२२४।।
नवसु प्रक्षिपेज्जप्त्वा तेषु सम्पूजयेत्क्रमात्।
मध्यादिदेवीमस्त्राणि कपालान्तानि देशिकः ।।२२५।।
चक्रं शङ्खमसिं खेटं बाणाँश्चापं त्रिशूलकम्।
कपालं स्वस्वमन्त्रेण सम्पूज्यान्ते बलिं हरेत् ।।२२६।।

नक्षत्रग्रहराशीनां लोकेशानां बलिं हरेत्।
विहिता यत्र रक्षा या वर्धन्ते तत्र सम्पदः ॥२२७॥
क्षुद्रग्रहमहारोगभयभूतसरीसृपाः ।
अमुना विलयं यान्ति विधिना नात्र संशयः ॥२२८॥

समतल भूमि पर एक घड़े को बीच में रखकर उसके आठों दिशाओं में आठ घड़े को वर्तुलाकार रखकर उन नवों घड़ों में एक आढ़क अर्थात् लगभग चार किलो जल भरकर मन्त्रजप करने के उपरान्त उन घड़ों में क्रमश: पूजन करना चाहिये। सबसे पहले बीच वाले घड़े में देवी का पूजन करने के पश्चात् चतुर्दिक् स्थित आठो घड़ों में देवी के अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। इन आठ घड़ों में क्रमश: चक्र, शंख, तलवार, ढाल, बाण, धनुष, त्रिशूल और कपाल का तत्तत् मन्त्रों से विधिवत् पूजन करने के बाद अन्त में बलि प्रदान करना चाहिये। तत्पश्चात् नक्षत्र, ग्रह, राशि और लोकपालों के लिये विहित बलि प्रदान करने से रक्षा के साथ-साथ सम्पदा की वृद्धि भी होती है। साथ ही इसके प्रभाव से क्षुद्र ग्रह, महारोग, भय, भूत, साँप सभी दूर भाग जाते हैं; इसमें कोई शंका नहीं है।।२२४-२२८।।

सिकतानां विशुद्धानां कुडवाश्चापि षोडश।
पञ्चगव्ययुते पात्रे ब्रह्मवृक्षेण निर्मिते ॥२२९॥
निक्षिपेद्विधिना यत्र तत्र तिष्ठन्ति सम्पदः।
दिने दिने प्रवर्धन्तेऽकालवृष्ट्यादिभिः सह ॥२३०॥
महोत्पाता विनश्यन्ति कृत्याद्रोहामयग्रहाः।

सोलह कुडव (अंजली) अर्थात् लगभग चार किलो विशुद्ध बालू को पलाश की लकड़ी के पात्र में पञ्चगव्य डालकर विधिपूर्वक जहाँ स्थापित किया जाता है, वहाँ सम्पदाओं का वास होता है और वे सम्पदायें दिनोंदिन बढ़ती रहती हैं तथा अकालवृष्टि के साथ-साथ कृत्याद्रोह, रोग, ग्रह आदि से होने वाले महान् उत्पातों का विनाश होता है।।।२२९-२३०।।

चरुगव्याश्मनां कुर्यात्स्थापनं विधिनामुना ॥२३१॥
गोमूत्रं प्रस्थमात्रं स्याद्गोमयं स्यात्तदर्धकम्।
आज्यात्सप्तगुणं क्षीरं गोमूत्रात्त्रिगुणं दधि ॥२३२॥
गोमूत्रेण समं सर्पिः सर्वं वा सममुच्यते।
गावः स्युः कपिलाः श्वेताः सितधूम्रारुणप्रभाः ॥२३३॥
अभावे च सिताः सर्वाः सर्वं वा कपिलोद्भवम्।

चरु, पञ्चगव्य और शिलाजीत का स्थापन इस विधि से करना चाहिये। गोमूत्र एक किलो, गोबर गोमूत्र का आधा अर्थात् आधा किलो, गोमूत्र के बराबर गोघृत अर्थात् एक किलो, गोघृत का सातगुणा अर्थात् सात किलो गोदुग्ध एवं गोमूत्र का तिगुना अर्थात् तीन किलो दही अथवा सबों को समान मात्रा में मिश्रित करने से पञ्चगव्य बनता है। पञ्चगव्य की पाँचो सामग्रियों के लिये गौयें भी क्रमशः कपिल, श्वेत, श्वेत, धूम्र एवं अरुण वर्ण वाली ग्रहण करनी चाहिये। अलग-अलग गौओं की प्राप्ति न होने पर समस्त पदार्थ या तो केवल श्वेत वर्ण वाली अथवा केवल कपिश वर्ण वाली गौ का ही ग्रहण करना चाहिये।।२३१-२३३।।

एकोनपञ्चाशत्कोष्ठे फलके ब्रह्मशाखिनः ॥२३४॥
विहाय कोणकोष्ठानि मध्यकोष्ठे लिखेच्च ह्रीम्।
तदूर्ध्वकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन संलिखेत् ॥२३५॥
देवीं तत्र समावाह्य पूजयेदुपचारकैः।
कृत्वा होमन्तु सम्पातं निखनेत्तद्यथा पुरा।
दद्याद्बलिं यथापूर्वं तस्य पूर्वोदितं फलम् ॥२३६॥

उनचास कोष्ठक यन्त्र

	प	रि	प	द	ति	
ग्नि:	नः	म	सो	म	म	ह्रु
व्य	स	वा	जा	त	रा	र्गा
त	दः	न	ह्रीं	वे	ती	णि
रि	वे	सु	से	द	य	वि
ह्रुं	ति	हा	द	नि	तो	श्वा
	धुं	सि	व	वे	ना	

उनचास कोष्ठक यन्त्र—पलाश की पटरी पर उनचास कोष्ठ वाला वर्ग बनाकर उसके चारो कोणों के कोष्ठों का त्याग करते हुये मध्य में ह्रीं लिखना चाहिये। तदनन्तर ह्रीं-लिखित उस मध्यकोष्ठ के ऊपर से आरम्भ कर प्रदक्षिणक्रम से चौवालीस वर्ण वाले देवीमन्त्र के एक-एक वर्णों को एक-एक कोष्ठों में लिखना चाहिये। उस यन्त्र में देवी का आवाहन करके उपचारों से पूजन करना चाहिये। तदनन्तर होम करने के बाद तर्पण करके पूर्ववत् गड्ढा खोदकर उसमें इस पूजित यन्त्र

को दबाकर पूर्वकथित विधि से बलि प्रदान करनी चाहिये। इस प्रकार करने से पूर्ववर्णित फल प्राप्त होते हैं।।२३४-२३६।।

नवकोष्ठान्वितं लेख्यं चतुरस्त्रं सुशोभनम्।
साध्यनामान्वितां मायां मध्यकोष्ठे तु संलिखेत्॥२३७॥
तदधःकोष्ठमारभ्य प्रादक्षिण्येन संलिखेत्।
मूलमन्त्रस्य पूर्वोक्तानष्टौ पादांश्च तद्बहिः॥२३८॥
वृत्तद्वयान्तराले तु मातृकार्णैः प्रवेष्टयेत्।
तद्बहिश्चतुरस्त्रं स्याद्धारणामन्त्रमद्भुतम्।
सर्वभूतभयहरं श्रीकीर्त्यायुःप्रदं शुभम्॥२३९॥
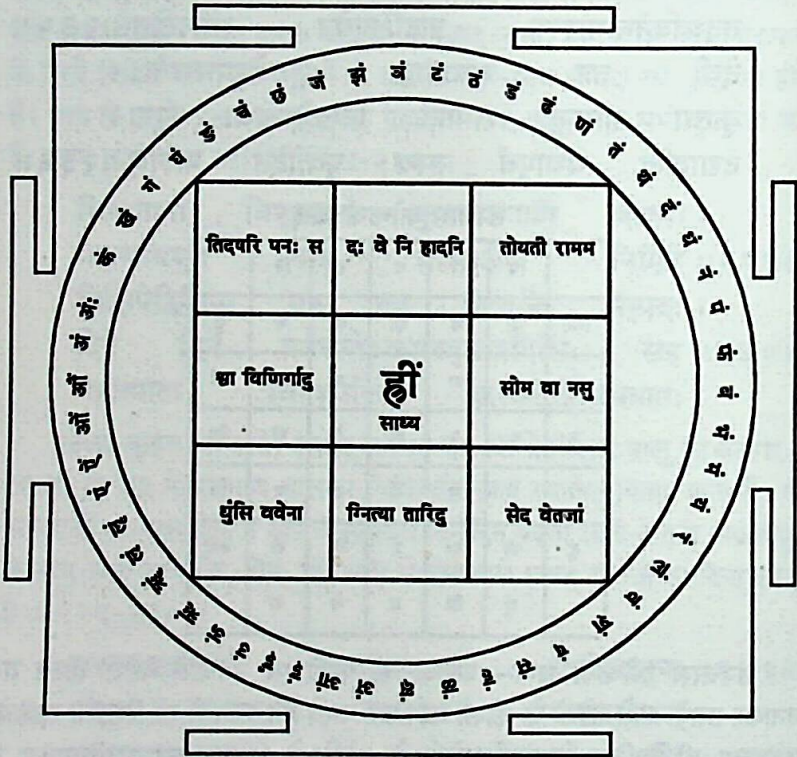
नव कोष्ठात्मक चतुरस्त्र सुन्दर यन्त्र बनाकर उसके मध्यकोष्ठ में साध्य नामगर्भित ह्रीं लिखने के पश्चात् उस मध्यकोष्ठ के निचले कोष्ठ से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणक्रम से मूल मन्त्र के पूर्वोक्त आठ पदों का अंकन करना चाहिये। तदनन्तर उसके बाहर दो वृत्त बनाकर दोनों वृत्तों के मध्य में मातृकावर्णों का लेखन करना

चाहिये। फिर उसके बाहर चतुरस्त्र का निर्माण करने से यह अद्भुत धारण यन्त्र बन जाता है। यह कल्याणप्रद यन्त्र समस्त प्राणियों के भय का हरण करने वाला होने के साथ-साथ लक्ष्मी, कीर्ति एवं आयु प्रदान करने वाला होता है।।२३७-२३९।।

आग्नेयास्त्रस्य जानाति विसर्गादानकर्मणी।
यः पुमान् स गुणैः श्रेष्ठस्तस्याधीनं जगत्त्रयम्॥२४०॥

इस आग्नेयास्त्र मन्त्र के विसर्ग एवं आदान (त्याग एवं ग्रहण) कर्म को जो पुरुष जानता है, वह गुणों से श्रेष्ठ होता है एवं तीनों लोक उसके वशीभूत होते हैं।।२४०।।

अतिदुर्गामन्त्रविधानम्

अतिदुर्गामनुं वक्ष्ये यद्दिनास्त्रमितीर्यते।
प्रतिलोममिमं मन्त्रं कृत्वास्त्रं परिचक्षते॥२४१॥
अतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः।
जातवेदसे सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषत्॥२४२॥
अङ्गन्यासस्तु पूर्वोक्तो वर्णन्यास इतीरितः।
क्रमेणानेन वर्णानां पदानां न्यास इष्यते॥२४३॥
ध्यानं चैव पुरा प्रोक्तं कृत्यास्त्रस्य विलोमतः।
न्यासादिकं तथा ध्यानं मुनिश्छन्दश्च पूर्ववत्॥२४४॥
पुरश्चर्यादिकं सर्वं प्रयोगान् कीर्त्तयाम्यहम्।

अतिदुर्गा मन्त्र-विधान—अब मैं दिनास्त्र-नामक अतिदुर्गामन्त्र का वर्णन करता हूँ; विपरीतक्रम से पढ़ने पर यह मन्त्र अस्त्ररूप हो जाता है। मन्त्र है—'अतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः। जातवेदसं सुनवाम सोममराती यतो निदहाति वेदः स नः परिषत्।' इस अतिदुर्गा मन्त्र का अङ्गन्यास पूर्वकथित रीति से ही करने के उपरान्त मन्त्र के प्रत्येक वर्णों से क्रमशः वर्णन्यास करना चाहिये और इसी प्रकार पदन्यास भी करना चाहिये। इसके ध्यान आदि भी पूर्वोक्त प्रकार से ही किये जाते हैं। कृत्यास्त्र-विधान विलोममन्त्र से करना चाहिये। विलोम मन्त्र के न्यास, ध्यान, ऋषि, छन्द, पुरश्चरण आदि सभी पूर्ववत् ही होते हैं। अब इसके प्रयोगों को मैं कहता हूँ।।२४१-२४४।।

भानुबिम्बगतं शत्रुं मध्ये वक्त्रं विषाहतम्॥२४५॥
मूलादुत्थितया ग्रस्तं कुण्डल्या भावयेत्सुधीः।
मूलाधारेऽपि चेत्सद्यस्तस्य कालं स भावयेत्।
दिनद्वयाज्ज्वराक्रान्तो रिपुः प्राणान् विमुञ्चति॥२४६॥

दिनास्त्रेण प्रविद्धाङ्गं स्वाधिष्ठानगतं रिपुम्।
पञ्चवायुसमिद्धेन चाग्निना दग्धविग्रहम्।
ध्यायेन्मनुं जपेत्सद्यः स भवेद्यमवल्लभः ॥२४७॥

सूर्यमण्डल के मध्य में मूलाधार से उत्थित कुण्डलिनी द्वारा ग्रसित होने के फलस्वरूप विष से आहत शत्रुमुख का विद्वान् साधक को चिन्तन करना चाहिये। मूलाधार में स्थित कुण्डलिनी को भी शत्रु के कालस्वरूप समझना चाहिये। ऐसा करने से दो दिनों तक ज्वर से आक्रान्त होकर शत्रु प्राणों का त्याग कर देता है।

दिनास्त्र से प्रविद्ध अंग वाला होकर स्वाधिष्ठान में पञ्चवायु की प्रज्वलित अग्नि से दग्ध शरीर वाले शत्रु का ध्यान करते हुये मन्त्र का जप करने से वह शत्रु यम का प्रिय हो जाता है।।२४५-२४७।।

मणिपूरगतं शत्रुमग्निना दीप्तविग्रहम्।
ध्यायन्दिनास्त्रं प्रजपेत्स मृत्युवशतां व्रजेत् ॥२४८॥
अनाहितो हतः शत्रुर्निर्दग्धो मन्त्रवह्निना।
पाशेन बद्ध्वा शीघ्रं स नीयते यमकिङ्करैः ॥२४९॥
विशुद्धस्थानगो वैरी दिनबाणेन पूरितः।
अधोमुखः स्मृतस्तूर्णं परासुः स्याद्दिनत्रयात् ॥२५०॥
आज्ञायां निहितं शत्रुं दहेद्बाणाग्निना धिया।
पुत्रमित्रकलत्रादिसहितो मृत्युमाप्नुयात् ॥२५१॥

मणिपूर-गत अग्नि के प्रज्वलित शरीर वाले शत्रु का ध्यान करते हुये दिनास्त्र मन्त्र का जप करने से वह शत्रु मृत्यु के अधीन हो जाता है। हृदय-स्थित अनाहत चक्र में मन्त्राग्नि से दग्ध होकर शत्रु मर गया है—इस प्रकार का चिन्तन करने से यमदूतों द्वारा पाश से बाँधकर वह शीघ्र ही ले जाया जाता है। विशुद्धिस्थान में पहुँचकर शत्रु दिनबाण से विद्ध होकर अधोमुख लटक रहा है—ऐसा ध्यान करने से शत्रु तीन दिनों में मृत हो जाता है। आज्ञाचक्र में पहुँचकर बाणाग्नि से जले हुये शत्रु का चिन्तन करने से पुत्र-मित्र-कलत्र आदि से सहित शत्रु मृत्यु को प्राप्त कर लेता है।।२४८-२५१।।

नाभिमात्रे जले स्थित्वा ध्यायेद्बिम्बं दिनेशितुः।
वैरिणं दग्धसर्वाङ्गं मन्त्रमष्टोत्तरं शतम्।
जपेत्सप्तदिनादर्वाग्यमलोकं स गच्छति ॥२५२॥
आरवारं समारभ्य सप्ताहं प्रजपेन्मनुम्।

सूर्योदयं समारभ्य यावदस्तमयो भवेत्।
सन्निपातपराविष्टो यमग्रस्तो भवेदरिः ॥२५३॥
स्थित्वा दुर्गालये मन्त्री त्रिरात्रं वर्जिताशनः।
दिने वा मन्त्रविद्धाङ्गं वैरिणं प्रविचिन्तयेत्।
जपेन्मनुमिमं शत्रुर्ज्वरितो मरणं व्रजेत् ॥२५४॥
दृष्ट्वा दुर्गां जपेन्मन्त्रमजस्रं स्वरिपुं स्मरन्।
शूलप्रोतशरीरन्तु दिनास्त्रेण प्रपीडितम्।
ज्वरेण महताविष्टो जायतेऽसौ यमातिथिः ॥२५५॥

नाभि तक जल में खड़े होकर सूर्यबिम्ब में वैरी के सर्वांग दग्ध होने का चिन्तन करते हुए एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करने से सात दिनों के भीतर ही वह शत्रु यमलोक चला जाता है।

मंगलवार से प्रारम्भ करके सात दिनों तक सूर्योदय से सूर्यास्त तक मन्त्रजप करने से सन्निपात रोग से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

लगातार तीन रात्रि अथवा तीन दिन तक निराहार रहकर दुर्गालय में बैठकर मन्त्र द्वारा विद्ध अंग वाले शत्रु का चिन्तन करते हुये इस मन्त्र का जप करने से ज्वर के प्रकोप से शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

दुर्गा को देखकर दिनास्त्र से पीड़ित एवं त्रिशूल धँसे शरीर वाले शत्रु का स्मरण करते हुये निरन्तर मन्त्रजप करने से भीषण ज्वर से ग्रसित वह शत्रु यमराज का अतिथि हो जाता है।।२५२-२५५।।

रविमण्डलगं शत्रुं दष्टं तद्रथपन्नगैः।
विषाग्निदग्धसर्वाङ्गं ध्यायेदुष्णेन वारिणा।
तर्पयेद्दिनबाणेन स्यादसौ यमवल्लभः ॥२५६॥
रविबिम्बादागतया ज्वालया ग्रस्तविग्रहम्।
रिपुं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं स प्रयाति यमान्तिकम् ॥२५७॥
ग्रहग्रस्ताग्रबिम्बस्थं विद्धं मन्त्रमयैः शरैः।
प्रतिपद् घातितं शत्रुं जपेदयुतमन्त्रवित्।
रिपुन्नयति शीघ्रं तं यमदूतो यमालयम् ॥२५८॥

सूर्यमण्डल में अवस्थित सूर्यरथ के सर्पों के द्वारा दष्ट होने के कारण विषरूपी अग्नि से दग्ध सम्पूर्ण शरीर वाले शत्रु का ध्यान करके गर्म जल से दिनास्त्र

मन्त्रोच्चारपूर्वक तर्पण करने से वह शत्रु यम का प्रिय होता है अर्थात् उस शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

रविमण्डल से निकल रहे ज्वाला से ग्रस्त शरीर वाले शत्रु का ध्यान करके दिनास्त्र मन्त्र का जप करने से वह शत्रु यम के समीप चला जाता है।

राहु द्वारा अग्रभाग में ग्रसित सूर्यबिम्ब में अवस्थित मन्त्रमय बाणों से विद्ध होकर मार्ग में मारे गये शत्रु का ध्यान करते हुये मन्त्रज्ञ साधक यदि दिनास्त्र मन्त्र का दस हजार जप करता है तो उसके शत्रु को शीघ्र ही यमदूत यमालय ले जाते हैं।

प्रलयानलसङ्काशां कालरात्रिमिवापराम्।
शूलपाशधरां घोरां सिंहस्कन्धं निषेदुषीम् ॥२५९॥
सवितुर्मण्डलान्तःस्थां रक्तनेत्रत्रयोद्भवैः।
विस्फुलिङ्गैर्निर्दहन्तीं रिपुमाकुलविग्रहम् ॥२६०॥
स्वेष्टदंष्ट्राधरां नृत्यद् भ्रुकुटीभीषणाननाम्।
तर्जयन्तीं निजं शत्रुं तर्जन्या भीमरूपया ॥२६१॥
दंष्ट्रामयूखजालेन द्योतयन्तीं दिगन्तरम्।
शूलेन वैरिणो वक्षो दारयन्तीं भयङ्कराम् ॥२६२॥
जपेद्दिनत्रयं धीमान् मारयेद्रिपुमात्मनः।

भयंकर प्रलयाग्नि के समान, दूसरी कालरात्रि-स्वरूपा, त्रिशूल और पाश धारण की हुई, सिंह के कन्धे पर सवार, सूर्यमण्डल में स्थित होकर लाल-लाल तीनों नेत्रों से निकल रही अग्नि से शत्रु के आकुल शरीर को जलाती हुई, नृत्य करती हुई, भयानक दाँतों से युक्त अधरों वाली, भीषण भृकुटी एवं मुख वाली, भयंकर तर्जनी द्वारा अपने शत्रु को तिरस्कृत करती हुई, दाँतों की कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाशित करती हुई, त्रिशूल द्वारा शत्रु के वक्ष को चीरती हुई भयंकर काली का ध्यान करते हुये बुद्धिमान साधक यदि तीन दिनों तक दिनास्त्र मन्त्र का जप करता है तो वह अपने शत्रु को मार ड़ालता है।।२५९-२६२।।

अस्त्रमन्त्रकृतन्यासः प्रलयाग्निसमप्रभः ॥२६३॥
रक्तवस्त्रधरां क्रुद्धां रक्तनेत्रत्रयावृताम्।
सिंहाधिरूढां धावन्तीं धावमानं रिपुं प्रति।
खड्गेन तच्छिरश्छित्त्वा क्षणाद्व्योमस्थलं गताम् ॥२६४॥
ध्यात्वा दुर्गां जपेन्मन्त्रं त्रिदिनं वर्जिताशनः।

अनेनैव विधानेन रिपुर्मृत्युप्रियो भवेत्।
कर्माण्येतानि कुर्वीत दिवसे न तु रात्रिषु ॥२६५॥
तस्माद्दिनास्त्रमित्युक्तमथ रात्र्यस्त्रमुच्यते।

अस्त्र-मन्त्र से न्यास करके प्रलयाग्नि के सदृश प्रभा से समन्वित साधक लाल वस्त्र धारण करने वाली, क्रोध-पूर्वक लाल-लाल तीनों नेत्रों से आवृत की हुई, सिंह पर सवार होकर भागते हुए शत्रु के पीछे दौड़ती हुई, क्षणमात्र में ही अपने खड्ग द्वारा शत्रु के शिर को काटकर आकाश में चली जाने वाली देवी दुर्गा का ध्यान करते हुये निराहार रहकर तीन दिनों तक मन्त्रजप करना चाहिये। इस प्रकार के विधान से शत्रु मृत्यु को प्रिय हो जाता है।

इन समस्त कर्मों का अनुष्ठान दिन में ही करना चाहिये, रात में नहीं करना चाहिये; इसीलिये इसे दिनास्त्र कहा गया है, अब रात्र्यस्त्र का विवेचन करता हूँ।।२६३-२६५।।

पश्चिमाभिमुखं न्यस्य सजीवं महिषं पुरः ॥२६६॥
निखाय तस्य शिरसि कुण्डं कृत्वा त्रिकोणकम्।
तस्मिन् समेधिते वह्नौ यथावद्देशिकोत्तमः ॥२६७॥
सत्रिकोणाः मन्त्रार्णाः साध्यनामसमन्विताः।
भुजरक्तेन संसिक्ताः कारस्करसमिद्वराः।
सहस्त्रं जुहुयाद्ध्यात्वा देवीं सवितृमण्डले ॥२६८॥
प्रलयाग्निसमां घोरां द्वात्रिंशद्भुजशोभिताम्।
उद्यदायुधसन्दीप्तां नृत्यन्तीं सिंहमस्तके ॥२६९॥
महादंष्ट्रां महाभीमां ज्वलत्केशां नदन्मुखीम्।
रक्तार्द्रमांसवसनां घूर्णितोग्रत्रिलोचनाम् ॥२७०॥
अनेन विधिना शत्रुर्महाज्वरनिपीडितः।
विमुञ्चति निजं देहं पुत्रमित्रादिभिः सह ॥२७१॥

रात्र्यस्त्र-विधान—श्रेष्ठ साधक को अपने सामने पश्चिमाभिमुख जीवित महिष को स्थापित करके उसके शिर को काटकर ज़मीन में गाड़ने के पश्चात् वहीं पर त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित करके त्रिकोणाकार मन्त्रवर्णों के मध्य साध्य का नाम लिखकर महिषभुज के रक्त से संसिक्त कारस्कर की समिधाओं से एक हजार हवन करना चाहिये। उस समय साधक को सूर्यमण्डल में अवस्थित देवी का इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

देवी प्रलयकालीन अग्नि के समान भयंकर हैं, वे बत्तीस भुजाओं से सुशोभित हैं, उदीयमान आयुधों से अत्यन्त कान्तिमान हैं, सिंह के शिर पर नृत्य कर रही हैं, उनकी दाँतें बड़ी-बड़ी एवं अत्यन्त भयानक हैं, उनके केशों से अग्नि की लपटें निकल रही हैं, वे मुख से अट्टहास कर रही हैं, रक्त से भीगे मांस का वस्त्र धारण की हुई हैं, घूमती हुई तीन आँखों वाली हैं।

इस प्रकार ध्यान करके उपर्युक्त रात्र्यस्त्र जप करने से अतिशय भयंकर ज्वर से ग्रसित शत्रु पुत्र-मित्र आदि के साथ-साथ अपने शरीर का भी त्याग कर देता है अर्थात् उसकी मृत्यु हो जाती है।।२६६-२७१।।

ऊर्ध्ववक्त्राँस्ततो मन्त्री लम्बयित्वा भुजङ्गमान्।
भानुबिम्बगतां दुर्गां सहस्रादित्यसन्निभाम् ।।२७२।।
सहस्रपाणिचरणां सहस्राक्षिशिरोमुखीम्।
सहस्रनागबद्धाङ्गीं त्रासयन्तीं जगत्त्रयम् ।।२७३।।
ध्यायन्मन्त्रेण तेनैव तर्पयेदुष्णवारिणा।
संयतः कालपाशेन वैरी मुञ्चेत्स्वजीवितम् ।।२७४।।

तदनन्तर मन्त्रज्ञ साधक द्वारा सूर्य की ओर मुख उठाकर दोनों भुजाओं को ऊपर करके सूर्यमण्डल में अवस्थित हजारों सूर्य के समान दीप्तिमान, हजार हाथ-पैरों वाली, हजार आँखें एवं मुखों वाली, हजार फणों वाले सर्प से आबद्ध शरीर वाली, तीनों लोकों को भयभीत करती हुई दुर्गा का ध्यान करते हुये उसी मन्त्र के द्वारा गर्म जल से तर्पण करने पर कालपाश से बद्ध होकर शत्रु अपना शरीर छोड़ देता है।।२७२-२७४।।

मध्याह्नार्कायुतप्रख्यां नदन्तीं नरसिंहवत्।
घोरसिंहासनासीनां महाभीषणदारिणीम् ।।२७५।।
शूलप्रोताहितां ध्यायञ्जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
तर्पयेदुष्णतोयेन सर्पवक्त्रे दिनत्रयम्।
यमस्य भवनं गच्छेदरातिर्नात्र संशयः ।।२७६।।

करोड़ों मध्याह्नव्यापी सूर्यों के समान प्रत्यक्ष, नरसिंह के समान ध्वनि करती हुई, भयंकर सिंह पर विराजमान, अत्यन्त भयंकर रूप से विदारित करने वाली, लम्बी त्रिशूल धारण की हुई देवी का ध्यान करते हुये एकाग्रचित्त होकर मन्त्र का जप करने के उपरान्त तीन दिनों तक गर्म जल से सर्प के मुख में तर्पण करने से शत्रु निश्चित रूप से यमालय को प्राप्त कर जाता है।।२७५-२७६।।

ऋक्षवृक्षैः प्रतिकृतिं प्रतिष्ठितसमीरणाम्।
उष्णोदके विनिःक्षिप्य निष्पीड्य विधिना ततः ॥२७७॥
अर्केन्द्वनलसङ्काशां खड्गखेटकधारिणीम्।
नयनत्रयसञ्चच्छद्विस्फुलिङ्गशताकुलाम् ॥२७८॥
सिंहस्थां सर्पभूषाढ्यां त्रैलोक्यभयदायिनीम्।
खड्गकृत्ताहितां ध्यायन् प्रजपेदयुतं मनुम्।
विधानेनामुना शत्रुर्युक्तो भवति मृत्युना ॥२७९॥

साध्यनामाक्षर के अनुसार नक्षत्रवृक्षों की लकड़ी से शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करके उसे गर्म जल में डुबोकर विधिपूर्वक उसका निष्पीडन करने के पश्चात् सूर्य, चन्द्र एवं अग्नि के समान देदीप्यमान, खड्ग एवं मूसल धारण की हुई, अपने त्रिनेत्र से चिनगारियों की वर्षा करती हुई, सिंह पर सवार, सर्पों के आभूषण से सुशोभित, तीनों लोकों को भयभीत करने वाली, खड्ग से शत्रु को विदारित करती हुई देवी का ध्यान करते हुये दस हजार की संख्या में मन्त्र का जप करने से शत्रु मृत्यु से समन्वित हो जाता है।।२७७-२७९।।

प्रकल्प्य दुर्गायतने त्रिकोणं कुण्डमुत्तमम्।
तत्र सञ्ज्वलिते वह्नौ महिषीशकृता कृताम् ॥२८०॥
पुत्तलीं सर्जितां रक्तां प्रतिष्ठितसमीरणाम्।
छित्त्वा छित्त्वा प्रजुहुयादजरक्तान्वितां निशि ॥२८१॥
ध्यात्वा दुर्गां प्रनृत्यन्तीं महिषोरःस्थलान्तरे।
शूलेन महिषस्याङ्गं भिन्दन्तीं घोरदर्शनाम् ॥२८२॥
अट्टहासैरजस्रोत्थैर्भीषणां सुरसेविताम्।
प्रदीप्तानलसङ्काशां भ्रमन्नेत्रत्रयान्विताम् ॥२८३॥
सदष्टाधरसम्भिन्नां दंष्ट्राभीममुखाम्बुजाम्।
खड्गखेटकयुक्ताभिः कन्यकाभिः समावृताम् ॥२८४॥
अनेन विधिना शत्रुः प्रयाति यममन्दिरम्।
दिनास्त्रमेवं कथितं रात्रौ कृत्यास्त्रमुच्यते ॥२८५॥

दुर्गालय में उत्तम त्रिकोण कुण्ड की रचना करके उसमें अग्नि प्रज्वलित करके महिषी (भैंस) के गोबर से बनाई गई शत्रु की प्रतिकृति को राल से रक्त करने के उपरान्त उस प्रतिमा में प्राणप्रतिष्ठा करने के बाद उस पुत्तली के टुकड़े करके उन्हें बकरे के रक्त में डुबोकर रात्रि में हवन करना चाहिये और उस समय महिष के वक्षःस्थल पर

नृत्य करती हुई, अपने शूल से महिष के अंगों का भेदन करती हुई, देखने में अत्यन्त भयानक, अपने अट्टहास से सम्पूर्ण दिशाओं को भयभीत करती हुई, देवताओं द्वारा सेव्यमान, प्रज्वलित अग्नि के सदृश देदीप्यमान, घूमती हुई तीन नेत्रों वाली, दाँतों से अपने अधरों को काटती हुई, बड़े-बड़े दाँतों के कारण भयंकर मुख वाली, खड्ग एवं मूसल से समन्वित कन्याओं से चारो ओर से घिरी हुई दुर्गा का ध्यान करना चाहिये। इस विधि से साधना करने पर साधक का शत्रु यमपुरी को प्रस्थान कर जाता है। इस प्रकार दिनास्त्र का वर्णन किया गया। अब रात्रि में प्रयोग किये जाने वाले कृत्यास्त्र को कहता हूँ।।२८०-२८५।।

आधारादुद्गतां देवीं कुण्डलीं सर्परूपिणीम्।
तां ब्रह्मरन्ध्रमार्गेण गतां व्योमस्थलं ततः ॥२८६॥
मुखेन शत्रुमादाय निवृत्तां स्वगृहं प्रति।
ज्वलत्कालानलोद्दीप्तां विचिन्त्य प्रजपेन्मनुम्।
सप्तभिर्वासरैः शत्रुर्मृत्युमाप्नोति मोहितः ॥२८७॥
अङ्गारवारे चित्यग्नौ सर्षपस्नेहलालितम्।
सिद्धार्थकुडवं जप्तं जुहुयात्पशुमन्त्रतः।
कृत्यास्त्रज्वालया सद्यो रिपुर्यमपुरं व्रजेत् ॥२८८॥

कृत्यास्त्र-विवेचन—मूलाधार से उठकर ब्रह्मरन्ध्र मार्ग से ऊपर की ओर जाती हुई सर्परूपिणी कुण्डलिनी के आकाशमण्डल को प्राप्त होकर शत्रु को अपने मुख में दबोचकर पुनः अपने घर में लौटती हुई जाज्वल्यमान कालानल के सदृश उद्दीप्त स्वरूप का ध्यान करते हुये मन्त्र का जप करने से सात दिनों के भीतर मुग्ध शत्रु मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

मंगलवार के दिन चिता की अग्नि में एक कुडव=२५० ग्राम सरसों को सरसों के तेल में मिलाकर अभिमन्त्रित करके पशु-मन्त्र से हवन करने से शत्रु कृत्यास्त्र की ज्वाला में जलकर तत्काल ही यमलोक को प्रस्थान कर जाता है।।२८६-२८८।।

चतुर्दश्यामर्धरात्रे चितास्थीन्यत्र साधकः।
व्रणतैलविलिप्तानि चिताग्नौ जुहुयात्ततः।
अनेन विधिना शत्रुर्मृत्युमेष्यति कातरः ॥२८९॥

चतुर्दशी की अर्धरात्रि में चिता की अस्थियों से समन्वित स्थान पर जाकर चिता की अग्नि में भिलावे के तेल में लिप्त अस्थियों से साधक यदि हवन करता है तो उसका शत्रु भयभीत होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।।२८९।।

धान्यस्य तु तुषान् पिष्ट्वा शत्रोश्चैव विनिर्मिताम्।
प्रतिमां व्रणतैलाक्तां कृतप्राणां हुनेन्निशि।
छित्त्वा छित्त्वाजरक्तेन सप्ताहान्म्रियते रिपुः ॥२९०॥

धान की भूसी को पीसकर शत्रु की प्रतिमा बनाकर उसे भिलावे के तेल से उपलिप्त कर उसकी प्राणप्रतिष्ठा करने के उपरान्त रात्रि में उस प्रतिमा को खण्ड-खण्ड करके उसके टुकड़ों को बकरे के रक्त में डूबोकर हवन करने से सात दिनों के भीतर शत्रु की मृत्यु हो जाती है।।२९०।।

श्मशानवालुकां स्पृष्ट्वा साक्षतां नियतं जपेत्।
विविक्तस्तु तडागादौ जपेन क्वथितं जलम्।
तदीयं पीतमचिरान्निहन्ति सकलाञ्जनान् ॥२९१॥

एकान्त स्थान में अक्षत से युक्त श्मशान के बालू को स्पर्श करते हुए नियत संख्या में मन्त्रजप करने के उपरान्त तालाब के जल से निर्मित क्वाथ को अभिमन्त्रित करके उसका पान करने से अविलम्ब ही समस्त लोगों की मृत्यु हो जाती है।।२९१।।

कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां जपितैः प्रेतभस्मभिः।
महिषाज्येन संयुक्तैस्तन्मन्त्राक्षरसङ्ख्यया ॥२९२॥
निर्माय प्रतिमामेतां सम्यग्जप्तसमीरणाम्।
चितिकाष्ठेधिते वह्नौ जुहुयाद् दृढमानसः।
चतुर्दशीत्रयादर्वाक्छत्रुर्मृत्युवशो भवेत् ॥२९३॥

कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को श्मशानभस्म को अभिमन्त्रित करके उसे भैंस के घी में मिलाकर उससे मन्त्र के अक्षरसंख्या के बराबर प्रतिमा बनाकर उन सभी प्रतिमाओं को मन्त्र द्वारा प्राणप्रतिष्ठित करके चिताकाष्ठ की अग्नि जलाकर अपने चित्त को दृढ़ बनाकर उस अग्नि में उन प्रतिमाओं से हवन करने पर चतुर्दशी के बाद तीन दिनों के भीतर ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।।२९२-२९३।।

श्मशानभस्मसिद्धार्थान् पञ्चगव्ये विनिक्षिपेत्।
महिषं संस्मरेद्देवीं ज्वालाग्निसदृशप्रभाम् ॥२९४॥
भर्जयेत्प्रजपन्मन्त्रं विषकाष्ठैधितानले।
दुर्गागारे प्रजुहुयादनेनायुतमस्त्रवित् ॥२९५॥
पुनरादाय तद्भस्म सेनायां वैरिणः क्षिपेत्।
सा सेना बहुधा भिन्ना ज्वरेणापि विमोहिता ॥२९६॥

आयुधानि परित्यज्य युद्धकाले पलायते।
गेहग्रामादिषु क्षिप्तं कुर्यादुच्चाटनं द्रुतम् ॥२९७॥

अस्त्रज्ञानी साधक श्मशान-भस्म और सरसों को पञ्चगव्य में मिलाकर अग्निज्वाला की प्रभा के सदृश दीप्तिमान देवी महिषमर्दिनी का ध्यान करते हुये विषैले काष्ठ की अग्नि में मन्त्र का जप करते हुए उसे भूँजे। इसके बाद दुर्गामन्दिर में उससे दस हजार हवन करने के उपरान्त उस भस्म को शत्रु की सेना पर प्रक्षिप्त कर देने से शत्रुसेना बुखार से पीड़ित होकर तितर-बितर हो जाती है और अपने आयुधों का त्याग कर इधर-उधर भाग खड़ी होती है। गृह अथवा ग्राम आदि पर उस भस्म को छिड़क देने से उनमें निवास करने वालों का शीघ्र ही उच्चाटन हो जाता है।।२९४-२९७।।

सप्तवारेषु कुलिके दुर्गाविश्मसु शर्कराः।
सप्तमाहेन्द्रदिग्वर्जं गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम् ॥२९८॥
महिषीपञ्चगव्येन महिषं तर्पयेत्पुरा।
भूयो जपित्वा विकिरेद्गेहे ग्रामपुरे त्विमाः।
स देशो नश्यति क्षिप्रं दग्धो मन्त्रदवाग्निना ॥२९९॥

सातों दिनों के कुलिक योग में माहेन्द्री (पूर्व) दिशा के अतिरिक्त शेष सातों दिशाओं में दुर्गालय में बैठकर शर्करा लेकर मन्त्रजप करने के उपरान्त भैस के पञ्चगव्य से देवी महिषमर्दिनी का तर्पण करने के पश्चात् पुनः मन्त्रजप करके उस शर्करा को जिस घर, ग्राम, नगर अथवा देश में विखेर दिया जाता है, वह घर, ग्राम, नगर अथवा देश मन्त्र की दवाग्नि से जलकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।।२९८-२९९।।

ब्रह्मदण्डी मर्कटिका वज्रकण्टकिका त्रयम्।
भौमवारस्य कुलिके गृहीत्वा प्रजपेन्मनुम्।
सार्धं पुत्रकलत्राद्यैरुत्सादो जायते रिपोः ॥३००॥

ब्रह्मदण्डी (पलाश), मर्कटिका, वज्रकण्टकिका—तीनों को मंगलवार के कुलिक योग में लेकर मन्त्रजप करने से पुत्र-कलत्रादि के सहित शत्रु का उत्साद (विनाश) हो जाता है।।३००।।

एकत्रैवाखनेन्मन्त्री मण्डलान्तः स्थलं भवेत्।
षड्बिन्दुषट्कपुत्तल्यां निखनेदोदनान्वितम् ॥३०१॥
स्पृष्ट्वा तां प्रजपेन्मन्त्रं कृष्णाष्टम्यां दिनार्धतः।
शत्रुनामसमायुक्तां श्मशाने निखनेदिमाम्।
प्रणश्यति रिपुः शीघ्रं सकुटुम्बः सबान्धवः ॥३०२॥

अथवा ब्रह्मदण्डी, मर्कटिका और वज्रकंटकिका—तीनों को एक साथ कूटकर उससे छ: पुत्तलियाँ बनाने के उपरान्त मण्डल के भीतर छ: विन्दु देकर उन्हें भात के साथ स्थापित करने के बाद उनका स्पर्श करते हुए कृष्णाष्टमी के मध्याह्न तक मन्त्रजप करने के पश्चात् उन पुत्तलियों को शत्रु के नाम से युक्त करके श्मशान में गाड़ देने से अपने कुटुम्ब और बान्धवों के सहित शत्रु शीघ्र ही विनाश को प्राप्त हो जाता है।।३०१-३०२।।

कपालशकलान्मन्त्री कृत्यास्त्राक्षरसङ्ख्यया।
स्पृष्ट्वा तां प्रजपेदस्त्रं प्राणस्थापनपूर्वकम् ।।३०३।।
कृष्णाङ्गारचतुर्दश्यां श्मशाने विषवृक्षजे।
जुहुयादजरक्ताक्तां कृत्यास्त्रज्वालया ततः।
रिपुर्यमपुरं गच्छेन्महाज्वरविमोहितः ।।३०४।।

मन्त्रज्ञ साधक कृत्यास्त्र-मन्त्राक्षरों की संख्या के बराबर कपाल के टुकड़ों को एकत्र कर उनमें प्राणप्रतिष्ठा करके उनका स्पर्श करते हुये अस्त्रमन्त्र का जप करने के उपरान्त कृष्णपक्ष की चतुर्दशी एवं मंगलवार के योग में श्मशान में जाकर विषवृक्ष (गूलर) की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में बकरे के रक्त में डुबोये हुये उन कपाल-टुकड़ों से हवन करने पर उस कृत्यास्त्र की ज्वाला के प्रभाव के कारण भीषण ज्वर से विमोहित (अचेत) शत्रु यमलोक को प्रस्थान कर जाता है।।३०३-३०४।।

अजरक्तेन सम्पूर्णे कलशे निक्षिपेदहिम्।
कपालेन पिधायैनं छादयेद्रक्तवाससा ।।३०५।।
पूजयेद्रक्तपुष्पाद्यैः स्पृष्ट्वा तं त्वयुतं जपेत्।
भौमवारे दिशो मध्ये यथापूर्वं समाहितः ।।३०६।।
कारस्करैधिते वह्नौ कृत्यास्त्रेण समेधिते।
अयुतं व्रणतैलेन हुत्वान्ते तं पटं पुनः ।।३०७।।
आमस्तकं समुद्धृत्य त्वभिचाररतः सुधीः।
जुहुयाद्विधिना तेन त्रिदिनैर्म्रियते रिपुः ।।३०८।।

बकरे के रक्त से परिपूर्ण कलश में सर्प को ड़ालकर उस कलश के मुख को कपाल से बन्द करके उसे लाल वस्त्र से आच्छादित करने के पश्चात् लाल पुष्प आदि से उसका पूजन करके उस कलश का स्पर्श करते हुये मन्त्र का दश हजार की संख्या में जप पूर्ण करके पक्ष के मध्य में रहने वाले मंगलवार को पूर्ववर्णित विधि से एकाग्रचित्त होकर कारस्कर की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में कृत्यास्त्र मन्त्रोच्चारण-

सहित भिलावे के तेल से दस हजार हवन करने के उपरान्त अभिचार कर्म में तल्लीन साधक को उस वस्त्र को अपने मस्तक तक ऊपर उठाकर विधि-पूर्वक उससे भी हवन करना चाहिये। ऐसा करने से तीन दिनों के भीतर शत्रु की मृत्यु हो जाती है।

सुन्दरं महिषीसर्पिः प्रस्थं मन्त्रेण मन्त्रितम्।
कुशैराबद्धसर्वाङ्गं स्थापितं प्राणतेजसा ॥३०९॥
कारस्करैधिते वह्नौ व्रणतैलेन मन्त्रवित्।
होमं कृत्वा पुनर्वस्त्रं जुहुयाद्यतमानसः।
एकेन दिवसेनारिर्गच्छेद्यमपुरं प्रति ॥३१०॥

एक प्रस्थ (लगभग डेढ़ किलो) की मात्रा में भैंस के शुद्ध घी को मन्त्र से अभिमन्त्रित करने के उपरान्त कुश से मनुष्य की आकृति बनाकर उसे प्राणप्रतिष्ठित करके कारस्कर की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में जितेन्द्रिय मन्त्रज्ञ साधक द्वारा प्रथमतः भिलावे के तेल से हवन करके पुनः वस्त्र का भी हवन कर देने पर एक दिन के भीतर ही शत्रु की मृत्यु हो जाती है।।३०९-३१०।।

त्रिकोणकुण्डनिहिते वह्नौ मन्त्रेण दीपिते।
अर्चिते गन्धपुष्पाद्यैरयुतं जुहुयात्सुधीः ॥३११॥
राजिभक्ततिलैस्तैलैर्नित्यं सप्तदिनं ततः।
प्रसूतिसमयप्राप्तां महिषीं स्थापितानिलाम्।
अर्चितां गन्धपुष्पाद्यैः स्पृशन्मन्त्रं तु तं जपेत् ॥३१२॥
मस्तकाद्योनिपर्यन्तं जुहुयादेधितेऽनले।
एवं कृते समुत्पन्ना कृत्या दीप्ता हुताशनात्।
भक्षयेदचिराच्छत्रुमीश्वरेणाभिरक्षितम् ॥३१३॥
पुनरग्नौ विशत्येषा कर्त्तारमपि काङ्क्षिणी।
एवंविधानि कर्माणि यः कुर्यान्मन्त्रवित्तमः।
स जपेदात्मरक्षार्थं मन्त्रान्मृत्युञ्जयादिकान् ॥३१४॥

विद्वान् साधक त्रिकोण-कुण्ड की अग्नि को अस्त्रमन्त्र से प्रज्वलित करने के उपरान्त गन्ध-पुष्पादि से उसका अर्चन करके राई, भात एवं तिल-तेल को मिश्रित कर सात दिनों तक प्रतिदिन दस हजार की संख्या में हवन करे। इसके बाद आसन्नप्रसवा भैंस को उस अग्नि के समक्ष खड़ा करके गन्ध-पुष्पादि से उसका पूजन करने के पश्चात् उस भैंस का स्पर्श करते हुये मन्त्रजप करे। तदनन्तर उस भैंस के मस्तक से योनि-पर्यन्त अंगों से उस प्रज्वलित अग्नि में होम करे। ऐसा करने पर उस

होमाग्नि से प्रादुर्भूत दीप्त कृत्या ईश्वर द्वारा रक्षित शत्रु का भी शीघ्र ही भक्षण करने के पश्चात् साधक की इच्छानुरूप पुनः अग्नि में प्रवेश कर जाती है। जो मन्त्रज्ञ साधक इस प्रकार के कर्मों को करता है, उसे अपनी रक्षा के लिये मृत्युञ्जय आदि मन्त्रों का जप करना चाहिये।।३११-३१४।।

अथ त्रिशक्तिमन्त्रस्य साधनार्थं पुरश्चरेत्।
जपं महाव्याहृतीनां होमं तर्पणमेव च।
ॐङ्कारपूर्वकञ्जप्त्वा मन्त्रं त्वयुतसङ्ख्यया।
सहस्रं जुहुयादाज्यैस्तर्पणादि ततश्चरेत्॥३१५॥
एवं कृते सर्वदेवाराधनं स्यात्समर्थता।
विनानेन त्रिशक्तेस्तु मन्त्रसिद्धिर्न जायते॥३१६॥

त्रिशक्ति मन्त्र-साधन विधि (शताक्षर गायत्री)—त्रिशक्ति मन्त्र की साधना करने के लिये सर्वप्रथम महाव्याहृतियों का जप, होम एव तर्पण करने के पश्चात् पुनः प्रणवयुक्त मन्त्र का दस हजार की संख्या में जप एवं एक हजार की संख्या में गोघृत से हवन करने के अनन्तर तर्पण आदि करना चाहिये। ऐसा करने से साधक सभी देवताओं की आराधना करने का सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। उक्त प्रकार से पूर्वानुष्ठान किये विना त्रिशक्ति मन्त्र की सिद्धि नहीं होती।।३१५-३१६।।

ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै महते च स्वाहा।
ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च॥३१७॥
ॐ सुवरादित्याय च दिवे च महते च।
ॐ भूर्भुवस्सुवश्चन्द्रमसे च नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते स्वाहा॥३१८॥
वक्ष्यमाणफलावाप्तिः सामान्या तु सहस्रशः।
देशकालानुरूपेण श्रेष्ठा त्वयुतहोमतः॥३१९॥
यथामनोरथस्तादृग्लक्षहोमात्प्रजायते।
अथ क्रमेण तद्वक्ष्ये तेजस्वी घृतहोमतः॥३२०॥
उदुम्बरसमिद्भिस्तु सर्वकर्मसमर्थता।

'ॐ भूरग्नये च पृथिव्यै महते च स्वाहा, ॐ भुवो वायवे चान्तरिक्षाय च महते च। ॐ सुवरादित्याय च दिवे च महते च। ॐ भूर्भुवस्सुवश्चन्द्रमसे नक्षत्रेभ्यश्च दिग्भ्यश्च महते स्वाहा।' इस मन्त्र से एक हजार हवन करने से वक्ष्यमाण सामान्य फल प्राप्त होता है। देश-काल के अनुसार दस हजार हवन से श्रेष्ठ फलों की प्राप्ति होती है। मनोकामनानुरूप एक लाख तक हवन किया जाता है। अब क्रमशः उसका

वर्णन करता हूँ। घी के हवन से साधक तेजस्वी होता है, गूलर की समिधा से हवन करने पर सभी कर्म करने का सामर्थ्य प्राप्त होता है।।३१७-३२०।।

पश्वादिकामो जुहुयाद् दुग्धं वाप्यथवा दधि ॥३२१॥
समस्तोत्पातशान्त्यर्थमपामार्गस्य तण्डुलान् ।
अर्कस्य समिधो हुत्वा यथेष्टं कनकं लभेत् ॥३२२॥
जात्यास्तु वल्लिकायुग्मं ग्रन्थयित्वा घृतान्वितम् ।
जुहुयादयुतसङ्ख्याकं सम्पदं स सदा लभेत् ॥३२३॥
कन्याकामस्तु जुहुयात्तिलतण्डुलमुष्टिभिः ।
अपामार्गस्य समिधो जुहुयाद् ग्रामकामुकः ॥३२४॥
वशीकर्त्तुं तु समिधः पलाशाशोकयोर्हुनेत् ।
आयुष्कामस्तु दूर्वाभिः पुष्पैस्तु धनकामुकः ॥३२५॥
समिधो व्याधिघातस्य रुधिरेणाजकेन च ।
संयोज्य जुहुयान्मन्त्री त्वभिचारः प्रसिध्यति ॥३२६॥

पशु आदि की कामना से दूध अथवा दधि से हवन करना चाहिये। समस्त उत्पातों की शान्ति के लिये अपामार्ग के बीजों से हवन करना चाहिये। अकवन की समिधा से हवन करने पर यथेष्ट सुवर्ण की प्राप्ति होती है। जाति के दो वल्लिओं को ग्रथित करके उसे घृत से सम्पृक्त कर दस हजार हवन करने पर सर्वदा सम्पदा की प्राप्ति होती है।

विवाहेच्छुक पुरुष को मुट्ठी भर तिल और चावल की आहुति से हवन करना चाहिये। ग्राम की कामना वाले को अपामार्ग की समिधा से हवन करना चाहिये। वशीकरण के लिये पलाश और अशोक की समिधा से हवन करना चाहिये। आयु की कामना हो तो दूब से एवं धन की कामना हो तो पुष्पों से हवन करना चाहिये। व्याधि-विनाश के लिये बकरे के रक्त से हवन करना चाहिये। सबको मिलाकर हवन करने से अभिचार कर्म सफल होते हैं।।३२१-३२६।।

जातानां जायमानानां प्रभोः सर्वत्र कोपनम् ।
मरणं वा तत्र हुनेत्सर्वव्रीहिभिरादरात् ॥३२७॥
प्रभूतव्रीहिदूर्वाभिर्होमान् सप्तकृतिर्भवेत् ।
उल्लूककाकपक्षाभ्यां होमो विद्वेषकारकः ॥३२८॥

जन्म लिये हुये अथवा जन्म लेने वाले सब पर प्रभु का कोप अथवा मरण होता है; इसलिये आदरपूर्वक समस्त धान्यों से हवन करना चाहिये। प्रभूत धान्य एवं दूब

के हवन से सात कार्य (?) सिद्ध होते हैं। उल्लू और कौवे के पंख का किया गया हवन विद्वेष कराने वाला होता है।।३२७-३२८।।

स्वप्नग्रहे तु कपिलाघृतहोमं सहस्त्रकम्।
सम्पातस्य घृतं स्थाप्यं वचां तेनैव लोलयेत्।
मन्त्रयित्वा पुत्रवतीं मेधावी चैव जायते ।।३२९।।
प्रत्यहं मासमात्रं तु स्थित्वा सूर्यस्य सम्मुखम्।
अयुतं प्रजपेन्नित्यं गुणिनं लभते सुतम् ।।३३०।।
यद्यदिष्टतमं वस्तु तत्तद्धोमं समाचरेत्।
अयुतं घृतसंयुक्तं तस्य प्राप्तिः प्रजायते।
होमयोग्यं तु यत्तस्य पुत्रवत्सिद्धिसाधनम् ।।३३१।।

ग्रहों की शान्ति के लिये कपिला गाय के घृत से एक हजार हवन करना चाहिये। किसी पात्र में सम्पातपूर्वक घृत को एकत्र कर उसमें वचा को घुमाते हुये अभिमन्त्रित कर पुत्रवती स्त्री को उस घृत को पिलाने से उसे मेधावी पुत्र की प्राप्ति होती है। एक महीने तक प्रतिदिन सूर्य के सम्मुख स्थित होकर दस हजार मन्त्रों का जप करने से गुणवान पुत्र की प्राप्ति होती है।

जो-जो वस्तु प्राप्त करने की इच्छा हो, उन्हीं-उन्हीं वस्तुओं को घृत से संयुक्त कर दस हजार हवन करने से इच्छित वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। जो भी हवनयोग्य हो, वह पुत्रवत् उसकी सिद्धि का साधन होता है।।३२९-३३१।।

त्रिशक्तिमन्त्रसाधनविधिः

अथ त्रिशक्तिमन्त्रस्य साधनं कथयाम्यहम्।
ब्रह्मविष्णुशिवाः सिद्धा यत्प्रसादाद्धरिस्तथा ।।३३२।।
गायत्री च तथाग्नेयमस्त्रं त्रैयम्बको मनुः।
एतत्त्रयं त्रिशक्त्याख्यो मन्त्रः प्रोक्तशताक्षरः ।।३३३।।
उक्तास्त्रयोऽस्य मुनयश्छन्दांस्यपि च तानि तु।
अगोचरं वेदगम्यं परन्तेजोऽस्य देवता ।।३३४।।
विश्वै रुद्रैस्तथा कृत्या चाकृत्या तिथिभिर्धनैः।
मन्त्रवर्णैः षडङ्गानि प्राङ्न्यासांश्च समाचरेत् ।।३३५।।
सस्यं मानवविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं
व्याप्तं स्थावरजङ्गमे मुनिवरैर्ध्यातं निरुद्धेन्द्रियैः।

अर्काग्न्युग्रमयं शताक्षरवपुस्तारात्मकं सन्ततं
नित्यानन्दगुणालयं परतरं वन्दामहे तन्महः ॥३३६॥

त्रिशक्ति मन्त्र-विधान—अब त्रिशक्ति मन्त्र के साधन-विधान का वर्णन करता हूँ; जिसकी कृपा से ब्रह्मा, विष्णु, शिव और हरि ने सिद्धि प्राप्त की है। 'तत्सवितु' आदि गायत्री, 'जातवेदसे' आदि आग्नेयास्त्र एवं 'त्र्यम्बकं यजामहे' आदि त्रैयम्बक मन्त्र—इन तीनों को मिलाकर एक सौ अक्षरों का त्रिशक्ति मन्त्र बनता है (गायत्री २४ अक्षर, त्र्यम्बक ३२ अक्षर और जातवेदसे ४४ अक्षर = १०० अक्षर)। इन तीनों के ऋषि एवं छन्द अगोचर हैं एवं वेदों से जानने योग्य हैं। इसके देवता परम तेज हैं। शताक्षरी गायत्री के १३, ११, २२, १५, १७ और २२ अक्षरों से षडङ्ग और करन्यास इस प्रकार किया जाता है—

१. ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी हृदयाय नमः।
२. ॐ महि धियो यो नः प्रचोदयात् शिरसे स्वाहा।
३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः शिखायै वषट्।
४. ॐ स नः परिषदति दुर्गाणि विश्वा नानेव कवचाय हुम्।
५. ॐ सिधुं दुरितात्यग्निः त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि नेत्रत्रयाय वौषट्।
६. ॐ पुष्टिवर्द्धनं उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् अस्त्राय फट्।

इसी प्रकार करन्यास आदि का भी सम्पादन करके निम्नवत् ध्यान करना चाहिये—

सद्गुण-सम्पन्न, मान से रहित, वेदवचनों में प्रथम, जगत् के कारण-स्वरूप, समस्त स्थावर एवं जङ्गम में व्याप्त, जितेन्द्रिय श्रेष्ठ मुनियों द्वारा ध्यान किये गये, सूर्य एवं अग्नि के सदृश उग्र, शताक्षर त्रिशक्ति मन्त्ररूपी शरीर वाले, ताराओं के सदृश बराबर प्रकाशमान, अपरिमित आनन्द एवं गुणों के आगार उन परम तेजःस्वरूप की मैं वन्दना करता हूँ।।३३२-३३६।।

सौरपीठे यजेत्तत्र षडङ्गैः प्रथमावृतैः ।
गायत्रीशक्तिभिः पश्चात्पूजयेदावृतित्रयम् ॥३३७॥

पूजन यन्त्र—सौर पीठ पर अर्थात् मध्य बिन्दु पर गन्ध-अक्षत-पुष्प से प्रथम आवृति में षडङ्गों का पूजन करने के उपरान्त गायत्री की शक्तियों से तीन आवृतियों का पूजन करना चाहिये। षट्कोण में प्रथम आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

पूजन यन्त्र
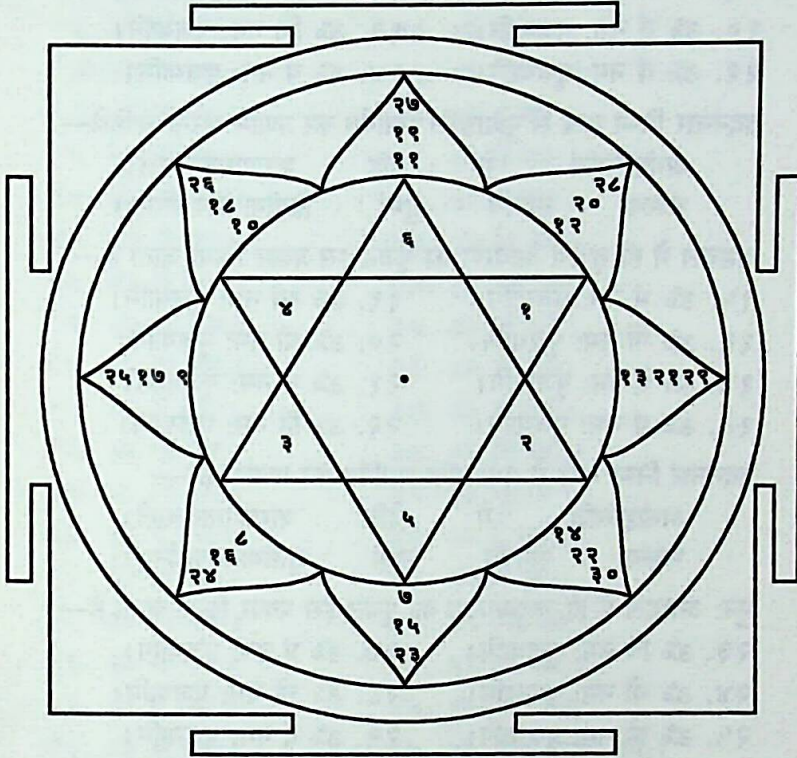
१. ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी हृदयाय नम: हृदयं पूजयामि तर्पयामि।

२. ॐ महि धियो यो न: प्रचोदयात् शिरसं पूजयामि तर्पयामि।

३. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेद: शिखां पूजयामि तर्पयामि।

४. ॐ स न: परिषदति दुर्गाणि विश्वा नावेव कवचं पूजयामि तर्पयामि।

५. ॐ सिन्धुं दुरितात्यग्नि: त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धि नेत्रं पूजयामि तर्पयामि।

६. ॐ पुष्टिवर्द्धनम् उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् अस्त्रं पूजयामि तर्पयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

अष्टदल में द्वितीय आवरण का पूजन इस प्रकार किया जाता है—

७. ॐ तं नम: पूजयामि। ८. ॐ त्सं नम: पूजयामि।

९. ॐ विं नमः पूजयामि। १२. ॐ रें नमः पूजयामि।
१०. ॐ तुं नमः पूजयामि। १३. ॐ णिं नमः पूजयामि।
११. ॐ वं नमः पूजयामि। १४. ॐ यं नमः पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

अष्टदल में ही तृतीय आवरण का पूजन इस प्रकार किया जाता है—

१५. ॐ भं नमः पूजयामि। १९. ॐ स्यं नमः पूजयामि।
१६. ॐ गों नमः पूजयामि। २०. ॐ धीं नमः पूजयामि।
१७. ॐ दें नमः पूजयामि। २१. ॐ मं नमः पूजयामि।
१८. ॐ वं नमः पूजयामि। २२. ॐ हिं नमः पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

पुनः अष्टदल में ही चतुर्थावरण का पूजन इस प्रकार किया जाता है—

२३. ॐ धिं नमः पूजयामि। २७. ॐ प्रं नमः पूजयामि।
२४. ॐ यों नमः पूजयामि। २८. ॐ चों नमः पूजयामि।
२५. ॐ यों नमः पूजयामि। २९. ॐ दं नमः पूजयामि।
२६. ॐ नं नमः पूजयामि। ३०. ॐ यातं नमः पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।।३३७।।

पञ्चमावरणं कार्यं वीथीरूपं तु तत्र च।
चतुश्चत्वारिंशत्सङ्ख्या जातवाद्यास्तु शक्तयः ।।३३८।।
आग्नेयास्त्रोदिता ह्येव प्रोक्तं शक्तिचतुष्टयम्।
आवृतीनां तु सम्पूजा मृत्युञ्जयोक्तशक्तिभिः ।।३३९।।
दिक्पालांश्च तदस्त्राणि दशकैकादशावृतौ।

वृत्तद्वयान्तराल में चतुर्थ आवरण का पूजन इस प्रकार किया जाता है—

१. ॐ जां नमः। ३. ॐ वें नमः।
२. ॐ तं नमः। ४. ॐ दं नमः।

५. ॐ सें नमः। २७. ॐ षं नमः।
६. ॐ सुं नमः। २८. ॐ दं नमः।
७. ॐ नं नमः। २९. ॐ तिं नमः।
८. ॐ वां नमः। ३०. ॐ दुं नमः।
९. ॐ मं नमः। ३१. ॐ वें नमः।
१०. ॐ सों नमः। ३२. ॐ वं नमः।
११. ॐ मं नमः। ३३. ॐ विं नमः।
१२. ॐ मं नमः। ३४. ॐ श्वां नमः।
१३. ॐ सों नमः। ३५. ॐ नां नमः।
१४. ॐ तीं नमः। ३६. ॐ वें नमः।
१५. ॐ यं नमः। ३७. ॐ वं नमः।
१६. ॐ तों नमः। ३८. ॐ सिं नमः।
१७. ॐ निं नमः। ३९. ॐ धुं नमः।
१८. ॐ दं नमः। ४०. ॐ दुं नमः।
१९. ॐ हां नमः। ४१. ॐ रिं नमः।
२०. ॐ तिं नमः। ४२. ॐ त्यां नमः।
२१. ॐ वें नमः। ४३. ॐ त्यं नमः।
२२. ॐ दं नमः। ४४. ॐ ग्निः नमः।
२३. ॐ सं नमः। ४५. ॐ गानि दुर्गायै नमः।
२४. ॐ नं नमः। ४६. ॐ विश्वदुर्गायै नमः।
२५. ॐ पं नमः। ४७. ॐ सिन्धुदुर्गायै नमः।
२६. ॐ रिं नमः। ४८. ॐ अग्निदुर्गायै नमः।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं पञ्चमावरणार्चनम्।।

तत्पश्चात् अष्टदल में षष्ठ आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

३१. ॐ त्र्यं नमः पूजयामि। ३५. ॐ जां नमः पूजयामि।
३२. ॐ बं नमः पूजयामि। ३६. ॐ मं नमः पूजयामि।
३३. ॐ कं नमः पूजयामि। ३७. ॐ हें नमः पूजयामि।
३४. ॐ यं नमः पूजयामि। ३८. ॐ सुं नमः पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं षष्ठावरणार्चनम्।।

पुनः अष्टदल में सप्तम आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

३९. ॐ गं नमः पूजयामि।
४०. ॐ धिं नमः पूजयामि।
४१. ॐ पुं नमः पूजयामि।
४२. ॐ ष्टिं नमः पूजयामि।
४३. ॐ वं नमः पूजयामि।
४४. ॐ र्द्धं नमः पूजयामिं।
४५. ॐ नं नमः पूजयामि।
४६. ॐ उं नमः पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं सप्तमावरणार्चनम्।।

पुनः अष्टदल में अष्टम आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

४७. ॐ र्वां नमः पूजयामि।
४८. ॐ रुं नमः पूजयामि।
४९. ॐ कं नमः पूजयामि।
५०. ॐ मिं नमः पूजयामि।
५१. ॐ वं नमः पूजयामि।
५२. ॐ बं नमः पूजयामि।
५३. ॐ धं नमः पूजयामि।
५४. ॐ नां नमः पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमष्टमावरणार्चनम्।।

पुनः अष्टदल में नवम आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

५५. ॐ म्मृं नमः पूजयामि।
५६. ॐ त्युं: नमः पूजयामि।
५७. ॐ मुं नमः पूजयामि।
५८. ॐ क्षीं नमः पूजयामि।
५९. ॐ यं नमः पूजयामि।
६०. ॐ मां नमः पूजयामि।
६१. ॐ मृं नमः पूजयामि।
६२. ॐ तात् नमः पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करे—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं नवमावरणार्चनम्।।

तदनन्तर भूपुर में दशम आवरण में इन्द्रादि देवताओं का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

६३. ॐ इन्द्राय नमः इन्द्रं पूजयामि।
६४. ॐ अग्नये नमः अग्निं पूजयामि।
६५. ॐ यमाय नमः यमं पूजयामि।

६६. ॐ निर्ऋतये नमः निर्ऋतिं पूजयामि।

६७. ॐ वरुणाय नमः वरुणं पूजयामि।

६८. ॐ वायवे नमः वायुं पूजयामि।

६९. ॐ कुबेराय नमः कुबेरं पूजयामि।

७०. ॐ ईशानाय नमः ईशानं पूजयामि।

७१. ॐ ब्रह्मणे नमः ब्रह्मा पूजयामि।

७२. ॐ अनन्ताय नमः अनन्तं पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं दशमावरणार्चनम्।।

तत्पश्चात् भूपुर में ही एकादश आवरण में इन्द्रादि देवताओं के आयुधों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

७३. ॐ वज्राय नमः वज्रं पूजयामि।

७४. ॐ शक्तये नमः शक्तिं पूजयामि।

७५. ॐ दण्डाय नमः दण्डं पूजयामि।

७६. ॐ खड्गाय नमः खड्गं पूजयामि।

७७. ॐ पाशाय नमः पाशं पूजयामि।

७८. ॐ अङ्कुशिने नमः अङ्कुशं पूजयामि।

७९. ॐ गदायै नमः गदां पूजयामि।

८०. ॐ त्रिशूलाय नमः त्रिशूलं पूजयामि।

८१. ॐ पद्माय नमः पद्मं पूजयामि।

८२. ॐ चक्राय नमः चक्रं पूजयामि।

तदनन्तर निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित कर प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यमेकादशावरणार्चनम्।।३३८-३३९।।

लक्षं जपेद् हुनेत्क्षीरं भक्ताद्यैस्तर्पयेत्ततः ।।३४०।।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री भवेद्भास्करसन्निभः ।

उपर्युक्त रीति से आवरण-पूजन करने के पश्चात् मन्त्र का एक लाख जप करने के बाद दूध-भात से हवन सम्पन्न करके तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार की क्रिया के फलस्वरूप मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक सूर्य के समान तेज:सम्पन्न हो जाता है।।३४०।।

सुधालतोद्भवैः खण्डैर्जुहुयात् क्षीरसंयुतैः ।।३४१।।
दीर्घमायुरवाप्नोति ह्याधिव्याधिविवर्जितः ।
दूर्वाभिर्घृतसिक्ताभिस्तदेव फलमाप्नुयात् ।।३४२।।
मधुरत्रयसंयुक्तैर्जुहुयादरुणाम्बुजैः ।
महालक्ष्मीमवाप्नोति मासैः षड्भिर्विधानवित् ।।३४३।।
रक्तोत्पलैस्त्रिमध्वक्तैर्जुहुयात् सर्वसम्पदे ।
श्रीप्रसूनैः प्रजुहुयाद्रमाया वसतिर्भवेत् ।।३४४।।
सहस्रं जुहुयान्नित्यं पायसेन तिलैः शुभैः ।
भानुसङ्ख्यान् द्विजान्नित्यं भोजयेन्मधुरान्वितैः ।।३४५।।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सर्वरोगविवर्जितः ।
कृत्याद्रोहग्रहान् सर्वाञ्जित्वा दीर्घं स जीवति ।।३४६।।

गुरुचखण्डों को दूध में डुबोकर हवन करने से साधक को आधि-व्याधि से रहित दीर्घ आयु की प्राप्ति होती है। दूब को घी से तर करके हवन करने से भी उक्त फल की ही प्राप्ति होती है।

शहद, शक्कर, घी—इन मधुरत्रय से सिक्त लाल कमलों से हवन करने पर विधानज्ञ साधक को छः महीनों में महालक्ष्मी की प्राप्ति होती है। समस्त सम्पत्तियों की प्राप्ति के लिये शहद, शक्कर, घी—इन मधुरत्रय से संसिक्त लाल कुमुद से हवन करना चाहिये। मधुरत्रय से आर्द्र बेल के फूलों से हवन करने पर साधक लक्ष्मी के निवासस्वरूप होता है।

खीर में तिल मिलाकर प्रतिदिन एक हजार हवन करने के पश्चात् बारह ब्राह्मणों को मधुर भोजन कराने से साधक सभी पापों एवं रोगों से रहित होकर समस्त कृत्याद्रोहों तथा ग्रहों पर विजय प्राप्त करके दीर्घकाल तक जीवित रहता है।।३४१-३४६।।

प्रातःस्नानरतो नित्यं जपन्नित्यं शतं शतम् ।
भानुमालोकयेत्सम्यक्स जीवेच्छरदां शतम् ।।३४७।।
नित्यमष्टोत्तरशतं निःश्रेयसफलाप्तये ।
गायत्र्याद्यं जपेन्मन्त्रं सर्वपापविमुक्तये ।।३४८।।
सर्वशत्रुविनाशाय त्रिष्टुबाद्यं जपेदिमम् ।
त्र्यम्बकाद्यं प्रजपेदायुरारोग्यवृद्धये ।।३४९।।

प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान करके सूर्य पर दृष्टि रखकर मन्त्र का एक सौ जप करने

से साधक सौ वर्षों तक जीवित रहता है। निःश्रेयस् (मोक्ष) की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन एक सौ आठ बार मन्त्रजप करना चाहिये। समस्त पापों से छुटकारा पाने के लिये प्रतिदिन आदि में गायत्री मन्त्र वाले त्रिशक्ति मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। सभी शत्रुओं के विनाश के लिये आदि में 'जातवेदसे' इस त्रिष्टुप् मन्त्र वाले त्रिशक्ति मन्त्र का जप करना चाहिये। आयु एवं आरोग्य की वृद्धि के लिये आदि में त्र्यम्बक मन्त्र वाले त्रिशक्ति मन्त्र का जप करना चाहिये।।३४७-३४९।।

अथ त्वरितरुद्रस्य विधानमभिधीयते।
न वेदे नागमे चेदृङ्मन्त्रस्त्वरितसिद्धिदः ।।३५०।।
यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु।
यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ।।३५१।।
अथर्वणो मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
अस्त्यस्य देवता रुद्रः षडङ्गानि न्यसेत्क्रमात् ।।३५२।।
अत्र न्यासस्तु पञ्चाङ्गः पञ्चत्रीषूग्रगोमितैः।
वर्णान् देहादिषु न्यस्याङ्गुष्ठादौ ध्यानमाचरेत् ।।३५३।।

त्वरित रुद्रविधान—अब त्वरित रुद्र मन्त्र-विधान का वर्णन करता हूँ। सद्यः सिद्धि प्रदान करने वाला इस प्रकार का कोई भी विधान वेद अथवा आगमशास्त्र में नहीं है। त्वरितरुद्र का मन्त्र इस प्रकार है—

यो रुद्रो अग्नौ यो अप्सु य ओषधीषु।
यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु।।

इस मन्त्र के ऋषि अथर्वण हैं। छन्द अनुष्टुप् है एवं इसके देवता रुद्र हैं। क्रमशः इसका षडङ्ग न्यास करना चाहिये। इसका करन्यास, पंचाङ्गन्यास एवं अक्षरन्यास इस प्रकार किया जाता है—

करन्यास—
ॐ यो रुद्रो अग्नौ अंगुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ यो अप्सु तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ य ओषधीषु मध्यमाभ्यां नमः।
यो रुद्रा विश्वा भुवना विवेश अनामिकाभ्यां नमः।
तस्मै रुद्राय नमो अस्तु कनिष्ठिकाभ्यां नमः।

पंचाङ्गन्यास—
ॐ यो रुद्रो अग्नौ हृदयाय नमः।

ॐ यो अप्सु शिरसे स्वाहा।
ॐ य ओषधीषु शिखायै वषट्।
ॐ यो रुद्रा विश्वा भुवना विवेश कवचाय हुम्।
ॐ तस्मै रुद्राय नमो अस्तु नेत्रत्रयाय वौषट्।

अक्षरन्यास—

ॐ यो नम: शिरसि।
ॐ रु नम: भाले।
ॐ द्रो नम: भ्रूमध्ये।
ॐ अ नम: दक्षनेत्रे।
ॐ प्सु नम: वामनेत्रे।
ॐ य नम: दक्षकर्णे।
ॐ ओ नम: वामकर्णे।
ॐ ष नम: नासिकायाम्।
ॐ धी नम: दक्षकपोले।
ॐ षु नम: वामकपोले।
ॐ यो नम: मुखे।
ॐ रु नम: कण्ठे।
ॐ द्रो नम: दक्षबाहौ।
ॐ वि नम: वामबाहौ।
ॐ श्वा नम: दक्षकरतले।
ॐ भु नम: वामकरतले।
ॐ व नम: पृष्ठे।
ॐ ना नम: वक्ष:स्थले।
ॐ वि नम: उदरे।
ॐ वे नम: नाभौ।
ॐ श नम: कट्याम्।
ॐ त नम: दक्षोरौ।
ॐ स्मै नम: वामोरौ।
ॐ रु दक्षजानुनि।
ॐ द्रा वामजानुनि।
ॐ य दक्षजङ्घायाम्।
ॐ न वामजङ्घायाम्।
ॐ मो नम: दक्षपादे।
ॐ अ नम: वामपादे।
ॐ स्तु नम: सर्वाङ्गे।

इस प्रकार न्यास करने के उपरान्त ध्यान करना चाहिये।।३५०-३५३।।

चतुर्भुजं त्रिनेत्रं च शुद्धस्फटिकसन्निभम्।
अमृतेन च सम्पूर्णौ कलशौ हस्तयोर्द्वयोः ।।३५४।।
हस्तद्वयेन योगस्य कृतमुद्रं स्थिरासनम्।
सर्वकामफलेशानं शङ्करं करुणानिधिम् ।।३५५।।
उग्रकर्मण्युग्रमूर्त्तिं ज्वलत्पावकलोचनम्।
द्विभुजं नागहस्तं च शूलपाणिं जटाधरम् ।।३५६।।

ध्यान—चार भुजाओं एवं तीन नेत्रों वाले, शुद्ध स्फटिक के समान, दो हाथों में अमृत से परिपूर्ण कलश धारण किये हुये एवं स्थिर आसन में अवस्थित होकर दो हाथों से योग की मुद्रा बनाये हुये, समस्त काम्य फलों के अधीश्वर, करुणा के आगार,

उग्र कर्म करने वाले, उग्र मूर्ति-स्वरूप, जलती हुई अग्नि के समान लाल-लाल नेत्रों वाले, दो भुजाओं वाले रूप में एक हाथ पर नाग एवं दूसरे से त्रिशूल को धारण करने वाले तथा जटाओं को धारण करने वाले भगवान् शिव का ध्यान करना चाहिये।

अधःशय्यां त्वेकवारं हविष्यान्नस्य भोजनम्।
ब्रह्मचर्य्यं सत्यवाणीं पुरश्चर्य्याविधौ चरेत्।।३५७।।
लक्षमेकं जपेन्मन्त्रं होमेऽर्कसमिधो घृतम्।
तर्पणं मार्जनं विप्रभोजनं मन्त्रसिद्धये।।३५८।।
पूजा पार्थिवलिङ्गस्य प्राग्वन्नित्यं समाचरेत्।
एवं सिद्धे मनौ मन्त्री प्रयोगान् कर्तुमर्हति।।३५९।।

पुरश्चरणकाल में जमीन पर शयन करना चाहिये, अहोरात्र में एक बार हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये एवं सदा सत्य बोलना चाहिये। मन्त्र की सिद्धि के लिये एक लाख की संख्या में मन्त्रजप करके अकवन की समिधा और घी से हवन करने के पश्चात् तर्पण, मार्जन और विप्रभोजन कराने के साथ-साथ प्रतिदिन पार्थिव लिङ्ग का सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मन्त्री प्रयोगों को करने के योग्य हो जाता है।।३५७-३५९।।

अयुतद्वयहोमेन या सिद्धिः सा निगद्यते।
औदुम्बरैरन्नकामस्तेजस्कामस्तु खादिरैः।।३६०।।
अपामार्गसमिद्धोमाद् भूतबाधा विनश्यति।
ग्रहबाधाविनाशाय जपेदश्वत्थसन्निधौ।।३६१।।
लवणान्वितदध्यक्तास्त्र्यस्त्राग्रा बोधिवृक्षजाः।
हूयन्ते समिधः शुष्काः स्वाहान्तं मन्त्रमुच्चरेत्।।३६२।।
दशपञ्चाहुतीर्हुत्वा गच्छ गच्छेत्युदीरयेत्।
यावद्धोमं बलिं दद्यात् पुरुषाहारसम्मितम्।
एवं कृते तु वा सम्यक्पुरुषं तं स मुञ्चति।।३६३।।

बीस हजार की संख्या में हवन करने से जो सिद्धि प्राप्त होती है, उसे अब कहा जा रहा है। अन्न-प्राप्ति की कामना से गूलर की समिधा से एवं तेजःप्राप्ति की कामना से खैर की समिधा से हवन करना चाहिये। अपामार्ग की समिधा से हवन करने पर भूतबाधा का शमन होता है। ग्रहबाधा के विनाश के लिये पीपल के समीप जप करना चाहिये। जप के पश्चात् गूलर, खैर, अपामार्ग और पीपल की सूखी समिधाओं से स्वाहान्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए हवन करते हुये प्रत्येक पचास आहुतियों के

बाद 'गच्छ-गच्छ' का उच्चारण करते हुये पुरुषाहार-सम्मित बलि प्रदान करना चाहिये। ऐसा करने से पुरुष ग्रहजनित बाधाओं से मुक्त हो जाता है।।३६०-३६३।।

जुहुयाच्छतपत्राणि संहृष्टोऽभीष्टमाप्नुयात्।
लाजहोमेन कन्यार्थी कन्यां प्राप्नोति रूपिणीम्॥३६४॥
लाजाश्च चरुणा युक्ताः श्वेतपुष्पाणि वा पुनः।
हूयन्ते हरिते देशे तस्य विश्वं वशीभवेत्॥३६५॥
वामे तदुन्नतं कार्यं स्त्रीवश्यं न तु दक्षिणे।
अरिसैन्यप्रशान्त्यर्थं तिलानाज्येन सम्मितान्॥३६६॥
होमस्थाने च संस्थाप्य कुम्भमेकं जलान्वितम्।
मन्त्रयित्वाष्टसाहस्रं शरावांस्तत्र विक्षिपेत्॥३६७॥
अभिषेकैश्च तैस्तेषां शालाः प्रोक्ष्य प्रदक्षिणम्।
ग्रहग्रामादिशान्त्यर्थं राज्यस्याप्येवमाचरेत्॥३६८॥

सम्यक् रूप से हर्षित होकर शतपत्रों से हवन करने पर मनोकामना पूर्ण होती है। धान के लावा से हवन करने पर विवाहार्थी का विवाह सुन्दर स्त्री से हो जाता है। खीर में लावा मिलाकर या उजले फूल मिलाकर हरे-भरे देश में हवन करने से विश्व वशीभूत हो जाता है। स्त्री-वशीकरण का प्रयोग वाममार्ग में करना चाहिये; दक्षिणमार्ग में नहीं करना चाहिये। शत्रुसेना को शान्त करने के लिये गाय के घी और तिल से हवन करना चाहिये। हवनस्थान में एक जलपूर्ण कलश को स्थापित कर आठ हजार मन्त्रजप से उसे अभिमन्त्रित करके मिट्टी के प्याले से उसे ढक देना चाहिये। तत्पश्चात् उस जल से अभिषेक करना चाहिये एवं पूजागृह को प्रदक्षिणक्रम से उसी जल से प्रोक्षित करना चाहिये। ऐसा करने से गृह, ग्राम अथवा राज्य में शान्ति रहती है।

वास्तुपूजा प्रकर्तव्या चतुष्षष्टिपदैः शुभैः॥३६९॥
ईशानाय बलिः कार्यो भूतानां पतये तथा।
एवं कृते पशूनान्तु प्रजानां शान्तिमाप्नुयात्॥३७०॥

चौंसठ कोष्ठों वाले मण्डल में वास्तुपूजन करने के पश्चात् ईशान कोण में भूतपति के लिये बलि प्रदान करना चाहिये। ऐसा करने से पशुओं एवं प्रजाओं में शान्ति बनी रहती है।।३६९-३७०।।

उत्पातेषु च सर्वेषु निशायां ग्रामबाह्यतः।
उपविश्य जपेद्रुद्रं त्वरितं बहुभिः सह॥३७१॥

होमः पलाशकाष्ठैस्तु कर्तव्यो घृतसंयुतैः।
ईशानाय बलिं कुर्याद्यस्यां दिशि तदद्भुतम् ॥३७२॥
ततो दिशाम्पतेस्तत्र पशूनाम्पतये तथा।
वृद्धिकामो जपेल्लक्षं तिलहोमो घृतान्वितः ॥३७३॥
बलिपूजा च कर्त्तव्या शिवस्य वरुणस्य च।
यस्य कस्यापि कार्यस्य लभ्यते योग्यता यदि ॥३७४॥
तदा लक्षार्धतो लक्षपर्यन्तं त्वरितं जपेत्।
सर्वान् कामानवाप्नोति त्वरितस्य प्रसादतः ॥३७५॥

सभी उत्पातों की शान्ति के लिये रात्रि में गाँव के बाहर समूह में बैठकर त्वरितरुद्र का जप करने के बाद घृत-समन्वित पलाश की समिधा से हवन करके ईशान देव के लिये ईशान कोण में बलि प्रदान करना चाहिये। इसके बाद वृद्धि की कामना से 'दिशाम्पतये नमः पशूनाम्पतये नमः' मन्त्र का एक लाख की संख्या में जप करके तिल एवं घी से हवन करके शिव और वरुण की पूजा करने के बाद जिस किसी कार्य को करने की योग्यता यदि प्राप्त हो जाय तो पचास हजार से एक लाख तक त्वरितरुद्र का जप करने पर त्वरितरुद्र की कृपा से समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

श्रीकामः शान्तिकामो वा जपेल्लक्षमिदं ततः।
श्रीकामो बिल्वसमिधा शान्तिकामः शमीमयैः ॥३७६॥
जुहुयादाज्यसम्मिश्रैस्तर्पणं मार्जनं तथा।
एवं सर्वेषु कार्येषु होमः कार्यस्तथा यवैः ॥३७७॥
जुहुयाल्लक्षमेकन्तु पुत्रार्थी पायसेन च।
विद्यार्थी श्रीफलैस्तद्वदायुष्कामस्तु दूर्वया ॥३७८॥
तिलैरथाज्यसम्मिश्रैस्तेजस्कामो घृतेन वा।
व्रीहिभिः पुष्टिकामस्तु तुष्टिकामस्तथा हि तैः ॥३७९॥
पायसं सर्वकामेषु होतव्यं शर्करान्वितम्।
मध्वब्जाज्याम्रपर्णानि तीव्रज्वरविनाशने ॥३८०॥
सर्वरोगविनाशाय सूर्यस्याभिमुखो जपेत्।
सहस्रमयुतं लक्षं रोगिणान्तारतम्यतः ॥३८१॥

तदनन्तर धन अथवा शान्ति की इच्छा से इस मन्त्र का एक लाख जप करना चाहिये। धन की कामना होने पर गोघृत के साथ बेल की समिधा से और शान्ति की कामना होने पर गोघृत के साथ शमी की समिधा से हवन करने के उपरान्त तर्पण एवं मार्जन करना चाहिये। इसी प्रकार सभी कार्यों में यव से हवन करना चाहिये।

पुत्र-प्राप्ति की कामना होने पर खीर से, विद्या की कामना होने पर बेलफल से एवं आयु की कामना होने पर दूर्वा से एक लाख की संख्या में हवन करना चाहिये। तेज:प्राप्ति की कामना से गोघृत-मिश्रित तिल से अथवा केवल घृत से हवन करना चाहिये। पुष्टि और तुष्टि की कामना से धान्यों से हवन करना चाहिये। सभी मनोरथों की पूर्ति-हेतु शर्करा-मिश्रित खीर से हवन करना चाहिये।

तीव्र ज्वर के विनाश के लिये मधु, कमल एवं आम के पत्तों को गोघृत से सिक्त कर हवन करना चाहिये। सभी रोगों के विनाश-हेतु रोगियों की प्रकृति के अनुसार एक हजार, दस हजार अथवा एक लाख की संख्या में सूर्य की तरफ मुख करके मन्त्रजप करना चाहिये।।३७६-३८१।।

जपान्ते तु षडङ्गानां न्यासञ्चापि पराह्वयम्।
पञ्चत्रिपञ्चरुद्रेषु चतुर्वर्णैः षडङ्गकम् ।।३८२।।
पादयोर्जङ्घयोर्जान्वोरूर्वोर्गुह्ये च मेढ्रके।
क्रमान्नाभौ च जठरे हृदि कण्ठे मुखे नसि ।।३८३।।
नेत्रयोश्च भ्रुवोर्मध्ये ललाटे मूर्ध्नि विन्यसेत्।
पदानि षोडश मनोरिति त्वरितरुद्रियम् ।।३८४।।

जप के अन्त में षडङ्ग न्यास और पदन्यास भी करना चाहिये। षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—

ॐ यो रुद्रो अग्नौ हृदयाय नमः।
ॐ यो अप्सु शिरसे स्वाहा।
ॐ यो ओषधीषु शिखाये वषट्।
ॐ यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश कवचाय हुम्।
ॐ तस्मै रुद्राय नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ नमो अस्तु अस्त्राय फट्।

पदन्यास इस प्रकार किया जाता है—यः पादयोः, रुद्रः जङ्घयोः, अग्नौ जान्वोः, यः ऊर्वोः, अप्सु गुह्ये, यः लिङ्गे, ओषधीषु नाभौ, यः जठरे, रुद्रः हृदये, विश्वा कण्ठे, भुवना मुखे, विवेश नासिकायाम्, तस्मै नेत्रयोः, रुद्राय भ्रुवोर्मध्ये, नमः ललाटे, अस्तु मूर्ध्नि।।३८२-३८४।।

ऋचो विधानं वारुण्या यथावदभिधीयते।
अस्या उपासको यत्र तत्रावृष्टिर्न जायते ।।३८५।।
ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्यत्या स वरुणो मुमो नरत्।
अवोचन्वाना प्रदितेरुपस्था यूयं यात स्वस्तिभिः सदा नः ।।३८६।।

ऋषिर्वशिष्टोऽनुष्टुप्च च्छन्दो वरुणदैवतम्।
अष्टाङ्गवसुवस्वद्रिषडर्णैरङ्गकल्पनम् ॥३८७॥

वरुण ऋचा-विधान—अब वरुण ऋचा का विधान यथावत् वर्णित किया जाता है। इस ऋचा की उपासना करने वाला जहाँ रहता है, वहाँ कभी भी अवृष्टि नहीं होती। मन्त्र है—

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्यत्या स वरुणो मुमो नरत्।
अवोचन्वाना प्रदितेरुपस्था यूयं यात स्वस्तिभिः सदा नः।।

इस वरुण ऋचा के ऋषि वशिष्ठ, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता वरुण होते हैं। मन्त्र के ८, ६, ८, ८, ८, ६ अक्षरों से इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—

ॐ ध्रूवासु त्वासु क्षितिषु हृदयाय नमः।
ॐ क्षियन्तो व्यस्यत्या शिरसे स्वाहा।
ॐ स वरुणो मुमो नरत् शिखायै वषट्।
ॐ अवोचन्वाना प्रदिते कवचाय हुम्।
ॐ रुपस्था यूयं यात नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ स्वस्तिभिः सदा नः अस्त्राय फट्।।३८५-३८७।।

पादाग्रयोस्तथा पादाङ्गुलिमूलद्वयोरपि।
गुल्फयोश्च तथा जान्वोरूर्वोश्च गुदलिङ्गयोः ॥३८८॥
मूलाधारे तथा नाभौ कुक्षौ पृष्ठे तथा हृदि।
वक्षःस्थले गले हस्ताग्रयोरङ्गुलिमूलयोः ॥३८९॥
मणिबन्धयुगे चैव कूर्परद्वितये तथा।
बाहुमूलद्वये चास्ये कपोलयुगले नसोः ॥३९०॥
नेत्रयोः कर्णयोर्मध्ये भ्रुवोर्भाले च मूर्द्धनि।
सर्वाङ्गे च क्रमान्न्यस्य मन्त्रार्णान् ध्यानमाचरेत् ॥३९१॥

इस मन्त्र के प्रति अक्षरों का सर्वाङ्ग में न्यास इस प्रकार किया जाता है—

ॐ ध्रुं नमः दक्षपादाग्रे।
ॐ वां नमः वामपादाग्रे।
ॐ सुं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले।
ॐ त्वां नमः वामपादाङ्गुलिमूले।
ॐ सुं नमः दक्षगुल्फे।
ॐ क्षिं नमः वामगुल्फे।
ॐ ति नमः दक्षजानुनि।
ॐ षुं नमः वामजानुनि।
ॐ क्षिं नमः दक्षोरौ।
ॐ यं नमः वामोरौ।
ॐ तो नमः गुदे।
ॐ व्यं नमः लिङ्गे।

ॐ स्यं नमः मूलाधारे।
ॐ त्यां नमः नाभौ।
ॐ सं नमः दक्षकुक्षौ।
ॐ वं नमः वामकुक्षौ।
ॐ रुं नमः पृष्ठे।
ॐ णों नमः हृदि।
ॐ मुं नमः वक्षःस्थले।
ॐ मों नमः गले।
ॐ नं नमः दक्षहस्ताग्रे।
ॐ रंत् नमः वामहस्ताग्रे।
ॐ अं नमः दक्षहस्ताङ्गुलिमूले।
ॐ वो नमः वामहस्ताङ्गुलिमूले।
ॐ चं नमः दक्षमणिबन्धे।
ॐ न्वां नमः वाममणिबन्धे।
ॐ नं नमः दक्षकूर्परि।
ॐ प्रं नमः वामकूर्परि।
ॐ दिं नमः दक्षबाहौ।
ॐ ते नमः वामवाहौ।
ॐ रुं नमः मुखे।
ॐ पं नमः दक्षकपोले।
ॐ स्थां नमः वामकपोले।
ॐ यूं नमः दक्षनासापुटे।
ॐ यं नमः वामनासापुटे।
ॐ यां नमः दक्षनेत्रे।
ॐ तं नमः वामनेत्रे।
ॐ स्वं नमः दक्षकर्णे।
ॐ स्तिं नमः वामकर्णे।
ॐ भिः नमः भ्रुवोर्मध्ये।
ॐ सं नमः भाले।
ॐ दां नमः मूर्धनि।
ॐ नः नमः सर्वाङ्गे।

इस प्रकार सर्वाङ्ग में क्रमशः मन्त्र के एक-एक अक्षरों का न्यास सम्पन्न करने के उपरान्त वरुण देवता का ध्यान करना चाहियें।।३८८-३९१।।

चन्द्रप्रभं पङ्कजसन्निषण्णं बाणाङ्कुशाभीतिवरान्दधानम्।
मुक्ताविभूषाञ्चितसर्वगात्रं ध्याये प्रसन्नं वरदं विभूत्यै ॥३९२॥

चन्द्रमा के सदृश कान्ति से समन्वित, कमल पर विराजमान, हाथों में बाण, अंकुश, अभय एवं वर को धारण किये हुये, मोतियों के आभूषण से सुशोभित सम्पूर्ण शरीर वाले, सदा प्रसन्न रहने वाले, वर देने वाले वरुणदेव की समृद्धि के लिये ध्यान करता हूँ।।३९२।।

धर्माद्विकल्पिते पीठे वरुणं सम्यगर्चयेत्।
कृत्वाङ्गपूजनं शेषं वासुकिं तक्षकं पुनः ॥३९३॥
कर्कोटकञ्च पद्मञ्च महापद्मं ततः परम्।
शङ्खपालञ्च कुलिकमिन्द्रादीनायुधानि च ॥३९४॥

धर्मादि से रचित पीठ पर वरुण देव का सम्यक् रूप से अर्चन करना चाहिये। यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार होता है—
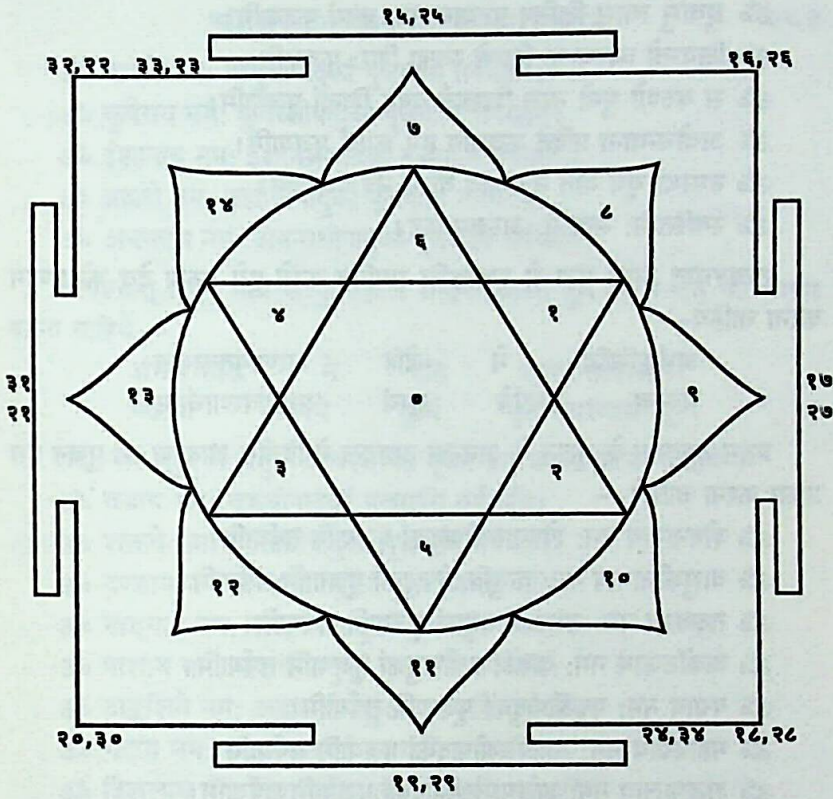
निर्मित पीठ पर वरुण देव का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—वरुणं ध्यायामि, आवाहयामि। वरुणाय नमः आसनं समर्पयामि। पाद्यं समर्पयामि। अर्घ्यं समर्पयामि। आचमनीयं समर्पयामि। स्नानं समर्पयामि। वस्त्रालंकारान् समर्पयामि। यज्ञोपवीतं समर्पयामि। गन्धान् समर्पयामि। वरुणाय नम: नानाविधपरिमलपत्रपुष्पाणि समर्पयामि। वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि। वरुणाय नम: धूपं आघ्रापयामि। दीपं दर्शयामि। नैवेद्यं समर्पयामि। मध्ये मध्ये पानीयं उत्तरापोशनं हस्तप्रक्षालनं पादप्रक्षालनं आचमनीयं ताम्बूलं च समर्पयामि। कर्पूरनीराजनं दर्शयामि। वरुणाय नम: मन्त्रपुष्पं समर्पयामि प्रदक्षिणानमस्कारान् समर्पयामि। समस्तराजोपचारदेवोपचारान् समर्पयामि। अनया पूजया भगवान् वरुण: सुप्रीत: सुप्रसन्नो वरदो भवतु।

इस प्रकार वरुणदेव का सविधि पूजन करने के उपरान्त उनसे अनुज्ञा प्राप्त करके अङ्गपूजन-सहित आवरणपूजन करने के क्रम में प्रथम आवरण में षट्कोण में इस प्रकार पूजन करना चाहिये—

ॐ ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु हृदयाय नमः हृदयं पूजयामि।

ॐ क्षियन्तो व्यस्यत्या शिरसे स्वाहा शिरः पूजयामि।

ॐ स वरुणो मुमो नरत् शिखायै वषट् शिखां पूजयामि।

ॐ अवोचन्वाना प्रदिते कवचाय हुम् कवचं पूजयामि।

ॐ रुपस्था यूयं यात नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रं पूजयामि।

ॐ स्वस्तिभिः सदा नः अस्त्राय फट्।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये वरुण देव को प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

प्रथम आवरण के पूजन के अनन्तर अष्टदल में द्वितीय आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ शेषनागाय नमः शेषनागश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ वासुकीनागाय नमः वासुकिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ तक्षकाय नमः तक्षकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ कर्कोटकाय नमः कर्कोटकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ पद्माय नमः पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ महापद्माय नमः महापद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ शङ्खपालाय नमः शङ्खपालश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ कुलिकाय नमः कुलिकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये वरुण देव को प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

द्वितीय आवरण के पूजन के अनन्तर भूपुर में तृतीय आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ इन्द्राय नमः इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ अग्नये नमः अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ यमाय नमः यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ निर्ऋतये नमः निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ वरुणाय नमः वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ वायवे नम: वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ कुबेराय नम: कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ ईशानाय नम: ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ ब्रह्मणे नम: ब्रह्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ अनन्ताय नम: अनन्तश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये वरुण देव को प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

तदनन्तर भूपुर में चतुर्थ आवरण का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ वज्राय नम: वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ शक्तये नम: शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ दण्डाय नम: दण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ खड्गाय नम: खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ पाशाय नम: पाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ अङ्कुशिने नम: अङ्कुशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ गदाय नम: गदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ त्रिशूलाय नम: त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ पद्माय नम: पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

ॐ चक्राय नम: चक्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुष्पाञ्जलि समर्पित करते हुये वरुण देव को प्रणाम करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सल।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं चतुर्थावरणार्चनम्।।

अन्त में धूप-दीप-नैवेद्य आदि से समग्र पूजन करने के उपरान्त आरती करके पुष्पांजलि निवेदित करने के पश्चात् देवता को प्रणाम समर्पित कर क्षमापन करे।

लक्षमेकञ्जपेन्मन्त्रं पायसेन दशांशतः।
सर्पिस्सिक्तेन जुहुयात्तर्पणादि ततश्चरेत्॥३९५॥

इस प्रकार आवरण-पूजन करने के अनन्तर एक लाख की संख्या में मन्त्र का जप पूर्ण करने के पश्चात् जप का दशांश हवन गोघृत से सिक्त पायस से करने के बाद तर्पण आदि करना चाहिये।।३९५।।

ऋणमुक्त्यै जपेन्मन्त्रं प्रत्यहं साष्टकं शतम्।
जपेनानेन लभते सम्मतामक्षयां श्रियम् ॥३९६॥
सितेक्षुशकलैर्मन्त्री जुहुयाद् घृतसम्प्लुतैः।
चतुर्दिनं दशशतं ऋणमुक्त्यै महाश्रिये ॥३९७॥
समिद्भिर्वेतसस्थाभिः क्षीराक्ताभिर्दिनत्रयम्।
जुहुयाद्वृष्टिसंसिद्ध्यै मन्त्रविद्विजितेन्द्रियः ॥३९८॥

ऋण से छुटकारा प्राप्त करने के लिये लिये प्रतिदिन मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। इस प्रकार के जप से मनोनुकूल अक्षय श्री की प्राप्ति होती है।

श्वेत ईख के टुकड़ों को घी में डूबोकर चार दिनों तक एक हजार की संख्या में हवन करने से ऋण से छुटकारा प्राप्त करके प्रभूत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

वर्षा कराने लिये जितेन्द्रिय मन्त्रज्ञ साधक को वेंत की समिधा को क्षीराक्त करके तीन दिनों तक हवन करना चाहिये।।३९६-३९८।।

अनेन विधिना मन्त्री सूर्ये शतभिषाङ्गते।
चतुश्शतं घृतयुतं पायसं जुहुयादृणी।
ऋणनाशाय सम्पत्त्यै वश्यारोग्याभिवृद्धये।
भृगुवारे कृतो होमः पायसेन ससर्प्पिषा।
महतीं सम्पदं कृत्वा तारयेत्सकलापदः ॥३९९॥
शालिभिर्घृतसंयुक्तैः शरीरान्तर्हितः सुधीः।
त्र्यहं चतुश्शतं हुत्वा स्तम्भयेत्परसैनिकान्।
सायं प्रत्यङ्मुखो वह्निमाराध्य प्रजपेन्मनुम्।
चतुश्शतं विमुच्येत मन्त्री सर्वैरुपद्रवैः ॥४००॥

सूर्य जब शतभिषा नक्षत्र में हो तब उपर्युक्त विधि से ही ऋणी साधक को अपने ऋण की समाप्ति, सम्पत्ति की प्राप्ति तथा वशीकरण एवं आरोग्य की वृद्धि के लिये पायस में घी मिलाकर हवन करना चाहिये। मंगलवार को पायस में घी मिलाकर हवन करने से साधक प्रभूत सम्पत्ति को प्राप्त करके अपनी समस्त आपदाओं का अन्त कर देता है।

शरीरधारी विद्वान् साधक तीन दिनों तक घृत-मिश्रित शालिधान्यों से प्रतिदिन चार सौ की संख्या में हवन करके शत्रुसेना को स्तम्भित करने में समर्थ हो जाता है।

मन्त्रज्ञ साधक सायंकाल में पश्चिमाभिमुख बैठकर अग्नि की आराधना करने के

उपरान्त मन्त्र का चार सौ की संख्या में जप करके अपने को समस्त उपद्रवों से मुक्त कर लेता है।।३९९-४००।।

मन्त्री प्रत्यङ्मुखो भूत्वा तर्पयेद्विमलैर्जलैः।
सर्वोपद्रवनाशाय सर्वदाभ्युदयाप्तये ॥४०१॥
बहुना किमिहोक्तेन मन्त्रेणानेन साधकः।
साधयेत् सकलान् कामाञ्जपहोमादितत्परः ॥४०२॥

सभी उपद्रवों के विनाश एवं सदैव अभ्युदय की प्राप्ति के लिये मन्त्रज्ञ साधक को पश्चिमाभिमुख बैठकर स्वच्छ जल से तर्पण करना चाहिये। यहाँ अधिक कहने से क्या लाभ; जप-होम आदि में संलग्न साधक इस मन्त्र से अपनी समस्त कामनाओं को सिद्ध कर सकता है।।४०१-४०२।।

अयुतं प्रजपन् बद्धो मुच्यते नात्र संशयः।
दिवा रात्रौ जपेनैव सिद्धिः सम्प्रति वर्त्तते ॥४०३॥
अहोरात्रं स्थितश्चैवमनश्नञ्च्छुद्धचेष्टितः।
अयःपाशाः स्फुटन्त्वस्य दारुपाशा विशेषतः।
अवैदिकाय नो देयं तान्त्रिकाय कदाचन ॥४०४॥

इस मन्त्र का दस हजार की संख्या में जप करने से मनुष्य बन्धन से छूट जाता है। वर्त्तमान में लगातार दिन-रात जप करने से ही इस मन्त्र की सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

निराहार एवं शुद्ध आचरण में अवस्थित होकर एक अहोरात्र (दिन-रात) मन्त्रजप करने से साधक के लौहपाश; विशेषकर काष्ठपाश भग्न हो जाते हैं। इसे कभी भी वेदविरोधी तान्त्रिक को नहीं बतलाना चाहिये।।४०३-४०४।।

वक्ष्ये चान्नपतेर्मन्त्रं न्यासमुन्यादिवर्जितम्।
पूजाहीनं जपेनैव नान्नहीनः प्रजायते ॥४०५॥
अन्नपतेऽन्नस्य दो नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे ॥४०६॥
अनेन जुहुयादन्नं नित्यमष्टोत्तरं शतम्।
अमोघं जायते चान्नं यद्भूतं न च वर्षतः ॥४०७॥
सर्वोपस्करसंयुक्तं कुण्डेऽग्निं स्थापयेत्ततः।
लक्षमेकं हुनेदन्नं यावज्जन्माक्षयं भवेत् ॥४०८॥
यदानेन वनङ्गत्वा स्थालीपाकविधानतः।
अग्निञ्चोपसमाधायोदुम्बर्य्या समिधायुतम् ॥४०९॥

जुहुयात्तस्य क्षेत्रे तु धान्याख्या व्रीहयोऽक्षयाः।
भवन्त्यवृष्टाविति च किमाश्चर्यं सुवर्षणे ॥४१०॥

अन्नपति मन्त्र-विधान—अब न्यास, मुनि आदि से रहित अन्नपति के मन्त्र को कहता हूँ। इसमें किसी प्रकार की पूजा नहीं की जाती; अपितु इस मन्त्र के केवल जप करने से ही जापक को कभी भी अन्न का अभाव नहीं होता। मन्त्र है—

अन्नपतेऽन्नस्य दो नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्रदातारं तारिष ऊर्ज्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे।।

इस मन्त्र के द्वारा प्रतिदिन अन्न से एक सौ आठ बार हवन करने से अन्न का भण्डार अक्षय हो जाता है और वर्षा नहीं होने पर भी उसके भण्डार में अन्न की कमी नहीं होती।

समस्त उपस्करों से युक्त कुण्ड में अग्नि की स्थापना करके उसमें अन्न से एक लाख हवन करने से होता का अन्नभण्डार उसके जीवन-पर्यन्त अक्षय बना रहता है।

वन में जाकर इस मन्त्र से स्थालीपाक विधान से अग्नि की स्थापना करके गूलर की समिधा से युक्त अन्न से हवन करने पर उस होता के क्षेत्र में वर्षा न होने पर भी यदि अक्षय धान्य की उत्पत्ति होती है तो इसमें आश्चर्य क्या है।।४०५-४१०।।

अथो लवणमन्त्रस्य विधानमभिधीयते।
परिशिष्टपदान्ते तु जुहुयाल्लवणैस्तथा ॥४११॥
लवणाम्भसि निष्ठोऽसि उग्रोऽसि हृदयं तव।
लवणस्य पृथिवी माता लवणस्य वरुणः पिता ॥४१२॥
लवणे हूयमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः।
लवणं दहति पचति लवणं छिन्दति भिन्दति ॥४१३॥
अमुकस्य दह गात्राणि दह मां सन्दह त्वचम्।
दह त्वगस्थिमज्जानि अस्थिभ्यो मद्द्विषां दह ॥४१४॥
यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे।
सन्दह्यानय मे शीघ्रमग्निं लवणतेजसा ॥४१५॥
नगरे लोहप्राकारकृष्णसर्पशतार्गले।
अत्रैव वशमायान्तु लवणमन्त्रपुरस्कृताः ॥४१६॥
या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा।
अङ्गिरा मुनिराख्यातश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥४१७॥

अग्नी रात्रिः पुनर्दुर्गा भद्रकाली च देवता।
पञ्चत्रिपञ्चवेदेषु द्व्यक्षरैश्चिटिमन्त्रजैः ॥४१८॥
षडङ्गानि प्रकुर्वीत स मन्त्रः कथ्यतेऽधुना।
तारं चिटिद्वयं पश्चाच्चाण्डालि तदनन्तरम् ॥४१९॥
महल्यहलि वै ब्रूयादमुकं मे पदन्ततः।
वशमानय ठद्वन्द्वश्चतुर्विंशाक्षरो मनुः ॥४२०॥
अग्न्यादिकचतुष्कस्य ध्यानं कुर्यात्ततः परम्।
तानि ध्यानानि कथ्यन्ते सावधानतया शृणु ॥४२१॥

लवण मन्त्र-विधान—अब लवणमन्त्र-विधान का वर्णन करता हूँ। परिशिष्ट पाद के अन्त में नमक से हवन करना चाहिये। मन्त्र है—

लवणाम्भसि निष्ठोसि उग्रोसि हृदयं तव।
लवणस्य पृथ्वी माता लवणस्य वरुणः पिता।।
लवणे हूयमाने तु कुतो निद्रा कुतो रतिः।
लवणं दहति पचति लवणं छिन्दति भिन्दति।।
अमुकस्य दह गात्राणि दह मां सन्दह त्वचम्।
दह त्वगस्थि मज्जानि अस्थिभ्यो मद्विद्वषां दह।।
यदि वसति योजनशते नदीनां वा शतान्तरे।
सन्दह्यानय मे शीघ्रमग्निं लवणतेजसा।।
नगरे लोहप्राकारकृष्णसर्पशतार्गले।
अत्रैव वशमायान्तु लवणमन्त्रपुरस्कृताः।
या ते रात्रिर्महारात्रिः सा ते रात्रिर्महानिशा।।

इस लवणमन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द अनुष्टुप् एवं अग्नि, रात्रि, दुर्गा तथा भद्रकाली देवता कहे गये हैं। चौबीस अक्षर वाले चिटिमन्त्र से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये। चिटिमन्त्र इस प्रकार है—' ॐ चिटि चिटि चाण्डालि महल्यहलि अमुकं मे वशमानय स्वाहा।'

न्यासादि करने के उपरान्त अग्न्यादिचतुष्क का ध्यान करना चाहिये। अब उन ध्यानों को कहता हूँ; सावधान होकर उनका श्रवण करो।।४११-४२१।।

नवकुङ्कुमसन्निभं त्रिनेत्रं रुचिराकल्पशतं भजामि वह्निम्।
स्रुवशक्तिवराभयानि दोर्भिर्दधतं रक्तसरोरुहे निषण्णम् ॥४२२॥
कालाम्बुवाहद्युतिमिन्दुरक्तां हारावलीशोभिपयोधराढ्याम्।
कपालपाशाङ्कुशशूलहस्तां नीलाम्बरां यामवतीं नमामि ॥४२३॥

कालाम्बुदाभामसिशङ्खशूलखेटाढ्यहस्तां तरुणेन्दुचूडाम्।
भीमां त्रिनेत्रां जितशत्रुवर्गां स्मरामि दुर्गामरिभङ्गदक्षाम् ॥४२४॥
टङ्कं कपालं डमरुं त्रिशूलं सम्बिभ्रती चन्द्रकलावतंसा।
पिङ्गोर्ध्वकेशी सितभीमदंष्ट्रा भूयाद्विभूत्यै मम भद्रकाली ॥४२५॥

ध्यान—नवीन कुमकुम के समान रक्त वर्ण वाले, तीन नेत्रों वाले, कल्प-पर्यन्त सैकड़ों किरणों से समन्वित, हाथों में स्रुवा, शक्ति, वर एवं अभय धारण किये हुये, रक्त कमल पर विराजमान अग्निदेव का मैं भजन करता हूँ।

काले मेघ के समान कान्ति वाली, चन्द्रमा एवं लाल-लाल हारों की पंक्ति से सुशोभित स्तनों वाली, हाथों में कपाल, पाश, अंकुश एवं शूल धारण की हुई, नीले वस्त्रों वाली रात्रिदेवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

काले मेघ के समान कान्ति वाली, तलवार, शंख, शूल और मूसल से सुशोभित हाथों वाली, तरुण चन्द्रमा को अपनी चूड़ा में धारण की हुई, अतिशय भयंकर, तीन नेत्रों वाली, शत्रुसमूहों को विजित करने वाली एवं शत्रुओं के नाश में प्रवीण दुर्गा का मैं स्मरण करता हूँ।

टङ्क (कुल्हाड़ी अथवा छेनी), कपाल, डमरु एवं त्रिशूल को नचाती हुई, अपने शीर्ष पर चन्द्रकला को धारण की हुई, ऊपर की ओर उठे हुये भूरे रंग के बालों वाली, श्वेत भयानक दाँतों वाली देवी भद्रकाली हमें विभूति प्रदान करने वाली हों।

ऋक्पञ्चकं जपेत्सम्यगयुतं तद्दशांशतः।
हविषा घृतसिक्तेन जुहुयादर्चितेऽनले ॥४२६॥
एवं कृतपुरश्चर्य्यः प्रयोगकुशलो भवेत्।
अग्निं यामवतीं ध्यायेद्वश्याकर्षणकार्ययोः।
स्मरेद् दुर्गां भद्रकालीं मन्त्री मारणकर्मणि ॥४२७॥

पाँचों ऋचाओं (श्लोक ४१२ से ४१६) का सम्यक् रूप से अलग-अलग दस-दस हजार की संख्या में जप करने के पश्चात् अर्चित अग्नि में जप का दशांश घृतसिक्त हविष्य से हवन करना चाहिये। इस प्रकार पुरश्चरण सम्पन्न करने वाला साधक मन्त्रप्रयोग में निपुण हो जाता है। वशीकरण एवं आकर्षण कर्म में यामवती अग्नि का ध्यान करना चाहिये। मन्त्रज्ञ साधक को मारण कर्म के लिये दुर्गा एवं भद्रकाली का स्मरण करना चाहिये।।४२६-४२७।।

जानुप्रमाणसलिले स्थित्वा निशि जपेन्मनुम्।
अनेन वाञ्छितः साध्यः किङ्करो जायते क्षणात् ॥४२८॥

नाभिमात्रे जले स्थित्वा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः ।
अष्टोत्तरसहस्रं यस्तस्य साध्यो वशो भवेत् ॥४२९॥
ऋक्पञ्चकं जपेन्मन्त्री कण्ठमात्राम्भसि स्थितः ।
सप्तभिर्दिवसैर्भूपान् वशयेद्विधिनामुना ॥४३०॥
संलिख्य तालपत्रे तं साध्यनाम्ना विदर्भितम् ।
निक्षिप्य क्षीरसम्मिश्रे जले तत्क्वाथयेन्निशि ।
वश्यो भवति साध्योऽस्य नात्र कार्या विचारणा ॥४३१॥

रात्रि में घुटने तक जल में स्थित होकर मन्त्रजप करने से वाञ्छित व्यक्ति क्षणमात्र में ही साधक का दास हो जाता है।

नाभि-पर्यन्त जल में खड़े होकर एकाग्र चित्त से जो साधक मन्त्र का एक हजार आठ बार जप करता है, उसका साध्य उसके वशीभूत हो जाता है।

जो मन्त्रज्ञ साधक कण्ठ-पर्यन्त जल में खड़े होकर पाँचों ऋचाओं का जप करता है, वह सात दिनों के भीतर राजाओं को वशीभूत कर लेता है।

रात्रि में ताडपत्र पर साध्य का नाम मध्य में लिखकर उसके चारो ओर ऋचाओं को अंकित करने के उपरान्त उसे दुग्ध-मिश्रित जल में डालकर क्वाथ बनाने से साध्य साधक के वशीभूत हो जाता है, इसमें कुछ भी विचारणीय नहीं है।।४२८-४३१।।

तालपत्रे लिखित्वैनं भद्रकालीगृहे खनेत् ।
वश्याय सर्वजन्तूनां प्रयोगोऽयमुदाहृतः ॥४३२॥
तालपत्रे समालिख्य मन्त्रं साध्यविदर्भितम् ।
तापयेत्खादिरे वह्नौ मासे वश्यो भवेन्नरः ॥४३३॥
त्रिकोणं कुण्डमासाद्य सम्यक्छास्त्रोक्तलक्षणम् ।
तस्मिन् होमं प्रकुर्वीत संस्कृते हव्यवाहने ॥४३४॥
प्रक्षाल्य दध्ना दुग्धेन संशोध्य लवणं सुधीः ।
सुचूर्णितं प्रजुहुयात् सप्ताहाद्वशयेज्जगत् ॥४३५॥

इस मन्त्र को ताड़पत्र पर लिखकर भद्रकाली के मन्दिर में गाड़ देना चाहिये। समस्त जन्तुओं को वशीभूत करने के लिये यह प्रयोग कहा गया है।

साध्य नामाक्षरों से विदर्भित मन्त्र को ताड़पत्र पर लिखकर उसे खैर की लकड़ी से प्रज्वलित अग्नि में तप्त करने से एक महीने में मनुष्य वशीभूत होते हैं।

शास्त्रोक्त लक्षणों से युक्त सम्यक् त्रिकोण कुण्ड बनाकर उसमें संस्कृत अग्नि में

हवन करना चाहिये। सेंधा नमक को दही और दूध से प्रक्षालित करके उसके चूर्ण से हवन करने पर सारा संसार एक सप्ताह में वशीभूत हो जाता है।।४३२-४३५।।

दधिमध्वाज्यसंसिक्तैर्जुहुयात् सैन्धवैस्तथा।
वशयेदखिलान् देवानचिरात्किमु पार्थिवान् ॥४३६॥
विशुद्धलवणं प्रस्थं विभक्तं पञ्चधा पृथक्।
एकैकमंशं जुहुयादृचा पञ्चाहमादरात्।
यस्य नाम्ना स वश्यः स्यादनेन विधिनाचिरात् ॥४३७॥
शुद्धं लवणमादाय जुहुयान्मधुरान्वितम्।
हुतं पञ्चाशदाहुत्या वश्यं यच्छति वाञ्छितम्।
नित्यं शुद्धलवणेन हुत्वा शत्रून् वशं नयेत् ॥४३८॥
मधुरत्रयसम्मिश्रैर्लवणैः साधुचूर्णितैः।
जुहुयाद्वशयेन्नारीं नरान्नरपतीनपि ॥४३९॥

दधि, मधु एवं गोघृत से संसिक्त सेंधा नमक से हवन करने पर साधक समस्त देवताओं को भी वशीभूत कर लेता है; फिर राजाओं की तो बात ही क्या है?

विशुद्ध एक प्रस्थ सेंधा नमक को पाँच टुकड़ों में विभक्त कर उसके एक-एक टुकड़े से पाँच दिनों तक मन्त्रोच्चारण-पूर्वक आदर के साथ जिस साध्य के नाम से हवन किया जाता है, वह तत्क्षण ही साधक के वशीभूत हो जाता है।

शुद्ध सेंधा नमक लेकर उसे शहद, शक्कर और घी में मिलाकर पचास आहुतियाँ देने पर वाञ्छित व्यक्ति वशीभूत हो जाता है। प्रतिदिन शुद्ध नमक से हवन करके शत्रुओं को वश में किया जा सकता है। सम्यक् रूप से चूर्णित सेंधा नमक में शहद, शक्कर और घी मिलाकर हवन करने पर नारी, नर और नरेन्द्र को भी वशीभूत किया जा सकता है।।४३६-४३९।।

मन्त्रं कृष्णाद्वितीयादि प्रजपेद्यावदष्टमि।
पुत्तलीः पञ्च कुर्वीत साङ्गोपाङ्गाः समाः शुभाः ॥४४०॥
एका साध्यद्रुमेण स्यादन्या पिष्टमयी मता।
चक्रिहस्तमृदान्या स्यादन्या तु सिकतामयी ॥४४१॥
लवणं पोतसम्भूतं चूर्णितु परिशोधितम्।
कुडवं प्रोक्षयेत् क्षीरदध्याज्यमधुभिः क्रमात्।
गुडाज्यमधुभिः सम्यङ् मिश्रितेनामुना पुनः ॥४४२॥

कृष्ण पक्ष की द्वितीया सी अष्टमी-पर्यन्त मन्त्र का जप करके साङ्गोपाङ्ग सुन्दर एक बराबर पाँच पुत्तलियाँ बनानी चाहिये। उनमें से एक पुत्तली साध्यवृक्ष की लकड़ी से, दूसरी पिष्ट से, तीसरी कुम्हार के चाक की मिट्टी से, चौथी वालू से एवं पाँचवीं परिशोधित सामुद्र लवण के चूर्ण से बनानी चाहिये। अनन्तर उन सबका एक कुडव =२५० ग्राम दूध, दही, गोघृत एवं मधु से क्रमशः प्रोक्षण करना चाहिये। इसके बाद पुनः गुड़, गोघृत एवं मधु को सम्यक् रूप से मिश्रित करके उससे प्रोक्षित करना चाहिये।।४४०-४४२।।

कुर्वीत पुत्तलीं सौम्यां सर्वावयवशोभिताम्।
प्राणप्रतिष्ठामन्त्रैश्च प्राणानस्या हृदि क्षिपेत्।
आशु प्राणान् प्रतिष्ठाप्य पूजयेत् कुसुमादिभिः ।।४४३।।
पश्चात्कृष्णाष्टमीरात्रौ याममात्रे गते सति।
विधाय मातृकान्यासं मन्त्रस्य समनन्तरम् ।।४४४।।
चिटिमन्त्रसमुद्भूतान् चतुर्विंशतिसङ्ख्यकान्।
ताराद्यान् विन्यसेद्वर्णान् स्थानेष्वेषु समाहितः ।।४४५।।
मूर्ध्नि भाले दृशोः श्रुत्योर्नासाक्षिचिबुकेषु च।
कण्ठयुक्स्तनयुग्मेषु कुक्ष्योर्नाभौ कटिद्वये ।।४४६।।
मेढ्रे पायौ प्रविन्यस्य शिष्टं वर्णचतुष्टयम्।
ऊरुद्वये जानुयुग्मे जङ्घायुग्मे पदद्वये ।।४४७।।

इस प्रकार समस्त अवयवों से सुन्दर सौम्य पुत्तलियाँ बनाकर प्राणप्रतिष्ठा मन्त्र से शीघता-पूर्वक उन पुत्तलियों में प्राणों का सञ्चार करके पुष्प आदि से उनका पूजन करना चाहिये। इसके बाद कृष्णपक्ष के अष्टमी की रात्रि को एक प्रहर व्यतीत हो जाने के बाद सम्यक् रूप से मातृकान्यास करने के अनन्तर चौबीस अक्षर वाले चिटिमन्त्र के प्रत्येक अक्षरों को आदि में प्रणव लगाकर पुत्तलियों के मूर्धा, ललाट, नेत्र, कान, नासिका, आँखें, चिबुक, दोनों स्तन, कुक्षि, नाभि, कटि, मेढ्र, पायु में विन्यस्त करने के बाद शेष चार वर्णों का दोनों ऊरुओं, दोनों जंघाओं, दोनों पादों में एकाग्र मन से इस प्रकार न्यास करना चाहिये—

ॐ ॐ नमः मूर्ध्नि। ॐ टिं नमः दक्षकर्णे।
ॐ चिं नमः भाले। ॐ चां नमः वामकर्णे।
ॐ टिं नमः दक्षनेत्रे। ॐ डां नमः दक्षनासायाम्।
ॐ चिं नमः वामनेत्रे। ॐ लिं नमः वामनासायाम्।

ॐ मं नमः मुखे।
ॐ हं नमः चिबुके।
ॐ यं नमः कण्ठे।
ॐ हं नमः दक्षस्तने।
ॐ लिं नमः वामस्तने।
ॐ अं नमः दक्षकुक्षौ।
ॐ भुं नमः वामकुक्षौ।
ॐ कं नमः नाभौ।
ॐ में नमः दक्षकट्याम्।
ॐ वं नमः वामकट्याम्।
ॐ शं नमः लिङ्गे।
ॐ मं नमः गुदे।
ॐ नं नमः उरुद्वये।
ॐ यं नमः जानुयुग्मे।
ॐ स्वां नमः जङ्घायुग्मे।
ॐ हां नमः पदद्वये।।४४३-४४७।।

एवं विन्यस्य सर्वाङ्गे रक्तमाल्यानुलेपनः।
रक्तवस्त्रधरः शुद्धः पुत्तलीं दारुणाकृताम् ।।४४८।।
अधोमुखीं खनेत् कुण्डे पिष्टजामासनादधः।
मृन्मयीं प्रतिमां पादेनाक्रामेच्च तथात्मनः ।।४४९।।
सैकतीं प्रतिमां चाग्निकुण्डस्योर्ध्वं प्रलम्बयेत्।
लवणेन कृतां पश्चात् पुत्तलीं संस्पृशञ्जपेत् ।।४५०।।
ऋक्पञ्चकं यथान्यासमष्टोत्तरसहस्रकम्।
संहत्य चिटिमन्त्रार्णान् पुनस्तस्याः स्तनौ न्यसेत् ।।४५१।।
अङ्गुष्ठसन्धिप्रपदजङ्घाजानूरुपायुषु।
लिङ्गदेशे पुनर्नाभौ जठरे हृदयाम्बुजे ।।४५२।।
स्तनद्वये कन्धरायां चिबुके वदने तथा।
घ्राणयोः कर्णयोरक्ष्णोर्ललाटे मूर्ध्नि विन्यसेत् ।।४५३।।

इस प्रकार समस्त अंगों में न्यास करके साधक लाल माला, लाल चन्दन का अनुलेप एवं लाल वस्त्र धारण करके शुद्ध होकर दारुण आकृति वाली पुत्तलि को नीचे की ओर मुख करके कुण्ड में दबाये, पिष्ट से निर्मित पुत्तलि को आसन के नीचे रखे, मिट्टी की प्रतिमा को अपने पाँव से दबाये, बालू की पुत्तली को कुण्ड के ऊपर लटकाये एवं नमक की पुत्तली का स्पर्श करते हुए मन्त्रजप करे।

तदनन्तर यथाविहित न्यास को सम्पन्न करके ऋक्पंचक का एक हजार आठ बार जप करने के उपरान्त एकाग्रचित्त होकर चिटिमन्त्र के वर्णों का लवण-निर्मित पुत्तली के तत्तत् स्थानों में इस प्रकार न्यास करे—

ॐ ॐ नमः अंगुष्ठद्वये।
ॐ चिं नमः अंगुष्ठसन्धिद्वये।
ॐ टिं नमः प्रपदद्वये।
ॐ चिं नमः जङ्घाद्वये।

ॐ टिं नमः जानुद्वये। ॐ मुं नमः चिबुके।
ॐ चां नमः ऊरुद्वये। ॐ कं नमः मुखे।
ॐ डां नमः गुदे। ॐ में नमः दक्षनासायाम्।
ॐ विं नमः लिङ्गे। ॐ वं नमः वामनासायाम्।
ॐ मं नमः नाभौ। ॐ शं नमः दक्षकर्णे।
ॐ हं नमः जठरे। ॐ भां नमः वामकर्णे।
ॐ त्यं नमः हृदये। ॐ नं नमः दक्षनेत्रे।
ॐ हं नमः दक्षस्तने। ॐ यं नमः वामनेत्रे।
ॐ लि नमः वामस्तने। ॐ स्वां नमः ललाटे।
ॐ अं नमः कन्धरायाम्। ॐ हां नमः मूर्ध्नि।।४४८-४५३।।

अग्निमादाय सन्दीप्य साध्यनक्षत्रदारुभिः।
तस्मिन्नभ्यर्च्य मन्त्रोक्तदेवतां रूप्यपात्रके ॥४५४॥
कुशाब्जराजिपुष्पाद्भिर्दत्त्वार्घ्यं प्रणमेत् सुधीः।
मन्त्रैरेतैः प्रयोगादावन्ते संयतमानसः ॥४५५॥
लवणेनाभिमन्त्र्याथ निशायां हव्यवाहनम्।
निशायां मन्त्रजंप्तेन तृप्तो भव तया सह ॥४५६॥
जातवेदो महादेव तप्तजाम्बूनदप्रभ।
स्वाहापते विश्वभक्ष्य लवणं दह शत्रुहन् ॥४५७॥
ईशे शर्वरि शर्वाणि ग्रस्तं मुक्तं त्वया जगत्।
महादेवि नमस्तुभ्यं वरदे कामदा भव ॥४५८॥
तमोमयि महादेवि महादेवमनुव्रते।
प्रिया मे पुरुषं हत्वा वशमानय देवि मे ॥४५९॥
दुर्गे दुर्गादिरहिते दुर्गसंराधनार्गले।
चक्रशङ्खधरे देवि दुष्टशत्रुभयङ्करे ॥४६०॥
नमस्ते दह शत्रून्मे वशमानय चण्डिके।
शाकम्भरि महादेवि शरणं मे भवानघे ॥४६१॥
भद्रकालि भवाभीष्टरुद्रसिद्धिप्रदायिनि।
सपत्नान्मे जहि जहि शोषय तापय तापय ॥४६२॥
शूलासिशक्तिवज्राद्यैश्छित्त्वानय यमालये।
महादेवि महाकालि रक्षास्मानक्षरात्मिके ॥४६३॥

तत्पश्चात् अग्नि लाकर साध्यनक्षत्र की लकड़ी में उसे प्रज्वलित करने के उपरान्त उसमें पूजन करके चाँदी के पात्र में कुश, कमल, राई, फूल मिले जल से मन्त्रोक्त देवता को अर्घ्य प्रदान करके उन्हें प्रणाम करना चाहिये। इन मन्त्रों से प्रयोग के आदि और अन्त में रात्रि में संयत मन से अग्नि को लवण से अभिमन्त्रित करके 'रात्रि में किये गये मन्त्रजप से उसके साथ तृप्त हों। तप्त जाम्बूनद सुवर्ण-सदृश प्रभा वाले हे जातवेद! महादेव! स्वाहापते! विश्व का भक्षण करने वाले! इस लवण को भस्म करें एवं शत्रु का संहार करें। हे ईशे! शर्वरि! शर्वाणि! तुम्हारे द्वारा यह जगत् ग्रसित एवं मुक्त किया जाता है। हे महादेवि! तुम्हें नमस्कार है। हे वरदे! तुम मेरे लिये अभीष्ट प्रदान करने वाली बनो। महादेव को अनुगमन करने वाली हे अन्धकारमयी महादेवि! पुरुष का वध करके मेरी प्रिया को मेरे वशीभूत करो। दुर्ग आदि से रहित, दुर्ग को बन्द करने हेतु अर्गल-स्वरूपा, चक्र एवं शंख धारण करने वाली, दुष्ट शत्रुओं के लिये अतिशय भयंकर हे देवी दुर्गे! आपको नमस्कार है, हे चण्डिके! मेरे शत्रुओं को वशीभूत करो। हे निष्पाप महादेवी शाकम्भरि! तुम्हीं मेरा आश्रय हो। हे भद्रकालि! तुम मेरे अभीष्ट रुद्र की सिद्धि प्रदान करने वाली बनो। मेरे शत्रुओं को पकड़ो, शोषित करो, तप्त करो एवं शूल, तलवार, शक्ति, वज्र आदि से काटकर उन्हें यम-सदन में ले आओ। हे अक्षरात्मिके महादेवि! महाकालि! हमारी रक्षा करो।' इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये।।४५४-४६३।।

साध्यं संस्मृत्य निर्भिद्य पुत्तलीं सप्तधा पुनः।
ऋक्पञ्चकं समुच्चार्य जहुयादेधितेऽनले ॥४६४॥
प्रथमो दक्षिणः पादस्तत्करस्तदनन्तरम्।
शिरस्तृतीयमाख्यातं वामहस्तस्ततः परम् ॥४६५॥
मध्यादूर्ध्वं पञ्चमं स्यादधोंऽसः षष्ठ ईरितः।
सप्तमो वामपादः स्यादिति भागक्रमः स्मृतः ॥४६६॥
सप्त सप्त विभागान्वा प्रोक्तेष्वेव यथाविधि।
कृत्वैवमर्चयित्वाग्निं प्रणमेद्दण्डवत्ततः ॥४६७॥
यजमानो धनैर्धान्यैः प्रीणयेद्गुरुमात्मनः।
अनेन विधिना मन्त्री वशयेदसुरान् सुरान् ॥४६८॥
किं पुनर्मनुजान् भूपानमात्यान्नृपयोषितः।

इस स्तोत्रपाठ के बाद साध्य का स्मरण करते हुए पुत्तली को सात भागों में विभक्त करके पूर्वोक्त ऋक्पञ्चक का पाठ करके प्रज्वलित अग्नि में उन सात भागों से हवन करना चाहिये। पहले दक्षिण पाद की, फिर दक्षिण कर (हाथ) की, फिर शिरोभाग

की, फिर वाम कर की, तदनन्तर शरीर के मध्य से ऊपर के भाग की, फिर मध्य शरीर से नीचे के भाग की और अन्त में वाम पाद की आहुति देनी चाहिये। अथवा पुत्तलि के एक खण्ड का सात-सात विभाग करके यथाविधि हवन करने के पश्चात् अग्नि को दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये। तत्पश्चात् यजमान द्वारा अपने गुरु को धन-धान्य प्रदान करते हुये सन्तुष्ट करना चाहिये।

इस विधि का अनुसरण करके मन्त्रज्ञ साधक देवताओं और राक्षसों को भी अपने वश में कर लेता है; फिर मनुष्यों, राजाओं, सचिवों एवं राजमहिषियों की तो बात ही क्या है?।।४६४-४६८।।

मारणे पूर्वसम्प्रोक्तपुत्तलीनां चतुष्टयम् ।।४६९।।
निवेशयेद्यथापूर्वं साधकेन्द्रो विधानवित् ।
अपरं वक्ष्यमाणेन विधानेन प्रकल्पयेत् ।।४७०।।
बलाह्वया मूलनखी तिलत्र्यूषणरामठैः ।
विकृतिं वश्यसिद्ध्यर्थं साध्यनामाङ्घ्रिरेणुभिः ।।४७१।।
महिषीमूत्रसम्पिष्टैः पूर्वोक्तलवणान्वितैः ।
विधाय पुत्तलीं सम्यक् प्राणस्थापनमाचरेत् ।।४७२।।
जपपूजादिकं सर्वं कुर्यात् प्रागुक्तवर्त्मना ।
ततः सवेदिके कुण्डे रात्रौ प्रज्वलितेऽनले ।।४७३।।
दुर्गां च भद्रकालीं वा समाराध्य यथाविधि ।
धारयेन्निशितं शस्त्रं सव्यहस्तेन साधकः ।।४७४।।
वामपादं समारभ्य दक्षिणाङ्घ्र्यवसानकम् ।
छित्त्वा छित्त्वा प्रजुहुयान्निराहारो जितेन्द्रियः ।।४७५।।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशी ।
अनेनैव विधानेन होमं कुर्याद्विचक्षणः ।।४७६।।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण मारयेद्रिपुमात्मनः ।।४७७।।

विधानज्ञ श्रेष्ठ साधक को मारण कर्म में पूर्व में सम्यक् रूप से कथित पुत्तलियों में से चार पुत्तलियों का पूर्ववत् निवेश करना चाहिये। उसके पश्चात् अन्य कार्य वक्ष्यमाण विधि के अनुसार करना चाहिये।

बला, मूल, नखी, तिल, त्र्यूषण, रामठ, विकृति एवं साध्य के चरण की धूलि को भैंस के मूत्र में पीसकर उसमें पूर्वोक्त नमक मिलाकर पुत्तलि का निर्माण करके उसमें सम्यक् रूप से प्राणस्थापन करने के उपरान्त पूर्वकथित रीति से जप-पूजादि

सम्पन्न करने के अनन्तर रात्रि में वेदी-सहित कुण्ड में अग्नि प्रज्ज्वलित करके दुर्गा और भद्रकाली की यथाविधि आराधना करने के बाद निराहारी जितेन्द्रिय साधक को बाँयें हाथ में तीक्ष्ण शस्त्र को लेकर पुत्तलि के बाँयें पैर से आरम्भ कर दाँयें पैर तक काट-काट कर हवन करना चाहिये। अथवा विद्वान् साधक को इसी विधि से कृष्णपक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ कर कृष्णचतुर्दशी-पर्यन्त हवन करना चाहिये। तीन सप्ताह तक इस प्रयोग को करने पर साधक अपने शत्रु को मार देता है।।४६९-४७७।।

नक्षत्रवृक्षाः कारस्करामलक्यावुदुम्बरः ।
जम्बूश्च खदिरः कुष्ठो वंशपिप्पलनागराः ।।४७८।।
रोहितश्च पलाशश्च प्लक्षो वटशिलाभवौ ।
पार्थो वैकङ्कतश्चापि बकुलः सरलः क्रमात् ।।४७९।।
सर्जवञ्जुलपनसा अर्कः शमिकदम्बकौ ।
निम्बश्चाम्रो मधूकश्च लोध्रो मन्त्रविधिस्त्विति ।।४८०।।

नक्षत्रवृक्ष—अट्ठाईस नक्षत्रों के अनुरूप अट्ठाईस नक्षत्रवृक्ष इस प्रकार होते हैं—

नक्षत्र	वृक्ष	नक्षत्र	वृक्ष
अश्विनी	कारस्कर	स्वाती	अर्जुन
भरणी	आमला	विशाखा	वैंकंकत
कृत्तिका	गूलर	अनुराधा	मौलसिरी
रोहिणी	जामुन	ज्येष्ठा	सरल
मृगसिरा	खैर	मूल	सर्ज
आर्द्रा	कूठ	पूर्वाषाढ़ा	वंजुल
पुनर्वसु	बाँस	उत्तराषाढ़ा	कटहल
पुष्य	पीपल	श्रवण	अकवन
आश्लेषा	नागरमोथा	धनिष्ठा	शमी
मघा	रोहित	शतभिषा	कदम्ब
पूर्वाफाल्गुनी	पलाश	पूर्वाभाद्रपद	नीम
उत्तराफाल्गुनी	पाकड़	उत्तराभाद्रपद	आम
हस्त	वट	रेवती	महुआ
चित्रा	शिलाजीत	अभिजित्	लोध्र।।४७८-४८०।।

यश्च त्रिषवणं सन्ध्यां सहस्रजपपूर्विकाम् ।
करोति तस्य वक्ष्यामि सिद्धये सुगमा ऋचः ।।४८१।।

तच्छन्दो दैवतमृषिन्यासध्यानादिकं विना ।
जपेदष्टसहस्रे तु यासु सिद्धिरदूरतः ॥४८२॥
सर्वलोकोपकारार्थं कथयाम्यत्र ता ऋचः ॥४८३॥
अवपतन्तीरवदंदिव ओषधयस्परि ।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्यति पूरुषः ॥४८४॥
सर्वौषध्यहुतं हुत्वा मिष्टान्नं लभते सदा ।
भाण्डागारस्य वस्तूनि चतुर्थांशेन होमयेत् ॥४८५॥
भवन्ति तानि पूर्णानि वर्षमध्ये न संशयः ।
त्रिवारमेवं यः कुर्यादक्षयोऽस्त्ययुतेन च ॥४८६॥

मन्त्रसाधन-विधि—जो साधक तीनों कालों में स्नान करके तीनों सन्ध्याओं को करते हुये मन्त्र का एक हजार जप करता है, उसकी सिद्धि के लिये सुगम ऋचा को अव मैं कहता हूँ। इस ऋचा का छन्द, देवता, ऋषि, न्यास, ध्यान आदि के विना जो केवल आठ हजार की संख्या में जप करता है, उसे सद्यः सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सभी लोकों के उपकार के लिये उन ऋचाओं को मैं यहाँ कहता हूँ। प्रथम ऋचा है—

अवपतन्तीरवदं दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्यति पूरुषः।।

इस मन्त्र का आठ हजार जप करके हवन न किये गये सभी औषधियों को लाकर उनसे हवन करने से सदा मिष्टान्न की प्राप्ति होती है। भण्डार की वस्तुओं के चौथे भाग से हवन करने पर वर्ष के मध्य में ही भण्डार भर जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है। तीन बार जो ऐसा करता है अथवा दस हजार बार हवन करता है, उसका भण्डार अक्षय हो जाता है।।४८१-४८६।।

समाहिꣳसीर्मधु नव दिष्टो मधु
वक्ष्यामि मधुमतीं देवेभ्यो वाचमुद्यासꣳ
शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यस्तं मा देवा
अवन्तु शोभायै पितरोऽन्नमदन्तु ॥४८७॥
महाभिचारजे व्याधावशान्ते चापचारके ।
अनेन जुहुयाच्चाज्यं सहस्रं तस्य शान्तये ॥४८८॥
नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथवीमनु ।
ये अन्तरिक्षे ये देवि तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥४८९॥

सर्पस्थाने तु जुहुयादनेन घृतपायसम्।
मासमेकं सहस्रन्तु स्वर्णमुत्पद्यते ततः ॥४९०॥

महान् अभिचार के कारण उत्पन्न व्याधि एवं अपचारजन्य अशान्ति होने पर उसकी शान्ति के लिये 'समाहिꣳसीर्मधु नव दिष्टो मधु वक्ष्यामि मधुमतीं देवेभ्यो वाचमुद्यासꣳ शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यस्तं मा देवा अवन्तु शोभायै पितरोऽन्नमदन्तु।' इस ऋचा से गोघृत से एक हजार की संख्या में हवन करना चाहिये।

'नमो अस्तु सर्पेभ्यो ये के च पृथिवीमनु। ये अन्तरिक्षे ये दिवि तेभ्य: सर्पेभ्य: नम:।' इस ऋचा से सर्प के रहने के स्थान पर घृत एवं पायस से एक महीने तक प्रतिदिन एक हजार बार हवन करने पर उस स्थान पर सुवर्ण की प्राप्ति होती है।।४८७-४९०।।

या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीननु।
ये वा बिलेषु शेरते तेभ्यः सर्पेभ्यो नमः ॥४९१॥
बिलप्रविष्टं सर्पन्तु दृष्ट्वा तत्रैव होमयेत्।
आज्याहुतिसहस्रं तु तेन स्वर्णशतं लभेत् ॥४९२॥

सर्प को बिल में प्रवेश करते देख कर उस बिल के पास ही 'या इषवो यातुधानानां ये वा वनस्पतीननु। ये वा बिलेषु शेरते तेभ्य: सर्पेभ्यो नम:।' मन्त्र से गोघृत से एक हजार आहुति देने पर एक सौ स्वर्णमुद्राओं की प्राप्ति होती है।।४९१-४९२।।

कृणुष्वपाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवा इभेन।
त्रिष्वीमनप्रसितिं गृणानो स्तासिविध्य रक्षसस्तपिष्ठैः ॥४९३॥
प्रत्यङ्गिरऋचमिमां नित्यं यः प्रजपेत्सुधीः।
त्रिसन्ध्यं तस्याग्निकृतं दुःखं पतति वैरिणि ॥४९४॥

जो विद्वान् साधक 'कृणुष्वपाज: प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवा इभेन। त्रिष्वीमनप्रसितिं गृणानो स्तासिविध्य रक्षसस्तपिष्ठै:।' इस प्रत्यङ्गिरा ऋचा का प्रतिदिन जप करता है और तीनों सन्ध्याओं में हवन करता है, उसके हवन की अग्नि शत्रुओं का विनाश कर देती है।।४९३-४९४।।

उदग्ने तिष्ठ प्रत्वा तनुष्वन्यामित्राँ ओषधात्तिग्महेते।
यो नो अरातिं समिधा न चक्रे नीचा तं धक्ष्यत सं न शुष्कम् ॥४९५॥
विषाक्तराजिकारक्तकण्टकाञ्जुहुयाद्रिपोः।
गृहीत्वा शत्रुनामास्य ग्रामनाशः प्रजायते ॥४९६॥

कृतस्य क्रोधनाशार्थमयुतं प्रजपेन्मनुम्।
हुनेन्मासं सहस्रं तु सर्षपान् पुंवशीकृते ॥४९७॥

शत्रु के नाम का उच्चारण करते हुये 'उदग्ने तिष्ठ प्रत्वा तनुष्वन्यामित्राँ ओषधात्तिग्महेते। यो नो अरातिं समिधा न चक्रे नीचा तं धक्ष्यत सं न शुष्कम्।' मन्त्र द्वारा विषाक्त राई और रक्तकण्टक से हवन करने पर शत्रु का और ग्राम का नाश हो जाता है।

किये गये क्रोध का विनाश करने के लिये उक्त मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। पुरुष को वशीभूत करने के लिये उक्त मन्त्र से एक महीने तक प्रतिदिन सरसों से हवन करना चाहिये।।४९५-४९७।।

काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुष: परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च ॥४९८॥
या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि।
तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम् ॥४९९॥
आभ्यां दूर्वाप्रवालानामयुतं जुहुयाद्वशी।
ग्रामस्थं मारकं हन्याद् द्विगुणेन पुरः स्थितम् ॥५००॥
त्रिगुणे राष्ट्रकं हन्यान्महारोगाँश्च षड्गुणैः।
नानादेशोद्भवं हन्यान्मारकं लक्षहोमतः ॥५०१॥

जितेन्द्रिय साधक 'काण्डात्काण्डात्प्ररोहन्ती परुष: परुषस्परि। एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च।' तथा 'या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि। तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम्।'—इन दो ऋचाओं से दूब एवं प्रवाल से दस हजार हवन करके ग्राम में रहने वाले आततायी का और बीस हजार की संख्या में हवन करके नगर में रहने वाले आततायी का वध करने में समर्थ हो जाता है। तीस हजार हवन करके राष्ट्र में रहने वाले आततायी को मारने में समर्थ होता है तथा साठ हजार हवन सम्पन्न करके अतिभयंकर रोगों का विनाश करने में सक्षम हो जाता है। उक्त मन्त्रद्वय से एक लाख की संख्या में हवन करके अनेक देशों में उत्पन्न आततायियों को समाप्त करने में समर्थ हो जाता है।।४९८-५०१।।

मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ अस्तु सूर्य्यः।
माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥५०२॥
उदुम्बरस्य समिधो येन कामेन यो हुनेत्।
आज्येनाक्ता अयुतशः प्रयुतावधेयुक् ततः ॥५०३॥

जो साधक गोघृत से सिक्त उदुम्बर (गूलर) की समिधा से 'मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमाँ

अस्तु सूर्य्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः।' मन्त्र का उच्चारण करते हुये दस हजार की संख्या में जिस कामना से हवन करता है, उसकी वह कामना पूर्ण होती है। प्रयुत अर्थात् दस लाख हवन से समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं।।५०२-५०३।।

आशुः शिशानो वृषभो न भीमो घनाघनः क्षोभणश्चर्षणीनाम्।
संक्रन्दनोनिमिष एकवीरः शतꣳसेना अजयत्साकमिन्द्रः ।।५०४।।
संक्रन्दनेनामिषेण जिष्णुना युत्कारेण दुश्च्यवनेन धृष्णुना।
तदिन्द्रेण जयत तत्सहध्वं युधो नर इषुहस्तेन वृष्णा ।।५०५।।
स इषुहस्तैः सनिषङ्गिभिर्वशी सꣳस्रष्टा स युध इन्द्रो गणेन।
सꣳसृष्टजित्सोमपाबाहुशर्ध्युग्रधन्वा प्रतिहिताभिरस्ता ।।५०६।।
बृहस्पते परिदीयारथेन रक्षोहामित्राँ अपबाधमानः।
प्रभञ्जन् सेना प्रभृणो युधाष्ट जयन्नस्माकमेध्यविता रथानाम् ।।५०७।।
बलं विज्ञाय स्थविरः प्रवीरः सहस्वान्वाजी सहमान उग्रः।
अभिवीरो अभिसत्त्वासहोजाजैत्रमिन्द्ररथमातिष्ठगोवित् ।।५०८।।
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं जयन्तमज्मप्रमृणन्तमोजसा।
इमꣳस जाता अनुवीरयध्वमिन्द्रꣳसखायो अनुसꣳरभध्वम् ।।५०९।।
अभिगोत्राणि सहसा गाहमानो दयो वीरः शतमन्युरिन्द्रः।
दुश्च्यवनः पृतनाषाळ्ढयुध्योस्माकꣳसेना अवतु प्रयुत्सु ।।५१०।।
इन्द्र आसां नेता बृहस्पतिर्दक्षिणा यज्ञः पुर एतु सोमः।
देवसेनानामभिभञ्जतीनां जयन्तीनाम्मरुतो यन्त्वग्रम् ।।५११।।
इन्द्रस्य वृष्णो वरुणस्य राज्ञ आदित्यानां मरुताꣳशर्ध उग्रम्।
महामनसां भुवनच्यवानां घोषो देवानां जयतामुदस्थात् ।।५१२।।
उद्धर्षय मघवन्नायुधान्युत्सत्वनां मामकाना मनाꣳसि।
उद्वृत्रहन्वाजिनां वाजिनान्युद्रथानां जयतां यन्तु घोषाः ।।५१३।।
अस्माकमिन्द्रः सम्भृतेषु ध्वजेष्वस्माकं या इषवस्ता जयन्तु।
अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्त्वस्माँ उ देवा अवताहवेषु ।।५१४।।
अमीषां चित्तं प्रतिलोभयन्ती गृहाणाङ्गान्यप्वेपरेहि।
अभिप्रेहि निर्दह हृत्सुशोकैरन्धेनामित्रास्तमसा सचन्ताम् ।।५१५।।
अवसृष्टा परापत शरव्ये ब्रह्मसꣳशिते।
गच्छामित्रान्प्रपद्यस्व मामीषां कञ्चनोच्छिषः ।।५१६।।

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म्म यच्छतु।
उग्रा वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥५१७॥
यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव।
तन्न इन्द्रो बृहस्पतिरदितिः शर्म्म यच्छतु विश्वा हा शर्म्म यच्छतु ॥५१८॥
मर्म्माणि ते वर्म्मभिश्छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनाभिवस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानुदेवा मदन्तु ॥५१९॥
अनेन चानुवाकेन आत्मानं चायुधान्यपि।
अभिमन्त्र्य रणे यायाद्विजयो जायते ध्रुवम् ॥५२०॥
चौरं व्याघ्रं च महिषं सिंहं सर्प्पं च राक्षसम्।
श्रुत्वा तस्मिन्स्थले चिन्त्योऽनुवाको मनसा द्विजैः ॥५२१॥
तत्स्थानं कुशलं गच्छेदथवा मन्त्रमन्त्रितान्।
अक्षतान्वा कुशान्वापि क्षिपेद्रक्षा भवत्वितः ॥५२२॥

'आशुः शिशानो' से लेकर 'त्वानुदेवा मदन्तु'—इन सोलह अनुवाकों से स्वयं को एवं अपने आयुधों को अभिमन्त्रित करके युद्ध में जाने वाला वीर निश्चय ही विजयी होता है।

चोर, व्याघ्र, भैंसा, सिंह, सर्प, राक्षस की उपस्थिति जानकर ब्राह्मण यदि मन ही मन इस अनुवाक का स्मरण करता है, तो वह उस स्थान से कुशलता-पूर्वक प्रस्थान कर जाता है। अथवा मन्त्र से अभिमन्त्रित अक्षतों या कुशों को प्रक्षिप्त कर देने से भी उस स्थान पर उसकी रक्षा होती है।।५०४-५२२।।

सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्तधामप्रियाणि।
सप्त होत्रास्सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा ॥५२३॥
सहस्रतश्च लक्षान्तमनेन च घृताहुतीः।
हुत्वा भवति तेजस्वी हुनेदयुतसङ्ख्यया ॥५२४॥
औदुम्बर्य्यश्च समिधो घृताक्ताः कनकं लभेत्।
सप्ततोलकपर्यन्तं षण्मासाभ्यन्तरे ध्रुवम् ॥५२५॥

एक हजार से लेकर एक लाख तक की आहुति 'सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्तधामप्रियाणि। सप्त होत्रास्सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरापृणस्व घृतेन स्वाहा।'—इस मन्त्र द्वारा घृत से देने वाला साधक तेजस्वी होता है। घृताक्त गूलर की समिधा से दस हजार की संख्या में हवन करने वाला साधक छः मास के भीतर अवश्य ही सात तोला सुवर्ण प्राप्त करता है।।५२३-५२५।।

स नो भुवनस्य प्रजापते यस्य त उपरिगृहा यस्य वेह।
अस्मै ब्रह्मणस्मै क्षत्राय महिशर्म्म यच्छ स्वाहा ॥५२६॥
इदमिन्द्राय स्वाहेति त्यागोऽत्र जुहुयाद्घृतम्।
सहस्राष्टकमेतेन वास्तुदोषात्प्रमुच्यते ॥५२७॥
नापमृत्युर्गृहे तस्मिंश्चित्तोद्वेगो न जायते।
नाप्नोति सूतिकापीडां भयं नैकाकिनो भवेत् ॥५२८॥

'स नो भुवनस्य प्रजापते यस्य त उपरिगृहा यस्य वेह। अस्मै ब्रह्मणस्मै क्षत्राय महिशर्म्म यच्छ स्वाहा।।' इस मन्त्र के अन्त में 'इदमिन्द्राय स्वाहा' कहकर घी से अग्नि में एक हजार आठ की संख्या में हवन करने से गृह का वास्तुदोष समाप्त हो जाता है और उस घर में कभी भी किसी की अपमृत्यु नहीं होती तथा न ही उसमें रहने वालों का चित्त ही उद्विग्न होता है। न तो उस घर में प्रसूता को कोई पीड़ा होती है और न ही अकेले रहने पर भी किसी प्रकार के भय की अनुभूति होती है।

अग्न आयूंषि पवस आसु वोर्जमिषं च नः।
आ रे बाधस्वदुच्छुनाम्।
अनेनाज्यं सहस्रन्तु हुत्वा शत्रुगृहं व्रजेत् ॥५२९॥
तेनापवर्जनं सम्यक्प्रीतिपूर्वं च मित्रवत्।

'अग्न आयूंषि पवस आसु वोर्जमिषं च नः। आ रे बाधस्वदुच्छुनाम्।' इस मन्त्र के द्वारा गाय के घी की एक हजार आहुति प्रदान करने पर साधक शत्रु के घर में वास करता है। उस शत्रु द्वारा शत्रुता का त्याग करके सम्यक् रूप से प्रीतिपूर्वक मित्रवत् व्यवहार किया जाता है।।५२९।।

हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये।
स चैता देवतापदम् ॥५३०॥
अनेनायुतसङ्ख्याका औदुम्बर्य्यस्तथार्कजाः।
सुवर्णवृद्धिसिद्ध्यर्थं घृताक्ताः समिधो हुनेत् ॥५३१॥

'हिरण्यपाणिमूर्तये सवितारमुपह्वये। स चैता देवतापदम्।' इस मन्त्र द्वारा गूलर और अकवन की घृताक्त समिधा से दस हजार हवन करने पर सुवर्ण की वृद्धि होती है।।५३०-५३१।।

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳहवे हवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳस्वस्ति नो मघवा धात्त्विन्द्रः ॥५३२॥

महीमूष मातरꣳसुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसेहुवेम ।
तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्म्माणमदितिꣳसुप्रणीतिम् ॥५३३॥
एतन्मन्त्रजपेनैव दुस्तरार्थं द्रुतं तरेत् ।
पोतस्थो वापि नौकास्थो जले यद्वन्न मज्जति ॥५३४॥

'त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳहवे हवे सुहवꣳशूरमिन्द्रम्। ह्वयामि शक्रं पुरुहूत-मिन्द्रꣳस्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः।। महीमूष मातरꣳसुव्रतानामृतस्य पत्नीमवसेहुवेम। तुविक्षत्रामजरन्तीमुरूचीꣳ सुशर्म्माणमदितिꣳसुप्रणीतिम्।'—इस मन्त्र का जपमात्र करने से ही साधक उसी प्रकार दुस्तर सागर को भी शीघ्रता से पार कर जाता है, जैसे कि जहाज अथवा नौका पर स्थित व्यक्ति जल में नहीं डूबता।।५३२-५३४।।

गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम् ।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतआ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥५३५॥
अनेन जुहुयान्मन्त्री यवान्धान्यं तिलाँस्तथा ।
अपामार्गस्य समिध औदुम्बर्य्यस्तथैव च ॥५३६॥
पृथक्पृथक्प्रस्थमात्रं लक्षावधि तथा तथा ।
धनं विवर्धते चाथ होमं कुर्य्याच्चतुष्पथे ॥५३७॥
पिचुमन्दोद्भवैः पत्रैः सहस्रैकं वशीकृतौ ।

'गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्। ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतआ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम्।'— इस मन्त्र के द्वारा चतुष्पथ (चौराहा) पर २० किलो यव से २० हजार, २० किलो धान से २० हजार, २० किलो तिल से २० हजार, २० किलो अपामार्गचूर्ण से २० हजार और २० किलो गूलरचूर्ण से २० हजार—इस प्रकार कुल एक लाख हवन करने से धन की वृद्धि होती है। नीम के पत्तों से एक हजार हवन करने पर वशीकरण होता है।

वल्मीकस्य मृदा लिङ्गं कृत्वा च स्नापयेत्तथा ॥५३८॥
'भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳ सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥५३९॥
इमां तु प्रजपेल्लक्षद्वयं वा विकलेन्द्रियः ।
पूर्णेन्द्रियः स भवति षण्ढत्वाच्च विमुच्यते ॥५४०॥

दीमक के घर की मिट्टी से एक हजार लिङ्ग बनाकर उसे स्नान कराने के पश्चात् पूजन करके 'भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ꣳ

सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।' इस ऋचा का दो लाख जप करने से अपूर्ण इन्द्रिय वाला व्यक्ति पूर्ण इन्द्रिय वाला हो जाता है और नपुंसकता से मुक्त हो जाता है।

अमित्वा गीर्वाणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।
वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥५४१॥
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा चाहोरात्रमतन्द्रितः ।
जपेदेनामृचं वृष्टिर्भवेत्कालं विना तदा ॥५४२॥

तन्द्रा-रहित साधक यदि कण्ठ-पर्यन्त जल में खड़े होकर 'अमित्वा गीर्वाणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनुवृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः।' ऋचा का दिन-रात जप करता है तो उपयुक्त समय न रहने पर भी वर्षा होती है।।५४१-५४२।।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवेति ।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५४३॥
येन कर्म्माण्यपशो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५४४॥
यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५४५॥
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५४६॥
यस्मिन्नृचः सामयजूंषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः ।
यस्मिंश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५४७॥
सुषारथिरश्वानिव यं मनुष्यान्नेनीयन्तेभीषुभिर्वाजिन इव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥५४८॥
अयुतं प्रजपेदेताश्चित्तस्थैर्य्यं प्रजायते ।

मूलोक्त 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति०' से आरम्भ कर 'हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।' इन छः ऋचाओं का दस हजार जप करने से चित्त स्थिर हो जाता है।।५४३-५४८।।

आवाह्य सोमदिवसे पार्थिवं लिङ्गमुत्तमम् ॥५४९॥
नित्यकर्मान्तरं कुर्यादष्टोत्तरशतं कणाः ।
क्रोडीकृत्याक्षताश्चैवं स्थाप्याः स्थानचतुष्टये ॥५५०॥
सङ्कल्पं मनसा कृत्वा पार्थिवं लिङ्गमर्चयेत् ।
पूजनान्ते ऋचां पाठमेकं कृत्वाक्षतान्न्यसेत् ॥५५१॥

प्रथमे प्रहरे पर्वभागे लिङ्गस्य मूर्द्धनि।
द्वितीयादिप्रहरके दक्षिणाद्यासु विन्यसेत् ॥५५२॥
एतन्मध्ये जपेद्रात्रौ स्वेष्टं कार्यं स पश्यति।
यदा न स्यादासायं तु कृत्यं कृत्वा च भक्षयेत् ॥५५३॥
त्रयं त्रयं चतुर्दिक्षु तण्डुलानां स्थितिं चरेत्।
अष्टवारसहस्त्रन्तु जाप्या एता ऋचः शुभाः ॥५५४॥
अवश्यमेव भवति स्वप्नः सत्यो न चान्यथा।
भूतं वा वर्त्तमानं वा भविष्यदपि दृश्यते ॥५५५॥

सोमवार के दिन उत्तम पार्थिव लिङ्ग का आवाहन करके नित्य कर्म करने के पश्चात् धूलिकणों से एक सौ आठ लिङ्ग बनाकर सबको अक्षतों के मध्य रखकर चार स्थानों पर क्रमश: २७-२७ लिङ्गों को स्थापित करने के उपरान्त मन ही मन संकल्प करके उन पार्थिव लिङ्गों का अर्चन-पूजन सम्पन्न करने के अनन्तर ऋचाओं का एक बार पाठ करके दिन के प्रथम प्रहर में लिङ्ग के मूर्धा में, द्वितीय प्रहर में दक्षिण में, तृतीय प्रहर में वाम भाग में, चतुर्थ प्रहर में पीठ में, पञ्चम प्रहर अर्थात् रात के प्रथम पहर में वक्ष में अक्षतों को न्यस्त करना चाहिये। फिर उनके मध्य में अवस्थित होकर रात्रि में उक्त ऋचाओं का जप करने से साधक स्वप्न में अपने अभीष्ट को देख लेता है। दूसरे दिन सायंकाल तक साधक यदि अपने अभीष्ट का प्रत्यक्ष दर्शन न कर सके तो आवश्यक कृत्यों को सम्पन्न करने के उपरान्त भोजन करने के पश्चात् चारो दिशाओं में तीन-तीन चावलों को रखकर उपर्युक्त कल्याणप्रद ऋचाओं का एक हजार आठ बार जप करना चाहिये। ऐसा करने से साधक द्वारा देखा गया स्वप्न निश्चित ही सत्य हो जाता है; साथ ही वह भूत, भविष्य और वर्तमान को भी देखने में समर्थ हो जाता है।।५४९-५५५।।

त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाँसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ॥५५६॥
सहस्त्रादि च लक्षान्तमनया जुहुयुर्घृतम्।
पुत्रार्थिनः सुपुत्राः स्युः पशूंश्चैव तदर्थिनः ॥५५७॥

'त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अवयासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाँसि प्रमुमुग्ध्यस्मत्।' इस मन्त्र से एक हजार से आरम्भ कर एक लाख तक घृत से हवन करने पर पुत्र चाहने वाले सुयोग्य पुत्र प्राप्त करते हैं एवं पशुओं की कामना रखने वाले साधक पशुओं से सम्पन्न हो जाते हैं।।५५६-५५७।।

सविधानं श्रीसूक्तम्

अथ सर्वोत्तमं वक्ष्ये श्रीसूक्तं सविधानकम्।
कलौ दारिद्र्यनाशाय नान्यत्किञ्चिन्नृणां तथा ॥५५८॥

श्रीसूक्तविधान—अब सर्वोत्तम श्रीसूक्त को उसके विधिपूर्वक कहता हूँ। कलियुग में मनुष्यों की दरिद्रता का नाश के लिये इससे बढ़कर अन्य कोई उपाय नहीं है।।५५८।।

हिरण्यवर्णां हरिणीं सुवर्णरजतस्रजाम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं ज़ातवेदो म आवह ॥५५९॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनपगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं विन्देयं गामश्वं पुरुषानहम् ॥५६०॥
अश्वपूर्वां रथमध्यां हस्तिनादप्रबोधिनीम्।
श्रियं देवीमुपह्वये श्रीर्मा देवी जुषताम् ॥५६१॥
कां सोस्मितां हिरण्यप्राकारामार्द्रां ज्वलन्तीं तृप्तां तर्पयन्तीम्।
पद्मस्थितां पद्मवर्णां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥५६२॥
चन्द्रां प्रभासं तपसा ज्वलन्तीं श्रियं लोके देवजुष्टामुदाराम्।
तां पद्मनीमीं शरणं प्रपद्ये अलक्ष्मीर्मे नश्यतां त्वा वृणोमि ॥५६३॥
आदित्यवर्णे तपसोऽधिजातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः।
तस्य फलानि तपसा नुदन्तु मायान्तरा याश्च बाह्या अलक्ष्मीः ॥५६४॥
उपैतु मां देवसखः कीर्तिश्च मणिना सह।
प्रादुर्भूतोऽस्मि राष्ट्रेऽस्मिन्कीर्तिमृद्धिं ददातु मे ॥५६५॥
क्षुप्तिपासामलां ज्येष्ठामलक्ष्मीं नाशयाम्यहम्।
अभूतिमसमृद्धिं च सर्वां निर्णुद मे गृहात् ॥५६६॥
गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम्।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥५६७॥
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीमहि।
पशूनां रूपमन्नस्य मयि श्रीः श्रयतां यशः ॥५६८॥
कर्दमेन प्रजा भूता मयि सम्भव कर्दम।
श्रियं वासय मे कुले मातरं पद्ममालिनीम् ॥५६९॥
आपः सृजन्तु स्निग्धानि चिक्लीत वस मे गृहे।
नि च देवीं मातरं श्रियं वासय मे कुले ॥५७०॥

आर्द्रां पुष्करिणीं पुष्टिं सुवर्णां हेममालिनीम्।
सूर्यां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥५७१॥
आर्द्रां पुष्करिणीं यष्टिं पिङ्गलां पद्ममालिनीम्।
चन्द्रां हिरण्मयीं लक्ष्मीं जातवेदो म आवह ॥५७२॥
तां म आवह जातवेदो लक्ष्मीमनगामिनीम्।
यस्यां हिरण्यं प्रभूतं गावो दास्योऽश्वान्विन्देयं पुरुषानहम् ॥५७३॥
हिरण्यवर्णामित्यस्य ऋचो लक्ष्मीर्मुनिर्मतः।
चतुर्दशानामीशानामानन्दः कर्दमस्तथा ॥५७४॥
चिक्लीत लक्ष्मीतनयाश्चत्वारो मुनयो मताः।
हिरण्यादितिसृणां च च्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम् ॥५७५॥
कां सोस्मितर्चो बृहती शशाङ्कादित्यवर्णयोः।
त्रिष्टुप्छन्द उपैतु मां देवाद्यष्टऋचामपि ॥५७६॥
छन्दोऽनुष्टुप्समाख्यातं तां म आवह इत्यृचः।
प्रस्तारपंक्तिरुद्दिष्टा देवते श्रीविभावसू ॥५७७॥
व्यञ्जनानि तु बीजानि स्वराः शक्तय ईरिताः।
बिन्दवः कीलकं प्रोक्तं त्वङ्गुष्ठादिषडङ्गकम् ॥५७८॥
हिरण्या च तथा चन्द्र तृतीया रजतप्रभा।
हिरण्यस्त्रग्घिरण्याक्षी तथा हिरण्यवर्णिका ॥५७९॥
एताभिर्ङेनमोऽन्ताभिः प्रकुर्य्यादङ्गकल्पनम्।
मूर्द्धाक्षिकर्णनासास्यगलदोर्हस्तनाभिषु ॥५८०॥
गुदपायूरुयुग्जानुजङ्घापत्सु न्यसेदृचः।
न्यासद्वयमिदं देवि कुर्याद्ध्यानं ततश्चरेत् ॥५८१॥

हे वेदों को प्रकट करने वाले अग्निदेव! सुवर्ण के वर्ण सदृश कान्तिवाली, हरितवर्णवाली या हिरणी का रूप धारण करने वाली, सोने और चाँदी के पुष्पों की माला धारण करने वाली, चन्द्रमा के समान प्रकाशमान, सोने के समान रूपवाली लक्ष्मीजी का मेरे लिये आवाहन किजिये। हे अग्निदेव! उन कभी न दूर होने वाली लक्ष्मी का मेरे लिये आवाहन कीजिये, जिनके आने यपर मैं सुवर्ण, गौ, अश्व और पुत्र-मित्र आदि को प्राप्त करूँ। जिनके अग्रभाग में अश्व हों, जिनके मध्य भाग में रथ हो, हाथियों की चिग्घाड़ से सबको बोधित करने वाली, क्रीड़ा करती हुई लक्ष्मी का मैं आवाहन करता हूँ; वे प्रकाशमान देवी लक्ष्मी मुझको सेवित करें। ब्रह्मरूपा, उत्कृष्ट

मन्द हास्य से युक्त, सुवर्ण के आवरणवाली, शीतप्रकृति, ज्योति:स्वरूपा, पूर्णकामा, भक्तों को भी तृप्त करने वाली कमल में स्थित, कमलतुल्य आकृतिवाली उन लक्ष्मी का मैं यहाँ आवाहन करता हूँ। चन्द्रसदृश अत्यन्त कान्तिवाली, संसार में प्रकाशमान, यश वाली, देवताओं से सेवित, उदार प्रकृतिवाली, कमल के समान आकृतिवाली, ईकार से वाच्य उन लक्ष्मी जी के मैं शरणागत हूँ। वे मेरी दरिद्रता का नाश करें, मैं आपको स्वीकार करता हूँ। हे सूर्य के समान कान्तिवाली लक्ष्मी! तुम्हारी तपस्या से ही मंगलरूप विल्व नाम का वृक्ष उत्पन्न हुआ; वे बिल्व के फल तपश्चर्या द्वारा अज्ञान और विघ्नों को तथा बहिरिन्द्रियों से उत्पन्न अलक्ष्मियों को भी दूर करें। महादेव जी के सखा कुबेर और चिन्तामणि के साथ कीर्ति मुझे प्राप्त हो, इस राष्ट्र में उत्पन्न हुये मुझे आप कीर्ति और समृद्धि प्रदान करें। भूख और प्यास से मलिन लक्ष्मी से पूर्व उत्पन्न अलक्ष्मी को मैं नष्ट करता हूँ; सब प्रकार के अनैश्वर्य और असमृद्धि को मेरे घर से दूर करो। सुगन्धवती, दु:सहा, सर्वदा समृद्धिशाली की गोमय में निवास करने वाली समस्त प्राणियों की ईश्वरी उन लक्ष्मीजी का मैं इस प्रदेश में आवाहन करता हूँ। हमं के संकल्पों को, वाणी की यथार्थता को, पशुओं तथा अन्न को, स्वरूप को प्राप्त करें। सम्पत्ति और कीर्ति मुझे प्राप्त हो। हे कर्दम! (आप लक्ष्मीजी के पुत्र हैं) आपसे ही लक्ष्मीजी पुत्रवती हैं। आप मेरे घर पर उत्पन्न होओ। कमलों की माला धारण करने वाली लक्ष्मी जी को मेरे कुल में निवास कराओ। जल मेरे लिये स्नेहयुक्त पदार्थों को उत्पन्न करे, हे चिक्लीत! आप मेरे घर में निवास कीजिये और अपनी माता देवी लक्ष्मी जी को भी मेरे कुल में निवास कराइये। हे अग्ने! स्निग्ध या आर्द्र गन्धवाली, पुष्टिकरी, स्वयं पुष्टिस्वरूपा, पीतवर्णा, कमलमालाधारिणी, आह्लादनी, सुवर्णमयी लक्ष्मी का मेरे लिये आवाहन कीजिये। हे अग्ने! स्नेहमयी, ऐश्वर्य को बढ़ाने वाली, हाथ में यष्टि (छड़ी) लिये हुये, सुन्दर कान्तिवाली, सुवर्णमय माला को धारण करने वाली, ऐश्वर्यरूपा, स्वर्णमयी, लक्ष्मीजी का मेरे लिये आवाहन कीजिये। हे अग्ने! सदा स्थिर रहने वाली उस लक्ष्मी का मेरे लिये आवाहन कीजिये, जिस लक्ष्मी के आने पर मैं प्रचुर सुवर्ण, गायें, दासियाँ, घोड़े और सेवक प्राप्त करूँ।

विनियोग—मूलोक्त 'हिरण्यवर्णाम्' इस मन्त्र के ऋषि लक्ष्मी कहे गये हैं; शेष चौदह ऐश्वर्ययुक्त मन्त्रों के ऋषि आनन्द कर्दम चिक्लीत एवं चार लक्ष्मीपुत्र ऋषि कहे गये हैं। आरम्भ के तीन मन्त्रों का छन्द अनुष्टुप्, कां सोस्मितां का बृहती, चन्द्रां प्रभासां से लेकर आर्द्रां पुष्करिणीं तक के दस मन्त्रों का त्रिष्टुप् एवं तां म आवह ऋचा का अनुष्टुप् छन्द कहा गया है। इसी प्रकार प्रस्तारपंक्ति छन्द तथा श्रीविभावसू देवता कहे गये हैं। व्यञ्जन बीज, स्वर शक्तियाँ एवं बिन्दु कीलक कहे गये हैं। इसका करन्यास इस प्रकार किया जाता है—

ॐ हिरण्यायै अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
ॐ चन्द्रायै तर्जनीभ्यां नमः।
ॐ रजतप्रभायै मध्यमाभ्यां नमः।
ॐ हिरण्यस्रजे अनामिकाभ्यां नमः।
ॐ हिरण्याक्ष्यै कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
ॐ हिरण्यवर्णिकायै करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

षडङ्गन्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—
ॐ हिरण्यायै हृदयाय नमः।
ॐ चन्द्रायै शिरसे स्वाहा।
ॐ रजतप्रभायै शिखायै वषट।
ॐ हिरण्यस्रजे कवचाय हुम्।
ॐ हिरण्याक्ष्यै नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ हिरण्यवर्णिकायै अस्त्राय फट्।

तत्तत् अंगों में मन्त्रन्यास इस प्रकार होता है—
ॐ हिरण्यवर्णामिति मूर्द्धनि।
ॐ तां म आवह इति नेत्रयोः।
ॐ अश्वपूर्वामिति कर्णयोः।
ॐ कां सोस्मितामिति गले।
ॐ आदित्यवर्णमिति हृदये।
ॐ उपैतु मां इति स्तनौ।
ॐ क्षुत्पिपाशामलामिति गुदे।
ॐ गन्धद्वारामिति उपस्थे।
ॐ मनसः काममाकूतिमिति दक्षोरौ।
ॐ कर्दमेन प्रजाभूता इति वामोरौ।
ॐ आपः सृजन्तु भूतानीति वामजानौ।
ॐ आर्द्रां पुष्करिणीमति दक्षजानौ।
ॐ आर्द्रां पुष्किरिणीमिति जङ्घयोः।
ॐ तां म आवह इति पादौ।

इस प्रकार दोनों न्यासों को करने के उपरान्त ध्यान करना चाहिये।

अरुणनलिनसंस्था तद्रजःपुञ्जवर्णा
करकमलधृतेष्टाभीतियुग्माम्बुजा च।

मणिमुकुटविचित्रालंकृता कल्पजालैर्भवतु
भुवनमाता सन्ततं श्रीः श्रिये नः ॥५८२॥

ध्यान—रक्त कमल पर आसीन, रक्तकमल के रज:पुञ्ज के सदृश वर्ण वाली, करकमलों में इष्ट, अभय एवं दो कमल धारण की हुई, मणियों का मुकुट एवं असंख्य विचित्र आभूषणों को धारण की हुई, समस्त जगत् की माता-स्वरूपा लक्ष्मी हमारे लिये कल्याणकारिणी हों।।५८२।।

षट्कोणं पद्ममालिख्य पूज्यास्तत्राङ्गदेवताः ।
आग्नेयकोणतस्तद्वत्तद् बाह्येऽष्टदलेष्विमाः ॥५८३॥
पद्मासना पद्मवर्णा पद्मस्था पद्मलोचना ।
तर्पयन्ती च तृप्तिश्च ज्वलन्ती तदनन्तरम् ॥५८४॥
स्वर्णप्राकारसञ्ज्ञा च हीन्द्रादीनायुधानि च ।
आवाहनं चासनं स्यादर्घ्यपाद्याचमानि च ॥५८५॥
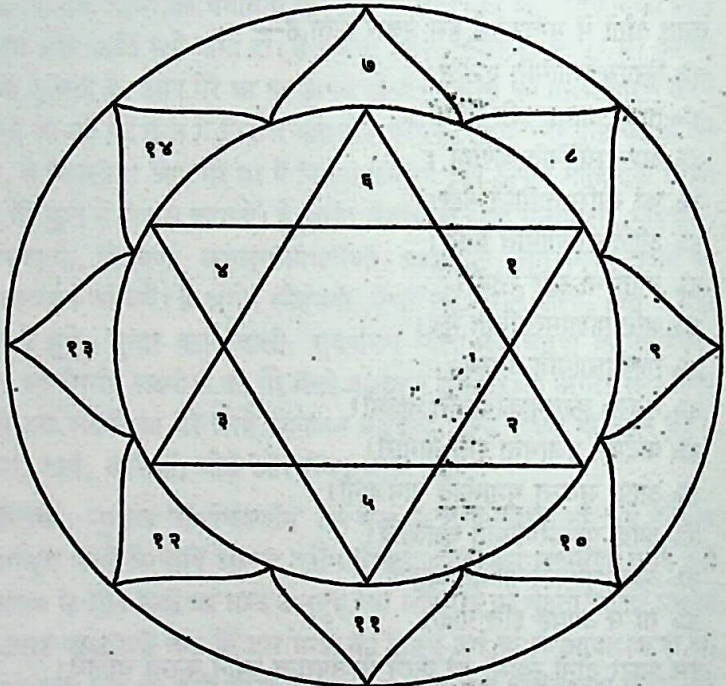
मधुपर्काभिषेकौ च वस्त्रालङ्कारचन्दनम् ।
पुष्पं धूपं दीपभोज्ये प्रोद्वासनमिति क्रमात् ॥५८६॥

एतानि मन्त्रवित् कुर्य्यादृक्पञ्चदशकेन हि।
ततश्च फलताम्बूले दत्त्वा नीराजयेच्छ्रियम् ॥५८७॥

षट्कोण और अष्टदल कमल बनाकर षट्कोण में अग्निकोण से प्रारम्भ करके षडङ्गों का पूजन करने के उपरान्त उसके बाहर अष्टदल में क्रमशः पद्मासना, पद्मवर्णा, पद्मस्था, पद्मलोचना, तर्पयन्ती, तृप्ति, ज्वलन्ती एवं स्वर्णप्राकाराढ्या का तथा इन्द्रादि दिक्पालों एवं उनके आयुधों का मन्त्रज्ञ साधक को उक्त पन्द्रह ऋचाओं से क्रमशः आवाहन-आसन-अर्घ्य-पाद्य-आचमन-मधुपर्क-अभिषेक-वस्त्र-आभूषण-चन्दन-पुष्प-धूप-दीप-नैवेद्य-उद्वासन करने के पश्चात् फल तथा ताम्बूल प्रदान करके लक्ष्मी की आरती करनी चाहिये।।५८३-५८७।।

ततश्च होमयेदाज्यमेभिः पञ्चदशर्चकैः।
दत्त्वा देव्यै चाचमनं तां म आवहमन्त्रतः ॥५८८॥
उद्वासयेत्स्वे हृदये कृताञ्जलिपुटः पठेत्।
श्रीसूक्तं नित्यपूजेयं पुरश्चरणमुच्यते ॥५८९॥

इसके बाद उक्त पन्द्रह ऋचाओं से गोघृत से हवन करने के पश्चात् 'तां म आवाह' मन्त्र से देवी को आचमन प्रदान करके अपने हृदय में उनका विसर्जन करने के बाद हाथ जोड़कर श्रीसूक्त का पाठ करना चाहिये। इस प्रकार नित्य पूजन करने से इसका पुरश्चरण सम्पन्न हो जाता है।।५८८-५८९।।

परिषिञ्चेत्त्रिशो नित्यं सूक्तैस्तैः स्नानकर्मणि।
आदित्याभिमुखो जप्त्वा यावत्तावच्च तर्पयेत् ॥५९०॥
शुक्लाद्यां तिथिमारभ्य यावदेकादशी भवेत्।
तावद् द्वादशसाहस्रं जपेन्निश्चलमानसः ॥५९१॥
ब्रह्मचर्यरतः शुद्धवस्त्रदन्तादिकः सुधीः।
पद्मैस्त्रिमधुरोपेतैर्घृताक्तेन पयोऽन्धसा ॥५९२॥
श्रीसमिद्भिः सर्पिषा च प्रत्यहं त्रिशतं हुनेत्।
द्वादश्यां द्वादशैवाथ सद्विप्रांश्चापि भोजयेत्।
तेन सिद्धो भवेन्मन्त्रो नात्र कार्या विचारणा ॥५९३॥

नित्य तीनों सन्ध्याओं में स्नान करते समय उन्हीं सूक्तों से परिषिञ्चन करना चाहिये। तदनन्तर सूर्य की ओर मुख करके जप करने के उपरान्त तर्पण करना चाहिये। शुक्ल प्रतिपदा से आरम्भ करके एकादशी तक प्रतिदिन स्थिर मन से बारह हजार की संख्या में जप करना चाहिये।

ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये विद्वान् साधक को शुद्ध वस्त्र धारण कर दाँत आदि को साफ करके त्रिमधु (शहद, शक्कर, घी) से समन्वित कमल एवं घृतसिक्त नारियल के टुकड़े से हवन करना चाहिये। बेल की समिधा और गोघृत से नित्य तीन सौ हवन करना चाहिये। द्वादशी के दिन बारह सज्जन विप्रों को भोजन कराना चाहिये। इससे मन्त्र सिद्ध हो जाता है। इसमें किसी प्रकार का विचार नहीं करना चाहिये।

कुन्दमन्दारकुमुदमालतीपद्मकेतकैः ।
नन्द्यावर्त्ताह्वयं जाती कह्लारं चम्पकं तथा ।
रक्तोत्पलादिपुष्पाणि लक्ष्म्याश्चातिप्रियाणि च ।।५९४।।
त्रिवारमन्वहं मन्त्री जुहुयाच्च यथाविधि ।
षण्मासं यः करोत्येवं स स्याल्लक्षपतिः स्वयम् ।।५९५।।

कुन्द, मन्दार, कुमुद, मालती, कमल, केतकी, नन्द्यावर्त, जाती, कल्हार, चम्पा, लाल कुमुद आदि पुष्प लक्ष्मी को अतिशय प्रिय हैं।

जो मन्त्रज्ञ साधक छः मास तक प्रतिदिन तीन बार विधिपूर्वक हवन करता है, वह मान्त्रिक स्वयं लखपति हो जाता है।।५९४-५९५।।

विकसन्मात्र एवाब्जे नवनीतं प्रविन्यसेत् ।
मध्ये सकेशरे पत्रे सम्यक्पत्रान्तरे तथा ।
सुसमिद्धेऽनले तच्च समुद्धृत्य हुनेत्सुधीः ।।५९६।।
अभ्यर्च्याष्टोत्तरशतं जपँश्च भृगुवासरे ।
चत्वारिंशद्दिरस्य स्यान्महालक्ष्मीरचञ्चला ।।५९७।।
तुरीयर्चा च जुहुयाद् घृतेनैकादशाहुतीः ।
एवं कुर्वत एवास्य षण्मासात्स्यान्महेन्दिरा ।।५९८।।

विद्वान् साधक को विकासोन्मुख कमल के मध्य-स्थित केशरयुक्त पत्रों में एवं अन्य पत्रों में भी अच्छी प्रकार से मक्खन लगाकर उसे उठाकर सम्यक् रूप से प्रज्वलित अग्नि में उससे हवन करने के उपरान्त शुक्रवार को पूजन करके चालीस दिनों तक एक सौ आठ बार मन्त्रजप करने से स्थायी महती लक्ष्मी की प्राप्ति होती है अर्थात् अपार धन प्राप्त होता है।

चतुर्थ ऋचा से घी की ग्यारह आहुति से हवन करने से छः मास के भीतर अपार धन की प्राप्ति होती है।।५९६-५९८।।

य इच्छेद्वरदां देवीं श्रियं नित्यं कुले स्थिराम् ।
स शुचिः प्रयतो भूत्वा जुहुयादाज्यमन्वहम् ।।५९९।।

जो अपने कुल में नित्य स्थिर वर प्रदान करने वाली श्री की कामना करता है, उसे प्रतिदिन पवित्र एवं सावधान होकर घृत से हवन करना चाहिये।।५९९।।

श्रियः पञ्चदशर्चस्तु श्रीकामः सततं जपेत्।
आवाहयेच्छ्रियं पद्मे पञ्चभिः कनकेऽथवा ।।६००।।
उपहारानुपहरेद्भक्तं भक्ष्यं पयो दधि।
स्थालीपाकं च शालीनां पयसा सम्प्रकल्पयेत् ।।६०१।।
चान्द्रायणकृतात्मा तु प्रपद्येत यतः श्रियम्।
सर्वौषधीभिः फाण्टैश्च स्नात्वाभिपाचितैरपि ।।६०२।।
उपैतु मां देवसख इति राज्ञोऽभिषेचने।
मनसः काम इत्येषा पशुकामाभिषेचने ।।६०३।।
कां सोस्मीति च सुस्नायात्प्रजाकामः शुचिव्रतः।
अश्वपूर्णामिति स्नायाद्राज्यकामः समाहितः ।।६०४।।

लक्ष्मी की कामना से श्रीसूक्त की पन्द्रह ऋचाओं का बराबर जप करना चाहिये। पाँच कमलों अथवा स्वर्ण पर लक्ष्मी का आवाहन करके भात, भक्ष्य, दूध, दही आदि उपहार समर्पित करने के बाद हवन के लिये दूध में चावल का पाक करके चान्द्रायण व्रत से शुद्धात्मा होकर धन प्राप्त करता है।

सर्वौषधि के काढ़े से स्नान करके राज्य की कामना से 'उपैतु मां देवसखः' सूक्त से अभिषेक करना चाहिये। पशु की कामना से 'मनसः काम' सूक्त से अभिषेक करना चाहिये। प्रजा की कामना से पवित्रता-पूर्वक व्रतनिष्ठ रहकर 'कां सोस्मितां' सूक्त से सम्यक् स्नान करना चाहिये। राज्य की कामना से एकाग्र चित्त से 'अश्वपूर्वां' सूक्त से स्नान करना चाहिये।।६००-६०४।।

विहिते चर्मणि स्नायाद् ब्राह्मणस्तु यथाविधि।
राज्ञश्चर्मणि वैयाघ्रे क्षत्रियस्याथ रौरवे।
वस्तचर्मणि वैश्यस्य होमः कार्यस्त्वनन्तरम् ।।६०५।।
चन्द्रामिति तु पद्मानि जुहुयात्सर्पिषा द्विजः।
आदित्यवर्णेत्यनया बिल्वहोमो विधीयते ।।६०६।।
बिल्वेन्धनभवाग्निः स्याच्छालींश्च जुहुयाद् द्विजः।
दशसाहस्त्रिको होमः श्रीकामस्य प्रकीर्तितः।
हुत्वा तु प्रथमं सम्यगनन्तां विन्दते श्रियम् ।।६०७।।

अयुतं दशकृत्वस्तु हुत्वा सूक्तानि सर्पिषा।
अनुक्तामव्यवच्छिन्नां शाश्वतीं विन्दते श्रियम् ॥६०८॥
अशक्तौ जप एवोक्तो दशसाहस्त्रिको वरः।
जपे तु प्रयुतं सम्यगनन्तां विन्दते श्रियम् ॥६०९॥
अयुतं दशकृत्वस्तु जप्त्वा श्रियमुपाश्नुते।
अवश्यं जुहुयान्नित्यं पद्मान्ययुतशोऽपि च ॥६१०॥

स्नान के उपरान्त विहित चर्मासन पर यथाविधि ब्राह्मण, व्याघ्रचर्म के आसन पर राजा, रुरु मृग के चर्म के आसन पर क्षत्रिय एवं बकरे के चर्म के आसन पर वैश्य को बैठकर हवन करना चाहिये। द्विज को 'चन्द्रां प्रभासां' सूक्त के द्वारा गोघृत से अक्त कमल से हवन करना चाहिये। 'आदित्यवर्णे' सूक्त के द्वारा बेल से हवन करना चाहिये। द्विज को बेल की लकड़ी से प्रज्ज्वलित अग्नि में चावल से हवन करना चाहिये। धन की कामना से दस हजार हवन करना चाहिये। प्रथम सूक्त से सम्यक् रूप से हवन करने पर अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। सूक्तों के द्वारा घृत से एक लाख हवन करने पर अकथनीय, अखण्डित एवं शाश्वत लक्ष्मी की प्राप्ति होती है।

उपर्युक्त हवन को करने में अशक्त होने पर दस हजार की संख्या में जप करना ही श्रेष्ठ होता है। सम्यक् रूप से एक लाख जप करने पर अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। एक लाख जप करने पर धन की प्राप्ति होती है; लेकिन इस जप के पश्चात् प्रतिदिन दस हजार कमलों से हवन अवश्य करना चाहिये।।६०५-६१०।।

इष्ट्वा श्रियस्तु परमा बिल्वान्सुज्ञो बिभर्ति वै।
बिल्वाशी बिल्वनिलयो जुह्वद्बिल्वानि सर्पिषा।
एकविंशतिरात्रेण परां सिद्धिं स गच्छति ॥६११॥
येन येन च कामेन जुहोति नियतेन्द्रियः।
पद्मान्यथापि बिल्वानि स स कामः समृद्ध्यति ॥६१२॥
न जातु कृपणोऽर्थाय श्रियमावाहयेत्क्वचित्।
न चेत्किञ्चन कामेन होमः कार्य्यः कथञ्चन ॥६१३॥
महद्वा प्रार्थमानेन चाज्यकामेन वा पुनः।
वान्यत् प्रार्थयता रत्नाद्युक्तैः श्रीरिज्यते ध्रुवम् ॥६१४॥

बुद्धिमान साधक इक्कीस रात्रियों में महालक्ष्मी का यजन करके बेल के वृक्षों का भरण-पोषण, बेल का भोजन, बेल के नीचे निवास एवं घृतसिक्त बेलफल से हवन करके परा सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। जितेन्द्रिय साधक जिस-जिस कामना से कमल अथवा बेल से हवन करता है, उन-उन कामनाओं से वह समृद्ध हो जाता है।

कृपण के लिये कभी भी लक्ष्मी का आवाहन नहीं करना चाहिये और न ही किसी कामना से कभी हवन करना चाहिये। महती प्रार्थना से अथवा घृत की कामना से अथवा अन्य प्रकार की प्रार्थना से साधक निश्चित ही उक्त रत्नादि से युक्त श्री को प्राप्त कर लेता है।।६११-६१४।।

प्रधानतर्पणान्ते च सन्तर्प्याः शक्तयस्त्विमाः ।
प्रणवाद्या हृदन्ताश्च श्रीर्लक्ष्मीर्वरदा तथा ।
विष्णुपत्नी च वसुदा वसुरूपा हिरण्मयी ।।६१५।।
पद्मा मालिन्यथ रमा प्रोक्ता तु रजतप्रभा ।
सुवर्णा प्रग्रहा स्वर्णप्राकारा पद्ममालिनी ।
इन्द्रा विश्वप्रियैश्वर्य्यौ भुक्तिश्चापि प्रमुक्तियुक् ।।६१६।।
विशुद्धर्द्धिः समृद्धिश्च तुष्टिः पुष्टिर्धनाह्वया ।
भुवनेशी च शुद्धा च भोगिनी भोगदा तथा ।।६१७।।
धात्री विधात्री द्वात्रिंशच्छक्तयः समुदीरिताः ।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमोभिश्चैव तर्पयेत् ।।६१८।।
बलिं भक्ष ममेत्येतैर्नामभिर्बलिमाहरेत् ।

पूजन के पश्चात् प्रधान तर्पण को करने के पश्चात् श्री, लक्ष्मी, वरदा, विष्णुपत्नी, वसुदा, वसुरूपा, हिरणमयी, पद्मा, मालिनी, रमा, रजतप्रभा, सुवर्णा, प्रग्रहा, स्वर्णप्राकारा, पद्ममालिनी, इन्द्रा, विश्वप्रियेश्वरी, भुक्ति, मुक्ति, प्रमुक्ति, विशुद्धि, ऋद्धि, समृद्धि, तुष्टि, पुष्टि, धना, भुवनेशी, शुद्धा, भोगिनी, भोगदा, धात्री एवं विधात्री—इन बत्तीस शक्तियों का तर्पण उनके चतुर्थ्यन्त नाम के आदि में प्रणव और अन्त में नमः लगाकर इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ श्रियै नमः श्रीस्तृप्यतु।
ॐ लक्ष्म्यै नमः लक्ष्मीस्तृप्यतु।
ॐ वरदायै नमः वरदा तृप्यतु।
ॐ विष्णुपत्न्यै नमः विष्णुपत्नीस्तृप्यतु।
ॐ वसुदायै नमः वसुदा तृप्यतु।
ॐ वसुरूपायै नमः वसुरूपा तृप्यतु।
ॐ हिरणमय्यै नमः हिरण्यमयी तृप्यतु।
ॐ पद्मायै नमः पद्मा तृप्यतु।
ॐ मालिन्यै नमः मालिनी तृप्यतु।
ॐ रमायै नमः रमा तृप्यतु।

ॐ रजतप्रभायै नमः रजतप्रभा तृप्यतु।
ॐ सुवर्णायै नमः सुवर्णा तृप्यतु।
ॐ प्रग्रहायै नमः प्रग्रहा तृप्यतु।
ॐ स्वर्णप्राकारायै नमः स्वर्णप्राकारा तृप्यतु।
ॐ पद्ममालिन्यै नमः पद्ममालिनी तृप्यतु।
ॐ इन्द्रायै नमः इन्द्रा तृप्यतु।
ॐ विश्वप्रियेश्वर्यै नमः विश्वप्रियेश्वरी तृप्यतु।
ॐ भुक्त्यै नमः भुक्तिस्तृप्यतु।
ॐ मुक्त्यै नमः मुक्तिस्तृप्यतु।
ॐ प्रमुक्त्यै नमः प्रमुक्तिस्तृप्यतु।
ॐ विशुद्ध्यै नमः विशुद्धिस्तृप्यतु।
ॐ ऋद्ध्यै नमः ऋद्धिस्तृप्यतु।
ॐ समृद्ध्यै नमः समृद्धिस्तृप्यतु।
ॐ तुष्ट्यै नमः तुष्टिस्तृप्यतु।
ॐ पुष्ट्यै नमः पुष्टिस्तृप्यतु।
ॐ धनायै नमः धना तृप्यतु।
ॐ भुवनेश्यै नमः भुवनेशी तृप्यतु।
ॐ शुद्धायै नमः शुद्धा तृप्यतु।
ॐ भोगिन्यै नमः भोगिनी तृप्यतु।
ॐ भोगदायै नमः भोगदा तृप्यतु।
ॐ धात्र्यै नमः धात्री तृप्यतु।
ॐ विधात्र्यै नमः विधात्री तृप्यतु।

तर्पण करने के पश्चात् उक्त बत्तीस नामों से 'बलिं भक्ष मम' कहते हुये अलग-अलग बलि प्रदान करना चाहिये।।६१५-६१८।।

पूजान्ते प्रत्यहं कार्यो नियमश्च निगद्यते ।।६१९।।
शयीत शुद्धः शय्यायां तरुण्या सह नाथवा।
मलिनो न भवेज्जातु कुत्सितान्नं न भक्षयेत् ।।६२०।।
द्रोणपङ्कजबिल्वानि पद्मं जातु न लङ्घयेत्।
यतो लक्ष्मीप्रियाश्चैते कदाचिद् बुद्धिमांस्ततः ।।६२१।।
सहदेवीमिन्द्रवल्लीं श्रीदेवीं विष्णुवल्लभाम्।
कन्यां जम्बूं प्रवालञ्च धारयेन्मूर्ध्नि सर्वदा ।।६२२।।

प्रतिदिन पूजन के अन्त में किये जाने वाले कार्यों और नियमों को अब कहा जा रहा है। पवित्र शय्या पर शयन करना चाहिये। तरुणी के साथ शयन नहीं करना चाहिये। कभी भी मलिन नहीं होना चाहिये। निन्दित अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिये। द्रोण (श्वेत पुष्पों का वृक्ष), पंकज, बेल एवं कमल को कभी भी लाँघना नहीं चाहिये; क्योंकि ये सभी लक्ष्मी को प्रिय होते हैं।

बुद्धिमान् साधक को सहदेवी (प्रियङ्गु), इन्द्रवल्ली (पारिजात), श्रीदेवी, विष्णुवल्लभा (तुलसी), कन्या (बड़ी इलायची), जम्बू (जामुन का फल) एवं प्रवाल (मूँगा) को मूर्धा पर सदैव धारण करना चाहिये।।६१९-६२२।।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः अप नः शोशुचदघम् ।।६२३।।
इमामृचं प्रतिदिनं यस्तु विप्रः शुचिर्जपेत्।
विन्दते महतीं भूमिमसपत्नामकण्टकाम् ।।६२४।।
तद्विष्णोः परमं पदꣳसदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ।।६२५।।
मन्त्रसिद्धौ परान्नाद्या दोषास्तु प्रतिबन्धकाः।
इमामृचं जले जप्त्वा तेषां नाशः प्रजायते ।।६२६।।
आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्त्यं च।
हिरण्मयेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन् ।।६२७।।
अनया योऽर्चयेत्सूर्यं त्रिसन्ध्यं विजितेन्द्रियः।
जपेदष्टोत्तरशतं सम्पूर्णायुर्गदोज्झितः ।।६२८।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा ध्यायन्निशि दिवाकरम्।
अग्नौ हुत्वानया चाज्यं दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।।६२९।।

जो विप्र पवित्र होकर 'स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः अप नः शोशुचदघम्।'—इस ऋचा का प्रतिदिन जप करता है, उसे शत्रु-रहित एवं निष्कण्टक विशाल भूमि प्राप्त होती है।

परान्न-भोजन आदि दोष मन्त्र की सिद्धि में प्रतिबन्धक होते हैं। 'तद्विष्णोः परमं पदꣳसदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।'—ऋचा का जल में खड़े होकर जप करने से उन मन्त्रसिद्धि-प्रतिबन्धक दोषों का नाश होता है।

जो जितेन्द्रिय साधक तीनों सन्ध्याओं में 'आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्त्यं च। हिरण्मयेन सविता रथेनादेवो याति भुवनानि पश्यन्।' ऋचा से सूर्य का अर्चन

करके इसी ऋचा का एक सौ आठ बार जप करता है, वह आजीवन रोगों से रहित रहता है। रात्रि में सूर्य का ध्यान करते हुये इसी ऋचा का एक सौ आठ बार जप करके इसी ऋचा से अग्नि में घी से हवन करने वाला दीर्घ आयु को प्राप्त करता है।

सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमः।
भवे भवे नातिभवे भवस्व मां भवोद्भवाय नमः ॥६३०॥
वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः
श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः
कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमो
बलाय नमो बलप्रमथनाय नमः
सर्वभूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥६३१॥
अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्वशर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥६३२॥
तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि।
तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥६३३॥
ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्।
ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्म शिवो मे अस्तु सदाशिवोम् ॥६३४॥
मृत्युञ्जयान्ता एताः षष्ट्यो जपेच्च दिने दिने।
स नारीनरगोशान्तिं शङ्करात्प्राप्नुयात्सदा ॥६३५॥
एतेनैव षडर्चेन जुहुयादाज्यमन्वहम्।
वह्निं च कल्पयेद्रौद्रं भूत्यर्थं पञ्चपर्वसु ॥६३६॥

जो साधक प्रतिदिन मूलोक्त 'सद्योजातं प्रपद्यामि' से लेकर 'शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्' तक पाँच ऋचाओं के अन्त में मृत्युञ्जय मन्त्र (त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्) को संयुक्त कर छः ऋचाओं का जप करता है, उसे शंकर की कृपा से सदा सर्वदा स्त्री, पुरुष, गौ एवं शान्ति की प्राप्ति होती है। ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये इन्हीं छः ऋचाओं से प्रतिदिन गोघृत से हवन करने के साथ-साथ पाँचो पर्वों[१] (चतुर्दशी, अष्टमी अमावास्या, पूर्णिमा एवं सूर्यसंक्रान्ति) में अग्नि के रुद्ररूप की भावना करनी चाहिये।।६३०-६३६।।

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥६३७॥

---

१. चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्या च पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र! रविसंक्रान्तिरेव च।।

त्रिसन्ध्यमनया सूर्य्यमुपतिष्ठेत योऽन्वहम्।
हृद्रोगनाशनं तस्य परमारोग्यवर्धनम्॥६३८॥
त्वं सोमः पितृभिः संविदानो नु द्यावापृथिवी आततन्थ।
यत्ते महे प्रति तं नो जुषस्व शन्न एधि द्विपदे चतुष्पदे॥६३९॥
उपतिष्ठेत्समित्पाणिः शशिनं मानवो निशि।
अनया य ऋचा सोमं तस्य दुःखं लयं व्रजेत्॥६४०॥
उद्यन्तमुपतिष्ठेत पौर्णमास्यां समाहितः।
वासांस्यपि स विन्देत चन्द्रस्यैति सलोकताम्॥६४१॥

जो साधक प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में 'उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्।'—इस ऋचा से सूर्योपस्थान करता है, उसके हृदयरोग का नाश होता है एवं परम आरोग्य की प्राप्ति होती है।

जो मनुष्य रात्रि में 'त्वं सोमः पितृभिः संविदानो नु द्यावापृथिवी आततन्थ। यत्ते महे प्रति तं नो जुषस्व शन्न एधि द्विपदे चतुष्पदे।' इस ऋचा का जप करते हुये चन्द्रमा के समक्ष खड़े होकर हाथों से उपहार समर्पित करता है, उसके दुःखों का चन्द्रमा विनाश कर देते हैं। पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रोदय से चन्द्रास्त तक जो चन्द्रमा के सामने बैठकर इस ऋचा का जप करता है, उसे वस्त्रों की प्राप्ति के साथ-साथ चन्द्रलोक की भी प्राप्ति होती है।।६३७-६४१।।

विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि प्रवोचं
यः पार्थिवानि विममे रजाएसि।
यो अस्कभा यदुत्तरएसधस्थं
विचक्रमाणस्त्रेधोरुगाया विष्यावोचा॥६४२॥
विष्णो रराटमसि विष्णोः श्नप्त्रेस्थो
विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि।
वैष्णवमसि विष्णवे त्वा॥६४३॥
विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पश्यसे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा॥६४४॥
इन्द्राविष्णू नमस्कृत्य एताभिः तिसृभिर्नरः।
धर्मं बुद्धिं धनं पुत्रानारोग्यं ब्रह्मवर्च्चसम्।
प्राप्नोति परमं स्थानं ज्योतीरूपं सनातनम्॥६४६॥

जो मनुष्य प्रतिदिन मूलोक्त 'विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि' से लेकर 'इन्द्रस्य पूज्यः सखा'

तक तीन ऋचाओं से इन्द्र और विष्णु को प्रणाम करके पूजन करता है, उसे इस लोक में धर्म, बुद्धि, धन, पुत्र, आरोग्य एवं ब्रह्मवर्चस् (तेज) की प्राप्ति होती है तथा परलोक में सनातन ज्योति:स्वरूप परम स्थान प्राप्त होता है।।६४२-६४६।।

कृणुष्वपाजः प्रसितिं न पृथ्वीं याहि राजेवामवा इभे न।
तृष्वीमनुप्रसितिं द्रुणानोस्तासि विध्यरक्षसस्तपिष्ठैः ।।६४७।।
तव भ्रमास आशु या पतन्त्यनुस्पृश धृषता शोशुचानः।
तपूंष्यग्ने जुह्वापतङ्गा न संदितो विसृजविष्वगुल्काः ।।६४८।।
प्रतिस्यशो विसृज तूर्णितमो भवायायुर्विशो अस्या अदब्धः।
यो नो दूरे अघस सोयो अन्त्यग्ने माकिष्टे व्यथिरादधर्षीत् ।।६४९।।
उदग्ने तिष्ठ प्रत्यातनुष य मित्राँ ओषतात्तिग्महेते।
यो नो अरातिँ सविधा न चक्रे नीचा तं धक्ष्यत सन्नशुष्कम् ।।६५०।।
ऊर्ध्वो भव प्रतिविध्या ध्यस्मदाविष्कृणुष्व दैव्यान्यग्ने।
अवस्थिरा तनुहि यातु जूनां जामि मजामि प्रमृणीहि ।।६५१।।
स ते जानाति सुमतिं यविष्वययुव ते ब्रह्मणे गातु मैरत्।
विश्वान्यस्मै सुदिनानि रायो द्युम्नान्यर्य्यो विदुरो अभिद्यौत् ।।६५२।।
सदा न अस्तु सुभगः सुदातुर्यस्त्वानिन्येम हविषा य उक्थैः।
पिप्रीषति स्व आयुषि दुरोणे विश्वैरस्मै सुदिना सा सदिष्टिः ।।६५३।।
अर्चामि ते सुमतिं घोष्यर्वाक्सन्ते वा वाता तरतामियं गौः।
स्वश्वास्त्वा सुरथामर्जये मास्मे क्षत्राणि धारयेरनुद्यून् ।।६५४।।
इह त्वा भूर्य्याचरेदुपत्नं दोषा वस्तदीदिवाँसमनुद्यून्।
क्रीडन्तस्त्वा सुमनसः सते मानिद्युम्नातस्थिवाँसो जनानाम् ।।६५५।।
यस्त्वा स्वश्वः सुहिरण्यो य आ न उपयाति वसुमता रथेन।
तस्य त्राता भवसि तस्य सखायस्त आदिथ्यामानुषा जुजोषत् ।।६५६।।
महोरुजामि बन्धुता वचोभिस्तन्मा पितुर्गोतमोदन्वियाय।
त्वन्नो अस्य वचसश्चिकिद्धि होतर्यविष्ठसुक्रतोदनूनाः ।।६५७।।
अस्वप्नजस्तरणयः सुशेवा अतन्द्रासो वृका अकमिष्ठाः।
तेपायकसंचियंचोनिषधोग्ने तव नः पान्त्वमूः ।।६५८।।
ये पापवो माम ते यन्ते अग्ने पश्यन्तो अघं दुरितादरक्षन्।
ररक्ष तान्सकृतो विश्ववेदा दिप्सन्त इन्द्रियवो ना ह देभुः ।।६५९।।

त्वया वयꣳसधन्यास्त्वोतास्तव प्रणीत्यरयाम वाजान्।
उभाशꣳसासुदयसत्पता ते ॥६६०॥
उष्ट्रया कृणुह्यणुह्यहयाणा अथो ते अग्ने।
समिधारिधेमप्रतिस्तोम शस्यमानं गृभाय।
इहाशसो रक्षसः पाह्यस्मादुहोनिदोमित्रमहो अवद्यात् ॥६६१॥
रक्षोहणं वाजिनमाजिधर्मि मित्रं प्रथिष्ठमुपयामि शर्म्म।
शिशानो अग्निः क्रतुभिः सविद्धः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥६६२॥
विज्योतिषा बृहता भात्यग्निराविर्विश्वानि कृणुते महित्वा।
प्रादेवीर्मायाः सहते दुरेवाः शिशीते श्रृणे रक्षसे विनिक्षे ॥६६३॥
उत स्वानासो दिविषं त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्त वा उ।
मदैचिदस्य द्व्यरुजन्ति भामानवरन्ते परिवाधो अदेवीः ॥६६४॥
एतत्सूक्तं जपेद्विप्रो यदा स्याद्दस्युभिर्वृतः।
अरातीनां हरेत्प्राणान्भयन्नैवोपजायते ॥६६५॥

दस्युओं से चारो ओर से घिरा हुआ विप्र यदि 'कृणुष्वपाजः प्रसितिं' से लेकर 'परिवाधो अदेवीः' तक मूलोक्त सूक्त का जप करता है तो वह अरातियों (शत्रुओं) के प्राणों का हरण कर लेता है और उसे किसी प्रकार का भय नहीं होता।।६४६-६६५।।

क्षेत्रस्य पतिना वयꣳहि तेनेव जयामसि।
गामश्वं घोषयित्वा नो मृडातीदृशे ॥६६६॥
इमामृचं क्षेत्रपतेः प्रत्यहं यो जपेच्छुचिः।
पश्यन्सूर्यं द्विजो नित्यं विन्दते क्षेत्रमुत्तमम् ॥६६७॥

जो द्विज प्रतिदिन पवित्र होकर 'क्षेत्रस्य पतिना वयꣳहि तेनेव जयामसि। गामश्वं घोषयित्वा नो मृडातीदृशे।' इस ऋचा का जप करता है और प्रतिदिन सूर्य का दर्शन करता है, वह उत्तम क्षेत्र का लाभ प्राप्त करता है।।६६६-६६७।।

पुरुषसूक्तविधानम्

वक्ष्ये पुरुषसूक्तस्य विधिं तन्त्रेषु गोपितम्।
अनुष्टुबस्य सूक्तस्य त्रिष्टुबन्त्यस्य देवता ॥६६८॥
पुरुषो यो जगद्बीजमृषिर्नारायणः स्मृतः।
स्नात्वा यथोक्तविधिना प्राङ्मुखः शुद्धमानसः ॥६६९॥
प्रथमां विन्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे।
तृतीयां वामपादे तु चतुर्थीं दक्षिणे न्यसेत् ॥६७०॥

वामजानौ पञ्चमीं च षष्ठीं दक्षिणजानुनि।
सप्तमीं वामकट्यां वै चाष्टमीं दक्षिणे कटौ ॥६७१॥
नवमीं नाभिदेशे तु दशमीं हृदये न्यसेत्।
एकादशीं कण्ठदेशे द्वादशीं वामबाहुके ॥६७२॥
त्रयोदशीं दक्षभुजे मुखदेशे चतुर्दशीम्।
अक्ष्णोः पञ्चदशीं चैव षोडशीं मूर्ध्नि विन्यसेत्।
एवं न्यासविधिं कृत्वा पश्चात्पूजां समाचरेत् ॥६७३॥

पुरुषसूक्त-विधान—अब तन्त्रों में गुप्त पुरुषसूक्त की विधि को कहता हूँ। इस अनुष्टुप् सूक्त के ऋषि नारायण, छन्द त्रिष्टुप्, छन्द देवता पुरुष, कहे गये हैं। सविधि स्नान करके शुद्ध मन से पूर्वाभिमुख बैठकर प्रथम ऋचा का वाम कर में, द्वितीय ऋचा का दक्षिण कर में, तृतीय ऋचा का वाम पाद में, चतुर्थ ऋचा का दक्षिण पाद में, पञ्चम ऋचा का वाम जानु में, षष्ठ ऋचा का दक्षिण जानु में, सप्तम ऋचा का वाम कटि में, अष्टम ऋचा का दक्षिण कटि में, नवम ऋचा का नाभि में, दशम ऋचा का हृदय में, एकादश ऋचा का कण्ठ में, द्वादश ऋचा का वाम भुजा में, त्रयोदश ऋचा का दक्षिण भुजा में, चतुर्दश ऋचा का मुख में, पञ्चदश ऋचा का आँखों में तथा षोडश ऋचा का मूर्धा में न्यास करने के पश्चात् पूजन करना चाहिये।।६६८-६७३।।

अप्स्वग्नौ हृदये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥६७४॥
षट्स्वेतेषु हरेः सम्यगर्चने योग्यतोच्यते।
आपऽस्यायतनं यस्मात्तस्मात्तासु सदा हरिः।
अग्नौ क्रियावतां विष्णुर्योगिनां हृदये हरिः ॥६७५॥
पण्डितानां हरिः सूर्यः स्थण्डिले भावितात्मनाम्।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां षट्प्रकाराश्च ताः स्मृताः ॥६७६॥

जल, अग्नि, हृदय, सूर्य, स्थण्डिल और प्रतिमा—इन छः में विष्णु का सविधि अर्चन किया जा सकता है; क्योंकि निवासस्थान होने के फलस्वरूप जल में हरि सदा विराजमान रहते हैं। हवन करने वालों के विष्णु अग्नि में वास करते हैं, योगियों के हरि हृदय में वास करते हैं, पण्डितों के लिये विष्णु सूर्य होते हैं, भावितात्माओं (परमात्मा का ध्यान कर पवित्र आत्मा वाले) के हरि स्थण्डिल में विराजमान रहते हैं एवं अज्ञानियों के लिये विष्णु प्रतिमा में विराजमान रहते हैं। इन रूपों से विष्णु के वास करने के छः प्रकार कहे गये हैं।।६७४-६७६।।

अकृत्रिमाः कृत्रिमाश्च अचलाश्च तथा चलाः।
निर्जीवाश्च सजीवाश्च प्रतिमाः सन्ति वै हरेः ॥६७७॥

श्रृणु देवि क्रमात्तासामहं वक्ष्यामि लक्षणम्।
अकृत्रिमा च द्विविधा शालग्रामोऽतिपावनः ॥६७८॥
तदभावे द्वारकायाश्चक्रं तद्वच्च पावनम्।
कृत्रिमा दशधा प्रोक्ताः श्रेष्ठास्ताः पूर्वपूर्वतः ॥६७९॥
स्याद्रत्नरचिता चाद्या स्वर्णजा रूप्यजापि च।
ताम्रजा पित्तली जाता स्फाटिकी रक्तसीसजा।
काष्ठजा मृत्तिका जाता चित्ररूपेति च क्रमात् ॥६८०॥
अचला क्षेत्ररूपा हि हरिद्वारं यथा गया।
देवताभिः कृता यास्तु मूर्त्तयस्ताश्चलाचलाः ॥६८१॥
जगन्नाथो वेङ्कटेशः पाण्डुराभ्रादयश्च ते।
सजीवा ब्राह्मणा गावो निर्जीवः पिप्पलः स्मृतः ॥६८२॥

विष्णु की प्रतिमा अकृत्रिम, कृत्रिम, अचल, चल, निर्जीव और सजीव के भेद से छः प्रकार की होती है। हे देवि! अब मैं उन षड्विध प्रतिमाओं के स्वरूप को क्रमशः कहता हूँ, सुनो। अकृत्रिम प्रतिमा दो प्रकार की होती है, उसमें शालग्राम अत्यन्त पवित्र होता है। शालग्राम के अभाव में द्वारका में प्राप्त गोमती चक्र भी उतना ही पवित्र होता है। कृत्रिम प्रतिमा दश प्रकार की होती है, जो कि एक-दूसरे से क्रमशः श्रेष्ठ होती है। कृत्रिम प्रतिमा के दस भेद इस प्रकार हैं—रत्न-निर्मित, स्वर्ण-निर्मित, रजत-निर्मित, ताम्र-निर्मित, पित्तल-निर्मित, स्फटिक-निर्मित, लाल सीसा से निर्मित, काष्ठ-निर्मित, मिट्टी से रचित एवं चित्रस्वरूप। अचल प्रतिमा हरिद्वार-गया आदि क्षेत्ररूप है। जगन्नाथ, वेंकटेश, पाण्डुरंग आदि देवनिर्मित प्रतिमायें चल-अचल दोनों प्रकार की होती हैं। ब्राह्मण, गाय हरि की सजीव प्रतिमा हैं तथा पीपल निर्जीव प्रतिमा कही गई है।।६७७-६८२।।

विष्णुपूजाविधिः

मन्त्रन्यासं पुरा कृत्वा स्वदेहे देवतासु च।
गायत्र्यक्षरन्यस्ताङ्गः पूजयेद्विष्णुमव्ययम् ॥६८३॥
आद्ययावाहयेद्देवमृचा तु पुरुषोत्तमम्।
द्वितीययासनं दद्यात्पाद्यं दद्यात्तृतीयया ॥६८४॥
अर्घ्यं चतुर्थ्या दातव्यं पञ्चम्याचमनीयकम्।
षष्ठ्या स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वस्त्रमेव च ॥६८५॥
यज्ञोपवीतमष्टम्या नवम्या चानुलेपनम्।
पुष्पं दशम्या दातव्यमेकादश्या तु धूपकम् ॥६८६॥

द्वादश्या दीपकं दद्यात्त्रयोदश्या निवेदनम्।
चतुर्दश्या नमस्कारं पञ्चदश्या प्रदक्षिणम्॥६८७॥
स्नाने वस्त्रे च नैवेद्ये दद्यादाचमनीयकम्।
दक्षिणान्तु यथाशक्त्या षोडश्या तु समर्पणम्॥६८८॥
ततः प्रदक्षिणं कुर्य्याज्जपं कुर्य्यात्समाहितः।
यथाशक्ति जपित्वा तु सूक्तं तस्मै निवेदयेत्॥६८९॥

विष्णुपूजन-विधि—सर्वप्रथम अपने शरीर में एवं देवता में मन्त्रन्यास करने के पश्चात् गायत्री के अक्षरों से अङ्गन्यास सम्पन्न कर अव्यय विष्णु का पूजन करना चाहिये। पूजन के क्रम में पुरुषसूक्त के प्रथम मन्त्र से विष्णु का आवाहन, द्वितीय मन्त्र से आसन-समर्पण, तृतीय मन्त्र से पाद्य-समर्पण, चतुर्थ मन्त्र से अर्घ्य-समर्पण, पञ्चम मन्त्र से आचमनीय-समर्पण, षष्ठ मन्त्र से स्नान, सप्तम मन्त्र से वस्त्र-समर्पण, अष्टम मन्त्र से यज्ञोपवीत-समर्पण, नवम मन्त्र से चन्दनानुलेपन, दशम मन्त्र से पुष्प-समर्पण, एकादश मन्त्र से धूप-समर्पण, द्वादश मन्त्र से दीप-प्रदर्शन, त्रयोदश मन्त्र से नैवेद्य-निवेदन, चतुर्दश मन्त्र से नमस्कार, पञ्चदश मन्त्र से प्रदक्षिणा एवं षोडश मन्त्र से यथाशक्ति दक्षिणा-समर्पण करना चाहिये। स्नान, वस्त्र एवं नैवेद्य-समर्पण के पश्चात् आचमन प्रदान करना चाहिये। इसके बाद प्रदक्षिणा करने के पश्चात् एकाग्र मन से जप करना चाहिये। यथाशक्ति जप करने के उपरान्त सूक्त को विष्णु के लिये निवेदित कर देना चाहिये।।६८३-६८९।।

देवस्य दक्षिणे पार्श्वे कुण्डं स्थण्डिलमेव वा।
कारयेत्प्रथमेनैव द्वितीयेन तु प्रोक्षणम्॥६९०॥
तृतीयेनाग्निमादध्याच्चतुर्थेन समिन्धनम्।
पञ्चमेनाज्यश्रपणं चरोश्च श्रपणं तथा॥६९१॥
षष्ठेनैवाग्निमन्थन्तु कल्पयेत्पद्ममासनम्।
चिन्तयेद्देवदेवेशं कालानलसमप्रभम्॥६९२॥
ततो गन्धं च पुष्पं च धूपदीपौ निवेदयेत्।
अनुज्ञाप्य ततः कुर्य्यात्सप्तम्यादि यथाक्रमम्॥६९३॥
समिधस्तावतीः पूर्वं जुहुयादवधारितः।
ततो घृतेन जुहुयाच्चरुणा च ततः पुनः॥६९४॥
एवं हुत्वा ततश्चैनमनुज्ञाप्य यथाक्रमम्।
अग्नेर्भगवतस्तस्य समीपे स्तोत्रमुच्चरेत्॥६९५॥

तदनन्तर देवता के दक्षिण पार्श्व में प्रथम ऋचा से कुण्ड अथवा स्थण्डिल वनाकर द्वितीय ऋचा से उसका प्रोक्षण करना चाहिये। तृतीय ऋचा से अग्नि का आधान करके चतुर्थ ऋचा से उसे प्रज्वलित करना चाहिये। पञ्चम ऋचा से आज्य और चरु को गर्म करना चाहिये। षष्ठ ऋचा से अग्निमन्थन करके पद्मासन की कल्पना करके उसपर कालानल-सदृश कान्तिमान देवदेवेश का ध्यान करना चाहिये। इसके वाद गन्ध, पुष्प, धूप, दीप निवेदित करके उनसे अनुज्ञा प्राप्त कर सप्तम से लेकर षोडश की ऋचा से पहले समिधाओं से हवन करने के पश्चात् घृत से और फिर चरु से हवन करना चाहिये। इस प्रकार हवन सम्पन्न करने के बाद अनुज्ञा प्राप्त करके भगवान् अग्नि के समीप यथाक्रम स्तोत्रपाठ करना चाहिये।।६९०-६९५।।

जितन्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन।
नमस्तेऽस्तु हृषीकेश महापुरुष पूर्वज ।।६९६।।
देवानां दानवानां च सामान्यमधिदैवतम्।
सर्वदा चरणद्वन्द्वं व्रजामि शरणं तव ।।६९७।।
एकस्त्वमसि लोकस्य स्त्रष्टा संहारकस्तथा।
अव्यक्तश्चानुमन्ता चागुणो मायासमावृतः ।।६९८।।
संसारसागरं घोरमनन्तक्लेशभाजनम्।
त्वामेव शरणं प्राप्य निस्तरन्ति मनीषिणः ।।६९९।।
न ते रूपं न चाकारो नायुधानि न चास्पदम्।
तथापि पुरुषाकारो भक्तानां च प्रकाशसे ।।७००।।

हे पुण्डरीकाक्ष! आपको मैंने जीत लिया। हे विश्वभावन! आपको नमकार है। हमारे पूर्वज-स्वरूप महापुरुष हे हृषीकेश! आपको नमस्कार है। आप सामान्यतः देवताओं एवं दानवों—दोनों के अधिदेवता हैं; मैं सर्वदा आपके चरणकमलों में शरणागत हूँ। एकमात्र आप ही लोकों का सृजन एवं संहार करने वाले हैं। आप अव्यक्त, अनुमान-योग्य, अगुण एवं माया से सम्यक् रूप से आवृत हैं। मनीषिगण आपके ही शरणागत होकर अनन्त क्लेशों के आगार-स्वरूप भयंकर संसाररूपी समुद्र को पार करते हैं। न तो आपका कोई रूप है, न कोई आकार है, न आपका कोई आयुध है और न ही आपका कोई स्थान है; फिर भी पुरुष के आकार में आप भक्तों के समक्ष प्रकाशित रहते हैं।।६९६-७००।।

कस्यचिन्न परोक्षस्त्वं प्रत्यक्षोऽपि न कस्यचित्।
कस्यचिन्न च साध्योऽस्ति विना भक्तिं भवान् प्रभो ।।७०१।।

कार्याणां कारणं पूर्वं वचसां वाच्यमुत्तमम्।
योगिनां परमा सिद्धिः परमं ते पदं विदुः ॥७०२॥
अहं भीतोऽस्मि देवेश संसारेऽस्मिन्महाभये।
पाहि मां पुण्डरीकाक्ष न जानामि परं पदम् ॥७०३॥
कालेष्वपि च सर्वेषु दिक्षु सर्वासु चाच्युत।
शरीरे चागतं चापि वर्त्तते मे महद्भयम् ॥७०४॥
त्वत्पादकमलादन्यं न मे जन्मान्तरेष्वपि।
विज्ञानं यदिदं प्राप्य यदिदं ज्ञानवर्जितम् ॥७०५॥
जन्मान्तरेऽपि मे देव मा भूदस्य परिक्षयः।
दुर्गतावपि जातस्य त्वद्गतो मे मनोरथः ॥७०६॥
यदि नाशं न विन्देत ततोऽस्ति सुकृती सदा।
कामयेद्विष्णुपादौ तु सर्वजन्मसु केवलम् ॥७०७॥
पुरुषस्य हरेः सूक्तं स्वच्छं धन्यं यशस्करम्।
आत्मज्ञानमिदं पुण्यं योगज्ञानमिदं परम् ॥७०८॥
एवं स्तुत्वा हव्यवाहं ततः पश्चाद्विसर्जयेत्।
अनेनैव च निष्पापो जायते मनुजो सदा ॥७०९॥

न तो आप किसी के लिये अप्रत्यक्ष हैं, न ही किसी के लिये प्रत्यक्ष हैं। हे प्रभो! आप विना भक्ति के किसी के लिये भी साध्य नहीं हैं। आप कार्यों के पहले रहने वाले कारण हैं, आप ही बोलने वालों की उत्तम वाणी हैं। आप ही योगियों की परमा सिद्धि हैं और वे योगिगण आपके परमपद को जानते हैं। हे देवेश! इस अतिशय भयंकर संसार में मैं भयभीत हूँ। हे पुण्डरीकाक्ष! मेरी रक्षा करो, मैं परमपद को नहीं जानता। हे अच्युत! समस्त कालों में और सभी दिशाओं में तथा शरीर में आगमन होने पर भी मेरे लिये महान् भय विद्यमान है। दूसरे जन्म में भी आपके चरणकमलों के अतिरिक्त विशिष्ट ज्ञान मेरे पास नहीं है। हे देव! यह जो ज्ञानरहित विज्ञान है, इसका अन्य जन्म में भी विनाश नहीं होता। दुर्गति में पड़ने पर भी मेरा मनोरथ आप में ही लगा हुआ है। यदि उसका नाश न हो तो सदा मेरा कल्याण ही होगा। मैं सभी जन्मों में केवल विष्णु के चरणकमलों की ही कामना करता हूँ। श्रीविष्णु का यह पुरुषसूक्त अत्यन्त स्वच्छ, धन्य, यश प्रदान करने वाला, आत्मज्ञान प्रदान करने वाला, पुण्यमय एवं श्रेष्ठ योगज्ञानस्वरूप है। इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात् अग्नि को विसर्जित करना चाहिये। इससे मनुष्य सदा निष्पाप रहता है।।७०१-७०९।।

प्राग्वज्ज्ञात्वा पारदे तत्प्रयोगानारभेत च।
शुक्लपक्षे शुभे वारे यदा चैकादशी भवेत् ॥७१०॥
उपवासस्तु कर्त्तव्यो दम्पतिभ्यां सुरालये।
द्वादश्यां पुत्रकामाय चरुं कुर्वीत वैष्णवम् ॥७११॥
ऋग्भिः षोडशभिः सम्यगर्चयित्वा जनार्दनम्।
चरुं पुरुषसूक्तेन प्राशयेत्पुत्रकाम्यया ॥७१२॥
प्राप्नुयाद्वैष्णवं पुत्रमचिरात् सन्ततिक्षमम्।
द्वादश द्वादशीः सम्यक्पयसा निर्वपेच्चरुम् ॥७१३॥
यो जुहोति स वै याति तद्विष्णोः परमं पदम्।

पारद में पूर्ववत् विष्णु की अवस्थिति जानकर साधक को प्रयोगों का आरम्भ करना चाहिये। शुक्ल पक्ष के शुभ दिवस को जब एकादशी तिथि हो तब दम्पति (पति-पत्नी) को निराहार रहते हुये द्वादशी को देवालय में जाकर पुत्र की कामना से वैष्णव चरु का पाक करना चाहिये। तदनन्तर सोलह ऋचाओं से जनार्दन का सम्यक् रूप से पूजन करके पुत्रप्राप्ति के लिये पुरुषसूक्त से अभिमन्त्रित उस चरु का भक्षण करना चाहिये। ऐसा करने से वह दम्पति अविलम्ब ही सनतानोत्पत्ति में समर्थ वैष्णव पुत्र प्राप्त करता है।

बारह द्वादशी को अच्छी प्रकार से दूध के द्वारा चरु का पाक करके उससे जो हवन करता है, वह विष्णु के परमपद को प्राप्त कर लेता है।।७१०-७१३।।

मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमात्पूज्यश्च केशवः ॥७१४॥
नारायणो माधवश्च गोविन्दो विष्णुरेव च।
मधुसूदन उक्तस्त्रिविक्रमो वामनस्तथा।
श्रीधरश्च हृषीकेशः पद्मनाभो गदाधरः ॥७१५॥
पूजयित्वा जपेत्सूक्तं शतमष्टाधिकं ततः।
होमञ्च पूर्ववत् कुर्य्यात्सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥७१६॥

मार्गशीर्ष आदि मासों में क्रमशः इन नामों से विष्णु का पूजन करना चाहिये— अगहन में केशव, पौष में नारायण, माघ में माधव, फाल्गुन में गोविन्द, चैत्र में विष्णु, वैशाख में मधुसूदन, ज्येष्ठ में त्रिविक्रम, आषाढ़ में वामन, श्रावण में श्रीधर, भादो में हृषीकेश, आश्विन में पद्मनाभ एवं कार्तिक में गदाधर। मासानुसार उक्त का पूजन करने के पश्चात् सूक्त का एक सौ आठ बार जप करके पूर्ववत् होम करने वाला साधक अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है।।७१४-७१६।।

अपुत्रा मृतपुत्रा वा या च कन्याप्रसूर्भवेत्।
तस्या यथा सुपुत्रः स्यात्तमुपायं ब्रवीम्यहम् ॥७१७॥
समिधोऽश्वत्थवृक्षस्य प्रत्यृचं जुहुयाच्छतम्।
अष्टाधिकं च सघृतमुपतिष्ठेद्धुताशनम् ॥७१८॥
पुनर्विष्णुं पूजयित्वा घृतहोमं समाचरेत्।
अष्टोत्तरशतं कुर्य्यात्प्रत्यहं वाग्यतः शुचिः ॥७१९॥
सम्पाताज्यं स्थापयित्वा तन्नार्य्याः प्राशनाय च।
दद्यात्सा च पतिं विष्णुं नमस्कृत्य प्रभक्षयेत् ॥७२०॥
तर्पयेच्च द्विजान् सम्यग्लब्धाशीः प्रविशेद् गृहम्।
परं सप्त प्रवर्तेनावश्यं गर्भवती भवेत् ॥७२१॥

अपुत्रा (वन्ध्या), मृतपुत्रा (जिसके पुत्र जन्म लेकर मर जाते हों) अथवा कन्याप्रसू (केवल कन्याओं को जन्म देने वाली) को जिस प्रकार से पुत्र की प्राप्ति हो सकती है, उस उपाय को अब मैं कहता हूँ। यज्ञाग्नि के पास बैठकर घृतलिप्त अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष की समिधा से पुरुषसूक्त की प्रत्येक ऋचा से एक सौ आठ-एक सौ आठ बार हवन करने के उपरान्त पुनः विष्णु का पूजन करके घृत से हवन करने के बाद प्रतिदिन पवित्रता-पूर्वक मौन रहते हुये एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये। सम्पाताज्य (हवन के बाद शेष बचे घृत) को एकत्र कर उक्त स्त्री को प्राशन (भक्षण) करने के लिये देना चाहिये और उस स्त्री को अपने पति एवं विष्णु को प्रणाम कर उस प्राप्त सम्पाताज्य का भक्षण करना चाहिये। तत्पश्चात् तर्पण करके द्विजों से भली प्रकार आशीर्वाद प्राप्त कर अपने गृह में प्रवेश करना चाहिये। इसके बाद दोनों के सात बार संयोग होने पर वह नारी निश्चित ही गर्भवती हो जाती है।।७१७-७२१।।

अरण्ये निवसेन्नित्यं त्रिकालं स्नानमाचरेत्।
जपेदष्टोत्तरशतं सूक्तमेतत्त्रिकालकम् ॥७२२॥
मासमेकं फलाहारो मासमद्भिश्च तर्पयेत्।
आदित्यमुपतिष्ठेत मन्त्रेणानेन नित्यशः।
आज्यं हुत्वा दशशतं त्रिभिर्वर्षैर्जपेद्दिनम् ॥७२३॥
तद्भक्तस्तन्मना युक्तो दशवर्षाण्यनन्यभाक्।
साक्षात्पश्यति तं देवं नारायणमनामयम् ॥७२४॥

प्रतिदिन वन में निवास करते हुये तीनों कालों में स्नान करके इस सूक्त का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। एक मास तक फलाहार करना चाहिये एवं एक मास

तक जल से तर्पण करना चाहिये। तीन वर्ष तक प्रतिदिन इस मन्त्र से सूर्योपस्थान, घृत से एक हजार बार हवन और दिन में जप करना चाहिये। ऐसा करने वाला भक्त भगवान् नारायण में अपने चित्त को लीन करके दस वर्षों तक यदि केवल उन्हीं का भजन करता है तो वह उस अनामय नारायण को साक्षात् प्रत्यक्ष देखने में समर्थ हो जाता है।।७२२-७२४।।

गृहस्थानां जीवन्मुक्तिसाधनम्

अथ वक्ष्ये गृहस्थानां जीवन्मुक्तेस्तु साधनम्।
यश्च स्वधर्मनिरतो न्यायवृत्तः शुचिव्रतः ॥७२५॥
अर्धरात्रे त्यक्तनिद्रः शुद्धो भूत्वा च वाग्यतः।
सम्प्रसुप्तेषु लोकेषु योगं युञ्जीत योगवित् ॥७२६॥
कृत्वासनं समे देशे निर्वाते शब्दवर्जिते।
सव्यं पादं दक्षिणस्य जानौ संवेशयेत्ततः ॥७२७॥
संहृत्य दक्षिणं पादं सव्यं जानुनि यच्छति।
बद्धाञ्जलिकरः स्वस्थो योगसम्मीलितेक्षणः ॥७२८॥
ॐमित्येव स्वहृदये चिन्तयेदविशङ्कितः।
तत्रात्मानं समादध्यादिन्द्रियाणि मनस्तथा ॥७२९॥
न विबुध्येत किञ्चान्यं न पश्येच्छृणुयान्न च।
प्राणानायम्य चासीनोऽनुद्विग्नश्चिन्तयेत्ततः ॥७३०॥
श्वासेनैव समं नाभौ गमयित्वा मनस्तदा।
उच्छ्वसेच्चैवमसकृत्तन्मना योगमुन्नयेत् ॥७३१॥
मनो नयेत हृदये पश्येन्नो श्रृणुयान्न च।
ततो नयेत तच्चेतो हृदयादूर्ध्वमेव तु ॥७३२॥
समानं जत्रु चास्यं च नासिके नयने भ्रुवौ।
भ्रुवोर्मध्ये परं स्थानं तत्र तद्द्वारपद्धतिः ॥७३३॥
ललाटदेशे सन्धार्य्य मूर्द्धानं गमयेत्ततः।
उच्छ्वसेच्च यथाकालं नाभितश्चोच्छ्वसेत्पुनः ॥७३४॥
एतत्परं स्थानमुक्तं ब्रह्मणः परमात्मनः।
एवं युक्तो महात्मानमात्मानं प्रतिपद्यते ॥७३५॥
यद्येवं सुकृती शुद्धो यदि वा पापकृत्ततः।
उपलभ्य परं ब्रह्म गतिं ज्ञात्वा भवेच्छुचिः ॥७३६॥

सर्वपापानुबद्धश्च हृद्यन्तः प्रयतो जपेत्।
अपि जित्वा समं देवं स गच्छेत्परमाङ्गतिम् ।।७३७।।

गृहस्थों के लिये जीवन्मुक्ति का साधन—अब गृहस्थों को जीवन्मुक्ति प्राप्त करने के क्या साधन हैं, इसका वर्णन करता हूँ। जो अपने धर्म में संलग्न रहता है, न्याय का आचरण करता है, पवित्र संकल्प करने वाला होता है, अर्धरात्रि में निद्रा का त्याग करके शुद्ध होकर मौन रहते हुये समस्त संसार के निद्रामग्न रहने पर भी योग को जानने वाला होने के कारण योगाभ्यास करने के लिये वायु के उपद्रव एवं कोलाहल से रहित स्थान पर समतल भूमि पर आसन बिछाकर बाँयें पैर को दाँयें जानु पर तथा दाँयें पैर को बाँयें जानु पर रखकर अंजलि बाँधकर स्वस्थ होकर योग की कामना से आँखों को बन्द करके समस्त शंकाओं का परित्याग करते हुये अपने हृदय में मात्र ॐ को चिन्तन करते हुये अपनी समस्त इन्द्रियों एवं मन को उसी में लगा देता है, न अन्य कुछ जानता है, न देखता है और न ही सुनता है, साथ ही प्राणों को निरुद्ध करके स्थिर बैठकर उस ॐ का ही चिन्तन करते हुये बार-बार श्वास के साथ ही मन को भी नाभि में प्रविष्ट कराकर पुनः उच्छ्वसित करते हुए उसी में मन को समाहित करके योग को ऊपर उठाता है, मन को हृदय में स्थापित कर लेता है, न कुछ देखता है और न ही कुछ सुनता है, तदनन्तर उस मन को हृदय से ऊपर की ओर उठाता है, जत्रु (हँसली) मुख, नासिका एवं नयन को एक समान सीधा रखते हुये द्वारभूत भौंहों के मध्यवर्ती परम स्थान से ललाटप्रदेश में संधारित करते हुये मूर्धा में ले जाकर यथासमय उच्छ्वसित करता हुआ पुनः नाभि से उच्छ्वसित करता है। इससे ऊपर परमात्मा का स्थान बतलाया गया है। इस प्रकार से साधना करके साधक अपनी आत्मा को महान् आत्मा के साथ युक्त कर लेता है। इस स्थान पर पहुँचने के उपरान्त भी उस परम शुद्ध पुण्यात्मा से यदि कोई पापकर्म हो जाता है तो वह परब्रह्म की गति को प्राप्त करके पवित्र हो जाता है। समस्त पापों से संयुक्त होते हुये भी वह यदि जितेन्द्रिय रहकर जप करता है तो वह देवताओं को भी विजित करके परम गति को प्राप्त करता है।।७२५-७३७।।

धारणा तु पृथक्कार्या धर्मेण तेन नित्यशः।
आदित्येऽग्नौ चन्द्रमसि वृक्षाग्रेषु च धारयेत्।
पर्वताग्रे समुद्रे वा यत्र वा रमते मनः ।।७३८।।
न भावं विषयान्प्राप्य धारयेत कथञ्चन।
बह्वत्र दुःखं जानीयात्प्रध्वंसे धारणात्मके ।।७३९।।
धार्मिकाणां कुले शुद्धे योगभ्रष्टोऽभिजायते।
मूर्ध्नि ब्रह्म प्रविन्देतेदृग्जपस्य प्रभावतः ।।७४०।।

तदा मूर्ध्ना परं ज्योतिर्नक्षत्रपथमुन्नयेत्।
योगी योगीश्वरं प्राप्य निर्द्वन्द्वं परमात्परम्॥७४१॥
सर्वत्रैवात्मनात्मानं पश्येद्धरिपरायणः।
जपेच्चैव स्वरान् स्नातः पवित्रमिदमुत्तमम्॥७४२॥
अपि पातकसंयुक्तः कालेन सुकृती भवेत्।
ततः परायणो नित्यं सत्यवागनसूयकः।
प्रजपँस्तामृचं विप्रः कालेन सुकृती भवेत्॥७४३॥

उसी धर्म से पृथक् से धारणा करनी चाहिये। सूर्य में, अग्नि में, चन्द्रमा में, वृक्ष के शिखर पर, पर्वतशिखर पर अथवा समुद्र में—जहाँ भी मन रमण करे, वहाँ धारणा करनी चाहिये। विषयों के भाव में कभी भी धारणा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि विषयों के ध्यान से धारणा के समाप्त होने पर अतिशय कष्ट होता है और धर्माचरण करने वालों के पवित्र कुल में योगभ्रष्ट की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार के जप के प्रभाव से साधक की मूर्धा में ब्रह्म रमण करने लगता है और तब वह योगी उस परम ज्योति को अपनी मूर्धा से नक्षत्रमार्ग की ओर अग्रसर करके निर्द्वन्द्व एवं पर से भी पर योगीश्वर को प्राप्त करके विष्णुपरायण होकर सभी जगहों पर अपने-आपको ही देखता है। स्नान करके पवित्र होकर इन सर्वोत्तम स्वरों (ध्वनियों) का जप करना चाहिये। इस प्रकार के आचरण से पातकी भी समय पाकर पुण्यात्मा हो जाता है।

तदनन्तर किसी भी प्रकार की असूया (ईर्ष्या) से रहित एवं सदा सत्य वाणी बोलने वाला विप्र विष्णुपरायण होकर प्रतिदिन इन ऋचाओं का जप करते हुये समयानुरूप पुण्यात्मा हो जाता है।।७३८-७४३।।

येन येन च कामेन जपन्ति तामृचं सदा।
स स कामः समृद्धः स्याच्छ्रद्दधानस्य कुर्वतः॥७४४॥
होमं वाप्यथवा जाप्यमुपहारमनुत्तमम्।
कुरुते येन कामेन तत्सिद्धिरुपजायते॥७४५॥
ज्ञानगम्यं परं लक्ष्यं प्राप्यं सर्वमवस्थितम्।
वाक्यमत्यन्तयत्नेन ब्रह्माभ्येति सनातनम्॥७४६॥
सहस्रशीर्षसूक्तं तु सर्वकामफलप्रदम्।
वेदगर्भशरीरेण स वै नारायणः स्मृतः॥७४७॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रपर्जन्याः सूक्तेऽस्मिन् सुव्यवस्थिताः।
अत्रस्थं प्रेत्य द्रष्टव्यं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥७४८॥

अनासादयमानोऽपि भक्तिं न परिहारयेत्।
भक्तानुकम्पी भगवाञ्छ्रूयते पुरुषोत्तमः ।।७४९।।

जिस-जिस कामना से श्रद्धापूर्वक इन ऋचाओं का जप किया जाता है, श्रद्धालु की वे सभी मनोकामनायें पूर्ण हो जाती हैं। सर्वोत्तम उपहारस्वरूप हवन अथवा जप का समर्पण जिस कामना से किया जाता है, उस कामना की सिद्धि होती है। परम लक्ष्य ज्ञान से जानने योग्य है एवं समस्त विद्यमान वस्तुयें प्राप्त करने योग्य हैं—यह सिद्धान्त अत्यन्त यत्न के द्वारा सनातन ब्रह्म को ही प्राप्त कराता है। सहस्रशीर्षा सूक्त सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाला है। वेद में निहित शरीर के द्वारा यही नारायण कहा जाता है। ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र और पर्जन्य—ये सभी इसी सूक्त में सम्यक् रूप से व्यवस्थित हैं। मृत्यु के उपरान्त यहाँ स्थित होकर मनुष्य को स्थावर-जङ्गमात्मक जगत् को देखना चाहिये। अपमानित होते हुये भी भक्ति का परित्याग नहीं करना चाहिये; क्योंकि भक्तों पर अनुकम्पा करने वाले भगवान् पुरुषोत्तम अपने भक्तों की अवश्य सुनते हैं।।७४४-७४९।।

पूजार्थे तस्य देवस्य वन्यान् स्वयमुपार्जितान्।
आरण्यकविधानेन निर्वपेत्प्रत्यहं चरुम् ।।७५०।।
नारायणाय स्वाहेति मन्त्रेण जुहुयाद्धविः।
आसहस्रात्तत्र चक्षुर्दिव्यं होतुर्ददाति सः ।।७५१।।
यद्वा चरुं सहस्रं तु मन्त्रेणैकेन निर्वपेत्।
स हुत्वा स्वेप्सितानां च कामानां लभते फलम्।
पुरुषायुष्यसंयुक्तः सिद्धो वा विचरेन्महीम्।
सूक्तानि कोटिशः सन्ति परमेतन्महाप्रियम्।
सर्वेश्वरो हरिर्येन गीयते भक्तवत्सलः ।।७५२।।

उस देव की पूजा के लिये वन से प्राप्त या स्वयं उपार्जित उपचारों से प्रतिदिन आरण्यक विधान से चरु का निर्वपन करना चाहिये। 'नारायणाय स्वाहा' मन्त्र से हवि से हवन करना चाहिये। इस प्रकार से एक हजार आहुति प्रदान करने पर वे भगवान् नारायण होता को दिव्य नेत्र प्रदान करते हैं। अथवा एक ही मन्त्र से एक हजार चरुओं का निर्वपन करना चाहिये। फिर उन चरुओं से हवन करके साधक अपने अभीप्सित कामनाओं के फल को प्राप्त करके दीर्घायु से संयुक्त होकर अथवा सिद्ध के रूप में भूतल पर विचरण करता है। यद्यपि करोड़ों सूक्त विद्यमान हैं; फिर भी यह पुरुषसूक्त, जिससे कि भक्तवत्सल सबके ईश्वर भगवान् विष्णु की स्तुति की जाती है, उन्हें अत्यन्त प्रिय है।।७५०-७५२।।

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान् मकरकुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥७५३॥
एतत्तु यः पठति केवलमेव सूक्तं
नारायणस्य चरणावभिवन्द्य वन्द्यौ।
पाठेन चाथ परमस्य सनातनस्य
स्थानं जरामरणवर्जितमेति विष्णोः ॥७५४॥
हविषाग्नौ जले पुष्पैर्ध्यानेन हृदये हरिम्।
यजन्ति सूरयो नित्यं जाप्येन रविमण्डले ॥७५५॥
बिल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं भृङ्गारकस्य च।
मालतीकुशपत्रं च सद्यस्तुष्टिकरं हरेः ॥७५६॥
यन्नोपपद्यते किञ्चित्तं ध्यायन्मनसैव तु।
सम्पद्यते प्रसादात्तु देवदेवस्य चक्रिणः ॥७५७॥
पत्रैश्च पुष्पैश्च फलैश्च तोयै-
र्विक्रीतलब्धैश्च सदैव सद्भिः।
भक्त्यैकगम्ये पुरुषे पुराणे
मुक्तौ किमर्थं क्रियते न यत्नः ॥७५८॥
इत्येवमुक्तः पुरुषस्य विष्णो-
रर्चाविधिर्देवि मुदा मुनीन्द्राः।
मुक्त्यैकमार्गप्रतिबोधनाय
न वै मया लौकिककामनार्थम् ॥७५९॥

सूर्यमण्डल के मध्य भाग में कमल के आसन पर सम्यक् रूप से विराजमान, केयूर मकरकुण्डल किरीट हार से सुशोभित स्वर्णमय शरीर वाले, शंख-चक्र धारण करने वाले नारायण का सदा ध्यान करना चाहिये—इस अर्थ वाले मूलोक्त 'ध्येयः सदा०' सूक्त का नारायण के चरणों की वन्दना करके जो पाठमात्र करता है, वह उस भगवान् विष्णु के जरा-मरण से रहित श्रेष्ठ सनातन स्थान को प्राप्त होता है।

विद्वान् लोग हविषाग्नि में एवं जल में पुष्प द्वारा, हृदय में ध्यान द्वारा तथा सूर्यमण्डल में जप द्वारा हरि का नित्य अर्चन करते हैं। बेलपत्र, शमीपत्र, भृङ्गारक(लवङ्ग)पत्र, मालतीपत्र एवं कुशपत्र विष्णु को सद्यः प्रसन्न करने वाले होते हैं। मन से ध्यान करने

पर जो कुछ प्राप्त नहीं होता है, वह चक्रधारी विष्णु के कृपाप्रसाद से अवश्य ही प्राप्त हो जाता है। सज्जनों द्वारा मुक्ति की प्राप्ति के लिये उपलब्ध या खरीदे गये पत्र, पुष्प, फल, जल से सदैव भक्तिमात्र से गम्य पुराणपुरुष के पूजन का प्रयत्न क्यों नहीं किया जाता?

हे देवि! इस प्रकार मेरे द्वारा प्रसन्नमन मुनियों को मुक्ति-प्राप्ति के एकमात्र मार्ग को बतलाने के लिये, न कि लौकिक कामनाओं की प्राप्ति के लिये उस परमपुरुष विष्णु के पूजन-विधान का निरूपण किया गया।।७५३-७५९।।

या ओषधीः सोमराज्ञीः विष्ठिताः पृथिवीमनु।
बृहस्पतिप्रसूतास्ता अस्यै सन्दत्त वीर्य्यम्।।७६०।।
अवपतन्तीरवदन्दिव ओषधयस्परि।
यं जीवमश्नवामहै न स रिष्यति पूरुषः।।७६१।।
याश्चेदमुपश्रृण्वन्ति याश्च दूरं परा गताः।
सर्वाः सङ्गत्य वीरुधोऽस्यै सन्दत्त वीर्य्यम्।।७६२।।
मा वोरिषत्खनिता यस्मै चाहं खनामि वः।
द्विपाच्चतुष्पादस्माकꣳसर्वमस्त्वनातुरम्।।७६३।।
ओषधयः संवदन्त सोमेन सह राज्ञा।
यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तꣳ राजन्पारयामसि।।७६४।।
पर्वस्वेव जपेन्नित्यं षणमासानेव यो नरः।
वैद्यस्त्वमृतहस्तः स्यादन्यः स्वस्त्ययनं भजेत्।।७६५।।
इष्ट्वा शरदि वै रुद्रमोषधीश्च जपेत्सदा।
तस्यामया न जायन्ते तथाऽजीर्णानि पञ्च वा।।७६६।।

'या ओषधीः' से आरम्भ कर 'राजन्पारयामसि' तक मूल में पठित ओषधिसूक्त का जो मनुष्य प्रत्येक पर्वों में जप करता है, वह छः मास में ही हाथों में अमृत धारण करने वाला वैद्य हो जाता है एवं समृद्धि प्राप्त करने का भागी होता है। शरत्काल में भगवान् रुद्र का यजन करके जो बराबर ओषधिसूक्त का जप करता है, उसे कोई रोग अथवा पाँच प्रकार का अजीर्ण नहीं होता।।७६०-७६६।।

कुर्य्यात्तु सप्तरात्रेण सप्तकृत्वः समाहितः।
प्रपद्य ह्योषधीर्विप्रः सूक्तमेतज्जपेत्सदा।।७६७।।
द्विषत्क्षेत्रादिहायध्वमिति विज्ञापयेच्च ताः।
स्वक्षेत्रे वरुणं चेष्ट्वा विन्दते द्विषदोषधीः।।७६८।।

जो विप्र सात रातों तक सप्तौषधियों को एकत्र कर एकाग्र मन से बरावर इस ओषधिसूक्त का जप करता है एवं 'शत्रुक्षेत्र से ओषधियाँ यहाँ आयें' इस प्रकार उनको कहता है; साथ ही अपने क्षेत्र में वरुण का यजन करता है, वह शत्रुक्षेत्रगत ओषधियों को भी प्राप्त कर लेता है।।७६७-७६८।।

बृहस्पते अति यदर्य्यो अर्हाद्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवसऋतप्रजाततदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।।७६९।।
वृष्टिकामो यताहारः प्रपद्येत बृहस्पतिम्।
पायसेनोपहारेण होमेन च समन्वितः ।।७७०।।
पश्चादिमामृचं विप्रो वृष्टिकामः प्रयोजयेत्।
पर्जन्यं च नमस्कृत्य वृष्टिं विन्दति शोभनाम् ।।७७१।।

वर्षा की कामना से स्वल्प भोजन करके 'बृहस्पते अति' इस सूक्त से पायस का उपहार समर्पित करके होम करते हुये वृहस्पति की आराधना करनी चाहिये। इसके बाद वृष्टि की कामना वाला विप्र इस ऋचा का प्रयोग करते हुये पर्जन्य (मेघ) को नमस्कार करके अच्छी वर्षा को प्राप्त करता है।।७६९-७७१।।

कलौ धर्म्मस्य रक्षार्थमृच एताः क्वचित्क्वचित्।
विप्रे विप्रे देशदेशे स्थास्यन्त्यन्याश्च वै क्षितौ ।।७७२।।
एतत्तत्त्वमिह प्रोक्तं सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
इतः परं देवि देवाः किं वक्तव्यं तदुच्यताम् ।।७७३।।

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते कलिसंस्थित-सविधिमन्त्रकथनं नामैकादशः प्रकाशः ।।११।।

•

कलियुग में धर्म की रक्षा के लिये ये ऋचायें भूलोक के प्रत्येक देश में कहीं-कहीं किन्हीं-किन्हीं ब्राह्मणों के पास और दूसरों के पास भी विद्यमान रहती हैं। समस्त तन्त्रों में गुप्त रूप से वर्त्तमान इस तत्त्व को यहाँ कहा गया। हे देवि! एवं उपस्थित देवताओं! इसके पश्चात् क्या कहना चाहिये, उसे आप सब कहें।।७७२-७७३।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिव-प्रणीत 'कलिसंस्थित-सविधिमन्त्रकथन' नामक एकादश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

•

अथ द्वादशः प्रकाशः

(कलिप्रत्ययवेदमन्त्रप्रकाश:)

श्रीविष्णुरुवाच

देवदेव महादेव भक्तानुग्रहकारक।
कालस्त्वमसि लोकानां महामाया त्वियं परा ॥१॥
युवयोः के तुष्टिकरा मन्त्राः सूक्तानि तद्वद।
येन भुक्तिश्च मुक्तिश्च क्लेशो नैव च नैव च ॥२॥

श्रीविष्णु ने भगवान् शंकर से प्रश्न किया कि भक्तों पर अनुग्रह करने वाले हे देवदेव महादेव! आप ही लोकों के काल हैं एवं यह दूसरी (पार्वती) महामाया हैं। आप दोनों को प्रसन्न करने वाले मन्त्र और सूक्त कौन-कौन हैं, जिनसे कि भोग और मोक्ष—ये दोनों प्राप्त होते हैं; लेकिन कभी भी किसी प्रकार का दु:ख नहीं प्राप्त होता। उन मन्त्रों एवं सूक्तों को आप कहें।।१-२।।

श्रीशिव उवाच

विष्णो गोप्यं त्वया पृष्टं न वाच्यं तान्त्रिके द्विजे।
तन्त्रे च तामसं रूपं त्वया पृष्टं तु सात्त्विकम् ॥३॥

श्रीशिव बोले कि हे विष्णु! आपने जो पूछा है, वह गोपनीय है, इसे तान्त्रिक द्विजों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिये; क्योंकि तन्त्र का स्वरूप तामसिक है और आपने सात्त्विक रूप को जानने के लिये प्रश्न किया है।।३।।

शतरुद्रीयस्तोत्रम्

भोगमोक्षैकनिलयं चतुर्वेदोत्तमोत्तमम्।
मन्त्रस्तोत्रेश्वरं तन्मे जानीहि शतरुद्रियम् ॥४॥
छन्दांस्यनुष्टुबादीनि ह्यघोरोऽस्य मुनिर्मतः।
देवतास्य भवेद्रुद्र आदित्यः परपूरुषः ॥५॥

शतरुद्रीय स्तोत्र—आपको यह ज्ञात होना चाहिये कि चारों वेदों में जो सर्वश्रेष्ठ है, भोग एवं मोक्ष का जो एकमात्र आगार है तथा समस्त मन्त्रों एवं स्तोत्रों में जो

सर्वाधिक शक्तिशाली हैं, वह शतरुद्रीय स्तोत्र मुझे अतिशय प्रिय हैं। इस स्तोत्रमन्त्र के छन्द अनुष्टुप् आदि हैं, इसके मुनि अघोर हैं एवं देवता रुद्र आदित्य परब्रह्म हैं।

या ते रुद्रशिखा प्रोक्ता त्वस्मिन्महेति मस्तकम्।
सहस्राणि ललाटे च भ्रुवोर्मध्ये च हंस ऋक् ॥६॥
याते रुद्रशिवा तनूरघोरा पापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥७॥
अस्मिन्महत्यर्णवे अन्तरिक्षे भवा अधि।
तेषाऽसहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥८॥
सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम्।
तेषाॐ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥९॥
हॐ सुः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षं सद्धोता।
वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ॥१०॥
त्र्यम्बकन्नेत्रयोश्चैव नमः स्तुत्याय कर्णयोः।
मानस्तोके नासिकायामवतत्य मुखे न्यसेत् ॥११॥
नमः स्तुत्याय च पत्थ्याय च नमः काट्याय च नीप्याय च।
नमः कुल्याय च सरस्याय च नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥१२॥
मानस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान्रुद्रभामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥१३॥
अवतत्य धनुस्त्वॐ सहस्राक्ष शतेषुधे।
निशीर्य्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१४॥
नीलग्रीवाद्वयं न्यसेत्क्रमात्कण्ठोपकण्ठयोः।
नमस्ते अ या ते हेतिद्वयं बाह्वोः प्रकोष्ठयोः ॥१५॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः।
तेषाॐ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥१६॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवॐ रुद्रा उपाश्रिताः।
तेषाॐ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥१७॥
नमस्ते आयुधायानातताय धृष्णवे।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१८॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः।
तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥१९॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाꣳ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥२०॥
इमामृचन्तु करयोरङ्गुष्ठादिषु विन्यसेत् ।
सद्योजातादिकाः पञ्च हृदये तु न्यसेदिमाः ॥२१॥
नमो वः किरिकेभ्यो देवानाꣳ हृदयेभ्यो नमो विक्षीयत्केभ्यो ।
नमो विचिन्वत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥२२॥
नमो गणेभ्यः पृष्ठे तु नमो हिरण्यबाहवे ।
पार्श्वयोर्न्यस्य कुक्ष्योस्तु नमस्तक्षेभ्य इत्यपि ॥२३॥
नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो
नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः ।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो
नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥२४॥
नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमो
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतये नमः ।
नमः शष्पिञ्जराय त्विषीमते पृथीनाम्पतये नमो
नमो हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाम्पतये नमः ॥२५॥
नमा बम्लुशाय नमस्तक्षेभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो
नमः कुलालेभ्यः कर्म्मारिभ्यश्च वो नमः ।
नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्ठेभ्यश्च वो नमो
नमः श्वनिभ्यो मृगयुभ्यश्च वो नमः ॥२६॥

मूलोक्त 'या ते रुद्र' ऋचा से शिखा में, 'अस्मिन्मह' ऋचा से मस्तक पर, 'सहस्राणि' ऋचा से ललाट पर, 'हंस' ऋचा से भौहों के मध्य में, 'त्र्यम्वकं यजामहे' ऋचा से दोनों आँखों में, 'नमः स्तुत्याय' ऋचा से दोनों कानों पर, 'मानस्तोके' ऋचा से नासिका में, 'अवतत्य' ऋचा से मुख में न्यास करना चाहिये। दोनों 'नीलग्रीवाः' ऋचा से कण्ठ एवं उपकण्ठ में, 'नमस्ते अ या' एवं 'या ते हेतिः' से दोनों भुजाओं के प्रकोष्ठ में, 'नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा' ऋचा से दोनों अंगुष्ठों में, 'नीलाग्रीवाः शितिकण्ठा दिवं' से दोनों तर्जनियों में, 'नमस्ते आयुधा' ऋचा से दोनों मध्यमाओं में, 'या ते हेति' ऋचा से दोनों अनामिकाओं में, 'ये तीर्थानि प्रचरन्ति' ऋचा से दोनों कनिष्ठिकाओं में न्यास करने के उपरान्त 'सद्योजातं, नमो वः, नमो गणेभ्यः, नमो गणेभ्यो, नमो हिरण्यबाहवे, नमो बम्लुशाय, नमः श्वनिभ्यो' ऋचाओं का हृदय में न्यास करना चाहिये।।६-२६।।

विज्यन्धनुस्तु जठरे नाभौ हिरण्यगर्भकम् ।
मीढुष्टमेति कट्याञ्च ये भूतानान्तु गुह्यके ॥२७॥
विज्यन्धनुः कपर्द्दिनो विशल्यो बाणवाँ उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥२८॥
हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥२९॥
मीढुष्टम शिवतमः शिवो नः सुमना भव ।
परमे वृक्ष आयुधन्निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकम्बिभ्रदागहि ॥३०॥
ये भूतानाम्पतयो विशिखासः कपर्द्दिनः ।
तेषाᳬं सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥३१॥
जातवेदादिकाः पञ्च शिरोयुक्ता अपानके ।
मा नो महान्तमूर्वोश्च एष ते जानुनोर्न्यसेत् ॥३२॥
जातवेदसे सुनवाम सोममरातीर्यतो निदहाति वेदः ।
स नः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुन्दुरितात्यग्निः ॥३३॥
स यो वृषा वृष्ण्येभिः समः कामहो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।
सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती: ॥३४॥
यस्यानाप्तः सूर्य्यस्येव यामो भरे भरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति ।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेतैर्मरुत्वन्नो भवत्विन्द्र ऊती: ॥३५॥
दिवो न यस्य रेतसो दुधानाः पन्थासो यन्ति शवसा परीताः ।
तरदद्वेषाः ससहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती: ॥३६॥
सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखा सन् ।
अग्निभिर्ऋग्भी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती: ॥३७॥
मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरम्मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥३८॥
एष ते रुद्रा वसन्तेन परोमूजवतोतीहि ।
अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासा अहिᳬंसन्नः शिवोतीहि ॥३९॥
सᳬंसृष्टजिज्जङ्घयोश्च विश्वम्भूतञ्च गुल्फयोः ।
ये पथां पथिरङ्घ्र्योः स्यादध्यवोचश्च वर्म्मकम् ॥४०॥
सᳬंसृष्टजित्सोमपा बाहुशर्ध्यूर्ध्वधन्वा प्रतिरताभिरस्ता ।
बृहस्पते परिदीयारथीनरक्षोहा मित्राँ अपबाधमानः ॥४१॥

विश्वम्भूतम्भुवनं मित्रम्बहुधा जातञ्जायमानञ्च यत्।
सर्वो ह्येष रुद्रस्तस्मै रुद्राय नमो अस्तु ॥४२॥
ये पथाम्पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः।
तेषाꣳ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥४३॥
अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्सर्वाश्च यातुधान्यो धराचीः परासुव ॥४४॥
उपवर्म्म नमो विल्मि नमो अस्तु च नेत्रयोः।
प्रमुञ्च धन्वनश्चेति न्यसेन्नेत्रे तृतीयके ॥४५॥
नमो बिल्मिने च कवचिने च नमो वर्म्मिणे च वरूथिने च।
नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥४६॥
नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।
अथो ये अस्य सत्त्वानो हन्तेभ्योकरन्नमः ॥४७॥
प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरात्न्योर्ज्याम्।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो व्वप ॥४८॥
एवं षड्विंशदङ्गानां न्यासः प्रथम ईरितः।
य एतावन्त इति च कुर्याद्दिग्बन्धनन्ततः ॥४९॥
परातावन्तश्च भूयाꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे।
तेषाꣳ सहस्रयोजने वधन्वानि तन्मसि ॥५०॥
अयन्तु सर्वमन्त्राणाम्पठने त्वधिकारकृत्।
इमन्न्यासं प्रकुर्वाणः पावकेऽपि न नश्यति ॥५१॥

मूलोक्त 'विज्यन्धनुः कपर्दिने' ऋचा से जठर में, 'हिरण्यगर्भः' ऋचा से नाभि में, 'मीढुष्टम' ऋचा से कमर में, 'ये भूतानाम्पतो' ऋचा से गुह्य में न्यास करना चाहिये। शिरोयुक्त 'जातवेदसे, स यो वृषा, यस्यानातयोः, दिवो न यस्य, सो अङ्गिरोभिः' इन पाँच ऋचाओं से अपान प्रदेश में न्यास करना चाहिये। 'मा नो महान्तमुत' ऋचा से दोनों ऊरुओं में एवं 'एष ते रुद्रा' ऋचा से दोनों जानुओं में न्यास करना चाहिये। 'सꣳसृष्टजित्' ऋचा से दोनों जङ्घाओं में, 'विश्वम्भूतम्मुवनं' ऋचा से दोनों गुल्फों में, 'ये पथाम्पथि' ऋचा से दोनों चरणों में, 'अध्यवोचदधिवक्ता' ऋचा से कवच में, 'नमो विल्मिने' ऋचा से उपकवच में, 'नमोऽस्तु नीलग्रीवाय' ऋचा से दोनों नेत्रों में एवं 'प्रमुञ्च धन्वन' ऋचा से तृतीय नेत्र में न्यास करना चाहिये। इस प्रकार छब्बीस अङ्गों में प्रथम न्यास कहा गया है। इस प्रथम न्यास को करने के पश्चात् 'य एतावन्त' ऋचा

से दिग्बन्धन करना चाहिये। 'परातावन्तश्च' इस ऋचा से साधक को समस्त मन्त्रों को पढ़ने का अधिकार प्राप्त होता है। इस न्यास को करने वाला व्यक्ति अग्नि से भी नष्ट नहीं होता।।२७-५१।।

तारो नमो भगवते रुद्रायेति दशाक्षरः।
मन्त्रः प्रोक्तोऽनेन कुर्यान्न्यासान्ते तु नमस्कृतिम् ।।५२।।
पश्चादस्यैव मन्त्रस्य वर्णन्यासं समाचरेत्।
मस्तके नसि भाले च मुखे कण्ठे तथा हृदि ।।५३।।
दक्षहस्ते वामहस्ते नाभौ पादद्वये तथा ।।५४।।
सर्वमन्त्राधिकारी स्यान्न्यासेऽस्मिंस्तु द्वितीयके।

'ॐ नमो भगवते रुद्राय' यह दशाक्षर मन्त्र कहा गया है। इस मन्त्र से न्यास करने के उपरान्त देवता को प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर इसी दशाक्षर मन्त्र से इस प्रकार वर्णन्यास करना चाहिये—ॐ नमः मस्तके, नं नमः नासिकायाम्, मों नमः भाले, भं नमः मुखे, गं नमः कण्ठे, वं नमः हृदये, तें नमः दक्षहस्ते, रुं नमः वामहस्ते, द्रां नमः नाभौ, यं नमः पादयोः। इस द्वितीय न्यास को सम्प्न करने के पश्चात् साधक समस्त मन्त्रों का अधिकारी हो जाता है।।५२-५४।।

अथ न्यासस्तृतीयोऽपि प्रोच्यतेऽत्र शृणुष्व तम् ।।५५।।
पदोर्हृदि मुखे मूर्ध्नि सद्योजातादिका ऋचः।
न्यास्या न्यासे तृतीयेऽस्मिञ्शैवं तेजः समाविशेत् ।।५६।।
हंसः सोहमिति ब्रूयाद्भावयेच्च तथा धिया।
ततोऽष्टदिक्षु दिक्पालांस्तत्तन्मन्त्रेण विन्यसेत् ।।५७।।
त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रꣳ हवे हवे सुहवꣳ शूरमिन्द्रम्।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रꣳ स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ।।५८।।
त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडोऽवयासिसीष्ठाः।
यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्रमुमुग्ध्यस्मत् ।।५९।।
सुगं नः पन्थामभयं कृणोतु यस्मिन्नक्षत्रे यम एति राजा।
तस्मिन्नेनमभ्यषिञ्चन्त देवास्ते तदस्या चित्रꣳ हविषा यजामः ।।६०।।
असुन्वन्तमयजमानमिच्छस्तेन नस्येत्यामन्विहि तस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छसात इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु ।।६१।।
तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳ समान आयुः प्रमोषीः ।।६२।।

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरꣳ सहस्रिणीभिरुपयाहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६३॥
वयꣳ सोमव्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः प्रजावन्तः सचेमहि ॥६४॥
तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पर्तिधियं जिन्वमसेहूमहेवयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधेक्षितापायुरदब्धः स्वस्तये ॥६५॥
अस्मे रुद्रा मेहना पर्व्वतासो वृग्रहत्येभर हूतौसजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि वज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्मा अवन्तु देवाः ॥६६॥
अनेन च नमस्कुर्य्यादूर्ध्वं चाथो धरातले ।
धरामन्त्रेण कुर्य्याच्च स एवं पापवर्जितः ।
स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।
यच्छा नः शर्म्म सप्रथः अवनिशोः शुचदस्वम् ॥६७॥
न्यासवन्त समीक्ष्येह प्रेतचौराद्युपद्रवाः ।
दीप्यमानमशक्तास्ते पलायन्ते विदूरतः ॥६८॥

अब यहाँ तृतीय न्यास को कहा जा रहा है, उसको सुनो। 'सद्योजातं प्रपद्यामि' आदि ऋचाओं का दोनों पैर, हृदय, मुख एवं मूर्धा में न्यास करना चाहिये। इस तृतीय न्यास के करने से साधक के शरीर में शैव तेज का प्रवेश होता है। इसके बाद 'हंसः सोऽहम्' का उच्चारण करते हुये मन में यह भावना करनी चाहिये कि 'जो वह है, वही मैं हूँ'। तत्पश्चात् आठो दिशाओं में उनके मन्त्रों से दिक्पालों का न्यास करना चाहिये। इस क्रम में 'त्रातारमिन्द्र' आदि ऋचा से पूर्व में इन्द्र का, 'त्वन्नो अग्ने' आदि ऋचा से अग्निकोण में अग्नि का, 'सुगं नः पन्था' आदि ऋचा से दक्षिण में यम का, 'असुन्वन्तमयज' आदि ऋचा से नैर्ऋत्य कोण में निर्ऋति का, 'तत्त्वा यामि ब्रह्मणा' आदि ऋचा से पश्चिम में वरुण का, 'आ नो नियुद्भिः' आदि ऋचा से वायव्य कोण में वायु का, 'वयꣳ सोमव्रते' आदि ऋचा से उत्तर में सोम का एवं 'तमीशानं जगतः' आदि ऋचा से ईशानकोण में ईशान का क्रमशः न्यास करना चाहिये। साथ ही मूलोक्त 'अस्मे रुद्रा मेहना' आदि ऋचा से ऊपर अन्तरिक्ष को तथा धरामन्त्र से नीचे पृथिवी को प्रणाम करना चाहिये। ऐसा करने से साधक समस्त पापों से रहित हो जाता है। उक्त प्रकार से न्यास करने वाले साधक द्वारा अपने चारो ओर 'स्योना पृथिवि' मन्त्र का उच्चारण करते हुये दृष्टिपात करने पर धरा पर प्रकाशमान प्रेत, चौरादि उपद्रवी तत्त्व सर्वथा अशक्त होकर अत्यधिक दूर भाग जाते हैं।।५५-६८।।

मनोज्योतिर्न्यसेद्गुह्ये ह्यबोध्यग्निस्तथोदरे ।
मूर्धानं हृदये न्यस्य मुखे मर्म्माणि ते तथा ॥६९॥

मनोज्योतिर्जुषतामाज्यं विच्छिन्नं यज्ञꣳ समिमन्दधातु ।
या द्रष्टा उषसो निम्रुचस्ताः सन्दधामि हविषा घृतेन ॥७०॥
अबोध्यग्निः समिधा जनानाम्प्रतिधेनुमिवायतीमुषासम् ।
यह्वा इव प्रवयामुज्जिहानाः प्रभानवः सिषनेनाकमच्छ ॥७१॥
मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविꣳ सम्राजमतिथिं जनानामासन्नापात्रं जनयन्ति देवाः ॥७२॥
मर्म्माणि ते वर्म्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानुवस्ताम् ।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तन्त्वा नु देवा मदन्तु ॥७३॥
जातवेदास्तच्छिरसि न्यासः प्रोक्तश्चतुर्थकः ॥७४॥
जातवेदा यदि वा पावकोऽसि वैश्वानरो यदि वा वैद्युतोऽसि ।
शं प्रजाभ्यो यजमानाय लोकम् ऊर्जम्पुष्टिं दददभ्यावकृत्स्वः ॥७५॥
हृदये शिवङ्कल्पं शिरः पुरुषसूक्तकम् ।
शिखाद्भ्यः सम्भृत इति वर्म्म प्रतिरथं मतम् ॥७६॥
अद्भ्यः सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्म्मणः समवर्त्तताग्रे ।
तस्य त्वष्टा विदधद्रूपमेति तत्पुरुषस्य विश्वमाजानमग्रे ॥७७॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विद्वानमृत इह भवति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥७८॥
प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते ।
तस्य धीराः परिजानन्ति योनिं मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥७९॥
यो देवेभ्य आतपति यो देवानां पुरोहितः ।
पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥८०॥
रुचं ब्राह्मञ्जनयन्तो देवा अग्रे तदब्रुवन् ।
यस्त्वेवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवा असन्वशे ॥८१॥
श्रीश्च ते लक्ष्मीश्च पत्न्यावहोरात्रे
पार्श्वे नक्षत्राणि रूपमश्विनौ व्यात्तम् ।
इष्णन्निषाणामुं म इषाण सर्वलोकं म इषाण ॥८२॥
शतरुद्रियमस्त्रं स्यादथ पञ्चाङ्गमुच्यते ।

'मनोज्योति' ऋचा से गुह्य में, 'अबोध्यग्निः समिधा' ऋचा से उदर में, 'मूर्धानं दिवो' ऋचा से हृदय में, 'मर्म्माणि ते' ऋचा से मुख में एवं 'जातवेदाः' ऋचा से शिर पर न्यास करना चाहिये। यही चतुर्थ न्यास कहा गया है।

एक मत यह भी है कि शिवसङ्कल्प सूक्त से हृदय में, पुरुषसूक्त से शिर में, 'अद्भ्यः सम्भृतं' से शिखा में एवं 'वेदाहमेतं' से लेकर 'सर्वलोकं म इषाण' इस प्रतिरथ सूक्त से कवच में न्यास करना चाहिये। तत्पश्चात् शतरुद्रिय मन्त्र से अस्त्रन्यास करना चाहिये। अब पञ्चाङ्गन्यास को कहते हैं।।६९-८२।।

न्यासस्तु पञ्चमः प्रोक्तोऽयं सर्वाभीष्टसाधकः ॥८३॥
त्वमग्ने रुद्रो असुसे महो दिवस्त्वꣳ सर्धो मारुतं यक्ष ईशिषे।
त्वं वातैररुणैर्यासि शं गयस्त्वं पूषापि च नः पासि तु त्मना ॥८४॥
देवा देवेषु श्रयध्वं प्रथमा द्वितीयेषु।
श्रयध्वं द्वितीयास्तृतीयेषु श्रयध्वं तृतीयाश्चतुर्थेषु ॥८५॥
श्रयध्वं चतुर्थाः पञ्चमेषु श्रयध्वं पञ्चमाः पष्ठेषु।
श्रयध्वं षष्ठाः सप्तमेषु श्रयध्वं सप्तमा अष्टमेषु ॥८६॥
श्रयध्वं अष्टमा नवमेषु श्रयध्वं नवमा दशमेषु।
श्रयध्वं दशमा एकादशेषु श्रयध्वं एकादशा द्वादशेषु ॥८७॥
श्रयध्वं द्वादशास्त्रयोदशेषु श्रयध्वं चतुर्दशाः पञ्चदशेषु।
श्रयध्वं पञ्चदशाः षोडशेषु श्रयध्वं षोडशाः सप्तदशेषु ॥८८॥
श्रयध्वं सप्तदशा अष्टादशेषु श्रयध्वं अष्टादशा एकोनविꣳशेषु।
श्रयध्वं एकोनविꣳशा विꣳशेषु एकविꣳशेषु ॥८९॥
श्रयध्वं एकविꣳशा द्वाविꣳशेषु श्रयध्वं द्वाविꣳशास्त्रयोविꣳशेषु।
श्रयध्वं त्रयोविꣳशाश्चतुर्विꣳशेषु श्रयध्वं चतुर्विꣳशाः पञ्चविꣳशेषु ॥९०॥
श्रयध्वं पञ्चविꣳशाः षड्विꣳशेषु श्रयध्वं षड्विꣳशाः सप्तविꣳशेषु।
श्रयध्वं सप्तविꣳशा अष्टविꣳशेषु श्रयध्वम् अष्टाविꣳशा एकोनत्रिꣳशेषु ॥९१॥
श्रयध्वं एकोनत्रिꣳशास्त्रिꣳशेषु श्रयध्वं त्रिꣳशा एकत्रिꣳशेषु।
श्रयध्वं एकत्रिꣳशा द्वात्रिꣳशेषु श्रयध्वं द्वात्रिꣳशास्त्रयस्त्रिꣳशेषु ॥९२॥
श्रयध्वं देवास्त्रिरेकादशास्त्रिस्त्रयस्त्रिꣳशा उत्तरे भवन्तु।
उत्तरवर्त्मान उत्तरसत्त्वानः।
यत्काम इदं जुहोमि तन्मे समृध्यतां
वयस्याम पतयोरयीणां भूर्भुवःस्वःस्वाहा ॥९३॥
पञ्चाङ्गन्यासमेवन्तु कृत्वाष्टाङ्गं नमेच्छिवम्।
जपं निवेद्य रुद्रायोपतिष्ठेत्ततः पुनः ॥९४॥

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९५॥
प्राणतो निमिषतो महित्वैक इन्द्रो राजा जगतो बभूव।
यद्वशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥९६॥
ब्रह्मजज्ञानम्प्रथमम्पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आ वः।
सबुध्निया उपमा अस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च विवः ॥९७॥
मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षतां पिपृतां नो भरीमभिः ॥९८॥
उपश्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्।
स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्दवीयो अपसेध शत्रून् ॥९९॥
अग्ने नय सुपथा राये अस्माद्विश्वानि देववयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥१००॥
या ते अग्ने यज्ञिया तनूस्तयेह्यारोहात्मानम्।
अष्टावसूनि कृण्वन्नस्मै नर्या पुरूणि
यज्ञो भूत्वा यज्ञमासीद स्वयोने ॥१०१॥
जातवेदा भुव आ जायमानो यथा च स्वाहाग्नये घृतवद्भिस्तु हव्यैः।
तेभिर्नो अग्ने अमितैरहोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्निपाहि ॥१०२॥
इमं यमप्रस्तरमाहि सीदाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदा नः।
आत्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन्हविषा मादयस्व ॥१०३॥
इत्युपस्थाय देवन्तु देवयोगं समाचरेत्।

यह पाँचवाँ न्यास समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला कहा गया है। मूलोक्त 'त्वमग्ने रुद्रो' से आरम्भ कर 'पतयोरयीणां भूर्भुवःस्वः स्वाहा' पर्यन्त दस ऋचाओं से पञ्चाङ्ग न्यास करना चाहिये। विहित रूप से पञ्चाङ्ग न्यास करने के उपरान्त शिव को अष्टाङ्ग प्रणाम करना चाहिये। तदनन्तर रुद्र के लिये जप समर्पित करके वहीं पर बैठकर पुनः 'हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे' से आरम्भ कर 'राजन्हविषा मादयस्व' पर्यन्त ऋचाओं से देवता का उपस्थान करने के पश्चात् देवता से स्वयं को इस प्रकार संयुक्त करना चाहिये।।८३-१०३।।

तिष्ठत्वीशो नासिकायां चन्द्रादित्यौ च नेत्रयोः ॥१०४॥
कर्णयोरश्विनौ चापि रुद्रास्तिष्ठन्तु मेढ्रके।
तिष्ठन्तु मूर्ध्नि चादित्या महादेवः शिरोगतः ॥१०५॥

शिखायां वासुदेवश्च पिनाकी चापि पृष्ठके ।
पुरस्तिष्ठतु शैली च पार्श्वयोः शिवशङ्करौ ॥१०६॥
सर्वतश्चापि वायुश्च सर्वतश्च ततो बहिः ।
अग्निज्वालामालिकाश्च तिष्ठन्तु बहुशो मम ॥१०७॥
सर्वेष्वङ्गेषु सर्वे च तिष्ठन्तु मम देवताः ।
तिष्ठन्तु मामिति प्रोच्य प्रपञ्चं मनसा हुनेत् ॥१०८॥
अग्निर्मे वाचि श्रितः वाग्घृदये हृदयं मयि अहममृते अमृते ब्रह्मणि ॥१०९॥
वायुर्मे प्राणे श्रितः प्राणो हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११०॥
सूर्य्यो मे चक्षुषि श्रितः चक्षुर्हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥१११॥
चन्द्रमा मे मनसि श्रितः मनो हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११२॥
दिशो मे श्रोत्रे श्रिताः श्रोत्र(हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११३॥
आपो मे रेतसि श्रिताः रेतो हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११४॥
पृथिवी मे शरीरे श्रिता शरीरँ हृदये
हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११५॥
ओषधिवनस्पतयो मे लोमसु श्रिताः लोमानि
हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११६॥
इन्द्रो मे बले श्रितः बलँ हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११७॥
पर्जन्यो मे मूर्ध्नि श्रितः मूर्द्धा हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११८॥
ईशानो मे मन्यौ श्रितः मन्युर्हृदये हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥११९॥
आत्मा म आत्मनि श्रितः आत्मा हृदये
हृदयं मयि अहममृते अमृतं ब्रह्मणि ॥१२०॥
पुनर्म आत्मा पुनरायुगात् पुनः प्राणः पुनराकूतमागात् ।
वैश्वानरो रश्मिभिर्वावृधानः अन्तस्तिष्ठत्वमृतस्य गोपाः ॥१२१॥
न्यासानेवं विधायाथ ध्यायेदात्मानमीश्वरम् ।
पार्थिवोक्तप्रकारेण लिङ्गपूजां ततश्चरेत् ॥१२२॥

ईश मेरी नासिका में, चन्द्र एवं सूर्य मेरे दोनों नेत्रों में, अश्विनीकुमार मेरे दोनों कानों में, एकादश रुद्र मेरे मेढ्र (लिङ्ग) में, द्वादश आदित्य मेरे मूर्धा में, महादेव मेरे शिर में, वासुदेव मेरी शिखा में, पिनाकी मेरे पृष्ठदेश में, शैली मेरे सामने, शिव एवं शङ्कर मेरे दोनों ओर, वायु मेरे चारो ओर और उसके बाहर अनेकानेक अग्नियों की ज्वालायें विद्यमान रहें। मेरे समस्त अङ्गों में समस्त देवता विद्यमान रहें। इस प्रकार

देवता को स्वयं से युक्त करने के वाद मूलोक्त 'अग्निर्मे वाचि' से लेकर 'अन्तस्तिष्ठत्वमृतस्य गोपा:' पर्यन्त ऋचाओं के द्वारा वाक्प्रपञ्च का मन से हवन करना चाहिये।

इस प्रकार न्यासों को सम्पन्न करके स्वयं को ईश्वररूप बनाकर यथाविहित रीति से पार्थिव लिङ्ग का पूजन करना चाहिये।।१०४-१२२।।

आराधितो मनुष्यैस्त्वं सिद्धैर्देवासुरादिभिः।
आराधयामि भक्त्या त्वां मां गृहाण महेश्वर ॥१२३॥
आ त्वा वहन्तु हरयः सतेजसः श्वेतैरश्वैरहरहः केतुमद्भिः।
वाता जलैर्बलवद्भिर्मनोजवैर्माम्पाहि शीघ्रम्मम हव्याय शर्व ॥१२४॥
एतत्ते रुद्रा वसन्तेन परोमूजवतोतीहि।
अवततधन्वोपिनाकाव सः कृत्तिवासा अहिꣳ सन्नः शिवोती हि ॥१२५॥
चत्वारि शृङ्गास्त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥१२६॥
प्रसन्नो भव देवेश सुमुखो भव शङ्कर।
शान्तो भवस्व चात्र त्वं मम चाभिमुखो भव ॥१२७॥
स्वामिन्सर्वजगन्नाथ यावत्पूजावसानकम्।
तावत्त्वं प्रीतिभावेन लिङ्गेऽस्मिन्सन्निधो भव ॥१२८॥
अभिषेकं ततः कुर्य्यादमृतैः पञ्चभिः क्रमात्।
पश्चाच्छुद्धोदकेनाथ ततः पूजनमारभेत् ॥१२९॥

हे महेश्वर! आप सिद्धों, देवों, असुरों एवं मनुष्यों द्वारा आराधित हैं; मैं आपकी भक्तिपूर्वक आराधना कर रहा हूँ, आप मुझे अपनी शरण में ले लें। इस प्रकार प्रार्थना करते हुये मूलोक्त 'आ त्वा वहन्तु' से लेकर 'मर्त्यां आविवेश' पर्यन्त तीन ऋचाओं से उनकी स्तुति करने के पश्चात् इस प्रकार निवेदन करना चाहिये—हे देवेश! आप प्रसन्न हों, आप शोभन मुख वाले हों, आप यहाँ पर शान्तभाव से अवस्थित हों, आप मेरे सम्मुख प्रकट हों। हे समस्त संसार के स्वामिन्! जब तक आपकी पूजा समाप्त न हो जाय, तबतक आप प्रसन्नता-पूर्वक इस लिङ्ग में विराजमान हों।

इसके पश्चात् उस पार्थिव लिङ्ग पर पञ्चामृत (दूध, दधि, घृत, मधु एवं शक्कर) से क्रमशः अभिषेक करने के उपरान्त पुनः शुद्ध जल से अभिषेक करके पूजन का आरम्भ करना चाहिये।।१२३-१२९।।

रौद्रीन्धारान्ततः कुर्य्यात्प्रोच्यते तद्विधानकम्।
नमस्ते रुद्राग्नाविष्णू इत्यध्यायद्वयेन च ॥१३०॥

आवर्त्तनमिति प्रोक्तं गङ्गास्नानफलप्रदम्।
आवर्त्तनाभिषेकं तु यः कुर्य्यात्प्रत्यहं नरः ॥१३१॥
तस्यैव दिनजं पापं दैवजं नाशमाप्नुयात्।
सन्ध्यावन्दनतः क्षीणं तच्चेत्प्राग्जन्मजम्भवेत् ॥१३२॥

इसके बाद रुद्र-सम्बन्धिनी धारा प्रदान करनी चाहिये; उसके विधान को यहाँ कहा जा रहा है। 'नमस्ते रुद्राग्नाविष्णू' इन दो अध्यायों के आर्वतन करने से गंगा-स्नान का फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य प्रतिदिन उक्त दो अध्यायों के आवर्तन के द्वारा पार्थिव लिङ्ग का अभिषेक करता है, उसके दिनज एवं दैवज पाप विनष्ट हो जाते हैं। पूर्वजन्म के पाप सन्ध्यावन्दन करने से नष्ट हो जाते हैं।।१३०-१३२।।

एकः पाठो नमस्ते च अनुवाकः परस्य च।
एकम्भवाय नस्तत्स्युः आ ना विष्णुस्तथैककम् ॥१३३॥
इदं रुद्रियमाख्यातं रौद्रपापनिकृन्तनम्।

'नमस्ते' इस नमकाध्याय का एक पाठ, दूसरे का अनुवाक पाठ, 'एकम्भवाय नस्तत्स्युः' एवं 'आ ना विष्णुः' इन दोनों का एक-एक पाठ मिलाकर रुद्रियपाठ कहा जाता है। यह रुद्रिय पाठ अत्यन्त भयंकर पापों का भी विनाश करने वाला कहा गया है।।१३३।।

शतरुद्रीयस्तोत्रेणाभिषेके फलानि

अनेन प्रत्यहं यस्तु कुर्य्याल्लिङ्गाभिषेचनम् ॥१३४॥
जन्मजन्मकृतं पापं वर्षे वर्षे प्रणश्यति।
सप्तजन्मकृते पापे नष्टे लक्ष्मीर्विवर्धते ॥१३५॥
वंशश्च स्थिरतामेति यशो याति दिगन्तरम्।
सूते चास्य यथारूपं तथा तोये प्रदृश्यते ॥१३६॥
रुद्रीभिरेकादशभिराद्यो रुद्रः प्रकीर्त्तितः।
अनेन सिक्तं यैर्लिङ्गन्ते न पश्यन्ति भास्करिम् ॥१३७॥
एकादशभिरेतैस्तु महारुद्रः प्रकीर्त्तितः।
धनप्रदोऽधनानाञ्च महापातकनाशनः ॥१३८॥
अनेन विहितो होमः सोमयागफलप्रदः।
यो नाधिकारी दीक्षायान्तस्य पापक्षयङ्करः ॥१३९॥

शतरुद्रिय से अभिषेक का फल—इस शतरुद्रिय से जो प्रतिदिन लिङ्ग का

अभिषेक करता है, उसके एक-एक जन्म में किये गये पापों का विनाश एक-एक वर्ष में हो जाता है। इस प्रकार सात जन्मों के पापों का नाश हो जाने पर उसके घर में लक्ष्मी की वृद्धि होती है, उसका वंश स्थिर हो जाता है और कीर्त्ति दशो दिशाओं में व्याप्त हो जाती है। साथ ही उसके प्रतिविम्ब के समान ही उसका पुत्र उत्पन्न होता है।

एकादश रुद्रीपाठ को एक रुद्र कहा गया है। एकादश रुद्रीपाठ से अभिषेक करने वाला सूर्य की किरणों का दर्शन नहीं करता अर्थात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता। ऐसे एकादश रुद्रीपाठ को अर्थात् ११×११=१२१ रुद्रीपाठ को महारुद्र कहते हैं। यह निर्धनों को धन प्रदान करने वाला एवं महान् पातकों का विनाश करने वाला होता है। इससे हवन करने पर सोमयाग का फल प्राप्त होता है। जो दीक्षा का अधिकारी नहीं होता, उसके पापों का भी यह नाश करने वाला होता है।।१३४-१३९।।

एकादशमहारुद्रैरतिरुद्रः प्रकीर्त्तितः।
अतिपापहरोऽयं स्याद् दृष्टन्यायेन निष्कृतिः ॥१४०॥
विश्वासघातनं स्वामिद्रोहोऽन्यायेन दण्डनम्।
कृतघ्नता च सामर्थ्ये शरणागतनाशनम् ॥१४१॥
अतिपापानि पञ्चेति शप्ते देशे तपस्तथा।
अकर्म्मणि कृते यत्तदतिरुद्रो विनाशयेत् ॥१४२॥

एकादश महारुद्र पाठ अर्थात् १२१×११=१३३१ को अतिरुद्र कहा गया है। यह अतिपाप का हरण करने वाला होता है एवं इसके दृष्टिमात्र से ही अतिपापों से छुटकारा मिल जाता है। विश्वासघात, स्वामिद्रोह, अन्याय से दण्डित करना, कृतघ्नता एवं समर्थ होने पर भी शरणागतों की रक्षा न करना—ये पाँच अतिपाप कहे गये हैं। अभिशप्त देश में तप करने एवं न करने योग्य कर्म को करने से जो पाप लगता है, उस पाप का भी अतिरुद्र से विनाश हो जाता है।।१४०-१४२।।

शाखायां यस्य तु यथा स्वाध्यायौ पठितावुभौ।
पठनीयौ तथा तेन शाखाखण्डं न कारयेत् ॥१४३॥
न रुद्रो यस्य शाखायान्तैत्तिरीयं पठेत्स तु।
शाखा तु यजमानस्य ब्राह्मणद्वारतः कृता ॥१४४॥
अथवा तैत्तिरीयाणां नान्यशाखा प्रपूज्यते।
शाखामिश्रं कृतं कर्म्म यजमानं विनाशयेत् ॥१४५॥

जिसकी जो शाखा हो, उसी के अनुसार पाठ करना चाहिये। शाखा को खण्डित नहीं करना चाहिये। जिसकी शाखा में कोई रुद्रपाठ न हो, उसे तैत्तरीय शाखा का पाठ

करना चाहिये। यजमानों की शाखा ब्राह्मणों के द्वारा बनाई गई होती है। तैत्तरीय शाखा वालों को दूसरी शाखा के अनुसार पाठ नहीं करना चाहिये। शाखा के मिश्रण करने से यजमान का विनाश होता है।।१४३-१४५।।

धनलोभात्परार्थं यो माभिषिञ्चति मूढधीः।
स तु चाण्डालवज्ज्ञेयो निर्धनस्सप्तजन्मसु ।।१४६।।
कुटुम्बिना तु यत्नेन धनार्थम्मम पूजनम्।
कृतं चेज्जपदानाभ्यां तद्रुद्रांशोऽस्य निष्कृतिः ।।१४७।।
काको ब्रह्मस्वभोक्ता स्याच्छिवस्वाशी तु कुक्कुटः।
देव्यन्नभोक्ता प्लवगो मूषको विष्णुवित्तभुक् ।।१४८।।
चण्डीचण्डीशनिर्माल्यं तथा वैनायकं द्विजाः।
प्रसादं न च गृह्णन्ति स्वयन्दत्तादृते क्वचित् ।।१४९।।
न सत्कृतं त्वविधिना यैर्वित्तेनान्यजन्मनि।
भूत्वा मे पूजकास्ते तु सुखं कुर्वन्त्यनुत्तमम् ।।१५०।।
रुद्रो न यस्य शाखायां परिशिष्टान्वितं स तु।
पठेद्रुद्रं तैत्तिरीयं लुप्तशाखस्तमेव हि ।।१५१।।

धन के लोभ से दूसरों के लिये जो मेरा अभिषेक करता है, वह मूर्ख चाण्डाल के समान हो जाता है और सात जन्मों तक निर्धन रहता है। जो धन-प्राप्ति के लिये कुटुम्बियों के साथ यत्न-पूर्वक मेरा पूजन करता है, उसके जप एवं दान से इस रुद्रांश से छुटकारा मिल जाता है।

ब्रह्मस्व को भक्षण करने वाला काक (कौआ), शिवस्व को भक्षण करने वाला कुक्कुट (मुर्गा), देव्यन्न को भक्षण करने वाला बन्दर एवं विष्णु के अंश को भक्षण करने वाला मूषक होता है।

द्विजगण चण्डी एवं चण्डीश के निर्माल्य तथा गणेश के प्रसाद को स्वयं ग्रहण नहीं करते; लेकिन कहीं-कहीं प्रदान करने पर आदरपूर्वक ग्रहण कर लेते हैं। जो धन द्वारा विधिपूर्वक मेरा पूजन करते हैं, वे दूसरे जन्म में मेरे पूजक होकर सर्वोत्कृष्ट सुख को प्राप्त करते हैं।

जिनकी शाखा में रुद्रीपाठ नहीं होता, उन्हें परिशिष्टान्वित तैत्तिरीय शाखा का पाठ करना चाहिये। जिनकी शाखा का लोप हो गया हो, उन्हें भी तैत्तरीय शाखा का पाठ करना चाहिये।।१४६-१५१।।

मन्त्रप्रयोगसहितो रुद्राध्यायोऽथ वक्ष्यते।
असंस्कृताय नो वाच्यं तान्त्रिकाय कदाचन ॥१५२॥
ॐ नमस्ते रुद्रमन्यव उतोत इषवे नमः।
नमस्ते अस्तु धन्वने बाहुभ्यामुत ते नमः ॥१५३॥
या त इषुः शिवतमा शिवम्बभूव ते धनुः।
शिवा शरख्या या तव तया नो रुद्र मृडय ॥१५४॥
या ते रुद्रशिवा तनूरघोरा पापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥१५५॥
यामिषुं गिरिशन्तहस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु माहिंꣳसीः पुरुषं जगत् ॥१५६॥
शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छावदामसि।
लक्षमेकं प्रजुहुयाद् गोघृतं योऽत्र सुप्रभम् ॥१५७॥
माध्वीकं मधुकं क्षौद्रं तिलाँश्च दधिसंयुतान्।
यत्किञ्चित्कार्यमुद्दिश्य तस्य सिद्धिः प्रजायते ॥१५८॥
एवमेव सहस्त्रं चेदेकादशदिनं हुनेत्।
बालानां मारका ग्रामे नश्यन्त्येव न संशयः ॥१५९॥
कुमारमारकश्चैव द्वादशाहेन नश्यति।
होमः पञ्चदशाहन्तु राज्योपद्रवनाशनः ॥१६०॥
होमाद्विंशतिरात्रेण देशोपद्रवनाशनम्।
पृथिव्युपद्रवो नश्येन्मासमात्रेण होमतः ॥१६१॥
गवामुपद्रवे जाते गोष्ठमध्ये तदा हुनेत्।
वैकङ्कतसमिद्भिश्चायुतं शान्तिः प्रजायते।
अयुतं रुद्रहोमेन महाशान्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥१६२॥

मन्त्रप्रयोग-सहित रुद्राध्याय—अब मन्त्रप्रयोग के सहित रुद्राध्याय का कथन किया जा रहा है; इसे कभी भी संस्कारविहीन तान्त्रिकों के समक्ष प्रकट नहीं करना चाहिये।

जो व्यक्ति किसी भी कार्य को उद्देश्य बनाकर 'ॐ नमस्ते.........त्वा गिरिशाच्छावदामसि' के द्वारा गाय के घी में महुआ, माध्वीक, मधु, तिल और दधि मिलाकर प्रात:काल एक लाख हवन करता है, उसका वह कार्य सिद्ध हो जाता है। इसी प्रकार ग्यारह दिनों तक प्रतिदिन एक हजार हवन करने से ग्राम में शिशुओं के मारकों

(अनिष्टकारी रोगों) का निश्चित रूप से विनाश हो जाता है। बारह दिन के हवन से कुमारों का मारक नष्ट हो जाता है। पन्द्रह दिनों तक हवन करने से राज्य का उपद्रव समाप्त हो जाता है। बीस रातों तक हवन करने से देश का उपद्रव शान्त हो जाता है एवं तीस दिनों तक हवन करने से समस्त पृथिवी उपद्रवों से रहित हो जाती है। गायों में उपद्रव होने पर गोशाला के मध्य में वैकंकत की समिधा से दस हजार हवन करने से शान्ति हो जाती है। रुद्रीय के द्वारा दस हजार हवन करने से निश्चित रूप से सर्वविध महाशान्ति होती है।।१५२-१६२।।

यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना असत्।
जपेदयुतसंख्याकं शापमोक्षः प्रजायते।
शिशिरे तु जले प्रातर्लक्षञ्जप्त्वा सुखी भवेत् ॥१६३॥

'यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मं सुमना असत्' का दस हजार जप करने से शाप का विमोचन होता है। शिशिर ऋतु में प्रातःकाल जल में खड़े होकर एक लाख जप करने से साधक सुखी होता है।।१६३।।

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्।
अहींश्च सर्वाञ्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यो धराचीः परासुव ॥१६४॥
लक्षमेकं पुरश्चर्य्या होमः स्याद्घृतसर्षपैः।
व्याधीनां नाशनं चेत्थं प्रयोगान्तरमुच्यते ॥१६५॥
सप्ताभिमन्त्रितान् कृत्वा सर्षपानातुरस्य च।
चतुर्दिक्षु क्षिपेद्रक्षा दशदिग्भ्यः प्रजायते ॥१६६॥
सप्ताभिमन्त्रितान् कृत्वा पथि गच्छँस्तु सर्षपान्।
दशदिक्षु क्षिपेन्नित्यं पथि क्षेमं प्रजायते ॥१६७॥
ब्रह्मराक्षसयक्षाद्यैः पिशाचप्रेतभूतकैः।
आविष्टः सर्षपैस्ताड्यः सप्तवाराभिमन्त्रितैः ॥१६८॥
पुनः पुनर्मन्त्रपाठं पूर्वं कृत्वा धनार्थिनः।
धनं गृहीत्वा गच्छन्ति करे चन्दनमेव हि ॥१६९॥

'अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक्। अहींश्च सर्वाञ्जम्भयत्सर्वाश्च यातुधान्यो धराचीः परासुव।' इस मन्त्र का एक लाख जप करने से इसका पुरश्चरण सम्पन्न होता है। इस मन्त्र से घृत एवं सरसो से हंवन करने पर समस्त व्याधियों का नाश हो जाता हैं। अब इसके दूसरे प्रयोग कहे जा रहे हैं। इस मन्त्र का सात बार पाठ करके सरसों को अभिमन्त्रित कर उसे पीड़ित व्यक्ति के चारो ओर विखेर देने से दशो दिशाओं में

उसकी रक्षा होती है। इस मन्त्र के सात पाठ से अभिमन्त्रित सरसों को पथिक के दशों दिशाओं में विखेर देने से मार्ग में पथिक का कल्याण होता है। ब्रह्मराक्षस, यक्ष, पिशाच, प्रेत, भूत से आविष्ट व्यक्ति को इस मन्त्र के सात पाठ से अभिमन्त्रित सरसों से ताड़ित करने पर वे सभी उससे दूर भाग जाते हैं। धनार्थी इस मन्त्र का वार-वार पाठ करके धन प्राप्त करता है और हाथ में चन्दन के समान उस धन को लेकर घर जाता है।।१६४-१६९।।

शिखामाक्रम्य च जपेत्ताडयेद् गौरसर्षपैः।
रात्रिं समस्तां स्कन्दादिग्रहपीडा विनश्यति ॥१७०॥
अनेन मन्त्रयित्वा तु दद्याच्छास्त्रोक्तमौषधम्।
तत्कालं तद्गुणो यः स्यादन्यथा तु यथा तिथिः ॥१७१॥
अभिमन्त्र्य जलं दद्यात् सर्वसत्त्वभवां रुजम्।
हरेत् सविग्रहाणां च सर्षपैस्ताडनैस्तथा ॥१७२॥
सर्वभूतोद्भवां पीडां भस्मधारणतो जयेत्।
दिवसे च तथा रात्रौ त्रिशूलमभिमन्त्रयेत् ॥१७३॥
सहस्रैकं समादाय क्षिपेन्नागह्रदे तु तत्।
त्रिशूलेनास्तवेगास्ते नाशं गच्छन्ति पन्नगाः ॥१७४॥
भस्माभिमन्त्रितं कृत्वा पन्नगाक्रान्तमन्दिरे।
क्षिपेत्तत्तालशब्देन पन्नगोत्सादनं भवेत् ॥१७५॥

पीड़ित व्यक्ति की शिखा को पकड़कर उक्त मन्त्र के जप से अभिमन्त्रित सरसों से ताड़ित करने पर रात्रि में स्कन्द आदि ग्रहों के कारण होने वाली पीड़ा का विनाश हो जाता है। इस मन्त्र के द्वारा अभिमन्त्रित शास्त्रोक्त औषधि को उसकी तिथि के अनुरूप उसके गुण के अनुसार दिया जाय तो पीड़ा का निवारण हो जाता है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल रोगी को देने तथा अभिमन्त्रित सरसों से भी ताड़ित करने से सभी सत्त्वों से उत्पन्न रोग समाप्त हो जाता है। सभी भूतों से उत्पन्न पीड़ा इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म को धारण करने से नष्ट हो जाती है। इस मन्त्र से दिन और रात्रि में अभिमन्त्रित एक हजार त्रिशूल को सर्पों से भरे तालाब में डालने से उसमें रहने वाले सर्प वेगविहीन होकर विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। इस मन्त्र से भस्म को अभिमन्त्रित करके सर्पों से भरे घर में विखेर कर ताली बजाने से उस घर से सभी सर्पों का उत्सादन (विनाश) हो जाता है।।१७०-१७५।।

असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रु सुमङ्गलः।
ये चैनᳬरुद्रा अभितो दिक्षुः श्रिताः सहस्रशो वैषाᳬहेड ईमहे ॥१७६॥

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः ।
उतैनं गोपा अदृशं न दृशन्नुदहार्य्यः ।
उतैनं विश्वा भूतानि सदृष्टो मृडयाति नः ॥१७७॥
उदयास्तमयोः सूर्य्यमेताभ्यामुपतिष्ठते ।
अष्टोत्तरशतं त्र्यब्दमक्षयो विभवो भवेत् ॥१७८॥
सहस्रमभिजप्तेन क्षीरेण स्नापयेच्छिवम् ।
अब्दैकेन प्रसन्नः स्याद् घृतस्रावाच्च वर्षणम् ॥१७९॥
अतसीनान्तु पुष्पाणि हुनेदयुतसङ्ख्यया ।
अवश्यो वश्यतां याति सविता वरदो भवेत् ॥१८०॥
अर्कमूलोद्भवैर्दुग्धैराप्लुतानां तु होमयेत् ।
अयुतं चार्कसमिधां शक्तश्चेत्स जले जपेत् ॥१८१॥
होमान्ते भगवान् सूर्य्यो वृष्टिं मुञ्चति नान्यथा ।
मन्त्रद्वयं तु भजतामिष्टां सिद्धिं प्रयच्छति ॥१८२॥

'असौ यस्ताम्रो..........मृडयाति नः' मन्त्र का तीन वर्षों तक सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय एक सौ आठ बार जप करने से अक्षय ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। उपर्युक्त मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित दुग्ध से एक वर्ष तक प्रतिदिन शिवलिङ्ग को स्नान कराने से शिव प्रसन्न होते हैं एवं घृत की मूसलाधार वर्षा होती है। तीसी के फूलों से दस हजार हवन करने से सूर्य निश्चित रूप से वशीभूत होकर वर प्रदान करते हैं। अकवन की समिधा को उसके जड़ के दूध से सिक्त करके एक हजार बार हवन करने एवं जल में खड़े होकर यथाशक्ति मन्त्रजप करने से हवन के अन्त में भगवान् सूर्य वर्षा करते हैं, अन्यथा नहीं। इन दोनों मन्त्रों के जप से इष्टसिद्धि प्राप्त होती है।।१७६-१८२।।

नमो अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ।
अथो ये अस्य सत्त्वानोहन्तेभ्योऽकरन्नमः ।
स्थण्डिलस्योपकण्ठे तु कृत्वा सघृतपायसम् ॥१८३॥
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्कृष्णचतुर्दशी ।
प्रत्यहं स्थापयेत्तावत् सहस्रेणाभिमन्त्रितम् ।
निवेदयेत्तु देवाय कार्षापणसहस्रकम् ॥१८४॥
उद्यमाज्जायते लाभः सिद्धे मन्त्रे न संशयः ।
असिद्धे तु तदर्धं स्यात्सूर्यकान्तवृषाद्यपि ।
निवेदनात्पुनर्लाभो लक्षमेकं पुरस्कृतिः ॥१८५॥

होमस्तु पायसघृतैरनाख्येयः प्रयोगवान् ।

कृष्ण पक्ष की अष्टमी से आरम्भ कर कृष्णचतुर्दशी-पर्यन्त सात दिनों तक ध्रतिदिन स्थण्डिल के समीप घृत-मिश्रित पायस को 'नमो अस्तु नीलग्रीवाय............सत्त्वानोहन्ते-भ्योऽकरन्नमः' इस मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके उसे देवता के लिये प्रदान करने से मन्त्र सिद्ध होने के पश्चात् प्रयत्न करने पर असन्दिग्ध रूप से एक हजार कार्षापण (सिक्कों) की प्राप्ति होती हैं। मन्त्रसिद्धि न होने पर पाँच सौ कार्षापणों की प्राप्ति होती है। सर्वश्रेष्ठ सूर्यकान्त मणि के निवेदन से पुनः लाभ होता है। इसका पुरश्चरण एक लाख जप से होता है। पुरश्चरण सम्पन्न करने के पश्चात् पायस और घी से हवन करने पर साधक किसी भी प्रयोग को करने में समर्थ हो जाता है।।१८३-१८५।।

प्रमुञ्चधन्वनस्तमुभयो रात्योर्ज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषवः परा ता भगवो वप ॥१८६॥
अवतत्य धनुष्ट्वꣳसहस्राक्ष शतेषुधे ।
निशीर्य्य शल्यानाम्मुखा शिवो नः सुमना भव ॥१८७॥
विज्यं धनुः कपर्द्दिनो विशल्यो बाणवाँ उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥१८८॥
या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।
तयास्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिभुज ॥१८९॥
नमस्ते अस्त्वायुधायानातताय धृष्णवे ।
उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने ॥१९०॥
परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।
अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् ॥१९१॥
आयुधान्यभिमन्त्र्येमाञ्जप्त्वा पञ्चसहस्रकम् ।
बन्धयित्वा निरसयेद् गच्छेद् गच्छन्ति शत्रवः ॥१९२॥

'प्रमुञ्चधन्वनस्तमुभयो, अवतत्य, विज्यं धनुः, या ते हेति, नमस्ते अस्त्वा, परि ते धन्वनो'—इन छः मन्त्रों का पाँच हजार जप करके आयुधों को अभिमन्त्रित करके उन्हें बाँध कर रख देने से शत्रुओं का पलायन हो जाता है।।१८६-१९२।।

जुहुयादयुतं दर्भकण्टकान् द्वेषकामुकः।
गुडं मुखेन चोच्चार्य शत्रोर्नाम स्मरन् हुनेत् ॥१९३॥
जपाख्यसवनेनैव शत्रुमुत्सादयेद्धठात् ।
ध्सम्पूर्णाहं जपन्नुत्सादयेत् सङ्ग्राममेव च ॥१९४॥

उत्सादयेत्तु राजानमहोरात्रं दिनार्धके।
चतुर्भागेन वैश्यन्तु षड्भागेनैकजातिकम् ॥१९५॥
पलाशाश्वत्थबिल्वानामपामार्गस्य च क्रमात्।
विप्रादिवश्यकामस्तु दधिक्षौद्रघृतान्विताः ॥१९६॥
हुनेदयुतसङ्ख्याकाः समिधः कार्यसिद्धये।
हीनवर्णान् वशीकर्त्तुं वरुणार्ककवेतसान् ॥१९७॥
शाखोटकाँश्च जुहुयादष्टाविंशशतानि च।
सौगन्धिकानुत्पलाग्निकुमुदानि प्रयच्छति ॥१९८॥
स्वयन्तु लिङ्गे लक्षन्तु चन्दनाक्तानि भक्तितः।
राज्यभ्रष्टो भवेद्राजा षड्भिर्मन्त्रैः पृथक्-पृथक् ॥१९९॥
धनार्थी प्राप्नुयाद्वित्तं शम्भुमेवं प्रपूजयन्।

विद्वेषण के लिये इन मन्त्रों द्वारा कुशाग्रों से दस हजार हवन करना चाहिये। मुख में गुड़ रखकर शत्रु का स्मरण करते हुए हवन करने के पश्चात् यज्ञस्नान करने मात्र से ही हठात् शत्रुओं का उत्सादन (विनाश) हो जाता है। पूरे एक दिन तक जप करने से गाँव के सहित शत्रुओं का विनाश हो जाता है। डेढ़ दिन तक जप करने से राजा का विनाश हो जाता है। उसके चौथे भाग अर्थात् ९ घण्टे तक जप करने से वैश्य का और छ घण्टे तक जप करने से किसी एक जाति का विनाश हो जाता है।

इस मन्त्र के द्वारा दधि, मधु और घी से सिक्त पलाश के हवन से विप्रों का, पीपल के हवन से क्षत्रियों का, बेल के हवन से वैश्यों का और अपामार्ग (चिड़चिड़ा) के हवन से शूद्रों का वशीकरण होता है। कार्य की सिद्धि के लिये दस हजार समिधाओं से हवन करना चाहिये। हीन वर्ण वालों के वशीकरण के लिये वरुण, अकवन, वेंत एवं शाखोट (सिहोर का वृक्ष अथवा पीतवृक्ष) की समिधा से अट्ठाईस सौ बार हवन करना चाहिये।

इन छः मन्त्रों से अलग-अलग एक-एक लाख सुगन्धि वाले कमल, चित्रक एवं कुमुद को चन्दन से प्लुत करके भक्तिभाव से लिङ्ग पर स्वयं चढ़ाने से राज्य से पतित व्यक्ति पुनः अपना राज्य प्राप्त करके पूर्ववत् राजा हो जाता है। शम्भु का इसी प्रकार पूजन करते हुये धन की कामना करने वाला धन प्राप्त करता है।।१९३-१९९।।

लक्षमेकं तिलानां यः पृथग्धत्ते शिवोपरि ॥२००॥
आरोपयेत्स शत्रूणां मूर्ध्नि तिष्ठति नित्यशः।
अयुतं राजवृक्षस्य समिधो होमयेत्तु यः ॥२०१॥

रणे राजकुले द्यूते स शत्रुं त्वरितञ्जयेत्।
गुग्गुलुं षट्सहस्त्रं यो दक्षिणामूर्त्तिसन्निधौ ।।२०२।।
यत्कार्यार्थं हुनेत्तस्य सिद्धिः शीघ्रं प्रजायते।
असाध्यस्यापि सिद्धिः स्याद्धुत्वा चाष्टसहस्त्रकम् ।।२०३।।
यथा महानसे सिद्धमन्नञ्च जुहुयात्तथा।
सहस्त्राष्टकमेतस्य द्रव्यं भवति चाक्षयम् ।।२०४।।

जो व्यक्ति प्रतिदिन एक लाख तिलों को एक-एक कर अलग-अलग शिवलिङ्ग पर अर्पित करता है, वह शत्रुओं के शिर पर बैठता है। जो राजवृक्ष की समिधा से दस हजार हवन करता है, वह युद्ध में, राजकुल में और जुआ में शत्रुओं पर तत्काल विजय प्राप्त करता है। दक्षिणामूर्ति की सन्निधि में जो व्यक्ति जिस कार्य के लिये गुग्गुल से छः हजार हवन करता है, उस कार्य की सद्यः सिद्धि उसे प्राप्त हो जाती है। गुग्गुल के आठ हजार हवन से असाध्य कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं। महानस (रसोईघर) में सिद्ध अन्न से एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करने वाले के धन का कभी भी क्षय नहीं होता।।२००-२०४।।

एका ऋक् परिशिष्टस्य एतस्याग्रे प्रवक्ष्यते।
तुभ्यं लोकोपकाराय सावधानतया श्रृणु ।।२०५।।
नमस्ते अस्तु भगवन् विश्वेश्वराय महादेवाय त्र्यम्बकाय।
त्रिपुरुषाय त्रिपुरान्तकाय त्रिकालाय कालाग्निरुद्राय।
नीलकण्ठाय सर्वेश्वराय सदाशिवाय श्रीमहादेवाय नमः ।।२०६।।
अयुतं यो जपेदेतां घृताक्तैर्बिल्वपत्रकैः।
प्रतिनाम सहस्त्रं तु जुहुयाल्लोकवन्दितः ।।२०७।।
नमो हिरण्यबाहवे सेनान्ये दिशाञ्च पतये नमो नमो
वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः पशूनाम्पतये नमो नमः।
शष्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनाम्पतये नमो नमो
हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानाम्पतये नमो नमः ।।२०८।।
नमो बभ्लुशाय व्याधिनेऽन्नाऽनाम्पतये नमो
नमो भवस्य हेत्यै जगताम्पतये नमः।
नमो रुद्रायाततायिने क्षेत्राणाम्पतये नमो
नमः सूतायाहन्त्यै वनानाम्पतये नमोनमः ।।२०९।।

पुरश्चरणमेतस्य सहस्त्रं चैकमीरितम् ।
यः संग्रामगतस्तस्य कौशल्यार्थमिदञ्जपेत् ॥२१०॥
जपप्रभावाच्छस्त्रास्त्रैः सैरिभैर्नैव बाध्यते ।
सूतायाहन्त्यै पूर्वन्तु परिशिष्टं निगद्यते ॥२११॥

अब इसके बाद लोकोपकार के लिये परिशिष्ट की एक ऋचा को मैं तुमसे कहता हूँ, ध्यान देकर सुनो। जो साधक 'नमस्ते अस्तु.......श्रीमहादेवाय नमः' इस ऋचा का दस हजार जप करके घृतसिक्त बेलपत्रों से प्रत्येक नाम से एक हजार की संख्या में हवन करता है, वह समस्त लोक में पूज्य हो जाता है।

मूलोक्त 'नमो हिरण्यबाहवे' एवं 'नमो बभ्लुशाय'—इन दोनों ऋचाओं के एक हजार जप से इनका पुरश्चरण सिद्ध हो जाता है। पुरश्चरण सम्पन्न किये हुये साधक को युद्ध के लिये गये हुये व्यक्ति की कुशलता-हेतु इसका जप करना चाहिये। उस जप के प्रभाव से वह शस्त्रास्त्रों से एवं सैरिभों (भैंसों) से बाधित नहीं होता; साथ ही सारथी के मरने के पूर्व ही वह सकुशल लौट आता है।।२०५-२११।।

ललालललततायिनाम्पतये नमो नमो ननाननततायिनाम्पतये नमः ।
नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणाम्पतये नमो नमः ।
भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनाम्पतये नमो नमः ॥२१२॥
मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणाम्पतये नमो नमः ।
उच्चैर्घोषायाक्रन्द यते पतीनाम्पतये नमोनमः ॥२१३॥
कृत्स्नवीताय धावते सत्त्वानाम्पतये नमो नमः
सहमानाय निर्व्याधिन् आव्याधिनीनाम्पतये नमो नमः ।
नमो निषङ्गिणे ककुभाय स्तेनानाम्पतये नमो नमो
निषङ्गिणे इषुधिमते तस्कराणाम्पतये नमो नमः ॥२१४॥
सहस्त्रपञ्चकञ्चास्य पुरश्चरणमुच्यते ।
एतज्जप्तुर्भयं नास्ति व्याघ्रचौरादिकैर्वने ॥२१५॥

मूलोक्त 'ललाटलततायिनाम्पतये, मन्त्रिणे वाणिजाय, कृष्णवीताय धावते'—इन तीन ऋचाओं के पाँच हजार जप से इनका पुरश्चरण सिद्ध होता है। इनका जप करने वाले को वन में व्याघ्र-चोर आदि का कोई भय नहीं होता।।२१२-२१५।।

नमो वञ्चते परिवञ्चते स्तायूनाम्पतये नमो नमो
निचेरवे परिचरायारण्यानाम्पतये नमो नमः ।

सकायिभ्यो जिघाꣳसद्भ्यो मुष्णताम्पतये नमो नमो।
समिद्भ्यो नक्तञ्चरद्भ्यो विकृन्तानाम्पतये नमो नमः ॥२१६॥
उष्णीषिणे गिरिचराय कुलञ्चानाम्पतये नमो नमः
इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्च वो नमः।
नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्च वो नमः
नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भ्यश्च वो नमो नमः ॥२१७॥
सहस्राष्टकमेतस्य पुरश्चरणमुच्यते।
व्रणादेस्तीव्रपीडा या नाशकोऽस्य जपः स्मृतः ॥२१८॥

मूलोक्त 'नमो वञ्चते' एवं 'उष्णीषिणे गिरिचराय'—दो ऋचाओं के आठ हजार जप से इनका पुरश्चरण सिद्ध होता है। इनका जप करने व्रण आदि के कारण शरीर में होने वाली तीव्र पीड़ा का विनाश होता है।।२१६-२१८।।

विसृजद्भ्यो विद्ध्यद्भ्यश्च वो नमो नमः
स्वपद्भ्यो जाग्रद्भ्येश्च वो नमः।
नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्च वो नमो
नमस्तिष्ठद्भ्यो धावद्भ्यश्च वो नमो नमः ॥२१९॥
सभाभ्यः सभापतिभ्यश्च वो नमः।
अश्वेभ्यो अश्वपतिभ्यश्च वो नमः ॥२२०॥
सहस्रनवकं तावत्पुरश्चरणमस्य तु।
सेनायाश्चतुरङ्गानां शान्तये प्रजपेदिदम् ॥२२१॥

'विसृजद्भ्यो' एवं 'सभाभ्यः'—इन दो ऋचाओं के नव हजार जप से इनका पुरश्चरण कहा गया है। चतुरङ्गिणी सेना की शान्ति के लिये इन दोनों ऋचाओं का जप करना चाहिये।।२१९-२२१।।

नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नमः।
उपगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः ॥२२२॥
नमो गणेभ्यो गणपतिभ्यश्च वो नमो नमो
व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्च वो नमः।
नमो गृत्सेभ्यो गृत्सपतिभ्यश्च वो नमो नमो
विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्च वो नमः ॥२२३॥
नमो महद्भ्यः क्षुल्लकेभ्यश्च वो नमो
नमो रथिभ्यो रथपतिभ्यश्च वो नमः।

नमः सेनाभ्यः सेनानीभ्यश्च वो नमो नमः क्षतृभ्यः
संग्रहीतृभ्यश्च वो नमो नमो महद्भ्यो अर्भकेभ्यश्च वो नमः ॥२२४॥
नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्च वो नमो नमः
कुलालेभ्यः कम्मरिभ्यश्च वो नमः ।
नमः पुञ्जिष्ठेभ्यो निषादेभ्यश्च वो नमो
नम इषुकृद्भ्यो धन्वकृद्भ्यश्च वो नमः ।
नमो मृगयुभ्यः शनिभ्यश्च वो नमो
नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्च वो नमः ॥२२५॥
पुरश्चरणमेतस्य सहस्राणां तु षोडश ।
दुष्टग्रहबलिं दत्त्वा जप्त्वा चैतान्निरामयः ॥२२६॥

'नम आव्याधिनीभ्यो, नमो गणेभ्यो, नमो गृत्सेभ्यो, नमो महद्भ्यः' एवं 'नमस्तक्षभ्यो'—इन पाँच ऋचाओं के सोलह हजार जप से इनका पुरश्चरण कहा गया है। दुष्ट ग्रहों को बलि प्रदान करने के उपरान्त इन मन्त्रों के जप से व्यक्ति रोगरहित हो जाता है।।२२२-२२६।।

नमो भवाय च रुद्राय नमः शर्वाय च पशुपतये च ।
नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ।
नमः कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च ॥२२७॥
नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च
नमो गिरिशाय च शिपिविष्टाय च ।
नमो मीढुष्टमायेषुमते च नमो ह्रस्वाय च वामनाय च
नमो बृहते च वर्षीयसे च नमो वृद्धाय च सवृधे च ॥२२८॥
पुरश्चर्य्यायुतं चास्य विभवार्थं प्रयोजयेत् ।
त्रिसन्ध्यं यः पठेदेतदेवं वर्षेण भाग्यवान् ॥२२९॥

'नमो भवाय' एवं 'नमः सहस्राक्षाय' इन दो ऋचाओं के दस हजार जप से इनका पुरश्चरण कहा गया है। वैभव-प्राप्ति के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये। जो साधक तीनों सन्ध्याओं में इनका पाठ करता है, वह एक वर्ष के भीतर भाग्यवान हो जाता है।

नमो अग्रेयाय च प्रथमाय च नम आशवे चाजिराय च ।
नमः शीघ्र्याय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चावस्वन्याय च
नमः स्रोतस्याय च दीप्याय च ॥२३०॥

सहस्रपञ्चकं तावत्पुरश्चरणमुच्यते ।
गणाग्रं तृप्तिमाप्नोति यन्मतं च परैरपि ॥२३१॥

'नमो अग्रेयाय' ऋचा का पुरचरण पाँच हजार जप से कहा गया है। इसके जप से गणश्रेष्ठ तृप्त होते हैं। साथ ही दूसरों को भी इससे तृप्त किया जा सकता है।।२३०-२३१।।

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च ।
नमो मध्यमाय चाप्रगल्भ्याय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च ॥२३२॥
नमः सोम्याय च प्रतिसर्य्याय च नमो याम्याय च क्षेम्याय च ।
श्लोक्याय च वसान्याय च नम उर्वर्य्याय च खल्याय च ॥२३३॥
नमो वन्याय च कक्ष्याय च नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च ॥२३४॥
सहस्रदशकं तावत्पुरश्चरणमुच्यते ।
ज्ञातिश्रेष्ठत्वमाप्नोति जपेनैव न संशयः ॥२३५॥

'नमो ज्येष्ठाय, नमः सोम्याय, नमो वन्याय' इन तीन ऋचाओं का पुरश्चरण दस हजार जप से कहा गया है। इसके जप से साधक अपने सपिण्डियों में असन्दिग्ध रूप से अग्रगण्य हो जाता है।।२३२-२३५।।

नम आशुशेणाय चाशुरथाय च नमः शराय चावभेदिने च ।
नमो वर्म्मिणे च वरूथिने च नमो बिल्मिने च कवचिने च
नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च ॥२३६॥
पुरश्चर्य्यास्य निर्दिष्टा सहस्राणां तु पञ्चकम् ।
जात्या नश्यति खञ्जत्वं पादुकासिद्धिमाप्नुयात् ॥२३७॥

'नम आशुशेणाय' ऋचा के पाँच हजार जप से इसका पुरश्चरण कहा गया है। इसके जप से जन्मजात खंजत्व (लंगड़ेपन) का नाश होता है और पादुकासिद्धि की प्राप्ति होती है।।२३६-२३७।।

नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च ।
नमो दूताय च प्रहिताय च नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च ॥२३८॥
नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च नमः श्रुत्याय च पथ्याय च ।
नमः काट्याय च नीप्याय च नमः कुल्याय च सरस्याय च ।
नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥२३९॥
अयुतद्वितयं चास्य पुरश्चरणमुच्यते ।
संग्रामे जयकृच्चायमनुवाकः प्रकीर्तितः ॥२४०॥

'नमो दुन्दुभ्याय' एवं 'नमस्तीक्ष्णेषवे' इन दो ऋचाओं का पुरश्चरण बीस हजार जप से कहा गया है। यह अनुवाक युद्ध में विजय प्रदान करने वाला कहा गया है।।२३८-२४०।।

नमः कूप्याय चावट्याय च नमो वर्य्याय चावर्य्याय च ।
नमो मेध्याय च विद्युत्याय च नम इन्द्रियाय चातथ्याय च ।।२४१।।
नमो वात्याय च रेष्म्याय च नमो वास्तव्याय च वास्तुपाय च ।।२४२।।
षट्सहस्रं पुरश्चर्य्या ग्रहेणाधिष्ठितो रविः ।
अभिमन्त्रणमेतेन तेन तोयं विमुञ्चति ।।२४३।।

'नमः कूप्याय' एवं 'नमो वात्याय' इन दो ऋचाओं का पुरश्चरण छः हजार जप कहा गया है। इससे अभिमन्त्रित करने पर ग्रहाक्रान्त सूर्य भी जल की वर्षा करता है।।२४१-२४३।।

नमः सोमाय च रुद्राय च नमस्ताम्राय चारुणाय च नमः ।
शङ्गवे च पशुपतये च नम उग्राय च भीमाय च ।।२४४।।
नमो अग्रेवधाय च दूरे वधाय च नमो हन्त्रे च हनीयसे च ।
नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यो नमस्ताराय ।।२४५।।
नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च ।
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।।२४६।।
पुरश्चर्य्यायुतमिता जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
त्रिकालं भस्म तोयञ्च भक्षयेल्लेपयेत्तथा ।।२४७।।
मासत्रयाद्राजयक्ष्मा किलातश्चित्रमब्दतः ।
नश्यत्येव भवेद्दिव्यो रोगः क्षुद्रो दिनत्रयात् ।।२४८।।

'नमः सोमाय, नमो अग्रेवधाय, नमः शम्भवाय' इन तीन ऋचाओं का पुरश्चरण दस हजार जप कहा गया है। प्रतिदिन इन ऋचाओं का एक सौ आठ बार जप करके अभिमन्त्रित किये गये भस्म और जल का तीनों सन्ध्याओं में भक्षण एवं शरीर पर लेपन करने से तीन महीनों में राजयक्ष्मा एवं एक वर्ष में श्वेत कुष्ठ का विनाश होकर साधक दिव्य शरीर वाला हो जाता है। अन्य छोटे-मोटे रोग तो उक्त प्रयोग से तीन दिनों में ही समाप्त हो जाते हैं।।२४४-२४८।।

नमस्तीर्थ्याय च कूल्याय च नमो वार्य्याय चावार्य्याय च ।
नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमः आचार्य्याय चाध्मानाय च ।।२४९।।

नमः शष्प्याय च फेन्याय च नमः सिकत्याय च प्रवाह्याय च ॥२५०॥
षट्सहस्रं पुरश्चर्य्या षण्मासं तीर्थगो जपेत् ।
यथोक्तं तत्तीर्थफलं लभते चेह जन्मनि ॥२५१॥

'नमस्तीर्थ्याय' एवं 'नम: शष्पाय' इन दो ऋचाओं का पुरश्चरण छ: हजार जप से सम्पन्न होता है। किसी तीर्थ में जाकर छ: मास तक इसका जप करने से साधक इस जन्म में ही उस तीर्थ के कथित फल को प्राप्त कर लेता है।।२४९-२५१।।

नम इरिण्याय च प्रमथ्याय च नमः किंशिलाय च ।
क्षयाणाय च नमः कपर्दिने च पुलस्तये च ॥२५२॥
नमो गोष्ठ्याय च गृह्याय च नमस्तल्पाय च गेह्याय च ।
नमः काट्याय च गह्वरेष्ठाय च नमो ह्रदय्याय च निवेष्याय च ॥२५३॥
नमः पांसव्याय च रजस्याय च नमः शुष्काय च ।
हरित्याय च नमो लोप्याय च चोल्प्याय च ॥२५४॥
सहस्रनवकं तावत्पुरश्चरणमुच्यते ।
धातुवादो राजसश्च सिध्यत्येतत्प्रसादतः ॥२५५॥
अत्रास्ति परिशेषस्यानुवाकोऽप्येक एव हि ।
रजस्याय च एतस्य नमोऽन्तस्याग्रतः पठेत् ॥२५६॥

'नम इरिण्याय, नमो गोष्ठ्याय, नम: पांसव्याय' इन तीन ऋचाओं का पुरश्चरण नव हजार जप से कहा गया है। इन मन्त्रों के सिद्ध हो जाने पर राजस धातुवाद सिद्ध होता है। यहाँ परिशेष का एक ही अनुवाक है। यहाँ 'नमोऽन्तस्य' के आगे 'रजस्याय च' को पढ़ना चाहिये।।२५२-२५६।।

नमो नेदिष्ठाय च कृशाङ्गाय च नमः पराय च परतराय च ।
नमः परमाय च धूमाय च नमो हराय च ताराय च ॥२५७॥
नमो वामनाय च हरिण्याय च नमः शिवाय च हरिकेशाय च ॥२५८॥
सहस्राष्टकमेतस्य पुरश्चरणमुच्यते ।
बालग्रहा विनश्यन्ति वर्हिषोदकमार्जनात् ॥२५९॥

'नमो नेदिष्ठाय' एवं 'नमो वामनाय' इन दो ऋचाओं का पुरश्चरण आठ हजार जप कहा गया है। इन ऋचाओं के द्वारा कुशोदक से मार्जन करने पर बालग्रहों का विनाश हो जाता है।।२५७-२५९।।

नम ऊर्व्याय च सूर्य्याय च नमः पर्णाय च पर्णशदाय च ।
नम उद्गुरुमाणाय चाभिघ्नते च नम आखिदते च प्रखिदते च ॥२६०॥

अस्य नवसहस्राणां पुरश्चरणमुच्यते।
अभिमन्त्र्य जलं देयं शोकशान्त्यै तु शोकिने ॥२६१॥

'नम ऊर्व्याय च' इस ऋचा का पुरश्चरण नव हजार जप से कहा गया है। इस मन्त्र से अभिमन्त्रित जल को पिलाने से शोकाकुलों का शोक शान्त हो जाता है।।२६०-२६१।।

नमो वः किरिकेभ्यस्सर्वत्र देवानाꣳ हृदयेभ्य इति।
परिशिष्टं चैतदत्र प्रयोगेष्वपि यो जपेत् ॥२६२॥
तिलहोमेनायुतेन कार्य्यं पलसहस्रकम्।
प्रतिष्ठाञ्चैव भूपालात्प्राप्नुयाद्वर्षमध्यतः ॥२६३॥
हुनेद्गोमयखण्डानि चैकादशसहस्रकम्।
घृताक्तानि प्रदातव्या गाव एकादशैव हि ॥२६४॥

जो साधक प्रयोगों के समय उक्त मन्त्र के साथ 'नमो वः किरिकेभ्यस्सर्वत्र देवानाꣳ हृदयेभ्य' इस परिशिष्ट का जप करके एक हजार पल तिल से दस हजार हवन करता है, वह एक वर्ष के भीतर ही राजा से प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। यहाँ घृतसिक्त गोमय-खण्डों से ग्यारह हजार हवन करना चाहिये एवं ग्यारह गायों का दान भी करना चाहिये।।२६२-२६४।।

पुरश्चरणपूर्वन्तु लक्षैकं तिलतण्डुलान्।
यो हुनेत्तस्य गेहे तु राजलक्ष्मीः स्वयं वसेत् ॥२६५॥
एवं च तिलधान्याभ्यां होमाल्लक्ष्मीः स्थिरा भवेत्।
शतपुष्पमयीं कृत्वा प्रतिमां राजरूप्यकाम् ॥२६६॥
सहस्रं जुहुयाद्राजा वशो वश्यं प्रजायते।
पद्मोत्पलानां लक्षन्तु हुत्वा भूपश्रियं लभेत् ॥२६७॥

जो साधक पुरश्चरण-पूर्वक तिल एवं तण्डुल मिलाकर एक लाख आहुतियों से हवन करता है, उसके घर में स्वयं राजलक्ष्मी का वास होता है। इसी प्रकार तिल और धान्य के हवन से होता के घर में लक्ष्मी स्थिर हो जाती है। शतपुष्पी से राजा की प्रतिमा बनाकर एक हजार हवन करने से राजा वश में हो जाता है। कमल और उत्पल से एक लाख हवन करने पर राज्यश्री की प्राप्ति होती है।।२६६-२६७।।

चणकप्रतिमा लक्षं होमयेद् गुग्गुलोर्वटीः।
हतसामन्तराज्यं स प्राप्नोत्येव न चान्यथा ॥२६८॥

हुनेद्बिल्वसमिद्भिस्तु दक्षिणामूर्त्तिसन्निधौ ।
लक्षमेकं तदा राष्ट्रं सामन्तस्य लभेत सः ॥२६९॥

चने की प्रतिमा बनाकर गुग्गुलवटी से एक लाख हवन करने पर सामन्तों द्वारा हस्तगत किया गया राज्य राजा को पुन: प्राप्त हो जाता है; इसमें कोई शंका नहीं है। दक्षिणामूर्ति की सन्निधि में बेल की समिधा से एक लाख आहुतियों से यदि हवन किया जाय तो वह राजा सामन्तों के राष्ट्र को भी हस्तगत क़र लेता है।।२६८-२६९।।

महाचतुष्पथे स्थाप्यं लिङ्गं वल्मीकमृद्भवम् ।
स्नापयेत्पञ्चगव्येन रुद्राध्यायेन मन्त्रयेत् ॥२७०॥
मानस्तोकेन मन्त्रेण चाभिषिञ्चेन्निवेद्यकम् ।
सघृतं पायसं दद्याद्भूतेभ्यश्च तथा बलिम् ॥२७१॥
एवं मासत्रयं कृत्वा महदैश्वर्य्यमाप्नुयात् ।

दीमक के वाम्वी की मिट्टी से निर्मित लिङ्ग को चौराहे पर स्थापित करके उसे पंचगव्य से स्नान कराकर रुद्राध्याय से अभिमन्त्रित करते हुये 'मानस्तोके' मन्त्र से अभिषेक करने के उपरान्त नैवेद्य रूप में घृतयुक्त पास प्रदान करने के बाद भूतों के लिये बलि प्रदान करना चाहिये। इस क्रिया को लगातार तीन मास तक प्रतिदिन करने से साधक को महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।।२७०-२७१।।

पलं चार्धपलं वापि दक्षिणामूर्त्तिसन्निधौ ॥२७२॥
श्वेताम्बरां चूर्णयित्वा स्थापयेत्ताम्रपात्रके ।
आलोड्य कपिलाज्येन प्रदीपिन्याभिमन्त्रितम् ॥२७३॥
सहस्राष्टकमेतेन मन्त्रेण प्रपिबेदथ ।
भवेत्तस्याप्रतिहतं वाक्यं सर्वत्र निश्चितम् ॥२७४॥

एक पल अथवा आधा पल श्वेताम्बरा को चूर्ण करके उसे दक्षिणामूर्ति के समीप ताम्रपात्र में रखकर उसमें कपिला गाय का घृत मिलाकर प्रदीपिनी मन्त्र के एक हजार आठ जप से उसे अभिमन्त्रित करके पान करने से साधक की वाणी सर्वत्र अप्रतिहत गति वाली हो जाती है।।२७२-२७४।।

उदुम्बर्य्याश्च समिधो घृताक्ताश्चायुतं हुनेत् ।
स्वामी बहुगवां स स्यात्क्षीयन्ते नास्य धेनवः ॥२७५॥
बिल्वानां समिधश्चैव हुनेदष्टसहस्रकम् ।
सुवर्णाष्टकमाप्नोति ह्यसिद्धो रजताष्टकम् ॥२७६॥

बिल्वाभावे त्वामलकं तदभावे उदुम्बरम्।
तस्याभावे हैमवती तदभावे विभीतकम्॥२७७॥
श्रीखण्डगोघृताक्तानां पद्मानां लक्षमेककम्।
हुनेद्यस्तस्य लक्ष्मीस्तु स्वयमेवोपतिष्ठते॥२७८॥

गूलर की समिधा को घृतसिक्त करके उनसे दस हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने से साधक बहुत-सी गायों का स्वामी हो जाता है और उसकी गायें कभी भी कम नहीं होतीं।

बेल की समिधा से आठ हजार हवन करने से साधक को आठ सोने के सिक्कों की तथा असिद्धि की दशा में चाँदी के आठ सिक्कों की प्राप्ति होती है। यहाँ पर बेल के अभाव में आँवले की समिधा से, उसके अभाव में गूलर की समिधा से, उसके अभाव में हैमवती (हर्रे) की समिधा से एवं उसके अभाव में बहेड़े की समिधा से हवन करने पर भी उपर्युक्त फल की प्राप्ति होती है।

श्रीखण्ड चन्दन और गाय के घी से सिक्त कमल से एक लाख की संख्या में जो हवन करता है, उसके घर में स्वयं लक्ष्मी प्रतिष्ठित हो जाती हैं।।२७५-२७८।।

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्रनीललोहित।
एषां पुरुषाणामेषां पशूनां मा भेर्मा रोङ्मोचनः किञ्च नाममत्॥२७९॥
अनेन जुहुयादाज्यमयुतावधि संख्यया।
अक्षय्यान्यस्य वासांसि भवन्ति च तथा तथा॥२८०॥

'द्रापे अन्धसस्पते' इस ऋचा के द्वारा गोघृत से दस हजार की संख्या में हवन करने पर साधक को अक्षय वस्त्रों की प्राप्ति होती है।।२७९-२८०।।

या ते रुद्र शिवा तनूः शिवाविश्वा हा भेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे।
उर्णाभाश्चाजीवदवेस्तनूं विहाय च॥२८१॥
एकादशसरं कुर्य्यात्सूत्रमेकैकसूत्रकम्।
सहस्रं सम्प्रमन्त्र्याथैकादश ग्रन्थयस्स्मृताः॥२८२॥
एवं सम्पूज्य तां रज्जुं धूपं दत्त्वा च बन्धयेत्।
वामहस्ते तु गर्भिण्याः स सुवीत सुखं सुतम्॥२८३॥
दक्षे बालकहस्ते तु सुखं तिष्ठति बालकः।
बन्धयेद्यदि सूत्रन्तु मन्त्रेणैवाभिमन्त्रितम्॥२८४॥

धनिको बाहुमूले वा कण्ठे वा धारयेदिदम्।
कदाचिदुत्तमर्णाद्वै भयं तस्य न जायते ॥२८५॥

ग्यारह धागों में ग्यारह-ग्यारह गाँठें लगाकर उसे 'या ते रुद्र.......विहाय च' मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके सबों को मिलाकर रस्सी बनाने उपरान्त उस रस्सी का पूजन करके धूप देकर गर्भवती के बाँयें हाथ में बाँध देने पर वह गर्भवती स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती हुई पुत्र को जन्म देती है। इसी प्रकार मन्त्र से अभिमन्त्रित उस सूत्र को यदि बालक के दाहिने हाथ में बाँध दिया जाय तो बालक सदा सुखी रहता है। इस सूत्र को धनिक यदि अपने बाहुमूल अथवा कण्ठ में धारण करता है तो उसे कभी भी उत्तमर्ण (महाजन) का भय नहीं होता।।२८१-२८५।।

क्ष्माᳬ रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतिम्।
यथा नः शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वम्पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥२८६॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु प्रत्यहं जुहुयात्तिलान्।
अयाचितं धनन्तेन लोकेभ्य ह्युपलभ्यते ॥२८७॥

'क्ष्माᳬ रुद्राय तवसे' ऋचा द्वारा प्रतिदिन तिलों की एक हजार आठ आहुतियों से हवन करने पर साधक को संसार में अयाचित धन प्राप्त होता है।।२८६-२८७।।

यस्तु दूर्वाप्रवालानि घृताक्तान्ययुतं हुनेत्।
महाज्वरोपघातेऽपि मृतकल्पः स जीवति ॥२८८॥
माक्षिकं पायसाज्याभ्यामयुतं जुहुयाच्छुचिः।
महाग्रहज्वरादिभ्योऽभिचाराच्च प्रमुच्यते ॥२८९॥
वैकङ्कतीनामयुतं समिधाञ्च घृतैर्हुनेत्।
ज्वरादिकभवा पीडा सद्य एव विनश्यति ॥२९०॥

जो साधक उक्त मन्त्र के द्वारा दूब और मूंगा को घृतसिक्त करके दस हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करता है, वह महान् ज्वर के प्रकोप से मृतक के सदृश हो जाने पर भी जीवित हो जाता है।

जो साधक पवित्रता-पूर्वक उक्त मन्त्र के द्वारा मधु, गोघृत और खीर से दस हजार हवन करता है, वह भयंकर ग्रह, ज्वर आदि से एवं अभिचारकर्मों से मुक्त हो जाता है।

जो साधक वैकंकती की समिधा को घृतसिक्त करके उक्त मन्त्र के द्वारा दस हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करता है, उसकी ज्वरादि से उत्पन्न पीड़ा तत्काल ही नष्ट हो जाती है।।२८८-२९०।।

द्रव्याद्यर्थं यदा कश्चिन्मृदुभिरभिरूप्यते।
तदा तुषान् प्रजुहुयादयुतं सुखमेधते ॥२९१॥
वैकङ्कतीश्च समिध उदुम्बर्यास्तथा तिलान्।
अनेन जुहुयाल्लक्षं सर्वशक्तिकरं स्मृतम् ॥२९२॥
गवाद्यान्यपशूनां वा ह्युपघाते तु तत्स्थले।
अग्निं संस्थाप्य जुहुयाद्वैकङ्कतीघृतप्लुताः ॥२९३॥
अयुतं तस्य शान्तिः स्यात्पलाशानां तथायुतम्।
घृताक्तानां प्रजुहुयान्महाज्वरमुखा ग्रहाः ॥२९४॥
राक्षसा भूतवेतालाः प्रेताश्चापि पिशाचकाः।
जनं वापि गजं वाश्वं मुक्त्वा गच्छन्ति दूरतः ॥२९५॥

जब कभी द्रव्य आदि प्राप्त करने के लिये किसी को अपने अनुकूल बनाना हो तो उक्त मन्त्र के द्वारा तुष (भूसी) से दस हजार हवन करने से सुख प्राप्त होता है। वैकंकती और गूलर की समिधा के साथ तिलों को मिलाकर उक्त मन्त्र द्वारा एक लाख हवन करने से साधक सर्वशक्तिमान् हो जाता है।

गायों या अन्य पशुओं पर उपघात होने की स्थिति में उनके स्थान पर अग्नि की स्थापना करके घृत से प्लुत वैकंकती से दस हजार हवन करने से शान्ति हो जाती है।

घृताक्त पलाश की समिधा से उक्त मन्त्र द्वारा दस हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने से भयानक ज्वर उत्पन्न करने वाले ग्रह, राक्षस, भूत, वेताल एवं प्रेत ग्रस्त व्यक्ति, हाथी अथवा अश्व को दूर से ही त्याग देते हैं।।२९१-२९५।।

जनानां जननं यस्मिन् गेहे भवति सूतिका।
मरणं वाथ हानिर्वा तत्र शान्तिरुदीर्य्यते ॥२९६॥
घृताक्तानां तिलानान्तु ह्ययुतं जुहुयाद् द्विजः।
तस्मिन् देशे महामारीव्याघ्रादिभ्यो भयं न वै ॥२९७॥

जिस घर में लोगों का जन्म, प्रसूति, मृत्यु अथवा किसी प्रकार की हानि होती है, उस घर में की जाने वाली शान्ति को अब कहा जा रहा है। द्विज द्वारा उपर्युक्त मन्त्र से घृताक्त तिल से दस हजार हवन करने पर उस देश में महामारी और व्याघ्रादि का भय नहीं होता।।२९६-२९७।।

देवानां क्षोभणं यत्र तत्र शान्तिं वदाम्यहम्।
पुरस्य मध्यभागे तु वह्निस्थापनमाचरेत् ॥२९८॥

चतुर्दिक्षु च सन्नद्धा गुप्ताश्चत्वार एव हि।
नराः स्थाप्यास्ततः कर्म सावधानः समाचरेत् ॥२९९॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु घृताक्ताञ्जुहुयात्तिलान्।
ततोऽर्धरात्रसमये त्वोदनं सघृतन्तिलान् ॥३००॥
पिष्टं माषौदनञ्चापि कृशरं परमान्नकम्।
सुज्ञो जनपदे दद्यात्स्थाने स्थाने ततो बलिम् ॥३०१॥
पलाशपत्रे रुद्रेभ्यो रक्षोभ्यस्तदनन्तरम्।
कुर्यादेवं पक्षमेकं सर्वोपद्रवनाशनम् ॥३०२॥

जिस स्थान पर देवताओं में क्षोभ दिखलाई पड़े, उस स्थान की शान्ति के उपाय को अव मैं कहता हूँ। नगर के मध्य भाग में अग्नि को स्थापित करके उसके चारो दिशाओं में गुप्त रूप से अस्त्र-शस्त्रों से पूर्णतया सुसज्जित चार लोगों को खड़ा करके स्वयं सतर्क होकर कर्म का आरम्भ करना चाहिये। घृतसिक्त तिल से एक हजार आठ आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन सम्पन्न करने के उपरान्त विधि को सम्यक् रूप से जानने वाले साधक को अर्धरात्रि के समय घृत एवं तिल-मिश्रित भात, चूर्ण किये हुये उरद का भात, खिचड़ी एवं खीर की बलि जनपद के स्थान-स्थान प्रदान करना चाहिये। इसके बाद पलाश के पत्तों पर रुद्र को और राक्षसों को बलि प्रदान करनी चाहिये। एक पक्ष तक ऐसा करने से सभी उपद्रवों का विनाश हो जाता है।।२९८-३०२।।

मृडानो रुद्रो तनो मपस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छञ्च योश्च मनुरायजे पितातदस्यामततोवरुद्रप्रणीतौ ॥३०३॥
सहस्रन्तु जपेत्तोये तीरे सम्पूजयेच्छिवम्।
यावद्दूरे भवेदिष्टं त्रिदिनार्वाङ्मिलेत्खलु ॥३०४॥

मूलोक्त 'मृडानो रुद्रो' ऋचा का नदी अथवा तालाब के जल में खड़े होकर एक हजार जप करने के पश्चात् तीर पर आकर भगवान् शिव का सम्यक् रूप से पूजन करने से प्रिय व्यक्ति चाहे जितना भी दूर हो, तीन दिनों के भीतर सामने आ जाता है।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम्।
मानो वधीः पितरं मोत मातरं मानः प्रियास्तन्वो रुद्ररीरिषः ॥३०५॥
परिजनस्य बालानामारोग्यार्थं तिलान् हुनेत्।
अयुतं शीतलादिभ्य आरोग्यं जायते क्षणात् ॥३०६॥

अपने परिजनों के बालकों के आरोग्य-लाभ के लिये 'मा नो महान्तमुत' ऋचा

के द्वारा तिलों की दस हजार आहुतियों से हवन करना चाहिये। ऐसा करने पर तत्काल ही शीतला आदि की शान्ति होकर बालक स्वस्थ हो जाता है।।३०५-३०६।।

मानस्तोकं महान्तञ्च सर्वतन्त्रेषु गोपितम्।
कथयिष्यामि मुनये देवानां कार्यसिद्धये ॥३०७॥
अतिकृच्छ्रेण कृच्छ्रेण तथा चान्द्रायणेन वा।
आदौ संशोध्य चात्मानं पूतकायो जपञ्चरेत् ॥३०८॥
जपन्नेतत्तु भुञ्जीत शाकं वा यावकं पयः।
भिक्षाञ्चाज्यं जपस्तस्य भवेदयुतसंख्यकः ॥३०९॥
सहस्रमात्रे मन्त्रस्य प्रयोगार्हो भवेन्मनुः।
प्रयोगान्ते त्वहोरात्रञ्जपः कार्यो निरन्तरम् ॥३१०॥
तद्दशांशेन होतव्या औदुम्बर्यो घृताप्लुताः।
महाव्याहृतिभिः पश्चात्तावदेव घृतं हुनेत् ॥३११॥
संस्रावभागं सम्प्राश्य प्रयोगेणाक्षयं व्रजेत्।
पुनः कर्म प्रकुर्वीत प्रायश्चित्तं पुनः पुनः ॥३१२॥
स्नायाच्च तिलतैलेन सप्तधा मन्त्रितेन च।
मरणादिप्रयोगाणां भवेत् पातकमोचनम् ॥३१३॥

'मानस्तोकं' एवं 'महान्तं' ऋचा समस्त तन्त्रों में प्रच्छन्न रूप से वर्त्तमान हैं। मुनियों एवं देवताओं की कार्यसिद्धि के लिये उसे अब मैं कहूँगा। सर्वप्रथम अतिकृच्छ्र, कृच्छ्र अथवा चान्द्रायण व्रत का अनुष्ठान करके स्वयं को शुद्ध कर पवित्र शरीर वाला होकर उक्त मन्त्रों का जप करना चाहिये। जपकाल में जो शाक, यावक (जौ का सत्तू), दूध, भिक्षान्न एवं गोघृत का भोजन करता है, उसके द्वारा किया गया एक बार का जप भी दस हजार जप के बराबर होता है। इस प्रकार से मन्त्र का मात्र एक हजार जप करने वाला साधक प्रयोग करने का अधिकारी हो जाता है। प्रयोग करने के पश्चात् एक अहोरात्र (दिन-रात) तक निरन्तर जप करना चाहिये। इसके पश्चात् घृतसिक्त गूलर की समिधा से जप का दशांश हवन करने के बाद पुनः जप की दशांश आहुतियाँ महाव्याहृतियों के द्वारा घृत से भी प्रदान करनी चाहिये। संस्राव भाग (हवन के पश्चात् अवशिष्ट घृत) का प्राशन (भक्षण) करने से उसका प्रयोग अक्षय हो जाता है। प्राशन करने के पश्चात् अवशिष्ट कर्म का सम्पादन करना चाहिये। बार-बार प्रायश्चित्त करते हुये उक्त मन्त्र के सात बार जप से अभिमन्त्रित तिलतैल से स्नान करना चाहिये। ऐसा करने से मारण कर्म के प्रयोग के फलस्वरूप होने वाले पाप का नाश हो जाता है।।३०७-३१३।।

ब्रह्मवर्चसकामस्तु हुनेदष्टसहस्त्रकम् ।
घृताक्तानान्तु समिधाञ्चौषध्यः सर्वकर्म्मसु ॥३१४॥
पद्मानान्तु घृताक्तानान् दशरात्रमुपोषितः ।
अयुतं जुहुयाल्लक्ष्मीकामो वा शिवदर्शनात् ॥३१५॥
अपामार्गोद्भवानाञ्च तण्डुलानान्तथायुतम् ।
हुनेद्वापि घृताक्तानां सर्वार्थस्य समृद्धये ॥३१६॥
गोसहस्त्रप्रलाभाय जुहुयाद् गोपयोऽथ वा ।
आज्याहुतीनाञ्च तथा सहस्राष्टकमादरात् ॥३१७॥
उपोषितो दशाहानि हुनेद्बिल्वफलानि च ।
अयुतञ्च घृताक्तानि लभेताष्टसहस्त्रकम् ॥३१८॥
सिद्धे मन्त्रे सुवर्णानि त्वसिद्धे रजतानि च ।
भार्यामुकी मे भवतु ह्येतदर्थे हुनेच्छुचिः ॥३१९॥
जातीपुष्पाणि चाज्येन मधुना संयुतानि च ।

ब्रह्मतेज-प्राप्ति की कामना से घृतसिक्त समिधा से आठ हजार की संख्या में हवन करना चाहिये। समस्त कर्मों के अनुष्ठान में घृतसिक्त औषधियों से हवन करना चाहिये। लक्ष्मी-प्राप्ति अथवा शिवदर्शन की कामना वाले को अनवरत दस रात्रियों में उपवास करते हुये घृतसिक्त कमलों से दस हजार हवन करना चाहिये। समस्त कामनाओं की सिद्धि के लिये घृतसिक्त अपामार्ग के चावल से दस हजार हवन करना चाहिये। एक हजार गौओं की प्राप्ति के लिये गोदुग्ध अथवा गोघृत से आदरपूर्वक आठ हार की संख्या में हवन करना चाहिये। दस दिनों तक उपवास रहकर घृतसिक्त बेलफल से दस हजार हवन करने पर एक हजार स्वर्णसिक्कों की प्राप्ति होती है; लेकिन हवन के पूर्व यदि मन्त्र सिद्ध न हुआ हो तो चाँदी के सिक्कों की प्राप्ति होती है। इच्छित स्त्री को पत्नी-रूप में प्राप्त करने के लिये गोघृत एवं मधु के साथ जातीपुष्प को मिलाकर पवित्रतापूर्वक हवन करना चाहिये।।३१४-३१९।।

कपिला तु यदा सूता वृषभं वासितापि गौः ॥३२०॥
आज्यदुग्धं गृहीत्वा स्वाः श्रपयेत्तेन वै चरुम् ।
अष्टोत्तरशतं हुत्वा तथा चाष्टसहस्त्रकम् ॥३२१॥
मन्त्रयित्वा चरुन्तञ्च सपत्नीकः प्रभक्षयेत् ।
आयुष्मतोऽष्टपुत्रांश्च जनयेन्नात्र संशयः ॥३२२॥
दूर्वाप्रवालाञ्जुहुयाद्दधिक्षीरघृतान्वितान् ।
आयुष्कामोऽष्टसाहस्त्रं चिरायुष्ट्वं स विन्दते ॥३२३॥

कपिला अथवा श्वेत गौं ने यदि बछड़े को जन्म दिया हो तो उसके दूध और घी को लेकर उसमें स्वयं अपने हाथों से चरु का पाक करके उससे एक सौ आठ आहुति प्रदान करने के पश्चात् अवशिष्ट चरु को आठ हजार मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके पत्नी के साथ-साथ स्वयं भी उसका भक्षण करने से उसे आठ दीर्घायु पुत्रों की प्राप्ति होती है; इसमें कोई संशय नहीं है।

आयु की कामना से दूब और प्रवाल को दधि, दूध एवं घी में मिलाकर आठ हजार हवन करने पर साधक को दीर्घायु की प्राप्ति होती है।।३२०-३२३।।

दधिक्षौद्रघृताक्तानां पुष्पाणां कुशकाशयोः ।
सहस्राण्यष्ट जुहुयादिच्छेत्क्षुद्रान्यदा पशून् ॥३२४॥
त्रिरात्रोपोषितो भूत्वा गच्छेन्महाचतुष्पथे ।
कृत्वा मूर्त्तिं गोमयेन तद्वद्दैवतसम्मुखे ॥३२५॥
पूजयित्वा हुनेद् भूमौ चाष्टोत्तरसहस्रकम् ।
कर्मणा तेन नृपतिर्भवेद्वश्यो न संशयः ॥३२६॥
सप्ताभिमन्त्रितं तीक्ष्णं तैलं तेन करद्वयम् ।
सम्यक्स्पृष्टस्तेन स्पृष्टो यो योऽसौ वशगो भवेत् ॥३२७॥

क्षुद्र पशुओं के प्राप्ति की यदि कामना हो तो कुश एवं काश के फूलों को दधि, मधु एवं घृत से सिक्त करके उनसे आठ हजार की संख्या में हवन करना चाहिये।

तीन रातों तक उपवास करके जनपद के मुख्य चौराहे पर जाकर वहाँ पर गोमय से साध्य की प्रतिमा बनाकर उस प्रतिमा को देवता के सम्मुख स्थापित करके उसका पूजन कर भूमि पर एक हजार आठ बार हवन करने से निश्चित ही वहाँ का राजा साधक के वश में हो जाता है।

इस मन्त्र के सात बार जप से अभिमन्त्रित सरसो तेल को अपने दोनों हाथों में सम्यक् रूप से लगाकर जिसका भी स्पर्श किया जाता है; वह वशीभूत हो जाता है।।३२४-३२७।।

ब्रह्मवर्चसकामस्तु दधिक्षौद्रघृतान्विताः ।
बिल्वस्य समिधो हुत्वा लक्षं तेजोनिधिर्भवेत् ॥३२८॥
औदुम्बरीश्च जुहुयाद्दधिक्षौद्रघृतान्विताः ।
समिधोऽष्टसहस्राणि शत्रोरुच्चाटनं भवेत् ॥३२९॥
सर्वोपद्रवनाशार्थं गृहीत्वा सप्तशर्क्कराः ।
मन्त्रयित्वा सहस्रं तु चतुर्दिक्षु क्षिपेत्ततः ॥३३०॥

ऊर्ध्वाधस्तस्य निकटे सर्वोपद्रवनाशनम्।
एवं कृत्वा व्रजन्मार्गे चौरव्याघ्रभयं हरेत्॥३३१॥

ब्रह्मतेज-प्राप्ति की कामना हो तो दधि, मधु एवं घी से प्लुत बेल की समिधा से एक लाख हवन करना चाहिये। ऐसा करने से वह साधक महान् तेजस्वी हो जाता है।

दधि, मधु एवं घृत से समन्वित गूलर की समिधा से आठ हजार आहुतियाँ प्रदान करते हुये हवन करने पर शत्रुओं का उच्चाटन हो जाता है।

सभी प्रकार के उपद्रवों की शान्ति के लिये गुड़ के सात टुकड़ों को मन्त्र के एक हजार जप से अभिमन्त्रित करके उन्हें चारो दिशाओं के साथ-साथ ऊपर, नीचे और अपने समीप फेंक देने से सभी उपद्रवों का विनाश हो जाता है। ऐसा करके यात्रा करने पर मार्ग में चोर व्याघ्र आदि का भय नहीं रहता।।३२८-३३१।।

आ रे तेगोघ्न उत पूरुषघ्ने क्षयद्वीराय सुन्नमस्ते ते अस्तु।
रक्षाव नो अधि चेदं देवब्रूह्यथो च नः शर्म्म यच्छद्विवर्हाः॥३३२॥
स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं भवन्तं भीममुपहेलमुग्र।
मृडाजरित्रे रुद्रस्तवानो अभ्यन्ते अस्मन्निव यन्तु सेना॥३३३॥
परि नो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु परि त्वेषस्य दुर्मतिरघायोः।
अवस्थिरा मघवद्भ्यस्तनुष्वमीड्ड्वस्तोकाय तनयाय मृड॥३३४॥
मीढुष्टम शिवतम शिवो नः सुमना भव।
परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिं वसान आचर पिनाकं बिभ्रदागहि॥३३५॥
महाभये समुत्पन्ने व्याघ्रचौरभयादिषु।
चतसृचः स्मरेच्चित्ते तद्भयस्य विनाशिकाः॥३३६॥

किसी महान् विपत्ति के उपस्थित होने पर अथवा व्याघ्र-चोर आदि का भय आसन्न होने पर 'आ रे तेगोघ्न' से लेकर 'पिनाकं बिभ्रदागहि' तक मूल में पठित चार ऋचाओं का मन ही मन स्मरण करना चाहिये। ये ऋचायें उन भयों का विनाश करने वाली कही गई हैं।।३३२-३३६।।

विकिरिद्रविलोहित नमस्ते अस्तु भगवः।
यास्ते सहस्त्रंꣳहेतन्यमस्मन्निवपन्तु ताः॥३३७॥
जपेदयुतसङ्ख्याकं विरोधे तु महाजनैः।
राजा च वशमायाति प्रीतिश्चापि प्रजायते॥३३८॥

बड़े लोगों से विरोध हो जाने पर मूलोक्त 'विकिरिद्रविलोहित' मन्त्र का दस हजार

की संख्या में जप करना चाहिये; इससे उन बड़े लोगों के साथ-साथ राजा भी जापक के वशीभूत हो जाता है और परस्पर प्रेम की भी वृद्धि होती है।।३३७-३३८।।

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तव हेतयः।
तासामीशानो भगवः पराचीनामुखाकृधि ॥३३९॥
यदा तु महतो मृत्युर्नृपतेर्वाप्युपद्रवः।
तदा होमं प्रकुर्वीत वैकङ्कतसमिद्वरैः ॥३४०॥
औदुम्बरीभिः शाल्मल्या तिलैर्वापि यवैरपि।
प्रत्येकमेकादशधा चाभिमन्त्र्य ततोऽवनिम् ॥३४१॥
कृशरं पायसं वापि ततो भूतानि चार्चयेत्।
दद्याद्बिडालमांसस्य बलिं नश्यन्त्युपद्रवाः ॥३४२॥

यदि अपने से बलवान लोगों से अपनी मृत्यु अथवा राजा द्वारा अपने प्रति किसी प्रकार के उपद्रव किये जाने की आशंका उपस्थित हो जाय तो वैकङ्कत, गूलर, शाल्मली, तिल एवं यव—इन सबको अलग-अलग मूलोक्त 'सहस्राणि सहस्रशो' मन्त्र से ग्यारह-ग्यारह बार अभिमन्त्रित करके हवन करने के पश्चात् भूमि पर खिचड़ी अथवा खीर से भूतों का पूजन करके बिडाल के मांस की बलि प्रदान करनी चाहिये। इससे आसन्न उपद्रव नष्ट हो जाता है।।३३९-३४२।।

सहस्राणि सहस्रशो ये रुद्रा अधिभूम्याम्।
तेषां सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३४३॥
पठेयुरन्यशाखीया वाक्यान्ते परिशिष्टकम्।
अस्मिन्महत्यर्णवे तं रक्षो भवा अधि तथा ॥३४४॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठाः शर्वा अधः क्षमाचराः।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि॥३४५॥
नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवꣳरुद्रां उपश्रिताः।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३४६॥
ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा नीलग्रीवा विलोहिताः।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३४७॥
ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३४८॥
येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान्।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३४९॥

ये पथां पथिरक्षय ऐलबृदा आयुर्युधः ।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३५०॥
ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्ता निषङ्गिणः ।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३५१॥
य एतावन्तश्च भयाꣳसश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ।
तेषाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥३५२॥
जपेदेता नव ऋचः परिशिष्टसमन्विताः ।
भवन्ति भोगदास्तेन हीना ज्ञानप्रदा मताः ॥३५३॥

परिशिष्ट के साथ मूलोक्त 'सहस्राणि सहस्रशो, नीलग्रीवा: शितिकण्ठा, ये वृक्षेषु शष्पिञ्जरा, ये भूतानामधिपतयो, येऽन्नेषु विविध्यन्ति, ये पथां पथि रक्षय, ये तीर्थानि प्रचरन्ति, य एतावन्तश्च'—इन ऋचाओं का जप करने से ये ऋचायें भोग प्रदान करने वाली और भोग से हीन होने पर ज्ञान प्रदान करने वाली कही गई हैं।।३४३-३५३।।

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्यां येषामन्नमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ।
तेभ्यो नमोऽस्तु ते नोऽवन्तु ते नो मृडयन्तु ते
यं द्विष्मो यश्च नो द्वेष्टि तमेषां जम्भेदध्मः ॥३५४॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषां वात इषवः ।
तेभ्यो दशप्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोर्ध्वाः ॥३५५॥
नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये दिवि येषां वर्षमिषवः ।
तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोर्ध्वाः ॥३५६॥
मध्याह्ने चाज्यं जुहुयादेभिर्मन्त्रैः सकण्टकम् ।
प्रत्यङ्गिराया मन्त्रस्य कर्म कुर्यादयं मनुः ॥३५७॥
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण नमस्तेऽस्य समापनम् ।
तैत्तिरीयेऽन्यशाखासु परिशिष्टानि सप्त च ॥३५८॥
सद्योजातादिकाः पञ्च त्र्यम्बकं च यजामहे ।
षडर्च एतास्त्वरितरुद्रनामकमुच्यते ॥३५९॥

मध्याह्न (दोपहर) में काँटे को गोघृत से सिक्त करके मूलोक्त 'नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो..... प्रतीचोर्दशोर्ध्वा:' इन तीन मन्त्रों के द्वारा हवन करना चाहिये। प्रत्यङ्गिरा मन्त्र से अनुष्ठान करने पर इस मन्त्र का प्रयोग किया जाता है। तैत्तिरीय शाखा में इस कर्म का समापन मृत्युञ्जय मन्त्र से किया जाता है। अन्य शाखा वालों को सात परिशिष्ट

का भी पाठ करना चाहिये। सद्योजातादि पाँच एवं त्र्यम्बक—ये छः ऋचायें त्वरितरुद्र नामक ऋचा कही जाती हैं।।३५४-३५९।।

अग्नाविद्यरसजोषसे मा वर्द्धतु चाङ्गिरः शुभ्रैर्वाजैर्निरगात्तम् ।।३६०।।
नित्यं सन्ध्यावन्दनान्ते तिष्ठन्कालत्रये जपेत् ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु षण्मासं सत्यवाग्भवेत् ।।३६१।।

छः मास तक प्रतिदिन तीनों काल में सन्ध्यावन्दन करने के उपरान्त 'अग्नाविद्य' ऋचा का एक हजार आठ बार जप करने से जापक सत्य वाणी बोलने वाला हो जाता है।।३६०-३६१।।

वाजश्च मे प्रसवश्च मे प्रयतिश्च मे प्रसितिश्च मे
ह्यधीतिश्च मे क्रतुश्च मे स्वरश्च मे श्लोकश्च मे
श्रुवश्च मे श्रुतिश्च मे ज्योतिश्च मे
स्वश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।३६२।।
प्राणश्च मेऽपानश्च मे व्यानश्च मेऽसुश्च मे
चित्तं च मे अधीतं च मे वाक्च मे मनश्च मे
चक्षुश्च मे श्रोत्रं च मे दक्षश्च मे
बलं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।३६३।।
ओजश्च मे सहश्च मे आत्मा च मे तनूश्च मे
शर्म्म च मे वर्म्म च मेऽङ्गानि च मेऽस्थीनि च
मे परूꣳषि च मे शरीराणि च मे आयुश्च मे
जरा च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।३६४।।
ज्यैष्ठ्यं च मे आधिपत्यं च मे मन्युश्च मे
भामश्च मेम्भश्च मे जेमा च मे महिमा च मे
वरिमा च मे प्रथिमा च मे वर्षिमा च मे द्राघिमा च मे
वृद्धं च मे वृद्धिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।३६५।।
सत्यं च मे श्रद्धा च मे जगच्च मे धनं च मे
विश्वञ्च मे महश्च मे क्रीडा च मे मोदश्च मे
जातञ्च मे जनिष्यमाणञ्च मे सूक्तञ्च मे सुकृतं च मे
यज्ञेन कल्पन्ताम् ।।३३६।।
ऋतञ्च मे मृतञ्च मे यक्ष्मं च मेऽनामयं च मे
जीवातुश्च मे दीर्घायुस्त्वं च मे मित्रं च मे

भयं च मे सुखञ्च मे शयनञ्च मे सूषश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३६७॥

यन्ता च मे धर्त्ता च मे क्षेमं च मे धृतिश्च मे विश्वञ्च मे महश्च मे संविच्च मे ज्ञात्रञ्च मे सूश्च मे प्रसूश्च मे सीरञ्च मे लयश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३६८॥

शञ्च मे मयश्च मे प्रियं च मेऽनुकामश्च मे कामश्च मे सौमनसश्च मे भगश्च मे द्रविणञ्च मे भद्रञ्च मे श्रेयश्च मे वसीयश्च मे यशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३६९॥

ऊर्क्च मे सूनृता च मे पयश्च मे रसश्च मे घृतं च मे मधु च मे सग्धिश्च मे सपीतिश्च मे कृषिश्च मे वृष्टिश्च मे जैत्रञ्च मे औद्भिद्यं च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७०॥

रयिश्च मे रायश्च मे पुष्टञ्च मे पुष्टिञ्च मे विभु च मे प्रभु च मे पूर्णं च मे पूर्णतरं च मे कुयवञ्च मे क्षितञ्च मेऽन्नञ्च मे क्षुच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७१॥

वित्तं च मे वेद्यञ्च मे भूतञ्च मे भविष्यच्च मे सुगञ्च मे सुपथ्यं च मे ऋद्धञ्च मे ऋद्धिश्च मे क्लृप्तञ्च मे क्लृप्तिश्च मे मतिश्च मे सुमतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७२॥

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मे मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियङ्गवश्च मेऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७३॥

अश्मा च मे मृत्तिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे हिरण्यञ्च मेऽयश्च मे श्यामञ्च मे लोहञ्च मे सीसञ्च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७४॥

अग्निश्च मे आपश्च मे वीरुधश्च मे ओषधयश्च मे कृष्टपच्याश्च मेऽकृष्टपच्याश्च मे ग्राम्याश्च मे पशव आरण्याश्च मे वित्तं च मे वित्तिश्च मे भूतं च मे भूतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७५॥

वसु च मे कर्म्म च मे शक्तिश्च मेऽर्थश्च मे एमश्च मे इत्या च मे गतिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७६॥

अग्निश्च मे इन्द्रश्च मे सोमश्च मे इन्द्रश्च मे सविता च मे इन्द्रश्च मे सरस्वती च मे इन्द्रश्च मे पूषा च मे इन्द्रश्च मे बृहस्पतिश्च मे इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७७॥

मित्रश्च मे इन्द्रश्च मे वरुणश्च मे इन्द्रश्च मे धाता च मे इन्द्रश्च मे त्वष्टा च मे इन्द्रश्च मे मरुतश्च मे इन्द्रश्च मे विश्वे च मे देवा इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७८॥

पृथिवी च मे इन्द्रश्च मेऽन्तरिक्षं च मे इन्द्रश्च मे द्यौश्च मे इन्द्रश्च मे समाश्च मे इन्द्रश्च मे नक्षत्राणि च मे इन्द्रश्च मे दिशश्च मे इन्द्रश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३७९॥

अꣳशुश्च मे रश्मिश्च मे दाब्भ्यश्च मेऽधिपतिश्च मे उपाꣳशुश्च मेन्तर्यामिश्च मे ऐन्द्रा वायवश्च मे मैत्रवरुणश्च मा आश्विनश्च मे प्रतिप्रस्थानश्च मे शुक्रश्च मे मन्थी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८०॥

आग्रयणश्च मे वैश्वदेवश्च मे ध्रुवश्च मे वैश्वानरश्च मे ऐन्द्राग्निश्च मे महावैश्वदेवश्च मे मरुत्वतीयाश्च मे निष्केवल्यश्च मे सावित्रश्च मे सारस्वतश्च मे पाल्कीवतश्च मे हारियोजनश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८१॥

स्रुचश्च मे चमसाश्च मे वायव्यानि च मे द्रोणकलशश्च मे ग्रावाणश्च मे धिषधणे च मे

पूतभृच्च मे आहवनीयश्च मे वेदिश्च मे बर्हिश्च मे अवभृथश्च मे स्वगाकारश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८२॥

अग्निश्च मे धर्म्मश्च मेऽर्कश्च मे सूर्य्यश्च मे प्राणश्च मेऽश्वमेधश्च मे पृथिवी च मेऽ-दितिश्च मे दितिश्च मे द्यौश्च मेऽङ्गुलयः शक्वरयो दिशश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८३॥

ऋक्च मे साम च मे स्तोमश्च मे यजुश्च मे दीक्षा च मे तपश्च मे ऋतवश्च मे संवत्सरश्च मेऽहोरात्रे ऊर्वष्ठीवे बृहद्रथन्तरे च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८४॥

गर्भाश्च मे वत्साश्च मे त्र्याविश्च मे त्र्यावी च मे दित्यवाट् च मे दित्यौही च मे पञ्चाविश्च मे पञ्चावी च मे त्रिवत्सश्च मे त्रिवत्सा च मे तुर्य्यवाट् च मे तुर्य्यौही च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८५॥

पुष्टवाट् च मे पुष्टौही च मे उक्षा च मे वशा च मे ऋषभश्च मे बृहच्च मेऽनड्वांश्च मे धेनुश्च मे आयुर्यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८६॥

एका च मे तिस्रश्च मे तिस्रश्च मे पञ्च च मे पञ्च च मे सप्त च मे सप्त च मे नव च मे नव च मे एकादश च मे एकादश च मे त्रयोदश च मे त्रयोदश च मे पञ्चदश च मे पञ्चदश च मे सप्तदश च मे सप्तदशं च मे नवदश च मे नवदश च मे एकविꣳशतिश्च मे एकविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे त्रयोविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे पञ्चविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे सप्तविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे नवविꣳशतिश्च मे एकत्रिꣳशच्च मे एकत्रिꣳशच्च मे त्रयस्त्रिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८७॥

चतस्रश्च मेऽष्टौ च मे २ द्वादश च मे २ षोडश च मे २ विꣳशतिश्च मे २ चतुर्विꣳशतिश्व मे २ ऽष्टाविꣳशतिश्च मे २ द्वात्रिꣳशच्च मे षट्त्रिꣳशच्च मे २ चत्वारिꣳशच्च मे २ चतुश्चत्वारिꣳशच्च मे२ऽष्टचत्वारिꣳशच्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८८॥

वाजश्च पशवश्चापि क्रतुश्च मूर्धा च व्यश्नियश्चान्त्यायन-
श्चान्त्यश्च भौवनश्च भुवनश्चाधिपतिश्च यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥३८९॥
एतावान् रुद्र आख्यातः सर्वकामफलप्रदः ।
विस्वरो वाक्षरः पाठो रुद्रस्तोत्रं तु शान्तये ॥३९०॥
इडा देवहूर्मनुर्यज्ञनीर्बृहस्पतिरुक्था मदानि
शंशिषद्विश्वेदेवाः सूक्तवाचः पृथिवि मातर्मा मा हिंसीर्मधु
मनिष्ये मधु जनिष्ये मधु वक्ष्यामि मधु वदिष्यामि
मधुमतीन्देवेभ्यो वाचमुद्या शंशुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यस्ते मा
देवा अवन्तु शोभायै पितरो नु मदन्तु ।
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥३९१॥
परं शिष्टं जपेच्चैव एष रुद्रविधिः स्मृतः ।
अभिषिञ्चेत्पौष्टिकार्थं शान्तिकामस्तु होमयेत् ॥३९२॥
सिद्धिकामो जपेदेवमक्षराणां तु सङ्ख्यया ।
इहैव बहुरुद्राढ्यः शिव एव न चापरः ॥३९३॥
पदतुल्यावृत्तिजपाद्विज्ञप्तिरपि जायते ।
वाक्यतुल्यावृत्तिजपात्सर्वं पापं विनश्यति ॥३९४॥
ऋचां सङ्ख्याजपात्सर्वं क्षुद्रपापं विनश्यति ।
अनुवाकमिमं जप्त्वानिष्टग्रहरुजो जयेत् ॥३९५॥

परिशिष्ट-पूर्वक 'वाजश्च मे प्रसवश्च मे' से आरम्भ कर 'ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः' तक मूलोक्त मन्त्रों का जप करना ही रुद्रविधि कही गई है। सिद्धि चाहने वाले साधक को उक्त मन्त्रों में जितने अक्षर हैं, उतना ही परिशिष्ट-समन्वित जप करना चाहिये। ऐसा करने से अगणित रुद्रों से सम्पन्न होकर वह साधक साक्षात् शिव ही हो जाता है, उनसे भिन्न नहीं रह जाता।

उक्त मन्त्रों के पदों की संख्या के बराबर जप करने से विज्ञप्ति-सिद्धि होती है एवं मन्त्रगत वाक्यों की संख्या के बराबर जप करने से समस्त पापों का विनाश होता है। रुद्रीय की ऋचाओं की संख्या के बराबर जप करने से छोटे-मोटे पापों का विनाश होता है एवं इसके अनुवाक के जप से अनिष्ट ग्रह-जनित रोगों पर विजय की प्राप्ति होती है।।३६२-३९५।।

देवीसूक्तकथनम्

देवीसूक्तं प्रवक्ष्यामि सर्वाभीष्टप्रदायकम् ।
अशक्तः प्रोच्यते रुद्रे विनायं तत्पुरः पठेत् ॥३९६॥

देवीसूक्त—अब समस्त मनोरथों को पूर्ण करने वाले देवीसूक्त को कहता हूँ। रुद्रपाठ करने में अशक्त होने पर उसके विना मात्र इस देवीसूक्त का ही पाठ देवता के समक्ष करना चाहिये।।३९६।।

अथ देवीसूक्तम्

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणौभा विभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनौभा ॥३९७॥
अहं सोममनेहसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणं भगम्।
अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते ॥३९८॥
अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्य्याविशयन्तीम् ॥३९९॥
मया सो अन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति य ईं शृणोत्युक्तम्।
अजन्तवो मान्त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुतश्रद्धिवं ते वदामि ॥४००॥
अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तन्तमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तां सुमेधाम् ॥४०१॥
अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥४०२॥
अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तःसमुद्रे।
ततो वितिष्ठे भुवना नु विश्वोतामूद्यां वर्ष्मणोपस्पृशामि ॥४०३॥
अहमेव वात इव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा।
परो दिवा परश्ना पृथिव्यै तावती महिना सम्बभूव ॥४०४॥
देवीसूक्तमिदं प्रोक्तं सर्वसूक्तोत्तमोत्तमम्।
आधारोऽयं मन्त्रसिद्धेर्द्विजानां परिकीर्तितः ॥४०५॥

मूलोक्त 'अहं रुद्रेभिः' से आरम्भ का 'महिना सम्बभूव' तक आठ ऋचाओं को देवीसूक्त कहा गया है। यह समस्त सूक्तों से सर्वश्रेष्ठ है। द्विजों को मन्त्रसिद्धि-हेतु यह आधार-स्वरूप है।।३९७-४०५।।

विष्णुगणपत्योः सूक्ते

अथ विष्णोः प्रवक्ष्यामि सूक्तं गणपतेश्च यत्।
यत्साधनं विना सर्वे मन्त्रा विघ्नैस्तु विघ्निताः ॥४०६॥
तस्मादादौ गणेशानं प्रसाद्य पुनराचरेत्।
देवतासाधनं तत्तु निर्विघ्नेन प्रजायते ॥४०७॥

निद्रालस्यं क्षुधा क्रोधो लोभो मोहो मनोभवः।
प्रमादो रोग इत्याद्या मन्त्रविघ्नकराः स्मृताः ॥४०८॥
विधानपूर्वकं तस्मादत्र सूक्तं तदुच्यते।
यज्ज्ञापकानां कार्याणि स्युरप्रतिहतानि च ॥४०९॥

अब मैं विष्णु एवं गणेशसूक्त को कहता हूँ, जिनका साधन किये विना समस्त मन्त्र विघ्नों द्वारा विघ्नित (विघ्न डाले गये) होते हैं। इसलिये सर्वप्रथम गणेश को प्रसन्न करना चाहिये, तत्पश्चात् देवता की सिद्धि करनी चाहिये। ऐसा करने से वह सिद्धि विना किसी विघ्न के पूर्ण हो जाती है।

निद्रा, आलस्य, भूख, क्रोध, लोभ, मोह, कामविकार, प्रमाद, रोग इत्यादि मन्त्रों के लिये विघ्न उत्पन्न करने वाले कहे गये हैं। इसलिये विधानपूर्वक गणेशसूक्त को यहाँ पर कहा जा रहा है, जिससे कि ज्ञापकों के कार्य विना किसी बाधा के पूर्ण हो सकें।।४०६-४०९।।

अस्य च द्वादशर्चस्य गणेशस्य महात्मनः।
ऋषिर्गृत्समदो देवो गणपः परिकीर्तितः ॥४१०॥
आद्यानां त्रिऋचानां च च्छन्दस्त्रिष्टुप्प्रकीर्तितम्।
उत्तराणां नवानाञ्च गायत्रं छन्द उच्यते ॥४११॥
महागणपतिश्चास्य दैवतं परिकीर्त्तितम्।
विनियोगः कीर्त्तनीयो यथाकार्य्यानुसारतः ॥४१२॥
गणानान्त्वा गणपतिं हवामहे कविं कवीनामुपमश्रवस्तमम्।
ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते आ नः शृण्वन्नूतिभिः सीद सादनम् ॥४१३॥
निषुसीद गणपते गणेषु त्वमाहुर्विप्रतमङ्कवीनाम्।
न ऋते त्वत्क्रियते किञ्चनारे महामर्कमधञ्चित्रमर्च ॥४१४॥
त्वेषङ्गणं तव शङ्खादिहस्तं धृतिव्रतं मा विदानन्ति वारम्।
मया भुवो ये ॥४१५॥
आ तून इन्द्र सुमन्तं चित्रं यामं सङ्गृभाय।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥४१६॥
विद्मा हि त्वा तु विकूर्मि तु विदेशन्तुवीमघम्।
तुविमात्रमवोभिः ॥४१७॥
न हि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्स तम्।
भीमं गोवादयन्ते ॥४१८॥

एतोन्विन्द्रं स्ववामेशानं वस्प स्वराज्यम्।
न राधसार्थिषं नः ॥४१९॥
प्रस्तोष उपगासिषच्छवत्साम गीयमानम्।
अभिशर्धस्य जुगुरत् ॥४२०॥
आ नो मख्यञ्जनं दक्षिणेनभिमध्यन प्रामृजद्वा इन्द्र।
मा नो वसोर्निर्भाक् ॥४२१॥
उपक्रमस्याभर घृताधृष्णो जनानां यद्यशुष्ठरस्य वेदः ॥४२२॥
इन्द्र य उ नु ते अस्ति वोजो विप्रेभिस्तनित्वः।
अस्माभिस्तुतं सन्निहि ॥४२३॥
स याजुप्तो वजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः।
बलेश्च मक्षु जरन्तम् ॥४२४॥

विनियोग—परमात्मा गणेश की इन बारह ऋचाओं के ऋषि गृत्समद कहे गये हैं। इनमें से प्रथम तीन ऋचाओं का छन्द त्रिष्टुप् एवं शेष नव ऋचाओं का छन्द गायत्री छन्द कहा गया है और महागणपति इसके देवता कहे गये हैं। कार्य के अनुसार इसका विनियोग कहना चाहिये। 'गणानान्त्वा' से आरम्भ कर 'मक्षु जरन्तम्' पर्यन्त् मूल में पठित बारह ऋचायें ही गणेशसूक्त हैं।।४१०-४२४।।

गणानां त्वा निषुसीद त्वेषंगणन्तथैव च।
आ तू न इन्द्र विद्महि न हि त्वा शूरमेव च ॥४२५॥
अङ्गुष्ठाग्रं समारभ्य करपृष्ठादिषु न्यसेत्।
गणानां त्वेति बहिश्च हृदयादिषडङ्गकम् ॥४२६॥
एवं न्यासद्वयं कृत्वा षड्भिश्च व्यापकं भजेत्।

उक्त गणेशसूक्त का करन्यास इस प्रकार करना चाहिये—
ॐ गणानां त्वा इत्यङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
निषुसीद इति तर्जनीभ्यां नमः।
त्वेषं गणं तव शंखादिहस्तं मध्यमाभ्यां नमः।
आ तून इन्द्र सुमन्तमिति अनामिकाभ्यां नमः।
विद्मा हि त्वा तु विकूर्मिमिति कनिष्ठिकाभ्यां नमः।
न हि त्वा शूर देवा इति करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इसका षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—
गणानां त्वा० हृदयाय नमः।

निषुसीद० शिरसे स्वाहा।
त्वेषं गणं तव० शिखायै वषट्।
आ तून इन्द्रः० कवचाय हुम्।
विद्मा हि त्वा० नेत्रत्रयाय वौषट्।
न हि त्वा शूर देवा अस्त्राय फट्।

इस प्रकार से करन्यास एवं षडङ्गन्यास सम्पन्न करने के पश्चात् उन्हीं छः ऋचाओं से व्यापक न्यास करना चाहिये।।४२५-४२६।।

ततो द्वादशऋग्भिस्तु न्यासमत्र समाचरेत् ।।४२७।।
मस्तके च मुखे चैव नेत्रयोः कर्णयोस्तथा।
नसि कण्ठे हृदि भुजे जठरे नाभिमध्यतः ।।४२८।।
गुल्फयोः पादयोश्चैव द्वादशर्चः पृथक्पृथक्।
मन्त्रराजाक्षरैश्चैव तृतीयो न्यास एव च ।।४२९।।
ततः षडक्षरेणैव चतुर्थन्यासमाचरेत्।
दशर्चाभिश्च दिग्बन्धं पादे शिरसि चैककम् ।।४३०।।
एवं न्यासविधिं कृत्वा साङ्गावरणपूजनम्।

तदनन्तर उक्त बारह ऋचाओं से क्रमशः मस्तक, मुख, दोनों नेत्र, दोनों कान, नासिका, कण्ठ, हृदय, बाहु, उदर, नाभिमध्य, दोनों गुल्फ एवं दोनों पैरों में पृथक्-पृथक् न्यास करना चाहिये। मन्त्रराज (ॐ वक्रतुण्डाय हुं) के अक्षरों से तृतीय न्यास करना चाहिये। तदनन्तर छः अक्षरों वाले मन्त्र से चतुर्थ न्यास किया जाता है। गणेशसूक्त की बारह ऋचाओं में से दस ऋचाओं से दशो दिशाओं का बन्धन करने के पश्चात् ग्यारहवीं ऋचा से पैरों में एवं बारहवीं ऋचा से शिर में न्यास करना चाहिये। इस प्रकार न्यासों को करने के उपरान्त अङ्ग-सहित आवरण-पूजन करना चाहिये।।४२७-४३०।।

तन्त्रमन्त्रेण सम्पूज्य ऋग्भिर्द्वादशभिस्तथा ।।४३१।।
षोडशैरुपचारैस्तु साङ्गपीठादिदैवतैः।
नैवेद्यैर्विविधाकारैर्मोदकैः सिद्धलड्डुकैः ।।४३२।।
पायसैः क्षीरखण्डैश्च तोषयेद् गणनायकम्।
इक्षुखण्डैरिक्षुरसैः कदलीपनसादिभिः ।।४३३।।
नारिकेरैर्दाडिमैश्च अन्यैर्नानाविधैः फलैः।
सचन्द्रकैश्च ताम्बूलैर्दक्षिणाभिः समन्ततः ।।४३४।।
पूजयित्वा तु मध्याह्ने प्रारभेत जपं ततः।

अङ्ग-सहित आवरण-पूजन के लिये पूजन यन्त्र इस प्रकार का बनाना चाहिये—

पूजन-यन्त्र
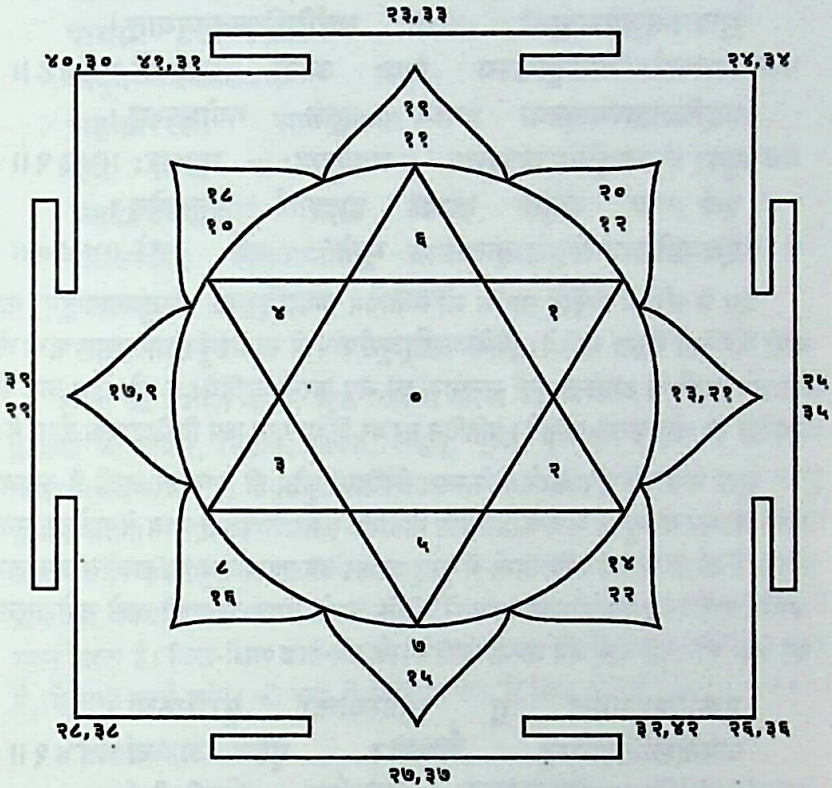
तान्त्रिक मन्त्रों से पूजन करने के उपरान्त गणेशसूक्त की बारह ऋचाओं से पूजन करना चाहिये। तदनन्तर षोडशोपचारों से अङ्ग-सहित पीठदेवताओं का पूजन करते हुये अनेकों प्रकार के नैवेद्य, मोदक, सिद्ध लड्डू, पायस, क्षीरखण्ड आदि अर्पण करते हुये गणनायक को सन्तुष्ट करना चाहिये। ईख के टुकड़ों, ईख के रस; केला, कटहल, नारियल, अनार आदि नाना प्रकार के फलों को अर्पित करते हुये कपूर-सहित पान एवं दक्षिणा प्रदान करते हुये मध्याह्न में पूजन करने के पश्चात् जप करना चाहिये।।४३१-४३४।।

आदौ जपेन्मन्त्रराजं वारद्वादशकं बुध: ।।४३५।।
ततश्च ऋग्द्वादशकं जपेत्सर्वमतन्द्रित: ।
अन्तर्द्वादशपाठे तु मन्त्रराजं पुनर्जपेत् ।।४३६।।

एवं क्रमेण कर्त्तव्यो वेदमन्त्रजपो हरे।
दिने दिने सदा कार्यो जपः संसिद्धिकारकः ॥४३७॥
सूक्तमन्त्रजपेनाशु सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्।
अथवा वक्रतुण्डस्य जप आदौ प्रजायते ॥४३८॥
षड्विंशद्वारमावृत्त्या मध्ये सूक्तं गणेश्वरम्।
पुनः षड्विंशकावृत्त्या वक्रतुण्डः षडक्षरः ॥४३९॥
एवं च संयुतं कृत्वा द्वादशर्चं मनुञ्जपेत्।
एवमष्टोत्तरशतं कृत्वा सूक्तं जपं हरे ॥४४०॥

जप के क्रम में विद्वान् साधक को सर्वप्रथम मन्त्रराज (ॐ वक्रतुण्डाय हुम्) का बारह बार जप करना चाहिये। इसके पश्चात् पूर्ण रूप से सावधान होकर बारह ऋचाओं का जप करने के उपरान्त पुनः मन्त्रराज का जप करना चाहिये। हे हरे! इस क्रम से वेदमन्त्र का जप करना चाहिये। प्रतिदिन बराबर किया गया जप सिद्धिदायक होता है।

सूक्त मन्त्र का जप करने से समस्त सिद्धियाँ शीघ्र ही प्राप्त हो जाती हैं अथवा पहले षडक्षर वक्रतुण्ड मन्त्र का छब्बीस बार जप करने के पश्चात् मध्य में गणेश्वर सूक्त का पाठ करना चाहिये और अन्त में पुनः षडक्षर वक्रतुण्ड मन्त्र का छब्बीस बार जप करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्रराज से संयुक्त करके बारह ऋचाओं वाले गणेशसूक्त का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये।।४३५-४४०।।

एकविंशत्सहस्रं तु सूक्तस्योक्ता पुरस्क्रिया।
जपाद्दशांशहोमस्तु पायसेन घृतेन च ॥४४१॥
शर्करापञ्चखाद्यैश्च कुसुमैः करवीरकैः।
बिल्वपत्रैरिक्षुदण्डैर्दाडिमैः कदलीफलैः ॥४४२॥
सोदकैर्लड्डुकैश्चैव घृतपक्वैर्मनोहरैः।
अलाभे सर्वद्रव्याणां जुहुयात्तिलसर्पिषा ॥४४३॥
होमस्य दशमांशेन गोपयोभिश्च तर्पयेत्।
अथवेक्षुरसेनैव तदभावे गुडोदकम् ॥४४४॥

गणेशसूक्त का पुरश्चरण इक्कीस हजार जप से कहा गया है। जप का दशांश हवन खीर, घृत, शक्कर, पंचमेवा, कनैल के फूल, बेलपत्र, ईक्षुदण्ड, अनार, केला, लड्डू एवं घृत में पाक किये गये अन्न से करना चाहिये। सभी द्रव्यों के अभाव में तिल और गोघृत से हवन करना चाहिये। हवन का दशांश तर्पण गोदुग्ध अथवा गन्ने के रस या उसके अभाव में गुड़-मिश्रित जल से करना चाहिये।।४४१-४४४।।

तर्पणस्य दशांशेन मार्ज्जयेच्छुभवारिभिः ।
मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणान् भोजयेद्बहून् ॥४४५॥
पायसैः खण्डखाद्यैश्च मोदकैः सिद्धलड्डुकैः ।
अपूपैर्मण्डकाद्यैश्च सघृतैः शर्करान्वितैः ॥४४६॥
सहकाररसैः साज्यैस्तथा च कदलीफलैः ।
एवं सिद्धे च सूक्ते तु सफलं तन्निगद्यते ॥४४७॥
महदैश्वर्य्यमतुलं प्रज्ञां विद्यां यशो बलम् ।
वाक्सिद्धिं समवाप्नोति चान्ते ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥४४८॥
यद्यत्कार्यं समुद्दिश्य क्रियते स पुरो जपः ।
तत्तद्गणपतेर्नूनं प्रसादात्सिध्यति ध्रुवम् ॥४४९॥

तर्पण का दशांश मार्जन शुद्ध जल से करना चाहिये और मार्जन का दशांश ब्राह्मणों को पायस, मिष्टान्न, मोदक, लड्डू, पूआ, घृत एवं शर्करा से समन्वित मण्डक (मैंदे की रोटी), गोघृतयुक्त आम का रस, केला आदि निवेदित करते हुये भरपूर भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार की विधि से सिद्ध किये गये गणेशसूक्त को सफल कहा गया है। गणेशसूक्त का इस विधि से अनुष्ठान करने वाला साधक महान् ऐश्वर्य, अतुल-नीय प्रज्ञा, विद्या, यश, बल एवं वाक्सिद्धि को प्राप्त करता है और अन्त में ब्रह्मलोक में गमन करता है। जिस-जिस कार्य को उद्देश्य बनाकर गणपति के समीप जप किया जाता है, वे सभी कार्य गणेश की कृपा से निश्चित रूप से सिद्ध होते हैं।।४४५-४४९।।

बन्धोच्चाटनयोर्द्वेषे मारणे बन्धमोक्षणे ।
वश्ये वादे महोत्पाते परचक्रभये तथा ॥४५०॥
महारण्ये रणे वैरिसङ्कुले सङ्कटे जपेत् ।
बन्धोच्चाटनयोर्द्वेषे सर्षपैर्लोहसंयुतैः ॥४५१॥
उलूककाकपक्षैश्च होमोऽरण्ये तु निर्जने ।
मारणे तु श्मशानस्थो रात्रौ कुर्य्याज्जपं रुषा ॥४५२॥
तिलैर्भल्लाटपुष्पैश्च राजिकालवणान्वितैः ।
मेषीलोमान्वितैश्चैव होमः स्यान्मारणे ध्रुवम् ॥४३३॥
श्मशाने च तथा रात्रौ जपं कुर्य्याद्धि रोषतः ।
आकर्षणार्थं साध्यानामुन्मत्तफलबीजकैः ॥४५४॥
गृध्रपक्षैस्ततश्चार्कमुक्तदुग्धैर्हुनेत्ततः ।
सप्तवासरपर्य्यन्तन्ततश्चाकर्षणं भवेत् ॥४५५॥

बन्धन, उच्चाटन, विद्वेषण, मारण, बन्धन से मोक्ष, वशीकरण, वाद-विवाद, महान् उत्पात, दूसरे राजा के आक्रमण का भय, घोर जंगल, युद्ध, वैरियों के समूह एवं संकट की उपस्थित् में इसका जप करना चाहिये।

बन्धन, उच्चाटन एवं विद्वेषण कर्म की सिद्धि के लिये निर्जन वन में रक्त से सिक्त सरसो एवं उल्लू तथा काक के पंख से हवन करना चाहिये। मारण कर्म की सिद्धि के लिये रात्रि में श्मशान में बैठकर क्रोध-पूर्वक जप करने के उपरान्त राई, सरसो, तिल, भिलावे का पुष्प एवं भेड़ी के लोम को मिलाकर हवन करने से निश्चित ही साध्य का मारण होता है। साध्यों का आकर्षण करने के लिये सात दिनों तक प्रतिदिन रात्रि के समय श्मशान में जाकर रोषपूर्वक मन्त्रजप करके धतूरे के बीज, गिद्ध के पंख और अकवन के दूध से हवन करने पर आकर्षण हो जाता है।।४५०-४५५।।

वश्यार्थं च जपं कुर्याद्विशेषेण शिवालये।
सूर्यास्तमनमारभ्य यावत्सूर्योदयो भवेत्।।४५६।।
तावन्मूलं सम्पुटेन जपेद्धूते त्रिरात्रके।
दिवा होमः प्रकर्त्तव्यो मधुपुष्पैः फलैस्तथा।।४५७।।
तथा च मालतीपत्रैर्घृतेन च समन्वितैः।
रक्तचन्दनसंयुक्तैर्मोदकैः सघृतैस्तिलैः।।४५८।।
तर्पयेदिक्षुरसकैः सद्यो वश्यकरं मतम्।
राजानो राजपुत्राश्च राजकीयाश्च मन्त्रिणः।।४५९।।
ईश्वरो वशतां याति मनुष्याणां तु का कथा।

वशीकरण के लिये विशेषतः शिवालय में जाकर सूर्यास्त से आरम्भ करके सूर्योदय तक तीन रात्रियों में मूल मन्त्र से सम्पुटित करके जप करना चाहिये। और दिन में मधुपुष्प, मधुफल, घृतसिक्त मालतीपत्र, रक्त चन्दन-समन्वित मोदक एवं घृतसिक्त तिल से हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् ईख के रस से तर्पण करने पर तत्काल वशीकरण होता है। इस अनुष्ठान से राजा, राजपुत्र, राजकीय मन्त्रिगण और ईश्वर भी वशीभूत हो जाते हैं; फिर मनुष्यों का तो कहना ही क्या है।।४५६-४५९।।

बन्धमोक्षाय कर्त्तव्यो जपो रात्रौ शिवालये।।४६०।।
उपवासव्रतो नित्यं ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
एकविंशतिसाहस्रं दिवा होमः शिवालये।।४६१।।
पायसेन घृताक्तेन बन्धमोक्षे भवेद् ध्रुवम्।
सर्वसाधारणो होमः प्रत्यर्च्चं हि विधानतः।।४६२।।

आदौ द्वादशवारेण मन्त्रेण द्वादशाहुतीः ।
पश्चान्मन्त्रविभागेन प्रत्यर्चं जुहुयाद् बुधः ॥४६३॥
अन्ते द्वादशवारांस्तु होमश्च मन्त्रराजतः ।
एवमेव प्रकारेण सर्वसाधारणे जपे ॥४६४॥
होमो गणेशसूक्तस्य सम्पुटस्य प्रजायते ।
एवं रुद्रविधानं तु देवीसूक्तं तथैव च ॥४६५॥
विष्णोस्तुभ्यं निगदितं यतो भेदो न आवयोः ।
अतः परन्तु ते चेच्छा यत्र तत्प्रति पृच्छ्यताम् ॥४६६॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे कलि-
प्रत्ययवेदमन्त्रप्रकाशो द्वादशः ॥१२॥

बन्धन से मुक्ति के लिये प्रतिदिन उपवास-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करके शिवालय में रात्रि के समय जप करना चाहिये और दिन में शिवालय में ही घृतसिक्त पायस से इक्कीस हजार हवन करना चाहिये। ऐसा करने से निश्चित ही बन्धन से मुक्ति मिल जाती है।

सर्वसाधारण हवन प्रत्येक ऋचा से विधिपूर्वक करना चाहिये। पहले बारह दिनों तक बारह ऋचाओं से बारह आहुतियाँ देने के उपरान्त मन्त्रों का विभाग करते हुये प्रत्येक ऋचा से एवं बारह दिनों के बाद मन्त्रराज से हवन करना चाहिये। इसी प्रकार से सर्वसाधारण जप में हवन करना चाहिये। इस प्रकार गणेशसूक्त एवं सम्पुट का होम पूर्ण हो जाता है। यही रुद्रविधान है और इसी प्रकार का विधान देवीसूक्त का भी है। हे विष्णु! मुझमें और आपमें कोई भेद नहीं है; इसीलिये आपसे मैंने इसे कहा। इसके पश्चात् आपकी जिस विषय के प्रति जिज्ञासा हो, उसे मुझसे पूछिये।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में
शिवप्रणीत 'कलिप्रत्ययवेदमन्त्र'-नामक द्वादश
प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

अथ त्रयोदशः प्रकाशः

(नवग्रहकथनप्रकाश:)

नीचोच्चस्थानगतग्रहाणां सुखदुःखदत्वकथनम्

श्रीदेव्युवाच

अहो दुःखप्रदाः खेटाः प्रायः कलियुगे सदा।
तेषां तु वेदमार्गेण कीदृक्पूजा मनुश्च कः ॥१॥
कथन्ते दोषमायादिपीडा यच्छन्ति नो नृणाम्।
वेदमार्गेण च ब्रूहि तेषां पूजाविनिर्णयम् ॥२॥

नीच एवं उच्च स्थानगत ग्रहों से होने वाले सुख-दुःख—श्रीदेवी ने कहा कि कलियुग में ग्रह प्राय: दु:खप्रद होते हैं। ऐसी स्थिति में वैदिक मार्ग से उनकी कौन-सी पूजा किस मन्त्र से की जाय? किस प्रकार ग्रहदोष-जनित पीड़ा मनुष्यों को न प्राप्त हो, उस वैदिक मार्ग को एवं उस वैदिक मार्गानुसारी पूजा की विधि को भी आप कहें।।१-२।।

श्रीशिव उवाच

साधु पृष्टं त्वया देवि ग्रहपूजाविनिर्णयः।
विना कालं तु दुःखेन सर्वान् सम्पीडयन्ति हि ॥३॥
नीचं कुर्वन्ति चोच्चस्थाः खेचराश्चक्रवर्त्तिनम्।
चक्रवर्तिसुतं दासं यदा ते नीचसंस्थिताः ॥४॥

श्री शिवजी ने कहा—हे देवि! ग्रह-पूजन का निर्णय-सम्बन्धी आपने अत्यन्त सुन्दर प्रश्न किया है। नीचस्थ ग्रह विना काल के ही सभी को दु:ख से पीड़ित करते हैं। उच्चस्थ ग्रह चक्रवर्ती बना देते हैं और नीचस्थ ग्रह चक्रवर्त्ती के पुत्र को भी दास (सेवक) बना देते हैं।।३-४।।

आत्मा सूर्योऽस्ति कालस्य मनः शुभ्रांशुरुच्यते।
सत्त्वं भौमो वचश्चान्द्रिर्जीवो ज्ञानसुखे तथा ॥५॥
सितः कामः शनिर्दुःखं छाया राहुः शिखी शिखा।
खेटोपासनतो मर्त्यस्त्रिकालज्ञः प्रजायते ॥६॥

वैदिकेन तु मार्गेण ये ग्रहान् समुपासते।
ग्रहलोके तु ते सौख्यं ग्रहैश्च सह भुञ्जते॥७॥

काल का आत्मा सूर्य, मन चन्द्रमा, सत्व मंगल, वाणी बुध, ज्ञान एवं सुख बृहस्पति, काम शुक्र, दुःख शनि, छाया राहु एवं शिखा केतु हैं। ग्रहोपासना से मनुष्य त्रिकालज्ञ हो जाता है।

वैदिक मार्ग से जो लोग ग्रहों की सम्यक् रूप से उपासना करते हैं, वे ग्रहलोक को प्राप्त करके ग्रहों के साथ सुख का भोग करते हैं।।५-७।।

भास्करमन्त्रकथनम्

तत्र भास्करमन्त्रस्य हिरण्यस्तूपको मुनिः।
त्रिष्टुप्छन्दो देवता तु सविता परिकीर्तितः॥८॥
आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥९॥
अङ्गुष्ठादिषडङ्गादिषड्वर्णान् विभजंश्चरेत्।
भुवनस्याथ मन्त्रस्य पदन्यासं समाचरेत्॥१०॥
श्रीसूक्तोक्तऋचां स्थाने ततो ध्यायेद्दिवाकरम्॥११॥

सूर्यमन्त्र—उन ग्रहों में से सूर्यमन्त्र के ऋषि हिरण्यस्तूपक, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता सविता हे गये हैं। मन्त्र है—

आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्।।

इस सूर्यमन्त्र का करन्यास इस प्रकार किया जाता है—आकृष्णेन रजसा अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, वर्त्तमानो निवेशयन् तर्जनीभ्यां नमः, अमृतं मर्त्यं च मध्यमाभ्यां नमः, हिरण्ययेन सविता अनामिकाभ्यां नमः, रथेन देवो याति कनिष्ठिकाभ्यां नमः, भुवनानि पश्यन् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इस सूर्यमन्त्र का षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—आकृष्णेन रजसा हृदयाय नमः, वर्त्तमानो निवेशयन् शिरसे स्वाहा, अमृतं मर्त्यं च शिखायै वषट्, हिरण्ययेन सविता कवचाय हुम्, रथेन देवो याति नेत्रत्रया वौषट्, भुवनानि पश्यन् अस्त्राय फट्।

इस सूर्यमन्त्र का पदन्यास इस प्रकार किया जाता है—१. आ मूर्ध्नि, २. कृष्णेन नेत्रयोः, ३. रजसा कर्णयोः, ४. वर्त्तमानो नासिकायाम्, ५. निवेशयन् मुखे, ६. अमृतं गले, ७. मर्त्यं बाह्वोः, ८. च हस्तयोः, ९. हिरण्ययेन नाभौ, १०. सविता लिङ्गे, ११. रथेन

पायौ, १२. देव: ऊरुयुग्मे, १३. याति जानुयुग्मे, १४. भुवनानि जङ्घायुग्मे, १५. पश्यन् पादयुग्मे।।८-११।।

पद्मासनं पद्मकरं पद्मगर्भसमद्युतिम्।
सप्ताश्वं सप्तखड्गं च जातं देशे कलिङ्गके।।१२।।
विश्वामित्रार्यकं त्रिष्टुप्छन्दः काश्यपगोत्रजम्।
रक्ताम्बरधरं रक्ताभरणैरुपशोभितम्।।१३।।
रक्तगन्धानुलेपाङ्गं रक्तध्वजपताकिनम्।
किरीटिनं सकेयूरं मण्डितं रक्तच्छत्रिणम्।।१४।।
रथारूढं तस्य सव्यं त्वधिदैवाग्न्यधिष्ठितम्।
प्रत्यधिदैवेश्वरेणासव्ययुक्तं च प्राङ्मुखम्।।१५।।
ध्यात्वैवं पूजयेद् भानुं फुल्लाक्षतविनिर्मिते।
द्वादशाङ्गुलयुक्ते च श्रीपर्णादिकपीठके।।१६।।

सूर्यध्यान—कमल के आसन पर विराजमान, हाथ में कमल धारण किये हुये, कमलगर्भ के समान कान्तिमान, सात अश्वों एवं सात खड्गों से समन्वित, कलिङ्ग देश में प्रादुर्भूत, विश्वामित्र के गुरु, त्रिष्टुप् छन्द वाले, काश्यप गोत्र में उत्पन्न, रक्त वस्त्र धारण करने वाले, रक्त आभूषणों से सुशोभित, रक्त गन्ध का अपने अंगों में लेप लगाये हुये, रक्त वर्ण के ध्वज एवं पताका धारण करने वाले, किरीट एवं केयूर से शोभायमान, रक्त छत्र धारण करने वाले, रथ पर आरूढ़, सव्य (वाम) भाग में अधिदैवाग्नि एवं अपसव्य (दक्षिण) भाग में प्रत्यधिदैवेश्वर से समन्वित, पूर्वाभिमुख—इस प्रकार ध्यान कर पुष्प एवं अक्षत से बनाये गये बारह अंगुल विस्तृत श्रीपर्णादि पीठ पर भानु का पूजन करना चाहिये।।१२-१६।।

अत्राधिदैवतं पूज्यं तथा प्रत्यधिदैवतम्।
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं जुहुयात्तद्दशांशतः।।१७।।
होमस्वाल्प्ये जपः कार्य्यस्त्वधिप्रत्यधिदैवते।
करवीरादिकुसुमै रक्तचन्दनमिश्रितैः।।१८।।
दूर्वाङ्कुरैश्चाक्षतैश्च तर्पणं स्याद्दिनेशितुः।
मधुच्छन्दा मुनिश्छन्दो गायत्र्यग्निश्च देवता।।१९।।
विनियोगस्तु सवितुः प्रीतये चेति कीर्त्तयेत्।।२०।।
अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातरम्।।२१।।

वामदेवो मुनिश्छन्दोऽनुष्टुब्रुद्रस्तु देवता।
विनियोगस्तु सवितुः प्रीतये चेति कीर्तयेत् ॥२२॥
आ वो राजानामध्वरस्य रुद्रꣳहोतारꣳ सत्ययजरोदस्योः।
अग्निं पुरा तनयित्नो सविता हिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥२३॥
होमस्त्वर्कसमिद्भिः स्यादभावे कमलाक्षकैः।
तदभावे यवतिलघृतैर्वा मधुरत्रयैः ॥२४॥

इसी श्रीपर्णादि पीठ पर अधिदेव एवं प्रत्यधिदेव का भी पूजन करने के उपरान्त मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने लाख अर्थात् बयालीस लाख मन्त्रजप करना चाहिये। तदनन्तर कृत जप का दशांश हवन करना चाहिये। हवन में न्यूनता होने पर अधिदेव और प्रत्यधिदेव के मन्त्रों का जप करना चाहिये। तत्पश्चात् रक्त चन्दन-मिश्रित करवीर आदि के पुष्पों, दूर्वाङ्कुरों एवं अक्षतों से दिन के स्वामी को तर्पण करना चाहिये।

'इस मन्त्र के ऋषि मधुछन्दा, छन्द गायत्री एवं देवता अग्नि हैं; सविता की प्रीति के लिये इसका विनियोग किया जाता है'—ऐसा कहना चाहिये। मन्त्र है—'अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातरम्।' 'इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता रुद्र हैं तथा सविता की प्रीति के लिये इसका विनियोग किया जाता है'—ऐसा कहना चाहिये। मन्त्र है—'आ वो राजानामध्वरस्य रुद्रꣳ होतारꣳ सत्ययजरोदस्योः। अग्निं पुरा तनयित्नो सविता हिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्।' हवन अकवन की समिधा से, उसके अभाव में कमलगट्टे से, उसके अभाव में यव, तिल एवं घृत से और उसके भी अभाव में मधुरत्रय से करना चाहिये।।१७-२४।।

अदृष्टसूर्यो नाश्नीयान्न रात्रौ भानुवासरे।
त्यजेच्च लवणं तक्रं दिवा स्वापं च मैथुनम् ॥२५॥
त्रिकालं प्रजपेत्सूक्तं पूजयेत्तु विशेषतः।
एवं सिद्धे मनौ जाते नृपाः स्युस्तस्य किङ्कराः ॥२६॥
तस्य पादोदकादेव रोगसङ्घो विलीयते।
सिद्धमन्त्रो मुमूर्षुस्तु च्छायां पश्यत्यशीर्षिकाम् ॥२७॥

सूर्य के अदृश्य हो जाने पर एवं रविवार की रात्रि में भोजन नहीं करना चाहिये। रविवार के दिवसीय भोजन में भी नमक एवं मट्ठा का ग्रहण नहीं करना चाहिये; रविवार को दिन में शयन नहीं करना चाहिये एवं मैथुन का भी परित्याग करना चाहिये।

तीनों सन्ध्याओं में सूक्त का जप करने के साथ-साथ भगवान् भास्कर का पूजन भी अवश्य करना चाहिये। ऐसा करने से मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर राजागण भी उस

साधक के दास हो जाते हैं। ऐसे सिद्ध साधक के पादोदक से ही समस्त रोगों का विनाश हो जाता है। मन्त्रसिद्ध साधक अपने मरणकाल में अपनी छाया को शिर से रहित देखता है।।२५-२७।।

कुष्ठादिरोगग्रस्तस्तु साधकोऽर्घ्याणि दापयेत्।
आरोग्यार्थं त्वृचा पादैरथ ऋक्त्रितयैः स्वयम्॥२८॥
एवं चतुर्विंशतिभिरिष्ट्वा सूर्यं तु तर्पयेत्।
त्रिकालाद्यैस्तदा हन्ति दुःसाध्यानपि भास्करः॥२९॥

कुष्ठ आदि रोगों से आक्रान्त साधक को आरोग्य-प्राप्ति के लिये पाद-सहित तीन ऋचाओं से स्वयं अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। इसी प्रकार यदि तीनों कालों में चौबीस ऋचाओं से सूर्य का अर्चन करने के पश्चात् तर्पण किया जाय तो भगवान् भास्कर दुःसाध्य रोगों का भी विनाश कर देते हैं।।२८-२९।।

पुष्पाणि करवीरस्य रक्तचन्दनचन्दने।
दूर्वाक्षते कुशाग्राणि तिलांस्तत्त्रयमेव च॥३०॥
एतान्यावश्यकान्याहुरर्चनेऽष्टौ यथोत्तरम्।
निक्षिप्य ताम्रपात्रे तु कस्तूरीं केशरं विधुम्॥३१॥
मन्त्रैर्वापि च गायत्र्या जानुभ्यां धरणीं गतः।
दृष्ट्वा सूर्यं नमस्कृत्य दद्यादर्घ्यमनन्यधीः॥३२॥
अभिषिञ्चेच्च शिरसि ऋचाभिर्दत्ततोयकैः।
त्यजेत्पूर्वोदितं सर्वं भानुवारे विशेषतः॥३३॥
कुष्ठाद्या ये महारोगाः षण्मासाद्यान्ति संक्षयम्।
उपकुष्ठादयो ये च कृते सन्ध्याद्वयेऽपि ते॥३४॥

सूर्य के अर्चन के लिये क्रमशः कनैल का फूल, रक्तचन्दन, चन्दन, दूब, अक्षत, कुशाग्र एवं मधुरत्रय—ये आठ पदार्थ आवश्यक कहे गये हैं। इन सबों को ताम्रपात्र में रखकर उसमें कस्तूरी, केशर एवं कपूर सूर्यमन्त्र अथवा गायत्री मन्त्र द्वारा मिलाने के पश्चात् एकाग्र मन से घुटने के बल पृथिवी पर बैठकर सूर्य को देखकर नमस्कार करके अर्घ्य प्रदान करना चाहिये और उस प्रदत्त जल से ऋचाओं द्वारा शिर पर अभिषेक करना चाहिये। पूर्वोक्त आठो पदार्थों को सूर्य-हेतु रविवार के दिन अवश्य त्याग करना चाहिये। ऐसा करने से छः मास में ही कुष्ठ आदि महारोग नाश को प्राप्त हो जाते हैं एवं जो उपकुष्ठादि रोग होते हैं, वे तो उक्त विधि से दोनों सन्ध्याओं में अर्चन करने से भी नष्ट हो जाते हैं।।३०-३४।।

एकसन्ध्यार्चनेनापि सूर्यावर्त्तादयो गताः ।
केचित्तु सप्ततिदिनैर्मण्डलेन त्रिसप्तकैः ॥३५॥
सप्तमेनापि चैकाहात्तारतम्यं विचारयेत् ।
स्वप्यान्नैवोदयेऽस्ते च पूजयित्वेष्टमाप्नुयात् ॥३६॥
उद्यन्नद्य मित्रमहमारोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥३७॥
शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि ।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं निदध्मसि ॥३८॥
उदगादयमादित्यो विश्वेन महसा सह ।
द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्मो अहं द्विषतेरघम् ॥३९॥

सूर्यावर्त आदि रोग प्रतिदिन एक सन्ध्या में अर्चन करने से भी विनष्ट हो जाते हैं। कतिपय रोग तो सत्तर दिन, चालीस दिन अथवा इक्कीस दिन तक अर्चन करने से ही समाप्त हो जाते हैं। इसमें प्रथम दिन से सात दिनों तक के तारतम्य का ध्यान रखना चाहिये। यजनकाल में कभी भी सूर्योदय एवं सूर्यास्त के समय शयन नहीं करना चाहिये। इस प्रकार पूजन करके साधक अपने अभीष्ट को प्राप्त कर लेता है। आरोग्य-प्राप्ति के लिये अर्चन-हेतु मूलोक्त 'उद्यन्नद्य, शुकेषु मे, उदगादयमादित्यो' इन तीन ऋचाओं का ग्रहण करना चाहिये।।३५-३९।।

एकादशर्चसूक्तस्य हिरण्यस्तूपको मुनिः ।
त्रिष्टुब्जगत्यौ छन्दसी देवता सविता मतः ॥४०॥
ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे ।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये ॥४१॥
आकृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च ।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन् ॥४२॥
याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो यातु सविता परावतोऽपविश्वा दुरिता बाधमानः ॥४३॥
अभी वृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम् ।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीन्दधानः ॥४४॥
विजनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यं रथं हिरण्य प्र उ गं वहन्तः ।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः ॥४५॥
तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एकायमस्य भुवने विराषाट् ।
आणिं न रथ्यममृताधितस्थुरिह ब्रवीतु या उतच्चिकेत तत् ॥४६॥

विसुपर्णो अन्तरिक्षाण्यरव्यङ्गभीरवेषा असुरः सुनीथः ।
क्वेदानीं सूर्य्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्याततान ॥४७॥
अष्टौ व्यरव्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्रीधन्वयोजना सप्तसिन्धून् ।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्य्याणि ॥४८॥
हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते ।
अपामीवां बाधते वेति सूर्य्यमभिकृष्णेन रजसा द्यामृणोति ॥४९॥
हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृडीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।
अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥५०॥
ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासो रेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥५१॥
करवीरजपामुस्तदेवदारुमनःशिलाः ।
केशरैलापद्मकाष्ठमधुपुष्पौघबालकैः ॥५२॥
एतज्जापी प्रतिदिनमेतद्युक्तजलैश्चरेत् ।
स्नानं सूर्यस्य सन्तुष्ट्यै दुष्टो वा यस्य भास्करः ॥५३॥
कौसुम्भवस्त्रं कनकं माणिक्यं गां तथैव वा ।
सर्वञ्चैकतरं दद्यान्नित्यं भास्करसेवकः ॥५४॥
दद्यादशक्तो गोधूमाँस्तथा भास्करपीडितः ।
गुडान्नाशी तु नित्यं स्याद्धारयेदर्कमूलकम् ॥५५॥

एकादश ऋचाओं वाले सूक्त के ऋषि हिरणस्तूपक, छन्द त्रिष्टुप् एवं जगती तथा देवता सविता कहे गये हैं। वे ग्यारह ऋचायें हैं—ह्वयाम्यग्निं, आकृष्णेन, याति देवः, अमी वृतं, विजनाञ्छ्यावा, तिस्रो द्यावः, विसुपर्णो, अष्टौ व्यरव्यत्, हिरण्यपाणिः, हिरण्यहस्तो एवं ये ते पन्थाः—इन मूलोक्त ग्यारह ऋचाओं का जप करने वाले साधक को भगवान् भास्कर की प्रसन्नता के लिये प्रतिदिन कनैल, अड़हुल, मुस्त (मोथा), देवदारु, मैनसिल, केशर, इलायची, कमलकाष्ठ, महुआ फूल और बाला को जल में मिलाकर उसी जल से स्नान करना चाहिये। जिसके सूर्य प्रतिकूल हों, उसे कुसुम्भी रंग के वस्त्र, सुवर्ण, माणिक्य एवं गौ—इन सबको अथवा इनमें से किसी एक को सूर्योपासक को प्रदान करना चाहिये। उक्त वस्तुओं को समग्र रूप से अथवा उनमें से किसी एक का भी दान करने में साधक यदि समर्थ न हो तो उस स्थित में गेहूँ का दान करना चाहिये। सूर्य-पीड़ित साधक को प्रतिदिन गुड़ एवं अन्न का भोजन करना चाहिये तथा अकवन के जड़ को धारण करना चाहिये।।४०-५५।।

चन्द्रमन्त्रकथनम्

अथ वक्ष्ये चन्द्रमन्त्रं गौतमोऽस्य मुनिर्मतः।
गायत्री छन्द इत्येकं सोमो देवः प्रकीर्त्तितः ॥५६॥
आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवावाजस्य सङ्गथे ॥५७॥
षड्दीर्घबिन्दुयुक्तेन सकारेण षडङ्गकम्।
पदन्यासश्च कर्त्तव्यो रुद्रोक्ताङ्गेषु दिक्षु च ॥५८॥

चन्द्र-मन्त्र—अब चन्द्रमन्त्र को कहता हूँ। चन्द्रमन्त्र के ऋषि गौतम, छन्द गायत्री एवं देवता सोम कहे गये हैं। मन्त्र है—'आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्। भवावाजस्य सङ्गथे।' इसका करन्यास इस प्रकार किया जाता है—सां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, सीं तर्जनीभ्यां नमः, सूं मध्यमाभ्यां नमः, सैं अनामिकाभ्यां नमः, सौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, सः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—सां हृदयाय नमः, सीं शिरसे स्वाहा, सूं शिखायै वषट्, सैं कवचाय हुं, सौं नेत्रत्रयाय वौषट्, सः अस्त्राय फट्। इसका पदन्यास रुद्रसूक्त में पठित अंगों में इस प्रकार किया जाता है—१. आप्याय शिरसि, २. स्व भ्रुवोः, ३. सम् नेत्रयोः, ४. एतु मुखे, ५. ते गण्डयोः, ६. विश्वतः हृदये, ७. सोम जठरे, ८. वृष्ण्यम् लिङ्गे, ९. भवा हृदये, १०. वाजस्य जान्वोः, ११. सङ्गथे पादयोः।।५६-५८।।

किरीटिनं श्वेतवस्त्रं दशाश्वं श्वेतभूषणम्।
पाशपाणिं द्विबाहुं तमत्रिगोत्रसमुद्भवम् ॥५९॥
जातं यवनदेशे च श्वेतगन्धानुलेपनम्।
श्वेतध्वजपताकाढ्यं केयूरमणिभूषितम् ॥६०॥
श्वेताकृतिं रथारूढमधिदेवेन संयुतम्।
तथा प्रत्यधिदेवेन वायव्याभिमुखं युतम् ॥६१॥
एवं ध्यात्वा चतुर्विंशत्यङ्गुलीचतुरस्रके।
श्वेताक्षतकृते चन्द्रमर्चेद्देवद्वयान्वितम् ॥६२॥

ध्यान—माथे पर मुकुट धारण करने वाले, श्वेत वस्त्र धारण किये हुये, दश अश्वों से समन्वित, श्वेत आभूषण से अलंकृत, हाथ में पाश धारण किये हुये, दो भुजाओं वाले, अत्रि गोत्र में प्रादुर्भूत, यवनदेश में उत्पन्न, श्वेत गन्ध का अनुलेपन लगाये, श्वेत ध्वज एवं पताका से सुशोभित, केयूर एवं मणि से विभूषित, श्वेत आकृति वाले, रथ पर सवार, अधिदेवता से समन्वित, वायुकोणाभिमुख प्रत्यधिदेवता से युक्त चन्द्रमा का

ध्यान करके श्वेत अक्षत से निर्मित चौबीस अंगुल चतुरस्र पीठ पर दो देवताओं (अधिदेवता-प्रत्यधिदेवता) से समन्वित चन्द्रमा का पूजन करना चाहिये।।५९-६२।।

वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं सर्वेष्वेतेष्वयं विधिः।
जपाद्यं पूर्ववत् सर्वमधिप्रत्यधिदेवयोः ।।६३।।
श्वेताक्षतैश्च पुष्पैश्च श्रीखण्डेन च कम्बुना।
श्वेतदूर्वान्वितैस्तर्प्यः पलाशसमिधो हुनेत् ।।६४।।
घृताक्तास्तदभावे तु वटस्य परिकीर्त्तिताः।
अशक्तौ तदभावे वा जपेन्मन्त्रं दशांशतः ।।६५।।

पूजन के पश्चात् मन्त्र में जितने वर्ण हैं, उतने लाख मन्त्रजप करना चाहिये। यत: मन्त्र में चौबीस वर्ण हैं; अत: चौबीस लाख मन्त्रजप करना चाहिये। सर्वत्र इसी विधि का पालन करना चाहिये। मन्त्रजप के पूर्व अधिदेव एवं प्रत्यधिदेव का पूजन अवश्य करना चाहिये।

जप की समाप्ति पर श्वेत अक्षत, श्वेत पुष्प, चन्दन, शंख एवं श्वेत दूब से समन्वित जल से जप का दशांश तर्पण करने के उपरान्त घृतसिक्त पलाश की समिधा से अथवा उसके अभाव में वट की समिधा से हवन करना चाहिये। हवन करने में असमर्थ होने अथवा वट-समिधा के भी अनुपलब्धि की स्थिति में दशांश मन्त्र-जप करना चाहिये।।६३-६५।।

मेधातिथिर्ऋषिः प्रोक्तोऽनुष्टुब्छन्द उदाहृतम्।
आपोऽत्र देवताश्चन्द्रप्रीतये विनियोजनम् ।।६६।।
अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निञ्च विश्वशम्भुवम् ।।६७।।
ऋषिर्दीर्घतमाः प्रोक्ता जगती छन्द ईरितम्।
देवतोमा समाख्याता नियोगश्चन्द्रतुष्टये ।।६८।।
गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी चतुष्पदी।
अष्टापदी दशपदी बुभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ।।६९।।

मूलोक्त 'अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा। अग्निञ्च विश्वशम्भुवम्।' मन्त्र के ऋषि मेधातिथि, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता आप (जल) कहे गये हैं। चन्द्रमा की प्रसन्नता के लिये इस चन्द्रमन्त्र का विनियोग किया जाता है।

मूलोक्त 'गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी द्विपदी चतुष्पदी। अष्टापदी दशपदी

बुभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन्।' मन्त्र के ऋषि दीर्घतमा, छन्द जगती एवं देवता उमा कहे गये हैं तथा चन्द्र की तुष्टि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।।६६-६९।।

पौर्णिमायां निराहारः सायं चन्द्रं प्रपूजयेत्।
क्षीरेणार्घ्यं तु शङ्खेन दद्याद्देवस्य तुष्टये ॥७०॥
सूक्तं चन्द्रमसो जप्यं प्रागवच्चन्द्रस्य सवनात्।
शान्तो दान्तः सुकीर्तिश्च श्रीमान्दाता सुरूपवान् ॥७१॥

पूर्णिमा तिथि के दिन निराहार रहकर सायंकाल चन्द्रमा का पूजन करने के पश्चात् देवता की तुष्टि के लिये शंख के द्वारा दूध का अर्घ्य प्रदान करना चाहिये। तदनन्तर चन्द्रमस् सूक्त का जप करना चाहिये। अनन्तर पूर्ववत् चन्द्रसवन करने से साधक शान्त (सौम्य), दान्त (जितेन्द्रिय), सुयश-सम्पन्न, धनाधिप, दानी एवं सुन्दर रूप वाला हो जाता है।।७०-७१।।

त्रयोविंशर्चसूक्तस्य गौतमोऽस्य मुनिर्मतः।
छन्दस्त्रिष्टुब्देवता च चन्द्रमाः परिकीर्तितः ॥७२॥
त्वं सोम प्रचिकितो मनीषा त्वं रजिष्ठमनुनेषि पन्थाम्।
तव प्रणीती पितरो न इन्द्रो देवेषु रत्नमभजन्त धीराः ॥७३॥
त्वं सोम क्रतुभिः सुक्रतुर्भूस्त्वं दक्षैः सुदक्षो विश्ववेदाः।
त्वं वृषा वृषत्वेभिर्महित्वाद्युम्नेभिर्द्युम्न्यभवोनृचक्षाः ॥७४॥
राज्ञो न ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरन्तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्य्यमेवासि सोम ॥७५॥
या ते धामानि दिवि या पृथिव्याम्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेलन्राजन्सोम प्रतिहव्या गृभाय ॥७६॥
त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा।
त्वम्भद्रो असि क्रतुः ॥७७॥
त्वञ्च सोम नो वसो जीवातु न भरामहे।
प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥७८॥
त्वं सोम महे भगं त्वं यून ऋतायते।
दक्षं दधासि जीवसे ॥७९॥
त्वन्नः सोम विश्वतो रक्षा राजन्नघायतः।
नरिष्ये त्वावतः सखा ॥८०॥

सोम यास्ते मयो भुव ऊत्यः सन्ति दाशुषे।
ताभिर्नोविता भव ॥८१॥
इमं यज्ञमिदं वचो जुषाण उपागहि।
सोम त्वं नो वृधे भव ॥८२॥
सोमगीर्भिरिष्ट्वा वयं वर्धयामो वचोविदः।
समृडीको न आविश ॥८३॥
गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः।
सुमित्रः सोम नो भव ॥८४॥
सोमरारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य्ये इव स्व ओक्ये ॥८५॥
यः सोमसख्ये तव रारणद्देवमर्त्यः।
तं दक्षः स च ते कविः ॥८६॥
उरुष्याणो अभिशस्तेः सोम निपाह्यंहसः।
सखा सुशेव एधि नः ॥८७॥
आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम्।
भवा वाजस्य संगथे ॥८८॥
आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखावृधे ॥८९॥
सन्ते पयांसि समु यन्तु वाजाः संवृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥९०॥
या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्।
गयस्फानः प्रतरणः सुवीरो वीरहा प्रचरासोमदुर्यान् ॥९१॥
सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्म्मण्यं दधाति।
सादन्यं विदथ्यं सभेयम्पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥९२॥
अषाह्ळंयुत्सु पृतनासु प्रियं स्वषामप्सां वृजिनस्य गापाम्।
भरेषुजां सुक्षितिं सुश्रवः संजयन्तं त्वामनुमदेम सोम ॥९३॥
त्वमिमा औषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वङ्गाः।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्ष त्वं ज्योतिषा वितमो ववर्थ ॥९४॥
देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागंसहसावन्नभियुध्य।
मा त्वा तनदीशिषे वीर्य्यस्योभयेभ्यः प्रचिकित्सागमिष्ठौ ॥९५॥

तेईस ऋचाओं वाले इस चन्द्रसूक्त के ऋषि गौतम, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता चन्द्रमा कहे गये हैं। सूक्त की तेईस ऋचायें 'त्वं सोम प्रचिकितो' से आरम्भ कर 'प्रचिकित्सागमिष्ठौ' पर्यन्त मूल में पठित हैं।।७२-९५।।

पञ्चगव्यञ्च रजतम्मौक्तिकं शङ्खशुक्तिके।
कुमुदानि जले क्षिप्त्वा स्नानञ्चन्द्रस्य तुष्टये॥९६॥
श्वेतं वृषं घृतघटं शङ्खङ्कांस्यस्य भाजनम्।
मुक्ताहारं च विभवे तारं वा शक्तितो ददेत्॥९७॥
चन्द्रसेवाकरो नित्यम्भक्षयेत्पायसं सितैः।
सुगन्धैश्च फलैर्युक्तं सोममूलं च धारयेत्॥९८॥
एवं चन्द्रस्य सूर्य्यस्य कुरुते य उपासनाम्।
महापातकजात्रोगान्स तु नाशयितुं क्षमः॥९९॥
शुक्लपुष्पान्वितदिने सङ्कल्पस्य च योजनम्।
आदौ रोगं समुच्चार्य तन्नाशाय ततो वदेत्॥१००॥
देशकालादि चोच्चार्य्य गोत्राचारादिपूर्वकम्।
साध्यनाम तु षष्ठ्यन्तं ह्यृचा कल्पेन चोच्चरेत्॥१०१॥
अर्घ्यदानं करिष्यामि तर्पयामि च वा वदेत्।
शिखाबन्धन्ततः कृत्वा भूतोत्सादनमाचरेत्॥१०२॥
प्रार्थयित्वा च पृथिवीं संविशेच्च निजासने।
सुदर्शनस्य मन्त्रेण दिशां बन्धं समाचरेत्॥१०३॥
सर्वरोगनिवारणाय शार्ङ्गाय पदं वदेत्।
सशरायास्त्रराजाय चतुर्थ्यन्तं सुदर्शनम्॥१०४॥
सप्तविंशतिवर्णोऽयं हृदन्तो मनुरुच्यते।
भूतशुद्धिन्ततः कृत्वा प्राणस्थापनमाचरेत्॥१०५॥

चन्द्रमा को प्रसन्न करने के लिये जल में पञ्चगव्य, चाँदी, मोती, शंख, सीप एवं कुमुद मिलाकर स्नान करना चाहिये। साथ ही यथाशक्ति श्वेत बैल, घृतपूर्ण घट, शंख, काँसे का बर्त्तन, मोती का हार दान में देना चाहिये। चन्द्रसेवी को प्रतिदिन फलों के साथ-साथ सुगन्धित श्वेत पायस (खीर) का भोजन करना चाहिये एवं सोमलता की जड़ को धारण करना चाहिये।

इस प्रकार चन्द्रमा एवं सूर्य की जो साधक उपासना करता है, वह अतिभीषण पातकों के कारण होने वाले रोगों का भी विनाश करने में समर्थ हो जाता है।

दिन में श्वेत पुष्प हाथ में लेकर संकल्प करते हुये सर्वप्रथम रोग के नाम का उच्चारण करने के पश्चात् 'नाशाय' पद का उच्चारण करना चाहिये। तदनन्तर देश-काल का उच्चारण करके गोत्र को कहते हुये साध्य के षष्ठ्यन्त नाम का उच्चारण करके 'ऋचाकल्पेन' कहने के पश्चात् 'अर्घ्यदानं करिष्यामि' अथवा 'तर्पयामि' कहना चाहिये। तदनन्तर शिखाबन्धन करके भूतोत्सादन करना चाहिये। इसके बाद पृथिवी की प्रार्थना करके अपने आसन पर सम्यक् रूप से बैठकर सुदर्शन-मन्त्र से दिग्बन्धन करना चाहिये। सत्ताईस अक्षरों का सुदर्शन मन्त्र इस प्रकार कहा गया है—सर्वरोगनिवारणाय शार्ङ्गाय सशरायास्त्रराजाय सुदर्शनाय नमः। दिग्बन्धन करने के उपरान्त भूतशुद्धि करके प्राणप्रतिष्ठा करनी चाहिये।।९६-१०५।।

ऋचा स्वाङ्गानि संस्पृश्य गुरुं चापि परं गुरुम्।
परात्परं गुरुं ध्यात्वा न्यासं कुर्यात्ततः परम्।।१०६।।
उद्यन्नद्य मित्रमहो दक्षिणे तु करे न्यसेत्।
कृतमत्र मया यच्च मित्रो रक्षतु मां ततः।।१०७।।
वामहस्ते न्यसेच्चैव आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
विहिताकरणात्पापाद्रवी रक्षतु मां सदा।।१०८।।
हृद्रोगं मम सूर्येति हृदये तु प्रविन्यसेत्।
अज्ञानकृतपापात्तु सूर्यो रक्षतु मां सदा।।१०९।।
हरिमाणञ्च नासायां विन्यसेन्मस्तकोपरि।
भानुस्तु सर्वभूतेभ्यः सर्वदा मां च रक्षतु।।११०।।
शुकेषु मे हरिमाणं दक्षिणे चरणे न्यसेत्।
निषिद्धगमनात् पापाद्भानू रक्षतु मां सदा।।१११।।
रोपणा कासु दध्मसि वामपादे तु विन्यसेत्।
ऋतुस्त्रीसङ्गसम्भूतात् पापात् पूषाभिरक्षतु।।११२।।
अथो हारिद्रवेषु मे नाभिदेशे तु विन्यसेत्।
हिरण्यगर्भोऽवतु मां तमोजात्पापतः सदा।।११३।।
हरिमाणन्निदध्मसि जिह्वायां च मुखे न्यसेत्।
मुखजिह्वोद्भवात् पापान्मरीचिर्मां सदाऽवतु।।११४।।
उदगादयमादित्यो न्यसेद्दक्षिणचक्षुषि।
मामादित्योऽवतु सदा दृक्समुद्भवपातकात्।।११५।।
विश्वेन महसा सह विन्यसेद्वामचक्षुषि।
यद् दृष्टव्यन्न तद्दृष्टन्तत्पापात् सविताऽवतु।।११६।।

द्विषन्तं मह्यं रन्धयन् विन्यसेत्कवचोपरि।
त्वग्लोमसम्भवात् पापाद्भानुर्मां परिरक्षतु॥११७॥
मो अहं द्विषतेरघं विन्यसेच्च तथास्त्रके।
विद्वेषणकृतात् पापाद्भास्करो मां सदाऽवतु॥११८॥

तदनन्तर ऋचाओं द्वारा अपने अङ्गों का स्पर्श करके गुरु, परमगुरु और परात्पर गुरु का ध्यान करने पश्चात् 'उद्यन्नद्य मित्रमहो' ऋचा का दाहिने हाथ में, 'कृतमत्र मया यच्च मित्रो रक्षतु माम्' ऋचा का बाँयें हाथ में, 'आरोहन्नुत्तरां दिवम् विहिताकरणात्पापाद्रवी रक्षतु मां सदा। हृद्रोगम्मम सूर्यः' ऋचा का हृदय में, 'अज्ञानकृतपापात्तु सूर्यो रक्षतु मां सदा हरिमाणं च' ऋचा का नासिका में, 'भानुस्तु सर्वभूतेभ्यः सर्वदा मां च रक्षतु' ऋचा का मस्तक पर, 'शुकेषु मे हरिमाणं' ऋचा का दाँयें पैर पर, 'निषिद्धगमनात्पापात् भानू रक्षतु मां सदा। रोपणाकासु दध्मसि' ऋचा का बाँयें पैर पर, 'ऋतुस्त्रीसङ्गसम्भूता पापात्पूषाभिरक्षतु। अथो हरिद्रवेषु मे' ऋचा का नाभिदेश में, 'हिरण्यगर्भोवतु मां तमोजात्पापतः सदा। हरिमाणन्निदध्मसि' ऋचा का जिह्वा में, 'मुखजिह्वोद्भवात्पापान्मरीचिर्मां सदावतु' ऋचा का मुख में, 'उदगादयमादित्यो' ऋचा का दाहिने नेत्र में, 'मामादित्योवतु सदा दृक्समुद्भवपातकात्। विश्वेन सहसा सह' ऋचा का बाँयें नेत्र में, 'यद्दृष्टव्यन्त्र तद्दृष्टन्तत्पापात्सवितावतु। द्विषन्तं मह्यं रन्धयन्' ऋचा का कवच के ऊपर, 'त्वग्लोमसम्भवात्पापात् भानुर्मा परिरक्षतु। मे अहं द्विषतेरघं' ऋचा का अस्त्र में न्यास करना चाहिये। इसके पश्चात् यह प्रार्थना करनी चाहिये कि द्वेषवश मेरे द्वारा किये गये पाप से भास्कर मेरी रक्षा करें।।१०६-११८।।

न्यासं पुरुषसूक्तस्य देवमूर्तौ समाचरेत्।
ततः स्वदेहे विन्यस्य प्राग्वद्ध्यायेद्दिवाकरम्॥११९॥
ततः पुरुषसूक्तेन षोडशर्चेन पूजयेत्।
गन्धाक्षतादिपुष्पाणि रक्तान्येव प्रयोजयेत्॥१२०॥
नैवेद्यं पायसं प्रोक्तं ऋक्त्रयस्य मुनिर्मतः।
कण्वः प्रस्कण्वनामा तु च्छन्दोऽनुष्टुप्च देवता॥१२१॥
श्रीसूर्यस्त्वथ मित्राय इदमर्घ्यं वदेत्सिते।
मित्रं सन्तर्पयामीति चैवं प्रोक्तं सितेतरे॥१२२॥
एवं रवौ च सूर्ये च कल्पनीयं ततः परम्।
वदेदर्धर्चके मित्ररविभ्यामर्घ्यमित्यपि॥१२३॥
त्रयः सर्वर्चके चैवमुन्नेयाः स्वधिया बुधैः।
कृष्णं सर्वत्र सूर्यन्तु तर्पयामीति संवदेत्॥१२४॥

सर्वर्चेनापि सन्तर्प्यो विशेषोऽयमुदाहृतः ।
प्रतिभानोश्च वारे तु कार्य्यं नान्यत्र वासरे ॥१२५॥

देवता की प्रतिमा में पुरुषसूक्त का न्यास करना चाहिये। तदनन्तर अपने शरीर में न्यास करके पूर्ववत् सूर्य का ध्यान करते हुये पुरुषसूक्त की सोलह ऋचाओं द्वारा उनका पूजन करना चाहिये। पूजन के क्रम में गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि समस्त सामग्रियाँ लाल रंग की ही प्रयोग करनी चाहिये एवं नैवेद्य में पायस का अर्पण करना चाहिये।

तीन ऋचाओं के ऋषि प्रस्कण्व नामक कण्व, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता सूर्य कहे गये हैं। अर्घ्य प्रदान करते समय शुक्लपक्ष में 'श्रीसूर्याय (मित्राय) इदमर्घ्यं' एवं कृष्णपक्ष में 'मित्रं सन्तर्पयामि' इस प्रकार कहना चाहिये। इस प्रकार से रवि और सूर्य के लिये अर्घ्यं की कल्पना करके आधी ऋंचा का उच्चारण करके 'मित्ररविभ्यां अर्घ्यं समर्पयामि' कहते हुये भी अर्घ्य प्रदान किया जा सकता है। विद्वानों को इसी प्रकार सभी जगह तीन-तीन ऋचाओं को अपनी बुद्धि के अनुसार ग्रहण करना चाहिये। कृष्णपक्ष में सभी जगह 'सूर्यं तर्पयामि' कहना चाहिये। इसी प्रकार समस्त ऋचाओं से भी तर्पण करना चाहिये। यह तर्पण प्रत्येक बार रविवार के दिन ही करना चाहिये; अन्य दिनों में नहीं करना चाहिये।।११९-१२५।।

क्षुद्ररोगा विनश्यन्ति विप्रान् द्वादश भोजयेत् ।
महारोगे सहस्रं तु शीतत्वादिमहागदे ॥१२६॥
देशस्योपद्रवे जाते पुनरर्घ्याणि भास्करे ।
सहस्रमपि तानीह सर्वनीरुक्प्रजायते ॥१२७॥
पुत्रो भार्या च मित्रं च तस्य नीरुक्प्रजायते ।
प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं ब्रह्म प्राप्नोत्यनामयम् ॥१२८॥
श्रावणे शुक्लसप्तम्यां विशाखायां भृगोर्दिने ।
श्रीसूर्यः क्रियया जातः पूजा तत्र विशिष्यते ॥१२९॥
माघशुक्लस्य चाष्टम्यां कृत्तिकायां गुरोर्दिने ।
क्षेत्रे समभवच्चन्द्रः पूजा तत्र विशिष्यते ॥१३०॥

उक्त क्रिया से क्षुद्र रोगों का विनाश होता है। महान् रोग (उन्माद, क्षय, दमा, कोढ़, मधुमेह, पथरी, उदररोग और भगन्दर) की स्थिति में बारह ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। शीतला आदि के महान् रोगों के उपद्रव की स्थिति में एक हजार ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। पुनः सम्पूर्ण देश में उपद्रव होने की स्थिति में सूर्य

को एक हजार अर्घ्य प्रदान करने से सभी उपद्रवों का शमन होता है। ऐसा करने से कर्ता के पुत्र, पत्नी और मित्र सभी रोगरहित होते हैं, उसे महान् लक्ष्मी की प्राप्ति होती है एवं अन्त में अनामय ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है।

श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की सप्तमी तिथि को विशाखा नक्षत्र और शुक्रवार रहने पर क्रिया द्वारा सूर्य की उत्पत्ति हुई है; अत: उस दिन किया गया सूर्यपूजन विशेष फलप्रद होता है। माघ मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को कृत्तिका नक्षत्र और गुरुवार रहने पर शिवक्षेत्र में चन्द्र की स्थिति रहती है; अत: उस दिन किया गया चन्द्रपूजन विशेष फलदायी होता है।।१२६-१३०।।

भौममन्त्रकथनम्

भौममन्त्रं प्रवक्ष्यामि विरूपोऽस्य मुनिर्मतः।
अङ्गारको देवता च गायत्री छन्द ईरितम्।।१३१।।
अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति।।१३२।।
अम्बीजेन षडङ्गानि चाङ्गुलिन्यास एव च।
रुद्रस्थानेषु कर्त्तव्यः पदन्यासो द्वितीयकः।।१३३।।

भौममन्त्र—अब भौममन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि विरूप, छन्द गायत्री एवं देवता अङ्गारक कहे गये हैं। मन्त्र इस प्रकार है—अग्निर्मूर्द्धा दिव: ककुत्पति: पृथिव्या अयम्। अपाꣳ रेताꣳसि जिन्वति। इसका षडङ्गन्यास एवं अंगुलिन्यास 'अं' बीज से करने के पश्चात् रुद्रस्थानों में पदन्यास करना चाहिये। करन्यास का स्वरूप इस प्रकार होता है—आं अङ्गुष्ठाभ्यां नम:, ईं तर्जनीभ्यां नम:, ऊँ मध्यमाभ्यां नम:, ऐं अनामिकाभ्यां नम:, औं कनिष्ठिकाभ्यां नम:, अ: करतलकरपृष्ठाभ्यां नम:।

षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—आं हृदयाय नम:, ईं शिरसे स्वाहा, ऊं शिखायै वषट्, ऐं कवचाय हुम्, औं नेत्रत्रयाय वौषट्, अ: अस्त्राय फट्।

पदन्यास इस प्रकार होता है—१. अग्नि: शिरसि, २. मूर्द्धा भ्रुवो:, ३. दिव: नेत्रयो:, ४. ककुत् मुखे, ५. पति: गण्डयो:, ६. पृथि हृदये, ७. व्या जठरे, ८. अग्नि: लिङ्गे, ९. अपां हृदये, १०. रेतांसि जान्वो:, ११. जिन्वति पादौ।।१३१-१३३।।

रक्ताम्बरं रक्तवर्णं रक्तगन्धानुलेपनम्।
रक्तपुष्पैः पूज्यमानं चतुर्बाहुं किरीटिनम्।।१३४।।
वराभयगदाशूलहस्तं मेषोपरि स्थितम्।
वशिष्ठगोत्रसम्भूतं जमदग्न्यर्षिकं कुजम्।।१३५।।

जगतीछन्दसं वक्रं रक्तध्वजपताकिनम्।
अवन्तीदेशसम्भूतं ध्यात्वा देवं प्रपूजयेत् ॥१३६॥

ध्यान—रक्त वस्त्र धारण करने वाले, रक्त वर्ण वाले, सम्पूर्ण शरीर में रक्त गन्ध का लेप लगाये हुये, रक्त पुष्पों से पूजे जाते हुये, चार भुजाओं वाले, मुकुट धारण किये हुये, हाथों में वर-अभय-गदा एवं शूल धारण करने वाले, मेष के ऊपर विराजमान, वशिष्ठ गोत्र में उत्पन्न, जमदग्नि ऋषि वाले, जगती छन्द वाले, रक्त ध्वज एवं रक्त पताका धारण करने वाले, अवन्ति देश में प्रादुर्भूत, टेढ़े-मेढ़े शरीर वाले कुजदेव का ध्यान करके पूजन करना चाहिये।।१३४-१३६।।

रक्तचन्दनसम्मिश्रतण्डुलैस्त्र्यस्त्रके कृते।
अधिदेवतया भूम्या युक्तं षाण्मातुरेण च।
तथा प्रत्यधिदेवेन तत्रावाह्य प्रपूजयेत् ॥१३७॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं मधुरत्रयसंयुतम्।
खादिर्य्यः समिधो होमे तर्पणाद्यं च पूर्ववत्।

लाल चन्दन में रंगे चावल से त्र्यस्त्र (त्रिकोण) बनाकर उसी स्थान पर अधिदेवता, षट्मातृका और प्रत्यधिदेवता के साथ मंगल का आवाहन करके पूजन करना चाहिये। पूजनोपरान्त मन्त्रवर्णों की संख्या के बराबर लाख मन्त्रजप करना चाहिये। निर्धारित जप पूर्ण करके मधुरत्रय से युक्त खैर की समिधा से हवन और पूर्ववत् तर्पण करना चाहिये।।१३७।।

मेधातिथिर्मुनिश्छन्दो गायत्री भूश्च देवता ॥१३८॥
स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः।
अपनः शोशुचदघम् ॥१३९॥
मुनिर्दीर्घतमाः प्रोक्तस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
देवः स्कन्दः कुजप्रीत्यै जपार्थं विनियोजनम् ॥१४०॥
यदक्रन्दप्रथमं जायमान उद्यन्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातन्ते अर्वन् ॥१४१॥
भौमस्य प्रीतिमन्विच्छन्हव्यान्नाशी भवेन्नरः।
गोजिह्वान्धारयेन्नित्यं भौमवारे तु रोगिकः ॥१४२॥
कुजमन्त्रे तु संसिद्धे संग्रामे विजयी भवेत्।
स्वयं नश्यन्ति रिपवो नेत्रच्छायाग्निसन्निभाः ॥१४३॥

'स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी यच्छा नः शर्म्म सप्रथाः। अपनः शोशुचदघम्।'— इस मन्त्र के ऋषि मेधातिथि, छन्द गायत्री एवं देवता पृथिवी कहे गये हैं। 'यदक्रन्दप्रथमं जायमान उद्यन्समुद्रादुत वा पुरीषात्। श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातन्ते अर्वन्।'—इस मन्त्र के ऋषि दीर्घतमा, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता स्कन्द कहे गये हैं तथा कुज की प्रीति के लिये जप-हेतु इसका विनियोग कहा गया है। मंगल की प्रसन्नता चाहने वाले मनुष्य को होम करने योग्य अन्न का भोजन करना चाहिये। वरावर गोजिह्वा (बनगोभी) धारण करना चाहिये। रोगी को भौमवार के दिन इसे धारण करना चाहिये।

मंगलमन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मनुष्य युद्ध में विजयी होता है। समस्त शत्रु उसके अग्निसदृश नेत्रों की छाया से विनष्ट हो जाते हैं।।१३८-१४३।।

त्रिंशर्चकस्य सूक्तस्य विरूपाङ्गिरसावृषी।
गायत्री छन्द उद्दिष्टं देवोऽग्निः कुजतुष्टये ॥१४४॥
समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
अस्मिन्हव्या होतता ॥१४५॥
अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन जन्मना।
प्रतिसूक्तानि हर्य्यनः ॥१४६॥
अग्निन्दूतम्पुरोदधे हव्यवाहमुपब्रुवे।
देवाँ आसादयादिह ॥१४७॥
उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दिवः।
अग्ने शुक्रास ईरते ।१४८॥
उप त्वा जुष्टे मम घृताचीर्यन्तु हर्य्यतः।
अग्ने हव्या जुषस्व नः ॥१४९॥
मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीले स उस्त्रवत् ॥१५०॥
प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निकविं क्रतुम्।
अधराणामभिश्रियम् ॥१५१॥
जुषाणो अङ्गिरस्तमे मा हव्यान्यानुषक्।
अग्ने यज्ञं नय क्रतुपः ॥१५२॥
समिधा न उशन्त्यशुक्रशोचे इहावह।
चिकित्वान्दैव्यञ्जनम् ॥१५३॥

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम्।
यज्ञानां केतुमीमहे ॥१५४॥
अग्ने निपाहि नस्त्वं प्रतिष्य देवरीषतः।
सधिद्वेषः सहष्कृतः ॥१५५॥
अग्निः पत्नेन मन्मनाशुम्भा नस्तन्वां स्वाम्।
कविर्विप्रेण वा वृधे ॥१५६॥
ऊजो निपातमाहुवेऽग्निम्पावक शोचिषम्।
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥१५७॥
स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा।
देवैरासत्सि बर्हिषी ॥१५८॥
यो अग्निन्तन्नो दइमे देवम्मत्तः समर्पयति।
तस्मा इद्दीदयद्वसू ॥१५९॥
अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ॥१६०॥
उदग्ने शुचयस्तव शुक्रा भ्राजन्त ईरते।
तव ज्योतीꣳष्यर्चयः ॥१६१॥
ईषे वार्य्यस्य हि दात्रस्याग्ने स्वर्पतिः।
स्तोतास्यां तव शर्म्मणि ॥१६२॥
त्वामग्ने मनीषिणस्त्वां हिन्वन्ति चितिभिः।
त्वां वर्धन्तु नो गिरः ॥१६३॥
अदध्वस्य स्वा धावतो दूतस्यरेभतः सदा।
अग्नेः सख्यं धृणीमहे ॥१६४॥
अग्निः शुचिव्रततमः शुचिः शुचिर्विप्रः।
शुचिःशुंची रोचत आहुतः ॥१६५॥
उतत्वाधीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा।
अग्ने सख्यस्य बोधिनः ॥१६६॥
यदग्ने स्यामहावं वा यत्स्या अहम्।
स्पष्टे सत्याशिषा इहाशिषः ॥१६७॥
वसुर्वसुपतिर्हि त्वमस्यग्ने विभावसुः।
स्याम ते सुमतावपि ॥१६८॥

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेवसिन्धवः।
गिरो वास्रास ईरते ॥१६९॥
युवानं विस्पतिं कविं श्वादम्पुरुवेयुसम्।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः ॥१७०॥
यज्ञानां रथ्ये वयन्तिग्मजम्भाय वीलवे।
स्तोमैरिषे माग्नये ॥१७१॥
अयमग्ने त्वे च अयि जरिताभूतु सन्त्या।
तस्मै पावकमृडय ॥१७२॥
धीरो ह्यस्य प्रसिद्विप्रो न जागृभिः सदा।
अग्नेदीदयसिविद्यवि ॥१७३॥
पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरो मृधेभ्यः कवे।
प्रण आयुर्वसोत्तिरा ॥१७४॥
विश्वम्बला चन्दनञ्च रामठासनपुष्पकम्।
फलिनीबकुलैर्युक्तं स्नानम्भौमस्य तुष्टये ॥१७५॥
आरक्ताम्बुभवं ताम्रं प्रवालञ्च मसूरिका।
सुरक्तवस्त्रमसृजस्तुष्ट्यै चाश्वारिपुष्पकम् ॥१७६॥
पूर्वाषाढाख्यनक्षत्रे मासे भाद्रपदे सिते।
दशम्यां बुधवारे तु जातस्तत्र महोत्सवः ॥१७७॥

मंगलसूक्त—तीस ऋचाओं वाले इस मंगलसूक्त के ऋषि विरूप एवं आङ्गिरस, छन्द गायत्री तथा देवता अग्नि कहे गये हैं। कुज की प्रसन्नता के लिये इसका विनियोग कहा गया है। सूक्त की तीस ऋचायें 'समिधाग्निं दुवस्यत' से आरम्भ कर 'आयुर्वसोत्तिरा'-पर्यन्त मूल में पठित है। मंगल की प्रसन्नता के लिये विश्वम्वला (शुण्ठी), चन्दन, हिंगुपुष्प, प्रियङ्गुपुष्प एवं मौलसिरीपुष्प से युक्त जल से अभिषेक करना चाहिये। लाल जल से परिपूर्ण ताम्रपात्र, मूँगा, मसूरिका, लाल वस्त्र और अश्वारिपुष्प (कनैल का फूल) समर्पित करने से मंगल प्रसन्न होते हैं। भाद्रपद मास के शुक्लपक्ष में दशमी तिथि को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र एवं बुधवार हो तो इनका महोत्सव मनाना चाहिये।।१४४-१७७।।

बुधमन्त्रकथनम्

बुधमन्त्रम्प्रवक्ष्यामि बौद्धस्तस्य मुनिर्मतः।
त्रिष्टुप्छन्दो देवतास्य बुद्धो बुद्धिप्रदो मतः ॥१७८॥

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयञ्च ।
अस्मिन्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥१७९॥
बुम्बीजेन षडङ्गेन —

बुधमन्त्र-विवेचन—अब मैं बुध-मन्त्र को कहता हूँ। इसके ऋषि बौद्ध, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता बुद्धिप्रदाता बुद्ध कहे गये हैं। मन्त्र है—उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयञ्च। अस्मिन्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन्विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत। बुं बीज से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये।।१७८-१७९।।

—ध्यानमस्य निरूप्यते ।
पीताम्बरं पीतवर्णं पीतगन्धानुलेपनम् ॥१८०॥
पीतपुष्पैः पूज्यमानं खड्गचर्म्मगदावरान् ।
सिन्धूत्थं दधतं हस्तैरत्रिगोत्रसमुद्भवम् ॥१८१॥
भारद्वाजार्षकं जातं मगधे च किरीटिनम् ।
बृहतीछन्दसम्पीतच्छत्रध्वजपताकिनम् ॥१८२॥
केयूरमणिशोभाढ्यमधिदैवेन विष्णुना ।
तेन प्रत्यधिदेवेन युक्तं ज्ञं चिन्तयाम्यहम् ॥१८३॥

बुधध्यान—अब बुध के ध्यान का निरूपण किया जा रहा है। पीत वस्त्र धारण करने वाले, पीत वर्ण वाले, पीत गन्ध का अनुलेप लगाये हुये, पीले पुष्पों से पूजे जाने वाले, खड्ग-चर्म-गदा एवं वर—इन चारो को हाथों में धारण करने वाले, अत्रि गोत्र में उत्पन्न, भारद्वाज ऋषि वाले, मगध में प्रादुर्भूत, मुकुट से शोभायमान, बृहती छन्द वाले, पीत ध्वज एवं पताका धारण करने वाले, केयूर एवं मणि से सुशोभित, अधिदेव एवं प्रत्यधिदेव विष्णु से युक्त बुध का मैं स्मरण करता हूँ।।१८०-१८३।।

एवं ध्यात्वा शराकारे हरिद्राक्षतनिर्मिते ।
मण्डले चतुरस्रे ज्ञं सम्यगावाह्य पूजयेत् ॥१८४॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेत्तस्य दशांशतः ।
अपामार्गसमिद्भिश्च तर्प्पणानि ततश्चरेत् ॥१८५॥
त्रिविक्रमाख्यो यो विष्णुः स बुधस्याधिदैवतम् ।
मेधातिथिर्मुनिस्तस्य गायत्रं छन्द ईरितम् ॥१८६॥
इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ।
समूढमस्य पांसुरे स्वाहा ॥१८७॥

अथ प्रत्यधिदैवन्तु विष्णुर्नारायणाभिधः ।
मुनिर्दीर्घतमाः प्रोक्तश्छन्दस्त्रिष्टुबुदाहृतम् ॥१८८॥
विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाᳫंसि ।
यो अस्कभा यदुत्तरᳫंसधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः ॥१८९॥
दुग्धौदनं समश्नीयान्नैव तुम्बीं कदाचन ।
नाम्बरं मलिनं दध्याद्वृद्धदारुजटान्तथा ॥१९०॥
बुधस्य मन्त्रे संसिद्धे वाग्मी भवति पण्डितः ।
अजेयः प्रतिपक्षाणां स्वयं जेतात्र जायते ॥१९१॥

इस प्रकार ध्यान करके हल्दी एवं अक्षतों द्वारा बनाये गये बाणाकृति चतुरस्त्र मण्डल में बुध का सम्यक् रूप से आवाहन करके पूजन करना चाहिये। तदनन्तर मन्त्र में जितने अक्षर हैं, उतने लाख की संख्या में मन्त्रजप करना चाहिये। बुध के मन्त्र में तैंतालीस अक्षर हैं; अतः तैंतालीस लाख जप अपेक्षित होता है। जप के बाद अपामार्ग (चिड़चिड़ा) की समिधा से जप का दशांश हवन एवं उसके बाद हवन का दशांश तर्पण करना चाहिये।

त्रिविक्रम नामक जो विष्णु हैं, वे ही बुध के अधिदेवता हैं। अधिदेवता के मन्त्र के ऋषि मेधातिथि एवं छन्द गायत्री कहे गये हैं। इनका मन्त्र है—इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पांसुरे स्वाहा। नारायण-नामक विष्णु इसके प्रत्यधिदेवता हैं। प्रत्यधिदेवता के मन्त्र के ऋषि दीर्घतमा एवं छन्द त्रिष्टुप् कहे गये हैं। इनका मन्त्र है—विष्णोर्नु कं वीर्य्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाᳫंसि। यो अस्कभा यदुत्तरᳫंसधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायः।

जपकाल में दूध-भात का भोजन करना चाहिये। कभी भी तुम्बी (कड़ुवी लौकी) का भक्षण नहीं करना चाहिये। न तो कभी मलिन वस्त्र धारण करना चाहिये और न ही दाढ़ी और जटा बढ़ानी चाहिये।

बुधमन्त्र के सिद्ध होने पर मनुष्य वाग्मी (बोलने में चतुर) एवं विद्वान् हो जाता है। वह विरोधियों से लिये अजेय रहता है एवं स्वयं विजेता रहता है।।१८४-१९१।।

द्वादशर्चस्य सूक्तस्य विश्वेदेवास्तथर्षयः ।
देवो ज्ञो बृहतीत्रिष्टुब्जगद्गायत्रगानि च ॥१९२॥
उद्बुध्यध्वं समनसः सखायः समग्निमिन्ध्वं बहवः सनीलाः ।
दधिक्रामग्निमुषसं च देवीमिन्द्रावतो वसे निह्वये वः ॥१९३॥
मन्द्रा कृणुध्वन्धियः प्रातनुध्वं नावमरित्रपरणीं कृणुध्वम् ।
इष्कृणुध्वमायुं धारं कृणुध्वम्प्राञ्चं यज्ञं प्रणयता सखायः ॥१९४॥

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम्।
गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्वमेयात् ॥१९५॥
सीरा युञ्जन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया ॥१९६॥
निराहावान्कृणोत न संवरत्रा दधातन।
सिञ्चामहाअवत मुद्रिणं वयं सुषेकमनु पक्षितम् ॥१९७॥
इष्कृता हावमवतं सुवस्त्रं सुषेचनम्।
उद्रिणं सिञ्चे अक्षितम् ॥१९८॥
प्रीणीताश्वान्हि तज्जयाथ स्वस्थिवाहं रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणा हावमवतमश्म चक्रम सत्रकोशं सिञ्चता नृपाणाम् ॥१९९॥
व्रजं कृणुध्वं स हि वो नृपाणो वर्म सीव्यध्वम्बहुला पृथूनि।
पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टा मा वः सुस्रोच्चमसो दृंहतातम् ॥२००॥
आवो धियं यज्ञियां वर्त्त ऊतये देवा देवीं यजतां यज्ञियामिह।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारापयसा मही गौः ॥२०१॥
आतूषिञ्च हरिमीन्द्रोरुपस्थे वाशीभिस्तक्षताश्मन्मयीभिः।
परिष्वजध्वं दशकक्ष्याभिरुभे धुरो प्रतिवह्निं युनक्त ॥२०२॥
उभौ धुरौ वह्निरायिब्दमानोऽन्तर्योनेव चरति द्विजानिः।
वनस्पतिं वन आस्थापयध्वं निषोदधिध्वमखनन्त उत्सम् ॥२०३॥
कपृन्नरः कपृथमद्दधातन चोदयत खुदतवाजसातये।
निष्टिग्न्यः पुत्रमाच्यवयोतय इन्द्रं स बाध इह सोमपीतये ॥२०४॥
हरीतकी कलिफलैर्गोमयाक्षतरोचनैः।
स्वर्णामलकमुक्ताभिर्युक्तैः सक्षौद्रकैः स्नपेत् ॥२०५॥
नीलवस्त्रं च मुद्गान्नं कनकं चोर्णवस्त्रकम्।
बुधस्य प्रीतये दद्यान्मालत्याः कुसुमानि वा ॥२०६॥
नभस्यशुक्लद्वादश्यां सोमवारे द्विजन्मने।
ताराया हिमगोर्जातो बुधस्तस्योत्सवोऽत्र तु ॥२०७॥

बरह ऋचाओं वाले बुधसूक्त के ऋषि विश्वेदेव, छन्द बृहती, त्रिष्टुप्, जगती एवं गायत्री तथा देवता बुध कहे गये हैं। मूल में 'उद्बुध्यध्वं समनसः' से आरम्भ करके 'स वाध इह सोमपीतये'-पर्यन्त बुधसूक्त की बारह ऋचायें पठित हैं। बुधसूक्त का पाठ करके हरें, कलिफल (बिभीतक), गोबर, अक्षत, गोरोचन, सुवर्ण, आँवला, मोती

और मधु-युक्त जल से अभिषेक करना चाहिये। बुध की प्रीति के लिये नीला वस्त्र, मूंग, सुवर्ण एवं ऊनी वस्त्र अर्पण करना चाहिये अथवा मालती के पुष्पों से बनी माला चढ़ानी चाहिये। श्रावण शुक्ल द्वादशी सोमवार को द्विजवर्ण में तारा से बुध उत्पन्न हुये हैं; अतः सोमवार को इनका उत्सव मनाया जाता है।।१९२-२०७।।

बृहस्पतिमन्त्रकथनम्

मन्त्रं बृहस्पतेर्वक्ष्ये मुनिर्गृत्समदोऽस्य तु।
त्रिष्टुप्छन्दो देवपतिवन्दितोऽस्ति हि देवता ।।२०८।।
बृहस्पते अतियदर्य्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु।
यद्दीदयच्छवस ऋतं प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् ।।२०९।।
बृम्बीजेन षडङ्गादिन्यासमत्र समाचरेत्।

बृहस्पति-मन्त्र—अब मैं बृहस्पति के मन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि गृत्समद, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता देवराज इन्द्र द्वारा स्तुत बृहस्पति हैं। मन्त्र है—बृहस्पते अतियदर्य्यो अर्हाद्द्युमद्विभाति क्रतुमज्जनेषु। यद्दीदयच्छवस ऋतं प्रजात तदस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम्। बृं बीज से इस मन्त्र के षडङ्गादि न्यास किये जाते हैं। (करन्यास इस प्रकार किया जाता है—ब्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ब्रीं तर्जनीभ्यां नमः, ब्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ब्रैं अनामिकाभ्यां नमः, ब्रौं कनिष्ठाभ्यां नमः, ब्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। इसी प्रकार हृदयादि न्यास भी किया जाता है; जैसे—ब्रां हृदयाय नमः, ब्रीं शिरसे स्वाहा, ब्रूं शिखायै वषट्, ब्रैं कवचाय हुम्, ब्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ब्रः अस्त्राय फट्)।।२०८-२०९।।

शृणु ध्यानं प्रवक्ष्यामि यत्तदस्य बृहस्पतेः ।।२१०।।
कमण्डलुधरं देवं वरदण्डाक्षसूत्रकम्।
पीतवर्णं च सौवर्णकिरीटेन विराजितम् ।।२११।।
वशिष्ठार्य्यं सिन्धुदेशभवं पीताम्बरावृतम्।
अनुष्टुप्छन्दसं चाङ्गिरसगोत्रं सुरेडितम् ।।२१२।।
पीतध्वजपताकाढ्यं पीतच्छत्रानुलेपनम्।
केयूराङ्गदशोभाढ्यमधिदेवेन्द्रसंयुतम्।
ब्रह्मप्रत्यधिदेवेन युतं सञ्चिन्त्य चाह्वयेत् ।।२१३।।

बृहस्पति-ध्यान—अब जो इस बृहस्पति का ध्यान है, उसे कहता हूँ, सुनो। कमण्डलु धारण करने वाले, वर-दण्ड एवं अक्षसूत्र लिये हुये, पीत वर्ण वाले, सुवर्ण-निर्मित मुकुट से शोभायमान, वशिष्ठ के पूजनीय, सिन्धु देश में उत्पन्न, पीले वस्त्रों से आच्छादित, अनुष्टुप् छन्द वाले, अङ्गिरस गोत्र वाले, देवों द्वारा स्तुत, पीत

वर्ण के ध्वज एवं पताका से सुशोभित, पीत वर्ण के ही छत्र एवं अनुलेप लगाये हुये, केयूर एवं अङ्गद से अतिशय शोभायमान, अधिदेवेन्द्र एवं प्रत्यधिदेव ब्रह्मा से समन्वित बृहस्पति देव का स्मरण करके आवाहन करना चाहिये।।२१०-२१३।।

मन्त्रैर्विरचिते दीर्घचतुरस्त्रषडङ्गुले ।
हरिद्राक्षतसंसिद्धे मण्डले तं प्रपूजयेत् ॥२१४॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं होमस्त्रिमधुरान्वितैः ।
पिप्पलस्य तु काष्ठैः स्यात्तर्पणं पीतपञ्चभिः ॥२१५॥
मुनिर्गृत्समदस्त्रिष्टुप्छन्द इन्द्रश्च देवता ॥२१६॥
अधिसञ्ज्ञा गुरोस्तस्य तुष्टये विनियोजनम् ॥२१७॥
इन्द्र श्रेष्ठाणि द्रविणानि धेहि चितिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे ।
पोषं रयीणामरिष्टं तनूनां स्वाद्मग्नानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम् ॥२१८॥
मुनिर्गृत्समदः प्रोक्तो देवता ब्रह्मणस्पतिः ।
त्रिष्टुप्छन्दो गुरोश्चेयं प्रोक्ता प्रत्यधिदेवता ॥२१९॥
ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूतस्य बोधितनयं च जिन्व ।
विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदे मावेदथे सुवाराः ॥२२०॥
दद्यात्स दधिभक्तं च स्वर्णपीताम्बरादिकम् ।
नित्यं सन्धारयेद्बाहौ ब्रह्ममूलं तु धारयेत् ॥२२१॥
एवं सिद्धे गुरोर्मन्त्रे वाक्सिद्धिरुपजायते ।
देहे शक्ती राजमानं स्वशक्त्या वार्थबोधनम् ॥२२२॥

मन्त्रोच्चार-पूर्वक हल्दी एवं अक्षत से निर्मित छः अंगुल लम्बे-चौड़े चतुरस्र मण्डल पर बृहस्पति का पूजन करना चाहिये। मन्त्र में जितने वर्ण हैं, उतने लाख की संख्या में (मन्त्र में पैंतालीस अक्षर है, अतः पैंतालीस लाख) मन्त्रजप करके त्रिमधुरान्वित पीपल की समिधा से हवन एवं पाँच प्रकार के पीले पदार्थों से तर्पण करना चाहिये।

'इन्द्र श्रेष्ठाणि द्रविणानि धेहि चितिं दक्षस्य सुभगत्वमस्मे। पोषं रयीणामरिष्टं तनूनां स्वाद्मग्नानं वाचः सुदिनत्वमह्नाम्।'इस बृहस्पतिमन्त्र के ऋषि गृत्समद, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता इन्द्र कहे गये हैं। इन्द्र ही गुरु के अधिदेवता भी हैं और उन्हीं की सन्तुष्टि के लिये इस मन्त्र का विनियोग किया जाता है।

'ब्रह्मणस्पते त्वमस्य यन्ता सूतस्य बोधितनयं च जिन्व। विश्वं तद्भद्रं यदवन्ति देवा बृहद्वदे मावेदथे सुवाराः।' इस मन्त्र के ऋषि गृत्समद, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता ब्रह्मणस्पति कहे गये हैं। देवता ब्रह्मणस्पति ही गुरु के प्रत्यधिदेवता भी कहे गये हैं।

गुरु को दधि एवं भात का नैवेद्य प्रदान करना चाहिये। सुवर्ण, पीला वस्त्र आदि अर्पण करना चाहिये। प्रतिदिन बाँह में ब्रह्ममूल धारण करना चाहिये। इस प्रकार से सिद्ध गुरुमन्त्र से वाक्सिद्धि प्राप्त होती है, शरीर शक्तिशाली होता है, राजा से मान प्राप्त होता है और अपनी शक्ति से अर्थवोध होता है।।२१४-२२२।।

एकादशर्चसूक्तस्य वामदेवो मुनिर्मतः।
जगती छन्द इत्युक्तं देवतात्र बृहस्पतिः।।२२३।।
यस्तस्तम्भ सहसाविज्मो अन्तान्बृहस्पतिस्त्रिषधस्थो रवेण।
तं प्रत्नास ऋषयो दीध्याना पुरोर्मविप्रा दधिरमन्द्रजिह्वम्।।२२४।।
धुनेतयः सुप्रकेतं मदन्तो बृहस्पते अभि येनस्ततस्त्रे।
पृषन्तेसृप्रमदध्वमूर्यं बृहस्पतेरक्षता तस्य योनिम्।।२२५।।
बृहस्पते यापरमा परावदत आत ऋतस्य स्पृशो निषेदुः।
तुभ्यं खाता अवता अत्रिदुग्धामध्वश्चोतंत्यभितो विषम्।।२२६।।
बृहस्पतिमधमं जायमानो महोज्योतिषः परमे व्योमन्।
सप्तास्यास्तु विजातो रवेण विसप्तरश्मिरमत्तमांसि।
ससुष्ठुभा ऋक्वता गणेन वनं रुरोज फलितं रवेण।।२२७।।
बृहस्पतिरुश्रिया हव्यसूदः कनिक्रदद्वा वशतीरुदाजत्।
एवापित्रे विश्वदेवाय वृष्णो यज्ञैर्विधेम मनसा हविर्भिः।
बृहस्पते सुमः प्रजा वीरवन्तो वयं स्याम पतयो रयीणाम्।।२२८।।
स इन्द्राजा मतिजन्यानि विश्वा शुष्मेण तस्थावभिवीर्य्येण।
बृहस्पतिं यः सुकृतं बिभर्ति वल्गूयति वन्दते पूर्वभाजम्।।२२९।।
स इत्क्षेति सुधित ओकांसि श्वेतस्मा इलायिल्वतेविश्वदानीम्।
तस्मै विशः स्वयमेवानमन्ते यस्मिन्ब्रह्मराजं निपूर्व एति।।२३०।।
अप्रतीतो जयति सन्धनानि प्रतिजन्यान्युत या सजन्या।
अवस्यवे यो वीरवः कृणोति ब्रह्मणे राजा तमवन्ति देवाः।।२३१।।
इन्द्रश्च सोमं पवते बृहस्पतेऽस्मिन्यज्ञेऽमन्दसाना वृषणवसूः।
आवां विशन्त्विदवः स्वाभुगोस्मे रयिं सर्ववीरं नियच्छतम्।।२३२।।
बृहस्पत इन्द्रा वर्धतं नः स चासावां सुमतिर्भूत्वस्मे।
अविष्टं धियो जिवृतं पुरं धीर्जजस्तमर्योवनुषामरातिः।।२३३।।
मदयन्तीपल्लवानि मधूकं श्वेतसर्षपाः।
मालतीपुष्पयुक्ताश्च स्नानेन गुरुतोषणम्।।२३४।।

हरिद्रा शर्करा पीतवस्त्रं स्वर्णं च पित्तलम्।
गुरुतुष्ट्यै प्रदेयं स्यादभावे चणकास्तथा ॥२३५॥
फाल्गुनस्य सिते पक्षे चैकादश्यां च पुष्यभे।
शुक्रवारे गुरुर्जातस्तत्र कार्य्यस्तदुत्सवः ॥२३६॥

गुरुसूक्त—ग्यारह ऋचाओं वाले इस गुरुसूक्त के ऋषि वामदेव, छन्द जगती एवं देवता बृहस्पति कहे गये हैं। 'यस्तस्तम्भ' से आरम्भ कर 'धीर्जजस्तमर्योवनुषामरातिः' पर्यन्त ग्यारह ऋचायें मूल में पठित हैं। मल्लिकापत्र, महुआ, श्वेत सरसो एवं मालतीपुष्प-युक्त जल में स्नान से गुरु प्रसन्न होते हैं। हल्दी, शक्कर, पीला वस्त्र, सुवर्ण एवं पीतल का दान गुरु की सन्तुष्टि के लिये करना चाहिये। उक्त के अभाव में चने का दान करना चाहिये। फाल्गुन शुक्ल एकादशी पुष्य नक्षत्र शुक्रवार को गुरु की उत्पत्ति हुई है; अतः उक्त समय में गुरु का उत्सव करना चाहिये।।२२३-२३६।।

शुक्रमन्त्रकथनम्

शुक्रमन्त्रं प्रवक्ष्यामि भरद्वाजो मुनिर्मतः।
त्रिष्टुप्छन्दो निगदितं दैत्याचार्य्यस्तु दैवतम् ॥२३७॥
शुक्रं ते अन्यद्यजन्ते अन्यद्विषुरूपे अहनि द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधा वो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्ति ॥२३८॥
शुम्बीजेन षडङ्गानि कृत्वा ध्यानं समाचरेत्।

शुक्रमन्त्र—अब शुक्र-मन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि भरद्वाज, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता शुक्राचार्य कहे गये हैं। मन्त्र इस प्रकार है—शुक्रं ते अन्यद्यजन्ते अन्यद्विषुरूपे अहनि द्यौरिवासि। विश्वा हि माया अवसि स्वधा वो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्ति। 'शुं' बीज से षडङ्गादि न्यास करने के उपरान्त इनका ध्यान करना चाहिये।।२३७-२३८।।

शुक्लाम्बरं शुक्लवर्णं शुक्लगन्धानुलेपनम् ॥२३९॥
शुक्लपुष्पैः पूज्यमानं शौनकार्य्यं किरीटिनम्।
चतुर्भुजं दण्डिनं च साक्षसूत्रकमण्डलुम् ॥२४०॥
पङ्क्तिच्छन्दं च वरदं तथा कीकटदेशजम्।
श्वेतच्छत्रध्वजपताकिनं भार्गवगोत्रजम् ॥२४१॥
सकेयूरं रथारूढं श्वेताभरणभूषितम्।

शुक्रध्यान—शुक्ल वर्ण वाले, शुक्ल वस्त्र धारण करने वाले, शुक्ल गन्ध का अनुलेप लगाये हुये, शुक्ल पुष्पों द्वारा पूजे जाने वाले, शौनक के पूज्य, माथे पर मुकुट धारण करने वाले, चार भुजाओं वाले, दण्ड-अक्षसूत्र एवं कमण्डलु धारण

करने वाले, पंक्ति छन्द वाले, वर प्रदान करने वाले, कीकट देश में उत्पन्न, श्वेत छत्र एवं पताका धारण करने वाले, भार्गव गोत्रोद्भूत, केयूर से विभूषित, रथ पर सवार, श्वेत आभूषणों से अलंकृत शुक्र का ध्यान करना चाहिये।।२३९-२४१।।

एवं ध्यात्वा श्वेतवर्णं पञ्चकोणे नवाङ्गुले ।।२४२।।
अधिदैवतमिन्द्राणी शक्रः प्रत्यधिदैवतम् ।
ताभ्यां युतं दैत्यगुरुं मण्डले पूजयेत्ततः ।।२४३।।
अर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं हुनेत्रिमधुरान्वितैः ।
उदुम्बरस्य काष्ठैश्च तर्प्पणादि तु चन्द्रवत् ।।२४४।।
वृषाकपिर्मुनिः प्रोक्तः पङ्क्तिश्छन्द उदाहृतम् ।
इन्द्राणी देवता प्रोक्ता नियोगः शुक्रतुष्टये ।।२४५।।
इन्द्राणीमासु नारीषु सुभगामहमश्रवम् ।
न ह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।२४६।।
मधुच्छन्दा ऋषिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम् ।
शुक्रो देवो नियोगोऽस्य विश्वतः शुक्रतुष्टये ।।२४७।।
इन्द्रं वो विश्वतस्परिहवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ।।२४८।।
शुक्रसन्तुष्टये नित्यं भक्षणीयः कृतौदनः ।
अश्वेतं नाम्बरन्दध्यान्मुनिमूलं च धारयेत् ।।२४९।।
शुक्रमन्त्रस्य सिद्धस्य चिह्नानि स्युः स्त्रियो वशाः ।
यात्रासिद्धिः प्रकाशश्च चान्तर्भूपतयो वशाः ।।२५०।।

इस प्रकार ध्यान करके श्वेत वर्ण के नवांगुल पञ्चकोण बनाकर अधिदेवता शची, प्रत्यधिदेवता इन्द्र-सहित शुक्र का मण्डल में पूजन करना चाहिये। मन्त्राक्षर के बराबर लाख की संख्या में मन्त्रजप करना चाहिये। तदनन्तर त्रिमधुरान्वित गूलर की समिधा से हवन करके चन्द्रमा के समान ही तर्पण करना चाहिये।

'इन्द्राणीमासु नारीषु सुभगामहमश्रवम्। न ह्यस्या अपरं च न जरसा मरते पतिर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।' इस इन्द्राणी मन्त्र के ऋषि वृषाकपि, छन्द पंक्ति एवं देवता इन्द्राणी कहे गये हैं। शुक्र की तुष्टि के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

'इन्द्रं वो विश्वतस्परिहवामहे जनेभ्यः। अस्माकमस्तु केवलः।' इस इन्द्रमन्त्र के ऋषि मधुछन्दा, छन्द गायत्री एवं देवता शुक्र कहे गये हैं। शुक्र की तुष्टि के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

शुक्र की सन्तुष्टि के लिये नित्य भात का भोजन करना चाहिये। सफेद के अतिरिक्त किसी रंग का वस्त्र नहीं धारण करना चाहिये। मुनिमूल (अगस्त्य की जड़) को धारण करना चाहिये। शुक्र-मन्त्र की सिद्धि का लक्षण है कि स्त्रियाँ सिद्ध साधक के वशीभूत हो जाती हैं। उसकी यात्रा सफल होती है और राजागण उसके वशीभूत रहते हैं।।२४२-२५०।।

निगमर्चस्य सूक्तस्य भरद्वाजो मुनिर्मतः।
त्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांसि पूषा दैवतमुच्यते ।।२५१।।
शुक्रन्ते अन्यद्यजन्ते अन्यद्विरूपे अहनि द्यौरिवासि।
विश्वा हि माया अवसि स्वधा वो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्ति।
अजास्यः पशुपावाजपत्स्योधियं जिन्वो विश्वभुवने विश्वे अर्पितः ।।२५२।।
अष्ट्रां पूषासि पिरामुद्वरीवृजत्सञ्चक्षाणो भुवना देव ईयते ।।२५३।।
यास्ते पूषन्नावो अन्तःसमुद्रे हिरण्यैमनुलिक्षचरन्ति।
ताभिर्वापि इत्या सूर्य्यास्य कामेन कृतश्रव इच्छयामः ।।२५४।।
पूषा सुबन्धुर्दिव आपृथिव्या इलस्पतिर्मघवः दस्यवर्च्चाः।
यो देवासो अददुः सूर्य्यायै कामनकृतन्तवसस्य चम् ।।२५५।।
समूलत्रिफला चैला केशरं च मनःशिला।
एभिर्युक्तैर्जलैः स्नायाद्भार्गवस्य तु तुष्टये ।।२५६।।
श्वेतो वाजी तथा रौप्यं चन्दनं च सिताम्बरम्।
घृतन्दद्याच्छुक्रतुष्ट्यै तदभावे तु तण्डुलान् ।।२५७।।
मघौ सितनवम्यां च रामो जातश्च भार्गवः।
रामः पुनर्वसौ शुक्रे मघायामेतदन्तरम् ।।२५८।।

शुक्रसूक्त—निगम अर्थात् चार ऋचाओं वाले इस शुक्रसूक्त के ऋषि भरद्वाज, छन्द त्रिष्टुप् एवं जगती तथा देवता पूषा कहे गये हैं। शुक्त की चार ऋचायें 'शुक्रन्ते अन्यद्यजन्ते' से लेकर 'कामनकृतन्तवसस्य चम्' तक मूल में पठित हैं। भार्गव की सन्तुष्टि के लिये मूल-सहित त्रिफला, इलायची, केशर एवं मैनसिल से युक्त जल से अभिषेक करना चाहिये। श्वेत घोड़ा, चाँदी, चन्दन, श्वेत वस्त्र एवं घृत शुक्र की प्रसन्नता के लिये दान करना चाहिये अथवा इनके अभाव में चावल का दान करना चाहिये। माघ शुक्ल नवमी पुनर्वसु नक्षत्र शुक्रवार को परशुराम का जन्म हुआ था एवं शुक्र का जन्म माघ शुक्ल नवमी, मघा नक्षत्र, शुक्रवार को हुआ था। इस प्रकार मात्र नक्षत्र का ही दोनों के जन्म में अन्तर है। शुक्रजन्म के समय इनका उत्सव मनाना चाहिये।।२५१-२५८।।

शनिमन्त्रकथनम्

शनिमन्त्रं प्रवक्ष्यामि सिन्धुद्वीपो मुनिर्मतः।
गायत्री छन्द इत्युक्तं देवता तु शनैश्चरः ॥२५९॥
शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥२६०॥
शम्बीजेन षडङ्गानि कुर्य्याद्ध्यानं ततश्चरेत्।

शनिमन्त्र—अब शनिमन्त्र को कहता हूँ। इस शनिमन्त्र के ऋषि सिन्धुद्वीप, छन्द गायत्री एवं देवता शनैश्चर कहे गये हैं। मन्त्र है—शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः। 'शं' बीज से इसके षडङ्गादि न्यासों को सम्पन्न करने के पश्चात् शनिदेव का ध्यान करना चाहिये।।२५९-२६०।।

शशासनं शूलधरमिन्द्रनीलसमद्युतिम्।
सौराष्ट्रदेशजं प्रोक्तं वरदं गृध्रवाहनम् ॥२६१॥
भृग्वार्य्यं मुकुटेनालंकृतं काश्यपगोत्रकम्।
कृष्णाम्बरं कृष्णवर्णं कृष्णगन्धानुलेपनम्।
गायत्रीछन्दसं देवं कृष्णाभरणभूषितम् ॥२६२॥
केयूरिणं मुकुटिनं कृष्णवस्त्रावृतं तथा।
प्रजापत्याधिदेवेन सहितम्पद्ममास्थितम्।
पद्म प्रत्यधिदेवेन युक्तं ध्यात्वा समर्चयेत् ॥२६३॥
कस्तूरीमिलितैः कृष्णचूर्णै रचितमण्डले।

शनिध्यान—मृग के आसन वाले, शूल धारण करने वाले, इन्द्रनील मणि के समान कान्तिमान, सौराष्ट्र देश में उत्पन्न, वर प्रदान करने वाले, गृध्र-रूप वाहन वाले, भृगु के पूज्य, मुकुट से अलंकृत, काश्यप गोत्र वाले, कृष्ण वस्त्र धारण करने वाले, कृष्ण वर्ण वाले, कृष्ण गन्ध का लेप लगाने वाले, गायत्री छन्द वाले, कृष्ण आभरणों से विभूषित शनिदेव का केयूर एवं मुकुट धारण किये हुये तथा कृष्ण वस्त्र से आच्छादित कमल पर विराजमान प्रजापति-रूप अधिदेवता और पद्मरूप प्रत्यधिदेवता से समन्वित ध्यान करके कस्तूरी-मिश्रित कृष्ण वर्ण के चावल के आटे से निर्मित मण्डल पर सम्यक् रूप से पूजन करना चाहिये।।२६१-२६३।।

होमः शमीसमिद्भिः स्यादायसार्घेण तर्पणम्।
कृष्णपुष्पैश्चन्दनन्तु कालीयैरगुरुं हुनेत् ॥२६४॥

मुनिर्हिरण्यगर्भोऽस्य त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
नियोगः शनिप्रीत्यर्थे नानापीडाविनाशने।
ब्रह्म जज्ञानमिति च मन्त्रमत्र तु कीर्त्तयेत्॥२६५॥
यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः।
यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरं कृतः॥२६६॥
शनेरुपासको नित्यं कृशरं भक्षयेन्नरः।
व्याघ्रीजटे गले धार्य्येऽभ्यङ्गः कार्यश्च नित्यशः॥२६७॥
शनिमन्त्रे तु संसिद्धे संसिद्धा मनवोऽखिलाः।
तस्य फूत्कारमात्रेण विनश्यन्त्यखिला गदाः॥२६८॥

पूजन सम्पन्न करने के उपरान्त शमी की समिधा से हवन एवं लौहपात्र के जल से तर्पण करना चाहिये। कृष्ण पुष्प से चन्दन प्रदान करना चाहिये एवं काले अगुरु से हवन करना चाहिये।

इस मन्त्र के ऋषि हिरण्यगर्भ एवं छन्द त्रिष्टुप् है। शनि की प्रसन्नता एवं अनेकविध पीड़ा के विनाश-हेतु इसका विनियोग कहा गया है। मन्त्र के रूप में यहाँ पर 'ब्रह्म जज्ञानम्' को समझना चाहिये। शनिमन्त्र है—यमाय सोमं सुनुत यमाय जुहुता हविः। यमं ह यज्ञो गच्छत्यग्निदूतो अरं कृतः।

शनि के उपासकों को नित्य खिचड़ी का भोजन करना चाहिये। गले में व्याघ्रीजटा (श्रीबृहती) धारण करना चाहिये एवं इसी से प्रतिदिन अभ्यङ्ग स्नान करना चाहिये। शनिमन्त्र के सिद्ध हो जाने पर साधक को समस्त मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं और उस साधक के फूत्कार-मात्र से ही समस्त रोग विनष्ट हो जाते हैं।।२६४-२६८।।

नवर्चस्य तु सूक्तस्य सिन्धुद्वीपो मुनिर्मतः।
बद्धमाना प्रतिष्ठा वाऽनुष्टुप् चैव समीरिताः॥२६९॥
छन्दांसि देवता आपो नियोगः शनितुष्टये।
एतासां जपतः पापं कामजातं विनश्यति॥२७०॥
आपोहिष्ठामयोभुवस्ता न ऊर्ज्जे दधातन।
महेरणाय चक्षसे॥२७१॥
यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः।
उशतीरिव मातरः॥२७२॥
तस्मा अरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ।
आपो जनयथा च नः॥२७३॥

शन्नो देवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥२७४॥
ईशाना वार्य्याणां क्षयन्तीश्चर्षणीनाम्।
अपो याचामि भेषजम् ॥२७५॥
अप्सु मे सोमे अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निञ्च विश्वशम्भुवम् ॥२७६॥
आपः पृणीत भेषजं वरूथन्तन्वे मम।
ज्योक्च सूर्य्यं दृशे ॥२७७॥
इदमापः प्रवहत यत्किञ्चिद्दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वाशेष उतानृतम् ॥२७८॥
आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आगहि तं मासं सृज वर्चसा ॥२७९॥
रसाञ्जनं कृष्णतिलाः शतपुष्पा घनो बला।
लज्जालुलोध्रयुक्ताभिरद्भिः स्नाने शनेर्मुदः ॥२८०॥
कृष्णा गौर्महिषी लोहन्तैलं सीसन्तु तुष्टये।
शनेर्दद्यादशक्तस्तु लोहं वा मरटानपि ॥२८१॥
ज्येष्ठमासे कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामसृग्दिने।
रोहिण्यां सूर्य्यतो जातः शनिस्तत्रार्च्चनं मुदे ॥२८२॥

नव ऋचाओं वाले इस शनिसूक्त के ऋषि सिन्धुद्वीप, छन्द बद्धमान प्रतिष्ठा अथवा अनुष्टुप् एवं देवता आप कहे गये हैं। शनि की प्रीति के लिये इसका विनियोग कहा गया है। इन नव ऋचाओं का जप करने से कामजात पाप विनष्ट होते हैं। शनिसूक्त की ये नव ऋचायें 'आपोहिष्ठामयो' से आरम्भ कर 'तं मासं सृज वर्चसा'-पर्यन्त मूल में पठित हैं।

शनि की प्रसन्नता के लिये जल में रसांजन, काला तिल, शतपुष्पी, घन (वारिवाह), बला, लाजवन्ती एवं लोध्र मिलाकर अभिषेक करना चाहिये। शनि की तुष्टि के लिये काली गाय, भैंस, लोहा, तेल, सीसा का दान करना चाहिये। उक्त वस्तुओं के दान में यदि असमर्थता हो तो लोहा अथवा मरट (?) का दान करना चाहिये।

ज्येष्ठ मास के कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि भौमवार को रोहिणी नक्षत्र में सूर्य से शनि का जन्म हुआ था; अतः उस समय शनि की प्रसन्नता के लिये उनका अर्चन करना चाहिये।।२६९-२८२।।

राहुमन्त्रकथनम्

राहोर्मन्त्रं प्रवक्ष्यामि वामदेवो मुनिर्मतः ।
गायत्री छन्द इत्युक्तं सैंहिकेयस्तु देवता ॥२८३॥
कया नश्चित्र आभुवदूतीसदावृधः सखा ।
कया शचिष्ठया वृता ॥२८४॥
रांबीजेन षडङ्गानि ध्यानमस्य निरूप्यते ।

राहुमन्त्र—अब राहु के मन्त्र को कहता हूँ। इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द गायत्री एवं देवता सैंहिकेय (राहु) कहे गये हैं। मन्त्र है—कया नश्चित्र आभुवदूतीसदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता। 'रां' बीजमन्त्र से इसका षडङ्गादि न्यास करना चाहिये। अब इसका ध्यान कहा जा रहा है।।२८३-२८४।।

करालवदनं खड्गचर्म्मशूलबृहद्धरम् ॥२८५॥
कृष्णाम्बरं कृष्णवर्णं कृष्णगन्धानुलेपनम् ।
कृष्णपुष्पैः पूज्यमानङ्केयूरमुकुटान्वितम् ॥२८६॥
पूर्वदेशे समुत्पन्नं क्रूरमान्तीरसार्षकम् ।
पाटलीगोत्रसम्भूतमनुष्टुप्छन्दसंग्रहम् ॥२८७॥
कृष्णच्छत्ररथारूढं कृष्णध्वजपताकिनम् ।
सर्पाधिदेवतायुक्तं कालप्रत्यधिदैवतम् ॥२८८॥
इत्थं सच्चिन्त्य नैर्ऋत्ये नक्राकारे तु मण्डले ।
द्वादशाङ्गुलविस्तीर्णे पूजयेच्छ्यामलाक्षतैः ॥२८९॥
दूर्वाभिर्मधुराक्ताभिरस्य होमो विधीयते ।
तर्पणादिरिह द्रव्यैः कौलिकांस्तर्पयेद् द्विजान् ॥२९०॥

राहु-ध्यान—भयानक मुख वाले, विशाल खड्ग चर्म एवं शूल धारण करने वाले, कृष्ण वस्त्र धारण करने वाले, कृष्ण वर्ण वाले, कृष्ण गन्ध का अनुलेप लगाने वाले, कृष्ण पुष्पों द्वारा पूजे जाने वाले, केयूर एवं मुकुट धारण करने वाले, पूर्वदेश में उत्पन्न, क्रूर स्वभाव वाले, पाटली गोत्र में समुद्भूत, अनुष्टुप् छन्द वाले, कृष्ण वर्ण के छत्र वाले रथ पर सवार, कृष्ण वर्ण के ध्वज एवं पताका वाले, सर्परूप अधिदेवता एवं कालरूप प्रत्यधिदेवता से समन्वित राहु का चिन्तन करके नैर्ऋत्य दिशा में बारह अंगुल विस्तृत नक्राकार मण्डल में काले अक्षतों से राहु का पूजन करना चाहिये। त्रिमधुर-सिक्त दूब से इनका होम करना चाहिये। तर्पण में भी इन्हीं द्रव्यों का प्रयोग कौलिक (वाममार्गी) द्विजों को करना चाहिये।२८५-२९०।।

सर्पराजो मुनिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम्।
सर्पाश्च देवताः प्रोक्ता नियोगो राहुतुष्टये ॥२९१॥
आयं गौः पृष्णिरक्रमीदसदम्मातरम्पुरः।
पितरञ्च प्रयन्त्स्वः ॥२९२॥
कण्वाचार्य्यो मुनिः प्रोक्तो गायत्रं छन्द ईरितम्।
देवता तु भवेत्कालो नियोगो राहुतुष्टये ॥२९३॥
माषूणः परापरानिर्ऋतिर्दुहेणावधीत्।
यदीष्टतृष्णाया सह ॥२९४॥
भक्षयेत्तु सदा माषान्दूर्वामूलं च धारयेत्।
न निन्देन्निन्द्यकर्मस्थान् वन्दीमोक्षणमाचरेत् ॥२९५॥
राहोर्मन्त्रस्य सिद्धौ तु दैत्यराक्षसगुह्यकाः।
कुर्वते साधकाज्ञां तु सदैव समरे जयः ॥२९६॥

इस मन्त्र के ऋषि सर्पराज, छन्द गायत्री एवं देवता सर्प कहे गये हैं। राहु की प्रसन्नता के लिये इसका विनियोग कहा गया है। मन्त्र है—आयं गौः पृष्णिरक्रमीदसदम्मातरम्पुरः। पितरञ्च प्रयन्त्स्वः। 'माषूणः परापरानिर्ऋतिर्दुहेणावधीत्। यदीष्टतृष्णाया सह' इस मन्त्र के ऋषि कण्वाचार्य, छन्द गायत्री एवं देवता काल कहे गये हैं। राहु की तुष्टि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

राहुमन्त्र के जपकाल में सदा उड़द से बने पदार्थों का भोजन करना चाहिये एवं दूर्वा का धारण करना चाहिये। निन्द्य कर्म में रत लोगों की निन्दा नहीं करनी चाहिये एवं बन्दियों को मुक्त करना चाहिये। राहुमन्त्र के सिद्ध हो जाने पर दैत्य, राक्षस एवं गुह्यक साधक की आज्ञा का पालन करते हैं तथा युद्ध में उसे सदा विजय की प्राप्ति होती है।।२९१-२९६।।

पञ्चदशर्चसूक्तस्य वामदेवो मुनिर्मतः।
छन्दो निवृच्च गायत्री देवता देवनायकः ॥२९७॥
कयानश्चित्र आभुव दूती सदावृधः सखा।
कया सचिष्ठया वृता ॥२९८॥
कस्त्वा सत्यो मदानामंहिष्ठो मत्सदन्धसः।
दृढाचिदारुजे वसु ॥२९९॥
अभीषुणः सखीनामविता जरितृणाम्।
शतं भवास्यूतिभिः ॥३००॥

अभी न आव वृत्स्व चक्रं न वृतमहतः ।
नयुद्भिश्चर्षणीनाम् ॥३०१॥
प्रवता हि क्रतुना माहापदेव गच्छसि ।
अभक्षि सूर्य्ये स च ॥३०२॥
संयत्त इन्द्र मन्यवः सञ्चक्राणि दधन्विरे ।
अधन्वे अधसूर्य्ये ॥३०३॥
उ तस्मा हि त्वामाहुरिन्मघवानं शचीपते ।
दातारमविदीदयुम् ।३०४॥
तस्मा सद्य इत्यरिशशमानाय सुन्वते ।
पुरोचिन्महसे वसुः ॥३०५॥
महिष्मते शतं वनराधो वरन्त आसुरः ।
न व्यौत्मानि करिष्यतः ॥३०६॥
अस्मा अवन्तु ते शतमस्मात्सहस्त्रमूतयः ।
अस्मान्विश्वा अभीष्टयः ॥३०७॥
अस्मा इहा वृणीष सख्याय स्वस्तये ।
महोराये दिविन्मते ॥३०८॥
अस्मा अविदि विश्वहेन्द्रराया परिणश ।
अस्मान्विश्वाभिरूतिभिः ॥३०९॥
अस्मभ्यं ता अपा विविव्रजां अस्ते व गोमतः ।
नवामिरिन्द्रोतिभिः ॥३१०॥
अस्माकं धृष्णुया रथो द्युमां इन्द्रानपच्युतः ।
गव्युरपुरीयतो ॥३११॥
अस्माकमुत्तमं कृधि श्रवो देवेषु सूर्य्य ।
वर्षिष्ठां द्यामिवोपरि ॥३१२॥
नागवल्लीनागबलाकुमारीचक्रभास्करैः ।
वचागुडूचीतगरैः स्नानं पात्रचतुष्टये ॥३१३॥
सीसकं कम्बलं स्वर्णं मेषं दद्यात्तु तुष्टये ।
राहोरेतदभावे तु त्रिपुरान्सम्प्रदापयेत् ॥३१४॥
आश्विने पौर्णमास्यां तु भरण्यां सिंहिका सुतम् ।
जनयःमास तस्मिंस्तं विशेषेणार्चयेन्मुदे ॥३१५॥

राहुसूक्त—पन्द्रह ऋचाओं वाले इस राहुसूक्त के ऋषि वामदेव, छन्द निवृद् गायत्री एवं देवता देवनायक कहे गये हैं। राहुसूक्त की पन्द्रह ऋचायें मूल में 'कयानश्चित्र आभुव' से आरम्भ कर 'वर्षिष्ठां द्यामिवोपरि'-पर्यन्त पठित हैं।

राहु को प्रसन्न करने के लिये नागवल्ली, नागवला, घृतकुमारी, चकवड़, वचा, गिलोय, तगर को जल में मिलाकर चार पात्रों द्वारा अभिषेक एवं सीसा, कम्बल, सुवर्ण तथा भेड़ का दान करना चाहिये। उक्त दातव्य वस्तुओं के अभाव में त्रिपुरों (गुग्गुल के तीन खण्डों) का दान करना चाहिये।

आश्विन मास की पूर्णिमा तिथि को भरणी नक्षत्र में सिंहिका ने पुत्र (राहु) को जन्म दिया था; अत: राहु की प्रसन्नता के लिये उक्त अवसर पर विशेष अर्चन करना चाहिये।।२९७-३१५।।

केतुमन्त्रकथनम्

केतुमन्त्रं प्रवक्ष्यामि मधुच्छन्दा मुनिर्मतः।
देवता केतवः प्रोक्ता गायत्रं छन्द ईरितम्॥३१६॥
केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे।
समुषद्भिरजायथाः ॥३१७॥
कम्बीजेन षडङ्गानि ध्यानमत्र निरूप्यते।

केतुमन्त्र—अब केतुमन्त्र को कहता हूँ। इस केतुमन्त्र के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री एवं देवता केतु कहे गये हैं। केतुमन्त्र है—केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्य्या अपेशसे। समुषद्भिरजायथाः। बीजमन्त्र 'कं' से इसका षडङ्गन्यास करना चाहिये (करन्यास—कां अंगुष्ठाभ्यां नमः, कीं तर्जनीभ्या नमः, कूं मध्यमाभ्यां नमः, कैं अनामिकाभ्यां नमः, कौं कनिष्ठाभ्यां नमः एवं कः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः। अङ्गन्यास—कां हृदयाय नमः, कीं शिरसे स्वाहा, कूं शिखायै वषट्, कैं कवचाय हुम्, कौं नेत्रत्रयाय वौषट् एवं कः अस्त्राय फट्)। अब इसका ध्यान कहा जा रहा है।।३१६-३१७।।

धूम्राक्षबाहवः पाशधराश्च विकृताननाः॥३१८॥
किरीटिनो गृध्रवाहा मध्यदेशोद्भवा दृढाः।
चित्राम्बराश्चित्रवर्णाश्चित्रगन्धानुलेपनाः ॥३१९॥
नानाछन्दस्कका गोतमार्य्या जैमिनिगोत्रजाः।
कृष्णपिङ्गध्वजपताकिनो मुकुटिनस्तथा॥३२०॥
केयूरिणो रथारूढाः स्थूला ब्रह्माधिदेवताः।
चित्रगुप्ताख्यप्रत्यधिदेवताश्चेति चिन्तयेत्॥३२१॥

केतुध्यान—धूम्ररूपी आँखों एवं भुजाओं वाले, पाश धारण करने वाले, विकृत मुख वाले, माथे पर किरीट धारण करने वाले, गृध्र पर सवार होने वाले, मध्य देश में उत्पन्न, अतिशय बलशाली, रंग-विरंगे वस्त्र धारण करने वाले, विचित्र वर्ण वाले एवं मिश्रित गन्ध का अनुलेप लगाने वाले, अनेक छन्द वाले, गौतम द्वारा प्रतिष्ठित एवं जैमिनि गोत्र वाले, कृष्ण एवं पिङ्गल वर्ण के ध्वज तथा पताका वाले, मुकुट से अलंकृत, केयूर धारण करने वाले, रथ पर सवार, स्थूल शरीर वाले, अधिदेवता ब्रह्मा एवं प्रत्यधिदेवता चित्रगुप्त से समन्वित केतु का ध्यान करना चाहिये।।३१८-३२१।।

साधाङ्गुले ध्वजाकारे वायव्यां मण्डले कृते।
चित्रवर्णाक्षतैः पुष्पैस्तत्रावाह्य समर्चयेत्॥३२२॥
वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं कुशहोमं समाचरेत्।
मधुरत्रयसंयुक्तैश्चित्रद्रव्यैः प्रपूजयेत्॥३२३॥
वामदेवो मुनिः प्रोक्तस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
ब्रह्मास्य देवता केतुप्रीतये विनियोजनम्॥३२४॥
ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः।
सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठास्सतश्च योनिमसतश्च विवः॥३२५॥
प्रस्कण्वस्तु मुनिः प्रोक्तो बृहती छन्द ईरितम्।
देवता चित्रगुप्तोऽत्र नियोगः केतुतुष्टये॥३२६॥
उषो वाजं हिवंस्वयश्चित्रो मानुषे जने।
तेनावह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः॥३२७॥
सदैव ब्रह्मवेषः स्यान्निम्नेनोपविशेत्क्वचित्।
नाश्नीयाद्दग्धमन्नादि केतुसेवनतत्परः॥३२८॥
केतुमन्त्रस्य सिद्धौ तु लिङ्गं सर्वत्र मान्यता।
बहुधा तु भवेद्गुप्तो दृश्यो न साधकोत्तमः॥३२९॥

वायव्य कोण में रंग-विरंगे अक्षतों एवं पुष्पों से ध्वज की आकृति वाले डेढ़ अंगुल विस्तृत मण्डल का निर्माण करके उस मण्डल में केतु का आवाहन करके अर्चन करना चाहिये। केतुमन्त्र के अक्षरों के समतुल्य लाख (मन्त्र में चौबीस वर्ण हैं, अतः चौबीस लाख) मन्त्रजप करने के पश्चात् मधुरत्रय से युक्त कुशों से हवन करना चाहिये। रंग-विरंगे द्रव्यों से इनका पूजन करना चाहिये।

'ब्रह्मजज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्विसीमतः सुरुचो वेन आवः। सबुध्न्या उपमा अस्य विष्ठास्सतश्च योनिमसतश्च विवः।' अधिदेवता ब्रह्मा के इस मन्त्र के ऋषि वामदेव,

छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता ब्रह्मा कहे गये हैं। केतु की प्रीति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। 'उषो वाजं हिवंस्वयश्चित्रो मानुषे जने। तेनावह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः।' प्रत्यधिदेवता चित्रगुप्त के इस मन्त्र के ऋषि प्रस्कण्व, छन्द बृहती एवं देवता चित्रगुप्त हैं तथा केतु की सन्तुष्टि के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

केतु के उपासकों को बरावर ब्रह्मवेष में रहना चाहिये एवं कभी भी निम्न स्थान पर नहीं बैठना चाहिये। साथ ही उन्हें कभी भी दग्ध अन्न का भक्षण नहीं करना चाहिये। केतुमन्त्र के सिँद्ध हो जाने का प्रमाण यह है कि वह श्रेष्ठ साधक सर्वत्र मान्य होता है। केतु के उपासक बहुधा अपने को गुप्त रखते हैं और कभी भी दिखायी नहीं पड़ते।।३२२-३२९।।

दशर्चस्य तु सूक्तस्य मधुच्छन्दा मुनिः स्मृतः।
देवते चन्द्रमरुतौ गायत्रं छन्द उच्यते ॥३३०॥
युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तम्परितस्थुषः।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥३३१॥
बीलुचिदारुजन्तुभिर्गुहाविदिन्द्रवह्निभिः।
अविन्द उ श्रिया अनु ॥३३२॥
देवयन्तो यथामतिमच्छाविदद्वसुङ्गिरः।
महामनूषतसृतम् ॥३३३॥
इन्द्रेण स हि दृक्षसे यजमानो अविभ्युषा।
मन्दूस मानचर्वस ॥३३४॥
अनवद्यैरभि रघूमिमास्वस्वहस्वदर्चतिम्।
गणैरिन्द्रस्य काम्यैः ॥३३५॥
अतः परिज्मन्नागहि दिवो वा रोचनादधि।
समस्मिन्नञ्जते गिरः ॥३३६॥
इतो वासातिमीमहे देवो वा पार्थिवादधि।
इन्द्रं माहो वा रजसः ॥३३७॥
सहदेवी च लज्जालुबलामुस्ताप्रियङ्गवः।
एतद्युक्तजलस्नानात्प्रसीदति सदा शिखी ॥३३८॥
ऊर्णवस्त्रमजापुत्रं ध्वजञ्चापि पताकिकाम्।
पीताभां केतुतुष्टयै तु दद्याद्वा राजमाषकान् ॥३३९॥
आषाढस्य सिते पक्षे रौद्रभे केतवोऽभवन्।
अतश्चार्कदिने कार्य्यः केतूनान्तु महोत्सवः ॥३४०॥

केतुसूक्त—दस ऋचाओं वाले केतुसूक्त[1] के ऋषि मधुच्छन्दा, छन्द गायत्री तथा देवता चन्द्रमा एवं मरुत् कहे गये हैं। केतुसूक्त की ऋचायें मूल में 'युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं' से आरम्भ कर 'इन्द्रं माहो वा रजसः'-पर्यन्त पठित हैं।

जल में सहदेवी, लाजवन्ती, बला, मुस्ता एवं प्रियङ्गु मिलाकर अभिषेक करने से केतु सदा प्रसन्न रहते हैं। केतु की प्रसन्नता के लिये ऊनी वस्त्र, बकरा, ध्वज एवं पीले रंग की पताका अथवा राजमाष का दान करना चाहिये।

आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष में रौद्र नक्षत्र में केतु का जन्म हुआ था; अतः रविवार के दिन केतु का महोत्सव करना चाहिये।।३३०-३४०।।

ग्रहपूजनफलम्

इत्थं वैदिकमार्गेण कथितं ग्रहपूजनम्।
ये कुर्वन्ति सदा तेषां सिद्धिः करतले स्थिता ॥३४१॥
ग्रहाराधनशीलानामिह लोके परत्र च।
सुखं स्यादथ किं वच्मि तद्ब्रुवन्त्विह देवताः ॥३४२॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे शिवप्रणीते
नवग्रहकथनप्रकाशस्त्रयोदशः ॥१३॥

●

इस प्रकार वैदिक मार्ग द्वारा विवेचित ग्रहपूजन को जो लोग बराबर करते हैं, उनकी सिद्धि उनके हाथों में विद्यमान रहती है। ग्रहों की उपासना में संलग्न लोगों को इस भूलोक एवं परलोक में सुख प्राप्त होता है। हे देवताओं! अब आगे क्या कहूँ, उसे आप लोग कहें।।३४१-३४२।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में
शिवप्रणीत 'नवग्रहकथन' नामक त्रयोदश
प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

---

१. विनियोग में दश ऋचाओं का उल्लेख है, किन्तु मूल में आठ ऋचायें ही पठित हैं।

अथ चतुर्दशः प्रकाशः

(प्रत्यङ्गिरामन्त्रकथनप्रकाशः)

श्रीदेव्युवाच

भगवन् देवदेवेश गुरुणा ज्ञानिना यदा।
लोभेन दत्तो मन्त्रश्चेदतो दुःखमवाप्यते ॥१॥
तदा किं देव कर्त्तव्यं यदा सौख्यं न जायते।
इह लोके परत्रापि येन संलभ्यते सुखम् ॥२॥

श्रीदेवी ने कहा—हे भगवन्! देवदेवेश! ज्ञानी गुरु लोभवश यदि अपात्र को मन्त्र प्रदान करता है तो उसे दुःख प्राप्त होता है। हे देव! ऐसी स्थिति में जब सुख की प्राप्ति न हो तो क्या करना चाहिये, जिससे कि इहलोक में एवं परलोक में भी सुख की प्राप्ति हो सके।।१-२।।

श्रीमहादेव उवाच

प्रायः कलियुगे देवि गुरवो लोभसंयुताः।
शिष्याः सुखेप्सवोऽभक्ता ह्यतो न क्वापि सिद्धयः ॥३॥
प्रायो मन्त्रग्रहस्तेन दुःखायैवोपजायते।
तदर्थं सम्प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ॥४॥
मन्त्रत्यागं प्रथमतः कृत्वा प्रत्यङ्गिरां भजेत्।

श्रीमहादेव जी ने कहा—हे देवि! कलियुग में गुरु लोग प्रायः लोभी होते हैं एवं भक्ति से रहित शिष्यगण सुख के इच्छुक होते हैं; इसीलिये उन्हें कहीं भी सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती। यही कारण है कि कलियुग में मन्त्रग्रहण प्रायः दुःख के लिये ही होते हैं। इसके निवारण के लिये सभी तन्त्रों में गुप्त तथ्य को मैं प्रकाशित करता हूँ। सर्वप्रथम मन्त्र का त्याग करके प्रत्यंगिरा की उपासना करनी चाहिये।।३-४।।

मन्त्रत्यागविधिः

मन्त्रत्यागविधिं वक्ष्ये येन सञ्जायते सुखम् ॥५॥
विद्वांसं ब्राह्मणं ज्ञात्वा तन्त्रेषु परिनिष्ठितम्।
प्रातस्तस्य गृहं गत्वा स्वीयं दुःखं निवेदयेत् ॥६॥

ततस्तेन प्रकर्त्तव्यो मन्त्रत्यागविधिः परः।
तत्रादौ रम्यभवने कुम्भं दीक्षाविधानतः ॥७॥
मण्डले स्थापयित्वा तु युतं तीर्थजलैः शुभैः।
विलोमं तन्त्रमन्त्रेण तत्रावाह्येष्टदेवताम् ॥८॥
सकलीकृत्य सम्पूज्यावरणञ्च प्रपूजयेत्।
एवं सावरणां मन्त्री समभ्यर्च्येष्टदेवताम् ॥९॥
हुनेद्विलोममन्त्रेण गोघृतेन सहस्रकम्।
अष्टान्वितं शतं वापि ततः सन्तर्पयेदमुम् ॥१०॥
ब्रह्मार्पणेन मनुना देवताभ्यो बलिन्ततः।

मन्त्र-त्याग विधि—अब मैं मन्त्रत्याग-विधि को कहता हूँ, जिससे सुख की प्राप्ति होती है। एतदर्थ तन्त्रों में परिनिष्ठित विद्वान् ब्राह्मण का पता लगाकर प्रात:काल उसके घर जाकर उससे अपने दुःख का निवेदन करना चाहियें। तत्पश्चात् उस विद्वान् ब्राह्मण के द्वारा मन्त्रत्याग का विधान करना चाहिये। इसके लिये रम्य भवन में मण्डल में दीक्षाविधान से कलश स्थापित करके उसमें शुभ तीर्थों का जल भरना चाहिये। इसके बाद विलोम तान्त्रिक मन्त्र से वहाँ पर इष्टदेवता का आवाहन करने के उपरान्त सकलीकरण करके इष्टदेवता का पूजन करने के बाद आवरण-पूजन करना चाहिये। इस प्रकार मन्त्रज्ञ विद्वान् को आवरण-सहित इष्टदेवता का सम्यक् रूप से पूजन सम्पन्न करके विलोम मन्त्र द्वारा गोघृत से एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये। इसके बाद 'ॐ तत्सत् प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारजाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणाभ्यन्तरा यच्चोदरेण शिश्ना वा यच्च स्मृतं यदुक्तं यच्च कृतन्तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवेद् भूः स्वाहा' इस ब्रह्मार्पण मन्त्र से तर्पण करना चाहिये। तदनन्तर देवताओं को बलि प्रदान करना चाहिये।।५-१०।।

यथान्नैश्चापि दुग्धान्नैर्दिग्विदिक्ष्वथ ऊर्ध्वतः ॥११॥
आयाहीन्द्र सुराधीश शतमन्यो शचीपते।
नमस्तुभ्यं गृहाणेमं पुष्पधूपादिकं बलिम् ॥१२॥
आयाहि तेजसा नाथ हव्यवाह वरप्रद।
गृहाण पुष्पधूपादि बलिमेनं प्रयोजितम् ॥१३॥
प्रेतनाथ त्वमायाहि भिन्नाञ्जनसमद्युते।
बलिं दत्तं गृहाणेमं सुप्रीतो वरदो भव ॥१४॥
नमस्ते रक्षसां नाथ निर्ऋते त्वमिहागतः।
गृहाण बलिपूजादि मया भक्त्या निवेदितम् ॥१५॥

एहि पश्चिमदिक्पाल जलनाथ नमोऽस्तु ते।
भक्त्या निवेदितां पूजां गृहीत्वा सुखमाप्नुहि ॥१६॥
प्रभञ्जन प्राणपते त्वमेहि सपरिच्छदः।
मया प्रयुक्तं विधिवद् गृहाण बलिमादरात् ॥१७॥
कुबेरतारकाधीशावागच्छेतां सुरोत्तमौ।
पुष्पधूपादिभिः प्रीतौ भवतां वरदौ मम ॥१८॥
ईश त्वमेहि भगवन् सर्वविद्याश्रय प्रभो।
पूजितः पुष्पधूपाद्यैः प्रीतो भव विभूतये ॥१९॥
आयाहि सर्वलोकानां नाथ ब्रह्मन् समर्चनम्।
गृहाण सर्वविप्राग्र्य जगत्कर्त्रे नमोऽस्तु ते ॥२०॥
आगच्छ वरदश्रेष्ठ विष्णो विश्वस्य नायक।
पूजितः परया भक्त्या भव त्वं सुखदो मम ॥२१॥
ततः सपरिवारां यः पूजयेन्मन्त्रदेवताम्।
मन्त्रेण विपरीतेन पुष्पधूपोपचारकैः ॥२२॥

देवताओं को बलि यवान्न अथवा दुग्धान्न से दिशाओं में, विदिशाओं में, ऊपर एवं नीचे भी प्रदान करना चाहिये। इस क्रम में 'आयाहीन्द्र........पुष्पधूपादिकं बलिम्' (हे सुराधीश! हे शतमन्यु! हे शचीपते! आप यहाँ आयें, आपके लिये नमस्कार है; पुष्प-धूप आदि से समन्वित इस बलि को ग्रहण करें।) इस मन्त्र से इन्द्र को, 'आयाहि तेजसा.......बलिमेनं प्रयोजितम्' (हे तेजोऽधिपति वरप्रद हव्यवाह! पुष्प-धूप आदि द्वारा तैयार किये गये इस बलि को आप ग्रहण करें।) मन्त्र से अग्नि को, 'प्रेतनाथ......वरदो भव' (भिन्न-भिन्न अञ्जन के सदृश कान्तिमान हे प्रेतनाथ! आप यहाँ आयें और दिये गये इस बलि को ग्रहण करके अतिशय प्रसन्न हों एवं वर प्रदान करने वाले बनें।) मन्त्र से यम को, 'नमस्ते रक्षसां....निवेदितम्' (हे राक्षसों के अधिपति निर्ऋति! आप यहाँ आयें, आपको नमस्कार है। मेरे द्वारा भक्ति-पूर्वक निवेदित बलि-पूजा आदि को ग्रहण करें।) मन्त्र से निर्ऋति को, 'एहि पश्चिम........सुखमाप्नुहि' (हे पश्चिम दिशा के अधिपति वरुण देव! आप यहाँ आयें, आपको नमस्कार है। भक्ति द्वारा निवेदित पूजा को ग्रहण करके आप सुखी हों।) मन्त्र से वरुण को, 'प्रभञ्जन........बलिमादरात्' (हे प्राणों के स्वामी वायु! आप अपने अनुचरों के सहित यहाँ आयें और मेरे द्वारा विधि-पूर्वक प्रयुक्त बलि को आदरपूर्वक ग्रहण करें।) मन्त्र से वायु को, 'कुबेर.......वरदौ मम' (हे देवताओं में श्रेष्ठ कुबेर एवं तारकाधीश! आप दोनों यहाँ आयें और पुष्प-धूप आदि से प्रसन्न होकर मेरे लिये वर प्रदान करने वाले बनें।) मन्त्र से कुबेर एवं

तारकाधीश को, 'ईश त्वमेहि..........विभूतये' (समस्त विद्याओं के आश्रयस्वरूप हे प्रभु ईश! आप यहाँ आयें और पुष्प-धूप आदि से पूजित होकर मुझे ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये प्रसन्न हों।) मन्त्र से ईशान को, 'आयाहि........नमोऽस्तु ते' (समस्त लोकों के स्वामी हे ब्रह्मन्! आप यहाँ आयें और इस सम्यक् अर्चन को ग्रहण करें। हे समस्त ब्राह्मणों में अग्रणि! हे जगत् के स्रष्टा! आपके लिये नमस्कार है।) मन्त्र से ब्रह्मा को तथा 'आगच्छ........सुखदो मम' (हे वर प्रदान करने वालों में श्रेष्ठ! हे विश्व के अधिपति विष्णु! अतिशय भक्ति द्वारा मुझसे पूजित होकर आप मुझे सुख प्रदान करने वाले बनें।) मन्त्र से विष्णु को बलि प्रदान करना चाहिये।

बलि निवेदित करने के बाद विलोम मन्त्र द्वारा पुष्प-धूप आदि उपचारों से परिवार-सहित मन्त्रदेवता की पूजा करनी चाहिये।।११-२२।।

ततस्तु प्रार्थयेद्विद्वान् पूजितां मन्त्रदेवताम्।
अनुकल्पादिनालोच्य मया तरलबुद्धिना ॥२३॥
उपात्तो दुःखदो मन्त्रस्तद्दोषं विनिवर्त्तय।
पापं प्रतिहतं मेऽस्तु भूयाच्छ्रेयः सनातनम् ॥२४॥
तनोतु मम कल्याणं पावनी भक्तिरेव तु।

इसके बाद विद्वान् को मन्त्रदेवता से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—अनुकल्प आदि के द्वारा गुण-दोष का विवेचन करने से चञ्चल बुद्धि वाले मेरे द्वारा दुःख प्रदान करने वाले मन्त्र को स्वीकार कर लिया गया है; अतः मेरे उस दोष को आप लौटा दें। मेरे पाप दूर हों, मेरा सनातन कल्याण हो। मेरे कल्याण का विस्तार हो एवं मेरी भक्ति पवित्र करने वाली हो।।२३-२४।।

इति सम्प्रार्थ्य मन्त्रेशं मन्त्रं यन्त्रे विलोमतः ॥२५॥
विलिख्यामलकर्पूरचन्दनेन समर्पयेत्।
कलशोपरि संस्थाप्य भक्त्या परमया युतः ॥२६॥
तद्यन्त्रं स्वस्य शिरसि बद्ध्वा स्नायाद् घटोदकैः।
मन्त्रपूतैः पुनश्चान्यं कुम्भं तोयैः प्रपूरयेत् ॥२७॥
तन्मध्ये मन्त्रयन्त्रं च निक्षिप्याथ प्रपूरयेत्।
तं कुम्भं निम्नगायां च शुद्धे वान्यजलाशये ॥२८॥
विसृजेदथ विप्रांश्च यथाशक्ति प्रपूजयेत्।
इत्थं कृतविधानस्य दुर्लभस्य मनोरुजः ॥२९॥
विनश्यन्ति न सन्देहः क्रमाच्चित्तप्रसन्नता।
जायतेऽतीवसम्पन्ना वर्धते तत्कुलं सदा ॥३०॥

इस प्रकार मन्त्रदेव की प्रार्थना करके मन्त्र को विलोमपूर्वक कपूर एवं चन्दन से यन्त्र पर लिखकर मन्त्रेश को समर्पित करके कलश पर रख कर अतिशय भक्तिपूर्वक उस यन्त्र को शिर पर बाँधकर मन्त्रपूत कलशस्थ जल से स्नान करने के उपरान्त पुनः दूसरे घट को जल से पूर्ण कर उसके मध्य में मन्त्र-यन्त्र को डालकर उसका मुख बन्द करके उस कलश को नदी में अथवा दूसरे शुद्ध जलाशय में विसर्जित कर देना चाहिये। तत्पश्चात् यथाशक्ति ब्राह्मणों का पूजन करना चाहिये। ऐसा विधान करने से कठिन मनोरोग विनष्ट हो जाते हैं; इसमें कोई संशय नहीं है। इसके बाद क्रमशः मन्त्रग्राहक के चित्त में प्रसन्नता होती है, सम्पन्नता प्राप्त होती है एवं उसका कुल वर्द्धमान रहता है।।२५-३०।।

महाविद्याप्रत्यङ्गिराकथनम्

अथ प्रत्यङ्गिरां वक्ष्ये सारभूतां सुखप्रदाम्।
यद्भक्तस्य दृशः पाताद्भूतप्रेताधिदेवताः ।।३१।।
कदाचिन्नाभिगच्छन्ति साध्यसिद्धिः प्रजायते।
शान्तिं पुष्टिं समृद्धिञ्च साधकाय प्रयच्छति ।।३२।।
कुलद्वयविदात्मादि मन्त्रार्थज्ञानकोविदः।
आचारसंयुतः शुद्धवाक्छुद्धो मनसा तथा ।।३३।।
शान्तबुद्धिः प्रसन्नात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।
दम्भाहङ्कारमोहादिविकलो ज्ञानवित्तमः ।।३४।।
ध्यानयोगसमारूढः सर्वाभीष्टप्रसाधकः।
मन्त्रराजमिमं लब्ध्वा जायते स च भूपतिः ।।३५।।

महाविद्या प्रत्यङ्गिरा—अब समस्त मन्त्रों के सारभूत एवं सुख प्रदान करने वाले प्रत्यङ्गिरा मन्त्र को कहता हूँ। इसके भक्तों के दृक्पात-मात्र से ही भूत-प्रेत-अधिदेवता कभी भी सामने नहीं आते; साध्य की सिद्धि होती है तथा साधक को शान्ति, पुष्टि एवं समृद्धि की प्राप्ति होती है।

दोनों कुलों का ज्ञानी, मन्त्रार्थ-ज्ञान में पारंगत, आचारवान, मन-वचन से शुद्ध, शान्त बुद्धि वाला, प्रसन्नात्मा, जितक्रोध, जितेन्द्रिय, दम्भ-अहंकार-मोह आदि से रहित, पूर्ण ज्ञानी, ध्यानयोग में निमग्न, समस्त अभीष्ट को साधित करने वाला साधक इस मन्त्रराज को प्राप्त करके राजा हो जाता है।।३१-३५।।

विनियोगमथो वक्ष्ये चत्वारिंशदृचस्तथा।
प्रत्यङ्गिरा मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुप्प्रकीर्तितम् ।।३६।।

उग्रा कृत्या देवताऽस्ति महादेवोऽथवा हरिः।
विनियोगोऽत्र सर्वेषु त्वभीष्टेषु तथाविधः ॥३७॥
आदौ शरीरशुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं व्रतं चरेत्।
कुशोदकेन संशोध्य पञ्चगव्येन वै पुनः ॥३८॥
चरुं हविष्यं भुञ्जानः शतमष्टोत्तरं जपेत्।
दिनत्रयं ततः सिद्धं मन्त्रं कार्येषु योजयेत् ॥३९॥

अब चालीस ऋचाओं के विनियोग को कहता हूँ। इन ऋचाओं के ऋषि प्रत्यङ्गिरा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता उग्र कृत्या, महादेव अथवा विष्णु कहे गये हैं। समस्त अभीष्टों की प्राप्ति के लिये इनका विनियोग कहा गया है।

मन्त्रानुष्ठान-हेतु सर्वप्रथम शरीर की शुद्धि के लिये प्राजापत्य व्रत करना चाहिये; फिर कुश-जल से शरीर-शोधन करने के पश्चात् पञ्चगव्य से उसकी शुद्धि करनी चाहिये। तदनन्तर चरु एवं हविष्यान्न का भोजन करते हुये एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करना चाहिये। इस प्रकार तीन दिनों तक करने से सिद्ध हुये मन्त्र का कार्यों में प्रयोग करना चाहिये।।३६-३९।।

दिक्पालमुद्रासनपल्लवानां विधिं परिज्ञाय जपेत्सुमन्त्रम्।
न चान्यथा सिद्ध्यति तस्य मन्त्रः पूतः सदायङ्किल मन्त्रराजः ॥४०॥

दिक्पाल, मुद्रा, आसन एवं पल्लवों की विधि को जानकर सम्यक् प्रकार से मन्त्र का जप करना चाहिये; अन्य किसी प्रकार से यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। निश्चित ही यह मन्त्रराज सदैव परम पवित्र है।।४०।।

लङ्घयेत्प्रत्यरीन् सर्वानभीष्टं चैव जायते।
प्रयुक्तो ब्राह्मणे मन्त्रो विपरीतफलो भवेत् ॥४१॥
जपादौ वा प्रयोगादौ पुरश्चर्य्यादिके तथा।
आदौ शान्तिं प्रकुर्वीत तद्विधानं निगद्यते ॥४२॥
बार्हस्पत्यः शान्तिमुनिर्विश्वेदेवाः सुरा मताः।
छन्दश्च शक्वरी प्रोक्ता शान्त्यर्थं विनियोजनम् ॥४३॥
तच्छंय्योरावृणीमहे गातुं यज्ञाय।
गातुं यज्ञपतये दैवी स्वस्तिरस्तु नः ॥४४॥
स्वस्तिरस्तु मानुषेभ्यः ऊर्ध्वं जिगातु भेषजम्।
शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥४५॥

नमो ब्रह्मणे नमो अस्त्वग्नये।
नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥४६॥
नमो वाचस्पतये नमो विष्णवे महते करोमि।
भद्रं नो अपि वातये मनः ॥४७॥
उच्चरंस्त्रिस्तारपूर्वं मन्त्रान्ते शान्तिरित्यपि।
गायत्र्यष्टोत्तरशतं जप्त्वा कर्म समाचरेत् ॥४८॥

इस सिद्ध मन्त्र से साधक अपने सभी शत्रुओं को अतिक्रान्त कर लेता है एवं समस्त अभीष्टों को प्राप्त कर लेता है। ब्राह्मणों पर इस मन्त्र का प्रयोग करने पर विपरीत फल की प्राप्ति होती है। इस मन्त्र के जप, प्रयोग तथा पुरश्चरण करने के पूर्व शान्तिकर्म करना चाहिये; अत: अब उसका विधान कहा जा रहा है।

इस शान्तिमन्त्र के ऋषि वार्हस्पत्य, छन्द शक्वरी एवं देवता विश्वेदेव कहे गये हैं। शान्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है। 'तच्छंय्योरावृणीमहे' से आरम्भ कर 'वातये मन:'-पर्यन्त शान्तिमन्त्र मूल में पठित हैं। इन मन्त्रों के उच्चारण के पूर्व त्रितार एवं मन्त्रान्त में 'शान्ति:' का उच्चारण करना चाहिये। इसके पश्चात् गायत्री मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के बाद अभीष्ट कर्म का सम्पादन करना चाहिये।

कर्म्मान्तेऽपि पुनश्चैवं कृत्वा कर्म समापयेत्।
सर्वेषामेव मन्त्राणां बीजमोंशक्तिरत्र ह्रीम् ॥४९॥
तारमायापुटाः सर्वे जप्तव्याः केवला न हि।
तदा क्षिप्रं प्रसिद्ध्यन्ति मन्त्रास्तन्त्रेषु निर्णयः ॥५०॥

अभीष्ट कर्म का सम्पादन कर लेने के बाद भी पुन: शान्तिकर्म एवं गायत्री मन्त्र का एक सौ आठ बार जप करने के पश्चात् कर्म की समाप्ति करनी चाहिये। उक्त समस्त शान्तिमन्त्रों का बीज 'ॐ' एवं शक्ति 'ह्रीं' है। 'ॐ ह्रीं' से सम्पुटित करके ही सभी मन्त्रों का जप करना चाहिये; विना सम्पुटित किये मन्त्र का जप नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से समस्त मन्त्र शीघ्र सिद्ध होते हैं, यह सभी तन्त्रों का निर्णय है।।४९-५०।।

अश्विनौ तु मुनी प्रोक्तावनुष्टुप्छन्द ईरितम्।
कृत्यात्र देवता चास्य नियोगोऽभीष्टसिद्धये ॥५१॥
यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव।
तां ब्रह्मणा अपनिर्णुघ्न प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ॥५२॥

नागत्र्यब्ध्यब्धिवेदेषु नागवर्णैर्ध्रुवादिकैः ।
ह्रींबीजान्तैः षडङ्गानि मन्त्रस्य तु समाचरेत् ।।५३।।
शिरोभ्रूमध्यवक्त्रेषु कण्ठे बाहुद्वये हृदि ।
नाभावूर्वोर्जानुनोश्च पदानि पदयोर्न्यसेत् ।।५४।।
चतुर्दशक्रमान्मन्त्री तारमायापुटान्यपि ।

'यां कल्पयन्ति नोरयः क्रूरां कृत्यां वधूमिव। तां ब्रह्मणा अपनिर्णुघ्न प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु।' इस मन्त्र के ऋषि अश्विनीकुमार, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। अभीष्टसिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है। इस मन्त्र से षडङ्गन्यास इस प्रकार किया जाता है—

ॐ यां कल्पयन्ति नोरयः ह्रीं हृदयाय नमः।
ॐ क्रूरां कृत्यां ह्रीं शिरसे स्वाहा।
ॐ वधूमिव ह्रीं शिखायै वषट्।
ॐ तां ब्रह्मणा ह्रीं कवचाय हुम्।
ॐ अपनिर्णुघ्न ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट्।
ॐ प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छति ह्रीं अस्त्राय फट्।

मन्त्रज्ञ साधक को मन्त्र के पदों को ॐ एवं ह्रीं से सम्पुटित करके चौदह स्थानों में पदन्यास इस प्रकार करना चाहिये—

१. ॐ यां ह्रीं शिरसि।
२. ॐ कल्पयन्ति ह्रीं भ्रूमध्ये।
३. ॐ नोरयः ह्रीं मुखे।
४. ॐ क्रूरां ह्रीं कण्ठे।
५. ॐ कृत्यां ह्रीं दक्षबाहौ।
६. ॐ कृत्यां ह्रीं वामबाहौ।
७. ॐ वधूमिव ह्रीं हृदये।
८. ॐ तां ह्रीं नाभौ।
९. ॐ ब्रह्मणा ह्रीं दक्षोरौ।
१०. ॐ ब्रह्मणा ह्रीं वामोरौ।
११. ॐ अपनिर्णुघ्न ह्रीं दक्षजानुनि।
१२. ॐ अपनिर्णुघ्न ह्रीं वामजानुनि।
१३. ॐ प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रीं दक्षपादे।
१४. ॐ प्रत्यक्कर्त्तारमृच्छतु ह्रीं वामपादे।।५१-५४।।

ततो ध्यायेत्सिंहमुखीं मुक्तकेशां दिगम्बराम् ।।५५।।
असिचर्मकरां श्यामां दंष्ट्राग्रां सर्वभीषणाम् ।
ग्रसन्तीमहितान्रुद्रतेजसा ध्यानमीरितम् ।।५६।।

तदनन्तर सिंह के समान मुख वाली, खुले वालों वाली, दिशारूपी वस्त्र वाली, हाथों में तलवार एवं चर्म धारण की हुई, कृष्ण वर्ण वाली, आगे निकले हुये दाँतों वाली, रुद्र के तेज से शत्रुओं को ग्रास बनाती हुई अतिशय भयंकर देवी का ध्यान करना चाहिये।।५५-५६।।

अयुतं प्रजपेन्मन्त्रं होमस्तस्य दशांशतः ।
अपामार्गसमिद्भिस्तु होमो हव्यघृतादिभिः ।।५७।।

उक्त प्रकार से देवी कृत्या का ध्यान करके मन्त्र का दस हजार जप करना चाहिये। तत्पश्चात् जप का दशांश हवन करना चाहिये। यह हवन अपामार्ग की समिधा के साथ तिल, घी आदि मिलाकर करना चाहिये।।५७।।

त्रिकोणे चार्चयेद्देवीं षड्दलेष्वङ्गपूजनम् ।
लोकपालांस्तदस्त्राणि पूजयेदित्थमर्चनम् ।।५८।।

बिन्दु, त्रिकोण, षट्कोण और भूपुर-युक्त यन्त्र में पूजन करना चाहिये। इसके अनुसार यन्त्र और पूजनविधि अंकित किया जाता है। त्रिकोण में देवी का अर्चन करना चाहिये एवं षड्दल में अङ्गपूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् भूपुर में दिक्पालों और उनके अस्त्रों का पूजन करना चाहिये। पूजन यन्त्र का स्वरूप इस प्रकार का होता है—

त्रिकोण में देवी का पूजन इस प्रकार किया जाता है—ॐ ह्रीं प्रत्यङ्गिरादेव्यै नमः आवाहयामि, स्थापयामि पूजयामि पाद्यं अर्घ्यं आचमनीयं समर्पयामि। स्नानं, वस्त्राभूषणानि, गन्धं, पुष्पं, धूपं, दीपं, नैवेद्यं, पानीयं, आचमनीयं, ताम्बूलं, दक्षिणां, आरार्तिक्यं समर्पयामि। दक्षिणाद्रव्यं समर्पयामि।

इस प्रकार देवीपूजन करने के बाद प्रथम आवरण में गन्ध-अक्षत-पुष्प से इस प्रकार अङ्गपूजा करनी चाहिये—

ॐ यां कल्पयन्ति नोरयः ह्रीं हृदयाय नमः हृदयं पूजयामि तर्पयामि।
ॐ क्रूरां कृत्यां ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरसं पूजयामि तर्पयामि।
ॐ वधूमिव ह्रीं शिखायै वषट् शिखां पूजयामि तर्पयामि।
ॐ तां ब्रह्मणा ह्रीं कवचाय हुम् कवचं पूजयामि तर्पयामि।
ॐ अपनिर्णुघ्न ह्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रं पूजयामि तर्पयामि।
ॐ प्रत्यक्कर्तारमृच्छति ह्रीं अस्त्राय फट् अस्त्रं पूजयामि तर्पयामि।
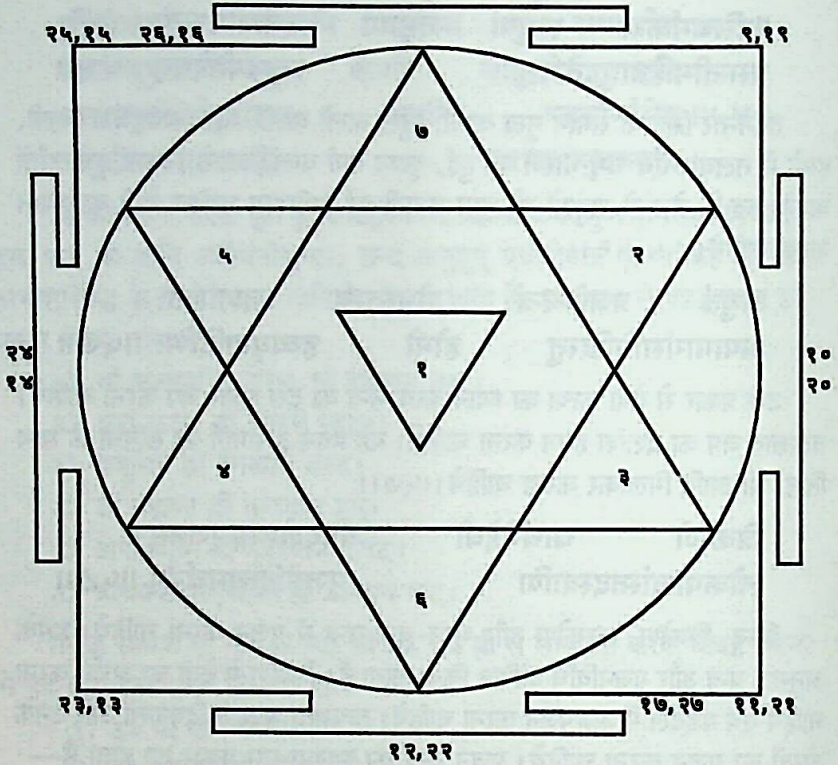
तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुष्पांजलि समर्पित करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम्।।

तदनन्तर 'पूजितास्तर्पिता: सन्तु' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद द्वितीय आवरण में गन्ध-अक्षत-पुष्प से दिक्पालों का पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ ह्रीं इन्द्राय नम: इन्द्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं अग्नये नम: अग्निश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं यमाय नम: यमश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं निर्ऋतये नम: निर्ऋतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं वरुणाय नम: वरुणश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं वायवे नम: वायुश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं कुबेराय नम: कुबेरश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

ॐ ह्रीं ईशानाय नम: ईशानश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं ब्रह्मणे नम: ब्रह्माश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुष्पांजलि समर्पित करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम्।।

तदनन्तर 'पूजितास्तर्पिता: सन्तु' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये। इसके पश्चात् तृतीय आवरण में दिक्पालों के तत्तत् अस्त्रों का गन्ध-अक्षत-पुष्प से पूजन इस प्रकार करना चाहिये—

ॐ ह्रीं वं वज्राय नम: वज्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं शं शक्तये नम: शक्तिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं दं दण्डाय नम: दण्डश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं खं खड्गाय नम: खड्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं पां पाशाय नम: पाशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं अं अंकुशाय नम: अंकुशश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं गं गदायै नम: गदाश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं त्रि त्रिशूलाय नम: त्रिशूलश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं पं पद्माय नम: पद्मश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।
ॐ ह्रीं चं चक्राय नम: चक्रश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम:।

तत्पश्चात् निम्न मन्त्र से पुष्पांजलि समर्पित करना चाहिये—

अभीष्टसिद्धिं मे देहि शरणागतवत्सले।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं तृतीयावरणार्चनम्।।

तदनन्तर 'पूजितास्तर्पिता: सन्तु' कहकर योनिमुद्रा से प्रणाम करना चाहिये। इस प्रकार आवरण-पूजन करने के उपरान्त यन्त्रस्थ देवताओं का पूजन धूप, दीप, नैवेद्यादि से करके आरती करनी चाहिये।।५८।।

एवं सिद्धमनुर्मन्त्री प्रयोगेषु शतं जपेत्।
जुहुयाच्च शतं दिक्षु दशमन्त्रैर्बलिं हरेत्।।५९।।
यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा।
इन्द्रस्तं देवमुच्चार्य्य राजान्ते भञ्जयत्विति।।६०।।
अञ्जयत्विति चोच्चार्य्य मोहयत्विति चोच्चरेत्।
नाशयतु पदं पश्चान्मारयत्वित्यतो बलिम्।।६१।।

तस्मै प्रयच्छतु कृतं ममान्ते च शिवं मम।
शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु बलिमन्त्र उदाहृतः ॥६२॥
प्रणवाद्याष्टषष्ट्यर्णस्तेनैव वितरेद्बलिम्।
अस्मिन्मन्त्रे पूर्वपदस्थानेऽग्न्यादिपदं वदेत् ॥६३॥
इन्द्र इत्यादिकस्थाने अग्निरित्यादिकं पठेत्।
एवं तु दश मन्त्राः स्युस्तत्तद्दिक्षु बलिं हरेत् ॥६४॥
एवंकृते शत्रुकृता कृत्या क्षिप्रं विनश्यति ॥६५॥

इस प्रकार से सिद्ध मन्त्र वाले मन्त्रज्ञ साधक को प्रयोगों के समय एक सौ बार मन्त्रजप, एक सौ बार हवन एवं दशो दिशाओं में मन्त्रों से बलि प्रदान करना चाहिये। तत्तत् देवताओं को बलि प्रदान करने का मन्त्र इस प्रकार है—

१. पूर्व में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। इन्द्रस्तं देवराजा भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से इन्द्र को बलि प्रदान करना चाहिये।

२. अग्निकोण में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। अग्निस्तं हव्यवाह भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं, मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से अग्नि को बलि प्रदान करना चाहिये।

३. दक्षिण में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। यमस्तं प्रेतराजा भञ्जयतु अञ्जायतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं, मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से यम को बलि प्रदान करना चाहिये।

४. नैर्ऋत्यकोण में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। निर्ऋतिस्तं रक्षसाधिप भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से निर्ऋति को बलि प्रदान करना चाहिये।

५. पश्चिम में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। वरुणस्तं जलाधिप भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—मन्त्र सेवरुण को बलि प्रदान करना चाहिये।

६. वायव्य कोण में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। वायुस्तं प्राणाधिप भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलि तस्मै प्रयच्छतु। कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से वायु को बलि प्रदान करना चाहिये।

७. उत्तर में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। कुबेरस्तं यक्षराज

भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु। कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से कुबेर को बलि प्रदान करना चाहिये।

८. ईशानकोण में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। ईशानस्तं विद्याधिप भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु। कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से ईशान को बलि प्रदान करना चाहिये।

९. ईशान और पूर्व के मध्य में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा। ब्रह्मा तं प्रजापतिः भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से ब्रह्मा को बलि प्रदान करना चाहिये।

१०. नैर्ऋत्य और पश्चिम के मध्य में—ॐ ह्रीं यो मे पूर्वगतः पाप्मा पापकेनेह कर्म्मणा अनन्तस्तं नागराज भञ्जयतु अञ्जयतु मोहयतु नाशयतु मारयतु अतः बलिं तस्मै प्रयच्छतु कृतं मम शिवं मम शान्तिः स्वस्त्ययनं चास्तु।—इस मन्त्र से अनन्त को बलि प्रदान करना चाहिये।

इस प्रकार उपर्युक्त दस मन्त्रों से तत्तत् दिशाओं में बलि प्रदान करने से शत्रुकृत कृत्या का सद्यः विनाश हो जाता है।।५९-६५।।

प्रत्यङ्गिरा मुनिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितम्।
कृत्या तु देवता चास्य नियोगो रिपुनिग्रहे ।।६६।।
शीर्षण्वतीं कर्णवतीं विष्णुरूपां भयङ्करीम्।
यः प्राहिणोदिहाद्य त्वं नित्यं योजय स्वस्तिभिः ।।६७।।
वामदेव ऋषिः प्रोक्तो गायत्री छन्द ईरितम्।
कृत्या तु देवता प्राग्वन्नियोगोऽरिनिवर्त्तने ।।६८।।
येन दिष्ट्येह वदसि प्रतिपूरमधापिनि।
तमेवातो निवर्त्तस्व मा स्याम्यत्सो अनागसः ।।६९।।
मुनिर्वृद्धवशिष्ठोऽस्य च्छन्दोऽनुष्टुप्प्रकीर्त्तितम्।
देवः कालाग्निरुद्रोऽत्र नियोगेऽरिविनाशने ।।७०।।
अभिवर्त्तस्य कर्त्तरि निरस्तां ताभिरोजसा।
आयुरस्य निकृन्तस्य प्रजाश्च पुरुषादिनि ।।७१।।
ऊर्ध्वास्योऽस्य मुनिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
देवता यातुधान्योऽभिचारनाशे नियोजनम् ।।७२।।
यस्त्वा कृत्ये चकारेह त्वं तं गच्छ पुनर्नवे।
आसतीः कृत्यानाशाय सर्वास्तु यातुधान्यः ।।७३।।

'शीर्षण्वतीं कर्णवतीं विष्णुरूपां भयङ्करीम्। यः प्राहिणोदिहाद्य त्वं नित्यं योजय स्वस्तिभिः।'—इस मन्त्र के ऋषि प्रत्यङ्गिरा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रु के निग्रह-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'येन दिष्टयेह वदसि प्रतिपूरमधापिनि। तमेवातो निवर्त्तस्व मा स्याम्यत्सो अनागसः।'—इस मन्त्र के ऋषि वामदेव, छन्द गायत्री एवं देवता कृत्या कहे गये हैं तथा शत्रु के निवर्त्तन के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

'अभिवर्त्तस्य कर्त्तरि निरस्तां ताभिरोजसा। आयुरस्य निकृन्तस्य प्रजाश्च पुरुषादिनि।' मन्त्र के ऋषि वृद्धवशिष्ठ, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कालाग्निरुद्र कहे गये हैं। शत्रु के विनाश के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

'यस्त्वा कृत्ये चकारेह त्वं तं गच्छ पुनर्नवे। आसतीः कृत्यानाशाय सर्वास्तु यातुधान्यः।' मन्त्र के ऋषि ऊर्ध्वास्य, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता यातुधान्य कहे गये हैं; अभिचार कर्मों के विनाश के लिये इसका विनियोग किया जाता है।।६६-७३।।

आसाम्प्रयोगं वक्ष्यामि पञ्चानामद्भुतं भुवि।
इदं पञ्चर्चकं सूक्तं शुक्लाष्टम्यां समाचरेत्।।७४।।
सुमासि पौर्णमास्यां च उदुम्बरभवं समम्।
आनयेद्दण्डमेकन्तु पुरुषस्य प्रमाणतः।।७५।।
शतनाम स्मरन्दण्डं गृहीत्वाष्टोत्तरं शतम्।
सूक्तं जपेत्तदारातिर्दह्यते स महाग्रहैः।।७६।।

अब भूलोक में इन पाँच ऋचाओं के आश्चर्यजनक प्रयोगों को कहता हूँ। पाँच ऋचाओं वाले इस सूक्त का प्रयोग शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि को करना चाहिये। शुभ मास की पूर्णिमा तिथि को पुरुष-प्रमाण का (पुरुष की ऊँचाई के बराबर) गूलर का एक सीधा दण्ड लाकर दण्ड के शतनाम का स्मरण करते हुये उस दण्ड को हाथ में लेकर पाँच ऋचाओं वाले उपर्युक्त सूक्त का एक सौ आठ बार जप करने से साधक का शत्रु भीषण ग्रहों द्वारा जला दिया जाता है।।७४-७६।।

यदि प्रतिपदारम्भात्कर्म चैतत्समाचरेत्।
अष्टप्रादेशमात्रन्तु दण्डं वैभीतकं समम्।।७७।।
गृहीत्वोच्चार्य्यारिनाम जपेत्सूक्तं तदा रिपुः।
महाव्याधिगृहीतोऽसौ म्रियते नात्र संशयः।।७८।।

यदि प्रतिपदा तिथि से इस कर्म का आरम्भ किया जाय तो विभीतक (बहेड़ा) का आठ प्रादेश (बित्ता =४ हाथ=६ फीट) लम्बा सुडौल दण्ड हाथ में लेकर शत्रु के नाम

का उच्चारण करके उक्त पाँच ऋचाओं वाले सूक्त का जप करने से शत्रु महान् व्याधि से ग्रस्त होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है; इसमें कोई संशय नहीं है।।७७-७८।।

कारस्करस्य चार्कस्य समिधोऽग्निमुखोद्भवैः ।
तैलैराक्ता हुनेत्सप्तरात्रमष्टोत्तरं शतम् ।।७९।।
शत्रुनाशो भवत्येवमथवा केवलं जपम् ।
मासमेकं प्रकुर्वीत रिपुर्मृत्युमवाप्नुयात् ।।८०।।

अग्निकोण में उत्पन्न कारस्कार और अकवन की समिधा को तैलाक्त करके सात रात्रि-पर्यन्त प्रति रात्रि एक सौ आठ बार हवन करने से शत्रु का नाश हो जाता है। अथवा एक महीने तक प्रति रात्रि उक्त सूक्त का एक सौ आठ वार जपमात्र करने से ही शत्रु मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।।७९-८०।।

श्मशानकाष्ठमस्या तु तालपत्रे लिखेद्रिपोः ।
ईश्वरस्यालये नामवर्णान् मन्त्रेण गर्भितान् ।।८१।।
अष्टोत्तरशतं जप्त्वा भूमौ प्रादेशमात्रके ।
निखनेत्तत्क्षणादेव ज्वरः शत्रोः प्रजायते ।।८२।।
तत्क्षणं नाशमायाति प्रयोगान्ते तु दक्षिणाः ।
दद्याद्गोभूहिरण्यादि यथाशक्त्येति तद्विधिः ।।८३।।

श्मशान काष्ठ की स्याही बनाकर उससे ताड़पत्र पर शिवालय में शत्रु के नाम के प्रत्येक वर्ण को मन्त्रगर्भित करके लिखकर एक सौ आठ बार मन्त्रजप करके भूमि में एक बित्ता गड्ढा खोदकर उसमें उस लिखित ताड़पत्र को गाड़ देने पर उसी समय से शत्रु ज्वर से पीड़ित हो जाता है और क्षणमात्र में ही विनाश को प्राप्त हो जाता है। प्रयोग के अन्त में दक्षिणा के रूप में यथाशक्ति गाय, भूमि, सुवर्ण आदि प्रदान करना चाहिये। यही इसकी विधि है।।८१-८३।।

महादेवो मुनिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्तितम् ।
कृत्या तु देवता चास्य नियोगो रिपुनिग्रहे ।।८४।।
क्षिप्रं कृत्ये निवर्त्तस्व कर्त्तुरिव गृहं प्रति ।
पशूंश्चैवास्य नाशय वीर्य्यं चास्य निबर्हय ।।८५।।
अगस्त्योऽस्य मुनिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्तितम् ।
कृत्या तु देवता प्रोक्ता नियोगो रिपुतक्षणे ।।८६।।
यस्त्वां कृत्ये चकारेह विद्वानपि उपग्रहान् ।
तस्यैवातः परावृत्य तनुं कृन्धि यथा तरुम् ।।८७।।

वशिष्ठोऽस्य मुनिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितम्।
रुद्रस्तु देवता प्रोक्तो नियोगोऽरिनिकर्त्तने ॥८८॥
प्रतिचित्वावसे धातुब्रह्मणे विष्णुमित्रहम्।
अग्निश्च कृत्यं रक्षोहा चोज एकपात् ॥८९॥
ब्रह्मास्य मुनिराख्यातोऽनुष्टुप् छन्दः प्रकीर्त्तितम्।
कृत्या तु देवता प्रोक्ता नियोगोऽरिनिकृन्तने ॥९०॥
यथा त्वाङ्गिरसः पूर्वे भृगवश्चायसेधिरे।
अत्रयश्च वशिष्ठश्च तथैव नायसेधि माम् ॥९१॥
अग्निरस्य मुनिः ख्यातस्त्रिष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितम्।
कृत्या तु देवता प्रोक्ता नियोगोऽरिनिकर्तने ॥९२॥
यस्ते परूंषि स दधौ रथस्यैवं विभूर्धिया।
तन्त्रच्छतगते जननज्ञास्ते जनो यतः ॥९३॥

'क्षिप्रं कृत्ये निवर्त्तस्व कर्त्तुरिव गृहं प्रति। पशूंश्चैवास्य नाशय वीर्य्यं चास्य निबर्हय।' इस मन्त्र के ऋषि महादेव, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रु के निग्रह-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'यस्त्वां कृत्ये चकारेह विद्वानपि उपग्रहान्। तस्यैवातः परावृत्य तनुं कृन्धि यथा तरुम्।' मन्त्र के ऋषि अगस्त्य, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रु के कर्त्तन-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'प्रतिचित्वावसे धातुब्रह्मणे विष्णुमित्रहम्। अग्निश्च कृत्यं रक्षोहा चोज एकपात्।' मन्त्र के ऋषि वशिष्ठ, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता रुद्र कहे गये हैं। शत्रु को काटकर नीचे गिराने के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

'यथा त्वाङ्गिरसः पूर्वे भृगवश्चायसेधिरे। अत्रयश्च वशिष्ठश्च तथैव नायसेधि माम्।' मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रु को काटने के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

'यस्ते परूंषि स दधौ रथस्यैवं विभूर्धिया। तन्त्रच्छतगते जननज्ञास्ते जनो यतः।' मन्त्र के ऋषि अग्नि, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रु को काटकर नीचे गिराने हेतु इसका विनियोग किया जाता है।।८४-९३।।

अथ वक्ष्येऽस्य चोक्तस्य पञ्चर्चस्य विधिं शुभम्।
भुञ्जानः कपिलाक्षीरमनुवाकं त्र्यहं जपेत् ॥९४॥

क्षुत्तृड्द्वन्द्वादिरहितो ब्रह्मचर्य्यरतो भवेत्।
प्रयोगेऽस्मिंस्तु विज्ञेयाः कामक्रोधादयोऽरयः ॥९५॥
पलाशस्य समिद्भिस्तु मधुरैर्दधिभिः प्लुतैः।
हुनेदष्टसहस्रं तु ब्रह्मवर्चसवान् भवेत् ॥९६॥
गोरत्र दक्षिणा प्रोक्ता पलाशसमिधो हुनेत्।
दुग्धाक्ताश्चाष्टशतकं सप्तभिर्दिवसैर्ग्रहाः ॥९७॥
उपग्रहाः पलायन्ते शान्तिः सर्वत्र जायते।
एवं हुत्वा पिप्पलस्य समिद्भिर्यश आप्नुयात् ॥९८॥

अब उक्त पाँच ऋचाओं की उपासना-विधि को कहता हूँ। तीन दिनों तक कपिला गाय के दूध का पान करते हुये इस अनुवाक का जप करना चाहिये। जप के समय भूख-प्यास के द्वन्द्व से रहित होकर ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये। काम-क्रोध आदि को इस प्रयोग का शत्रु जानना चाहिये। जप के उपरान्त दधि एवं गुड़ से सिक्त पलाश की समिधा से आठ हजार आहुतियों द्वारा हवन करने से साधक ब्रह्मतेज से समन्वित हो जाता है। इस प्रयोग में दक्षिणा में गौ प्रदान करने का विधान है।

दुग्धसिक्त पलाश की समिधा से सात दिनों तक आठ सौ हवन करने से सभी ग्रह, उपग्रह पलायन कर जाते हैं और सर्वत्र शान्ति हो जाती है। इसी प्रकार पीपल की समिधा से हवन करने पर यश की प्राप्ति होती है।।९४-९८।।

नदीतीरे श्मशाने च भद्रकालालयेऽपि वा।
कृत्वा तद्भस्मनो राशिं ध्यात्वाऽयं नाम चेतसा ॥९९॥
जपेदष्टसहस्रं स सप्ताहाज्जायतेऽक्षरी।
तदेव भस्माहोरात्रं मन्त्रितं गोष्ठके क्षिपेत् ॥१००॥
सद्यो गोश्च सुखं तत्र जायते नात्र संशयः।

नदी-तट पर, श्मशान में अथवा भद्रकाली के मन्दिर में जाकर वहाँ के भस्म का ढेर बनाकर मन से इसके नाम का ध्यान करके सात दिनों तक आठ हजार की संख्या में जप करने से साधक का नाश नहीं होता। इसी प्रकार उसी भस्म के ढेर को एक अहोरात्र (दिन-रात) जप द्वारा अभिमन्त्रित करके गोशाला में विखेर देने से गायें सद्यः स्वस्थ हो जाती हैं; इसमें कोई संशय नहीं है।।९९-१००।।

पौर्णमास्यामुपोष्याथ रजन्यामङ्गुलीयकम् ॥१०१॥
स्वरक्षार्थं च सन्धार्य्य जपेदष्टसहस्रकम्।
महाराजसमः स स्यादाज्ञया विभवेन च ॥१०२॥

नित्यमष्टोत्तरशतं विष्णोर्देवालये जपेत्।
षण्मासाभ्यन्तरेणैव तस्य पूर्णा मनोरथाः ॥१०३॥
संवत्सरजपादेवं ब्रह्मणा सदृशो भवेत्।
तिलान् भारशतं दद्याद्दक्षिणां तेऽस्य पाठिने ॥१०४॥

पूर्णिमा को उपवास रहकर रात्रि में अपनी रक्षा के लिये अंगुलीयक (अंगूठी) धारण करके मन्त्र का आठ हजार जप करने वाला अपनी आज्ञा एवं ऐश्वर्य से महाराज के समान हो जाता है।

विष्णु के मन्दिर में जाकर प्रतिदिन एक सौ आठ बार मन्त्र का जप करने वाले की मनोकामनायें छः महीने के अन्दर पूर्ण हो जाती हैं। इसी प्रकार एक वर्ष तक जप करने से साधक ब्रह्मा के समान हो जाता है। पाठ करने वाले को एक सौ भार तिल दक्षिणा में प्रदान करना चाहिये।।१०१-१०४।।

भृगुर्मुनिरनुष्टुप् च छन्दः कृत्या च देवता।
संग्रामविजये चैव विनियोगः प्रकीर्त्तितः ॥१०५॥
यो नः कृत्ये रणस्थो वा जनो वान्यो हि हिंसति।
तस्य त्वं देवि विद्धाग्निं तनुमृच्छ स्वहेतिना ॥१०६॥
अगस्त्यस्तु मुनिः प्रोक्तश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
देवी कृत्या नियोगस्तु विवादादौ जयाय च ॥१०७॥
मनाः शर्यदिनहविमस्य क्षियन्तं या कृत्वने।
सरस्वतीत्यवकृत्यमच्छिषस्तस्य किञ्चन ॥१०८॥
महादेवो मुनिः कृत्या देवता छन्द ईरितम्।
अनुष्टुप् च नियोगस्तु विवादादौ जयाय च ॥१०९॥
मनः कश्चिदुहारातिर्मनसा प्रतिभूरिति।
दूरस्थो वान्तिकस्थो वा तस्य हृद्यमसृक् पिब ॥११०॥
मुनिरग्निरनुष्टुप् च छन्दः कृत्या च देवता।
दुस्साध्यकार्य्यसिद्ध्यर्थं विनियोगोऽस्य कीर्त्तितः ॥१११॥
येनासि कृत्ये प्रहिता छद्मनास्मज्जिघांसया।
तस्य व्यनेच्चाव्यनहीनस्तहरसाशनिः ॥११२॥
गौतमो मुनिराख्यातोऽनुष्टुप् छन्दोऽस्य देवता।
कृत्या मार्गस्थचौरादिनाशे तु विनियोजनम् ॥११३॥

यो नोऽसि वासः प्रस्थानः परा याति पराचतम्।
तैर्देवि रात्र्याः कृत्ये नो गमयेमान्निकृन्तय ॥११४॥

'यो नः कृत्ये रणस्थो वा जनो वान्यो हि हिंसति। तस्य त्वं देवि विद्धाग्नि तनुमृच्छ स्वहेतिना।' मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। युद्ध में विजय-प्राप्ति के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

'मनाः शर्यादिनहविमस्य क्षियन्तं या कृत्वने। सरस्वतीत्यवकृत्यमच्छिषस्तस्य किञ्चन।' मन्त्र के ऋषि अगस्त्य, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। विवाद आदि में विजय-प्राप्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

'मनः कश्चिदुहारातिर्मनसा प्रतिभूरिति। दूरस्थो वान्तिकस्थो वा तस्य हृद्यमसृक् पिब।' मन्त्र के ऋषि महादेव, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। विवाद आदि में विजय-प्राप्ति हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'येनासि कृत्ये प्रहिता छद्मनास्मज्जिघांसया। तस्य व्यनेच्चाव्यनहीनस्तहरसाशनिः। मन्त्र के ऋषि अग्नि, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। दुःसाध्य कार्य की सिद्धि के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

'यो नोऽसि वासः प्रस्थानः परा याति पराचतम्। तैर्देवि रात्र्याः कृत्ये नो गमयेमान्निकृन्तय।' मन्त्र के ऋषि गौतम, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। यात्रा के क्रम में मार्ग में स्थित चौरादि के नाश-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।।१०५-११४।।

अथैतस्यानुवाकस्य प्रयोगः कीर्त्यतेऽधुना।
शुक्लपक्षप्रदिपदमारभ्य प्रत्यहं जपेत् ॥११५॥
अष्टोत्तरसहस्रन्तु पौर्णमास्यन्तमेव च।
भक्षयेत्कपिलाक्षीरं हविष्यौदनमेव च ॥११६॥
श्रोत्रियालयभिक्षां वा सर्वकृत्यानिवारणे।
समर्थो दर्शनादेव भवेद्भूतस्य का कथा ॥११७॥
जयेत्तथापमृत्युं च यक्षगन्धर्वराक्षसान्।
स्कन्दग्रहब्रह्मरक्षोऽपस्मारादिगदाँस्तथा ॥११८॥
सर्वे रोगा विनश्यन्ति वृद्धिश्चैवोत्तरोत्तरम्।
सर्वोपद्रवशान्तिः स्याद्भवने साधकस्य तु ॥११९॥

अब इस अनुवाक के प्रयोगों को कहता हूँ। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से आरम्भ करके पूर्णिमा तक प्रतिदिन एक हजार आठ बार मन्त्र का जप करना चाहिये। जपकाल में कपिला गाय के दूध एवं हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये अथवा श्रोत्रिय (ब्राह्मण)

के घर से प्राप्त भिक्षा का भोजन करना चाहिये। ऐसा करने वाला अपनी दृष्टिमात्र से ही समस्त कृत्याओं के निवारण में समर्थ हो जाता है; फिर प्राणियों की तो बात ही क्या है? वह अपमृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर लेता है। यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, स्कन्दग्रह, ब्रह्मराक्षस, अपस्मार (मिरगी) आदि महान् उपद्रवों के साथ-साथ उसके समस्त रोग भी नष्ट हो जाते हैं। साधक की सब प्रकार से उत्तरोत्तर वृद्धि होती है एवं उसके भवन में होने वाले समस्त उपद्रवों का शमन हो जाता है।।११५-११९।।

नित्यमष्टोत्तरं हुत्वा घृताक्ताञ्च्छालितण्डुलान्।
सर्वव्याधिविनाशः स्याच्छिवमेव दिने दिने ॥१२०॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु तिलमाषचरुं हुनेत्।
घृताक्तं सर्वरोगाणां त्वरितं शान्तिकं स्मृतम् ॥१२१॥
पलाशपुष्पं च तिलान् सुरभीघृतसंयुतान्।
हुत्वा चाष्टोत्तरशतं मासं तत्सर्वदुःखहृत् ॥१२२॥
महोत्पातस्य शान्तिश्च जीवेद्वर्षशतं तथा।
देया स्वर्णाङ्गुलीयादि दक्षिणा मन्त्रपाठिने ॥१२३॥

घृतसिक्त शालि चावल से प्रतिदिन एक सौ आठ बार हवन करने से सभी व्याधियों का विनाश होता है एवं दिनोंदिन कल्याण होता है।

घृतसिक्त तिल, उड़द और चरु से एक हजार आठ की संख्या में हवन करने पर समस्त रोगों की सद्यः शान्ति हो जाती है।

एक मास तक गोघृत से समन्वित पलाशपुष्प एवं तिल से एक सौ आठ बार हवन करने पर समस्त दुःखों का निवारण हो जाता है। साथ ही भयंकर उत्पातों की भी शान्ति होती है एवं वह सौ वर्षों तक जीवित रहता है। मन्त्रपाठकों को सोने की अंगूठी आदि दक्षिणा में देनी चाहिये।।१२०-१२३।।

अङ्गिरा मुनिरुद्दिष्टो गायत्री छन्द ईरितम्।
देवोऽग्निर्विनियोगस्तु सर्वशत्रुनिकर्त्तने ॥१२४॥
यद्युवेशद्विपदेऽस्मानर्दिवेष चतुष्पदी।
निरेस्था नो व्रजास्माभिः कर्तुं त्वष्टपदीगृहान् ॥१२५॥
मुनिर्ज्वरस्तु भगवाँस्त्रिष्टुप्छन्द उदाहृतम्।
मृत्युर्देवो नियोगस्तु जरा भवतु शत्रवे ॥१२६॥
यन्द्विष्मो यश्च द्वेष्ट्यघायुर्यस्य न संशयः।
शुने पिपृमि वक्ष्यामि तं प्रत्यस्मत्वमृत्यवे ॥१२७॥

ब्रह्मास्य मुनिराख्यातोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितम्।
अग्निर्देवो नियोगस्तु शत्रुविद्वेषणे मतः ॥१२८॥
यश्च यायज्ञः शपथो यश्च मामीश याति नः।
ब्रह्माचपकुद्धशयाशर्वतत्कन्धधस्पतिम् ॥१२९॥
देवता भौम उद्दिष्टो मुनिः कश्यप ईरितः।
अनुष्टुप्छन्द उद्दिष्टं नियोगोऽरिपलायने ॥१३०॥
सबन्धुश्चाप्यबन्धुश्च यो अस्म अभिदा मति।
तस्य त्वसिन्धयिष्टाय दावित्सर्प ताक्षिरः ॥१३१॥

'यद्युवेशद्विपदेऽस्मानर्दिवेष चतुष्पदी। निरेस्था नो व्रजास्माभिः कर्तुं त्वष्टपदीगृहान्।' मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द गायत्री एवं देवता अग्नि कहे गये हैं। समस्त शत्रुओं के विनाश-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'यन्द्विष्मो यश्च द्वेष्ट्यघायुर्यस्य न संशयः। शुने पिपृमि वक्ष्यामि तं प्रत्यस्मत्वमृत्यवे।' मन्त्र के ऋषि ज्वर भगवान्, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता मृत्यु कहे गये हैं। 'शत्रु को ज्वर हो' एतदर्थ इसका विनियोग किया जाता है।

'यश्च यायज्ञः शपथो यश्च मामीश याति नः। ब्रह्माचपकुद्धशयाशर्वतत्कन्धधस्पतिम्।' मन्त्र के ऋषि ब्रह्मा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता अग्नि कहे गये हैं। शत्रुओं में विद्वेषण कराने के लिये इसका विनियोग कहा गया है।

'सबन्धुश्चाप्यबन्धुश्च यो अस्म अभिदा मति। तस्य त्वसिन्धयिष्टाय दावित्सर्प ताक्षिरः।' मन्त्र के ऋषि कश्यप, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता भौम कहे गये हैं। शत्रु के पलायन-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।।१२४-१३१।।

पञ्चर्चस्य प्रयोगोऽस्या धना चात्र प्रवक्ष्यते।
समुद्रगामिनीं गत्वा जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥१३२॥
जपेन्नित्यमहोरात्रं समुद्दिश्य जलाञ्जलीन्।
अष्टाविंशतिसङ्ख्याकान् दद्यात्तद्वत्पुनर्जपेत्॥१३३॥
सप्ताहान्म्रियते शत्रुरस्य रोगी न संशयः।

उक्त पाँच ऋचाओं के प्रयोग और उनके फल को अब कहा जा रहा है। समुद्रगामिनी नदी के किनारे जाकर उक्त ऋचाओं का एक सौ आठ बार जप करना चाहिये। नित्यप्रति दिन-रात जप करने के उपरान्त शत्रु को उद्दिष्ट करके अट्ठाईस बार जलाञ्जलि प्रदान करनी चाहिये एवं पुनः पूर्ववत् जप करना चाहिये। एक सप्ताह तक ऐसा करने से शत्रु रोगी होकर निःसन्देह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।।१३२-१३३।।

बिभीतदण्डमाधाय चैकप्रादेशसम्मितम् ॥१३४॥
शत्रुनाम स्मरन् धृत्वा नित्यमष्टोत्तरं शतम्।
जपेन्मनुं रिपुकुलं ज्ञाताज्ञातं विनश्यति ॥१३५॥
अपराधं विना द्वेष्टा स तु कुष्ठी प्रजायते।
अष्टाविंशतिसङ्ख्या यः पश्यन् भानुं रिपुं स्मरन्।
अन्वहं प्रजपेच्छत्रुर्ज्वरेण परिपीड्यते ॥१३६॥
तिलतैलाक्तसमिधां होमश्चाष्टशतं भवेत्।
शत्रोः पुत्रकलत्राश्वगजताद्यं विनश्यति ॥१३७॥
हिरण्यं दक्षिणां दद्यात्प्रयोगान्ते च शान्तिकम्।
प्रायश्चित्तं पुनः कुर्य्यान्मुक्तदोषः प्रजायते।
द्विजानां देवभक्तानां जातु कुर्य्यान्न विप्रियम् ॥१३८॥

एक बित्ता प्रमाण में लम्बे विभीतक (बहेड़ा) के दण्ड को शत्रु का नाम-स्मरण करते हुए धारण करके प्रतिदिन एक सौ आठ बार मन्त्रजप करने से ज्ञात अथवा अज्ञात शत्रु के कुल का विनाश हो जाता है और जो विना किसी अपराध के भी साधक से द्वेष करता है, उसे कुष्ठरोग हो जाता है।

जो सूर्य को देखते हुए शत्रु का स्मरण करके प्रतिदिन अट्ठाईस बार मन्त्रजप करता है, उसका शत्रु ज्वर से पीड़ित हो जाता है।

तिलतैल से सिक्त समिधा से आठ सौ हवन करने पर अपने पुत्र, पत्नी, घोड़ा, हाथी आदि के साथ-साथ शत्रु स्वयं भी विनष्ट हो जाता है।

प्रयोग के अन्त में सुवर्णरूप दक्षिणा प्रदान करनी चाहिये और उसके बाद शान्ति के लिये प्रायश्चित्त करना चाहिये; ऐसा करने से साधक दोषमुक्त होता है। द्विजों एवं देवभक्तों का कभी भी अप्रिय नहीं करना चाहिये।।१३४-१३८।।

कालाग्निरुद्रो देवस्तूपमन्युग कथितो मुनिः।
बृहती छन्द उद्दिष्टं नियोगोऽस्यारिनाशने ॥१३९॥
अभिप्रेहि शुभप्राक्षं युक्ताशु शपथं रथे।
शत्रुर्न तिष्ठति कृत्ये वृको वा विमतो गृहात् ॥१४०॥
मुनिः सभ्यतपाः प्रोक्तो बृहती छन्द ईरितम्।
ज्वलनो देवता चास्य नियोगोऽरिपलायने ॥१४१॥
परिणो वृद्धिशपथादहन्नग्निरिव ह्रदे।
शत्रूनेवाभिनोझेहि दिव्यावृक्षमिवाशनिः ॥१४२॥

अङ्गिरास्तु मुनिश्छन्दोऽनुष्टुप् कृत्या च देवता।
गजाऽजतुरगादीनां नियोगो रिपुमोहने ॥१४३॥
असपत्नं पुरस्तान्नः शिवं दक्षिणतस्कृधि।
अभयं सततं पश्चाद्भर उत्तरतो गृहे ॥१४४॥
मुनिः कश्यप इत्युक्तो बृहती छन्द ईरितम्।
देवी कृत्या नियोगस्तु रिपूणां त्रासनाय च ॥१४५॥
परे हि कृत्ये मातिष्ठ वृद्धसेवपदं नय।
मृगास्यहि मृगोऽरिः प्रान्तत्वानि कर्तुमर्हति ॥१४६॥

'अभिप्रेहि शुभप्राक्षं युक्ताशु शपथं रथे। शत्रुर्न तिष्ठति कृत्ये वृको वा विमतो गृहात्।' इस मन्त्र के ऋषि उपमन्यु, छन्द बृहती एवं देवता कालाग्निरुद्र कहे गये हें। शत्रु के नाश-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'परिणो वृद्धिशपथादहन्नग्निरिव ह्रदे। शत्रूनेवाभिनोझेहि दिव्यावृक्षमिवाशनिः।' इस मन्त्र के ऋषि सभ्यतपा, छन्द बृहती एवं देवता ज्वलन (अग्नि) कहे गये हैं। शत्रु के पलायन करने-हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

'असपत्नं पुरस्तान्नः शिवं दक्षिणतस्कृधि। अभयं सततं पश्चाद्भर उत्तरतो गृहे।' मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रु को मोहित करने के लिये गज-अज-तुरग आदि के प्रयोग-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'परे हि कृत्ये मातिष्ठ वृद्धसेवपदं नय। मृगास्यहि मृगोऽरिः प्रान्तत्वानि कर्तुमर्हति।' मन्त्र के ऋषि कश्यप, छन्द बृहती एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रुओं को त्रस्त करने के लिये इसका विनियोग किया जाता है।।१३९-१४६।।

एतस्यैवानुवाकस्य प्रयोगः कीर्त्यतेऽधुना।
कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावच्छुक्लाष्टमी भवेत् ॥१४७॥
इष्ट्वा माहेश्वरं लिङ्गं जपन्नाशयति क्षणात्।
अभिचारिककृत्यादीन् हयानां हस्तिनामपि ॥१४८॥
विनाशयेन्महाव्याधिं संस्पृष्ट्वा रुद्रकालिकाम्।
जपेन्नश्येदरिस्तस्य रक्षितोऽपीश्वरेण चेत् ॥१४९॥
दक्षिणाभिमुखो रुद्राज्जपेदष्टोत्तरं शतम्।
नित्यं जपेदेकविंशद्दिनावधि तथा रिपोः ॥१५०॥
कलत्रादिकनाशः स्याद्दक्षिणा कम्बलद्वयम्।
आत्मरक्षा च कर्तव्या रुद्रन्यासावधानतः ॥१५१॥

अब यहाँ पर उपर्युक्त मन्त्रों के अनुवाक का प्रयोग कहा जा रहा है। कृष्ण पक्ष की अष्टमी से प्रारम्भ करके शुक्ल पक्ष की अष्टमी-पर्यन्त माहेश्वर लिङ्ग का पूजन करके उपर्युक्त ऋचाओं का जप करने से तत्क्षण ही आभिचारिक कृत्या आदि का विनाश हो जाता है; साथ ही घोड़ों एवं हाथियों की भयंकर व्याधियों का भी विनाश हो जाता है।

रुद्रकाली का स्पर्श करके उक्त अनुवाक का जप करने पर शत्रु यदि साक्षात् ईश्वर द्वारा रक्षित हो, फिर भी उसका नाश हो जाता है।

इक्कीस दिनों तक प्रतिदिन रुद्र से दक्षिण की तरफ मुख करके उक्त अनुवाक का एक सौ आठ बार जप करने पर शत्रु के कलत्रादि का नाश हो जाता है। इस प्रयोग में दक्षिणा के रूप में दो कम्बल प्रदान करना चाहिये। साथ ही रुद्रन्यास द्वारा आत्मरक्षा भी करनी चाहिये।।१४७-१५१।।

मुनिः शर्वः सर्वसुरश्छन्दोऽनुष्टुप्प्रकीर्तितम्।
दाहनार्थं पुरादीनां नियोगोऽस्य भवेत्तथा ॥१५२॥
अग्न्यास्यघोररूपेऽपि पुरुषेऽपि विनाशिनी।
जृम्भिता प्रतिगृह्णस्व प्रमादाय हि चाद्भुतम् ॥१५३॥
अर्को मुनिरनुष्टुप् च च्छन्दः कृत्यास्य देवता।
अतिक्रुद्धस्य राजादेः कोपशान्त्यै नियोजनम् ॥१५४॥
त्वमिन्द्रो यमो वरुणस्त्वमापोऽपि च रथोऽनिलः।
त्वं ब्रह्मा चैव रुद्रश्च त्वष्टा चैव प्रजापतिः ॥१५५॥
छन्दस्तु देवी गायत्री देवते चाश्विनौ मतौ।
मुनिरिन्द्रो नियोगस्तु त्वरितं रोगनाशने ॥१५६॥
आवर्तध्वं निवर्त्तध्वमृतवः परिवत्सराः।
अहोरात्रास्तथाब्दाश्च दिशः प्रतिदिशश्च मे ॥१५७॥
गालवो मुनिराख्यातो मित्रो देवः प्रकीर्तितः।
त्रिष्टुप्छन्दो नियोगस्तु कर्त्तव्योऽद्भुतकर्म्मणे ॥१५८॥
त्वं यमं वरुणं सोमं त्वमापोऽग्निमथानिलम्।
अत्राहृत्य पशूंश्चैव चोत्पादयसि चाद्भुतम् ॥१५९॥
मुनिर्विष्णुः सुरो विष्णुरनुष्टुप्छन्द उच्यते।
नियोगो यस्य कस्यापि रक्षणार्थमुदाहृतम् ॥१६०॥
यो मेरुगर्भशयानं विश्वस्य हितं पुरुषं विजहुः।
कुम्भीवपाकं नरकं जनाग्रीयं पञ्चवर्षाश्च एवं पुरुषो सोमपस्य ॥१६१॥

पञ्चर्चमनुवाकन्तु ये जपन्तीह नित्यशः।
पूर्वकर्म्मसमुद्भूतमाधिव्याधिभयं हरेत् ॥१६२॥

'अग्न्यास्यघोररूपेऽपि पुरुषेऽपि विनाशिनी। जृम्भिता प्रतिगृह्णस्व प्रमादाय हि चाद्भुतम्।' इस मन्त्र के ऋषि शर्व, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता सर्व कहे गये हैं। पुर (नगर) आदि के दाह-हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

'त्वमिन्द्रो यमो वरुणस्त्वमापोऽपि च रथोऽनिलः। त्वं ब्रह्मा चैव रुद्रश्च त्वष्टा चैव प्रजापतिः।' इस मन्त्र के ऋषि अर्क, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। अत्यन्त क्रुद्ध राजा आदि की कोपशान्ति के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

'आवर्तध्वं निवर्त्तध्वमृतवः परिवत्सराः। अहोरात्रास्तथाब्दाश्च दिशः प्रतिदिशश्च मे।' इस मन्त्र के ऋषि इन्द्र, छन्द गायत्री एवं देवता अश्विनीकुमार कहे गये हैं। रोग के विनाश के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

'त्वं यमं वरुणं सोमं त्वमापोऽग्निमथानिलम्। अत्राहृत्य पशूंश्चैव चोत्पादयसि चाद्भुतम्।' इस मन्त्र के ऋषि गालव, छन्द त्रिष्टुप् एवं देवता मित्र कहे गये हैं। अद्भुत कर्म के सम्पादन-हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

'यो मेरुगर्भशयानं विश्वस्य हितं पुरुषं विजहुः। कुम्भीवपाकं नरकं जनाग्रीयं पञ्चवर्षांश्च एवं पुरुषो सोमपस्य।' इस मन्त्र के ऋषि विष्णु, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता विष्णु कहे गये हैं। जिस-किसी की भी रक्षा के लिये इसका विनियोग किया जाता है।

जो साधक इन पाँच ऋचाओं वाले अनुवाक का नित्य जप करते हैं, उनके पूर्वजन्म के कर्मों के फलस्वरूप इस वर्त्तमान जन्म में होने वाली आधि-व्याधि का नाश हो जाता है।।१५२-१६२।।

यथात्र परिशिष्टस्था ऋगेका प्रोच्यतेऽधुना।
तां जपन् सततञ्जन्तुर्नारिभिः परिभूयते ॥१६३॥
येन्द्र सुत्र्यजवेमह्यमग्ने कदा धियो दुर्मदो अग्रनासः।
अवध्यैतानुशोचिषायिण्यतौ भूत्यैवस्वतस्यसनेमयस्याः ॥१६४॥

परिशिष्ट में जो एक ऋचा कही गई है, वह यहाँ पर अब कही जा रही है, उस ऋचा का निरन्तर जप करता हुआ प्राणी स्त्रियों द्वारा तिरस्कार को प्राप्त होता है। ऋचा है—येन्द्र सुत्र्यजवेमह्यमग्ने कदा धियो दुर्मदो अग्रनासः। अवध्यैतानुशोचिषायिण्यतौ भूत्यैवस्वतस्यसनेमयस्याः।।१६३-१६४।।

मुनिः शुक्रो ब्रह्म देवश्छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
स्त्रियो वै मोहनाशाय नियोगोऽस्य प्रकीर्तितः ॥१६५॥

अत्यक्ता रक्तास्वलंकृतः सर्वतो दुरितं वह।
जातीयाश्चैव कृत्यानां शत्रुहन्याय चेतसः ॥१६६॥
वसवो मुनयः प्रोक्ताः परमात्मा च देवता।
छन्दोऽनुष्टुब्नियोगोऽस्य दुर्वध्यारिविनाशने ॥१६७॥
यथा हति पुरासीनं तथैवस्वत्सकृन्नरः।
तथा त्वया युजा वयं तस्य निकुमः स्थातुजङ्गमम् ॥१६८॥
अग्निस्तु देवता प्रोक्ता मुनिरिन्दुः प्रकीर्तितः।
छन्दोऽनुष्टुब्नियोगस्तु चास्य शत्रुविनाशने ॥१६९॥
उत्तिष्ठेवमरहीनो जातेह्निभिहेच्छसि।
या वास्ते कृत्ययादौ तु प्रतिकृत्स्यामिविद्रवः ॥१७०॥
मुनिः शान्तायनः प्रोक्तः परमा तत्र देवता।
छन्दोऽनुष्टुब्नियोगस्तु तपोविघ्नकराश्च ये ॥१७१॥
लोभालस्यादयो वाथ दृश्यन्ते ये तपोपहाः ॥१७२॥
तपोविघ्नकराः पाठे स्वायुधाश्शमिदं पठेत् ॥१७३॥
स्वायुधाः सन्ति नोरयो विघ्नं चैवं परूंषि ते।
तैस्तैर्निकपला पापिनो जीवयस्यरीन् ॥१७४॥
भगीरथो मुनिर्ब्रह्मा छन्दोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
पापारीणां च पापस्य नाशाय विनियोजनम् ॥१७५॥
मास्याच्छिषो द्विपदं तनोचकि चतुष्पदम्।
माज्ञातीतन्तु जानस्यान्मनवे क्षिप्रवेशिनौ ॥१७६॥

'अत्यक्ता रक्तास्वलंकृतः सर्वतो दुरितं वह। जातीयाश्चैव कृत्यानां शत्रुहन्याय चेतसः।' इस मन्त्र के ऋषि शुक्र, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता ब्रह्मा कहे गये हैं। स्त्रियों के मोहनाश के लिये इसका विनियोग क्रह्मा गया है।

'यथा हति पुरासीनं तथैवस्वत्सकृन्नरः। तथा त्वया युजा वयं तस्य निकुमः स्थातुजङ्गमम्।' इस मन्त्र के ऋषि अष्टवसु, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता परमात्मा कहे गये हैं। अत्यन्त कठिनाई से वध किये जाने योग्य शत्रु के विनाश-हेतु इसका विनियोग किया जाता है।

'उत्तिष्ठेवमरहीनो जातेह्निभिहेच्छसि। या वास्ते कृत्ययादौ तु प्रतिकृत्स्यामिविद्रवः।' इस मन्त्र के ऋषि इन्दु, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता अग्नि कहे गये हैं। शत्रु के विनाश-हेतु इस मन्त्र का विनियोग करना चाहिये।

'स्वायुधाः सन्ति नोरयो विघ्नं चैवं परूंषि ते। तैस्तैर्निकपला पापिनो जीवयस्यरीन्।' इस मन्त्र के ऋषि शान्तायन, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता परमात्मा कहे गये हैं। तपस्या में विघ्न करने वालों के नाश-हेतु इसका विनियोग कहा गया है। अथवा तप के विघ्नस्वरूप जो लोभ-आलस्य आदि दिखाई देते हैं, उन विघ्नकारियों के शमन-हेतु 'स्वायुधाः' मन्त्र का पाठ करना चाहिये।

'मास्याच्छिषो द्विपदं तनोचकि चतुष्पदम्। माज्ञातीतन्तु जानस्यान्मनवे क्षिप्रवेशिनौ।' इस मन्त्र के ऋषि भगीरथ, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता ब्रह्मा कहे गये हैं। पापारियों (पुण्यात्माओं) के पाप-नाश के लिये इसका विनियोग कहा गया है।।१६५-१७६।।

पञ्चर्चमनुवाकन्तु नित्यमष्टोत्तरं शतम्।
यो जपेत्पूजयेद्रुद्रं तस्य शत्रुक्षयो भवेत्॥१७७॥
सर्वकृत्याप्रशान्तिश्च सर्वलोकवशीकृतिः।
रुद्रालये सहस्रन्तु जपन् व्याधिं निबर्हयेत्॥१७८॥
कार्पासबीजं लवणं घृतमष्टसहस्रकम्।
हुत्वा सूर्य्यस्याभिमुखमष्टाविंशतिसङ्ख्यया॥१७९॥
जपेद्वृष्टेस्तु संस्तम्भः समुद्रमपि शोषयेत्।
अत्रैव मननाभ्यासाद्विद्वत्ता सूपपद्यते॥१८०॥

इन पाँच ऋचाओं वाले अनुवाक का जो प्रतिदिन एक सौ आठ बार जप एवं रुद्र का पूजन करता है, उसके शत्रु का विनाश हो जाता है। साथ ही समस्त कृत्याओं की शान्ति होती है एवं सारा संसार उसके वश में हो जाता है। शिवालय में एक हजार जप करने से व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

कपासबीज, नमक और घी से आठ हजार हवन करके सूर्य की ओर मुख करके उक्त अनुवाक का अट्ठाईस बार जप करके वर्षा का स्तम्भन किया जा सकता है एवं समुद्र को भी सुखाया जा सकता है। इस अनुवाक के मनन का अभ्यास करने से विद्वत्ता प्राप्त होती है।।१७७-१८०।।

अङ्गिरास्तु मुनिः प्रोक्तः कालो मृत्युश्च देवते।
छन्दोऽनुष्टुब्नियोगस्तु सुदुर्लभप्रसाधने॥१८१॥
शत्रूयता प्रहितासि मां ये ताभिमधर्वतः।
ततस्तथा त्वदनु यो मततुर्य्याय श्रितः॥१८२॥
अङ्गिरास्तु मुनिः प्रोक्तो महादेवोऽस्य देवता।
नियोगच्छन्द उद्दिष्टं नियोगः पापकर्त्तने॥१८३॥

एवं त्वनिकृतास्माभिर्ब्रह्मणा देवि सर्वशः।
वधेत माष्विनो गत्वा पापधीनेव नो न हि॥१८४॥
अङ्गिरास्तु मुनिः प्रोक्तोऽनुष्टुप्छन्दः प्रकीर्त्तितम्।
देवी कृत्या नियोगस्तु शत्रूणां शोषणे मतः॥१८५॥
यथा विद्युद्धतो वृक्ष आमूलादनुशुष्यति।
एवं प्रतिशुष्यति स यो मे पापं चिकीर्षति॥१८६॥
कठो मुनिर्महादेवो देवोऽनुष्टुबुदाहृतम्।
स्त्रिया कृताभिचारादौ यामं यामं पठेदिदम्॥१८७॥
यथा प्रतिशुको भूत्वा तमेव प्रतिधावति।
पापन्तमेव धावतु यो मे पापं चिकीर्षति॥१८८॥
भृगुरस्य मुनिः प्रोक्तो विश्वेदेवास्तु देवताः।
छन्दोऽनुष्टुप् तथा योगो दुर्गस्थाने सुखाय च॥१८९॥
या नश्चेक्षरणे यश्च निष्ण्यौ निघनाꣳसति।
देवास्ते सर्वं धुन्वन्तु ब्रह्मवर्म ममाचरम्॥१९०॥

'शत्रूयता प्रहितासि मां ये ताभिमधर्वतः। ततस्तथा त्वदनु यो मततुर्य्याय श्रितः।' इस मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द अनुंष्टुप् एवं देवता काल तथा मृत्यु कहे गये हैं। अति-दुर्लभ के साधन में इसका विनियोग कहा गया है।

'एवं त्वनिकृतास्माभिर्ब्रह्मणा देवि सर्वशः। वधेत माष्विनो गत्वा पापधीनेव नो न हि।' इस मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द नियोग एवं देवता महादेव कहे गये हैं। पाप-नाश हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'यथा विद्युद्धतो वृक्ष आमूलादनुशुष्यति। एवं प्रतिशुष्यति स यो मे पापं चिकीर्षति।' इस मन्त्र के ऋषि अंगिरा, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता कृत्या कहे गये हैं। शत्रुओं के शोषण-हेतु इसका विनियोग कहा गया है।

'यथा प्रतिशुको भूत्वा तमेव प्रतिधावति। पापन्तमेव धावतु यो मे पापं चिकीर्षति।' इस मन्त्र के ऋषि कठ, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता महादेव कहे गये हैं। स्त्री के द्वारा अभिचार आदि का प्रयोग करने पर प्रत्येक याम (प्रहर=तीन घंटा) में इसका पाठ करना चाहिये।

'या नश्चेक्षरणे यश्च निष्ण्यौ निघनाꣳसति। देवास्ते सर्वं धुन्वन्तु ब्रह्मवर्म ममाचरम्।' इस मन्त्र के ऋषि भृगु, छन्द अनुष्टुप् एवं देवता विश्वेदेव कहे गये हैं। दुर्गम स्थान में सुख-प्राप्ति के लिये इसका विनियोग करना चाहिये।।१८१-१९०।।

पञ्चर्चस्यास्य वर्गस्य प्रयोगो वक्ष्यतेऽधुना।
हुनेदष्टोत्तरशतं घृताक्ततिलतण्डुलान् ॥१९१॥
मासाष्टकेन चान्नादिवृद्धिर्भवति भूयसी।
आयुष्कामो हुनेद्देव्यामृतमष्टोत्तरं शतम् ॥१९२॥
स्वजन्मदिवसेऽब्देऽस्मिन्नपमृत्युं जयत्यसौ।
सर्वपापक्षयश्चैव चित्तशान्तिः प्रजायते ॥१९३॥
पलाशकुसुमैरष्टशतं हुत्वा द्विजर्षभः।
ब्रह्मतेजोमयस्तस्य भाति देहोऽतिभास्वरः ॥१९४॥
ब्रह्मवृक्षसमिद्भिस्तु कुसुमैर्बाकुलाक्षतैः।
घृताक्तैरष्टसाहस्रं हुत्वा पातकनाशनम् ॥१९५॥
अमुनैवानुवाकेन यः कुर्य्यादनलार्चनम्।
सर्वपापक्षयस्तस्य वर्षमध्ये प्रजायते ॥१९६॥
अष्टोत्तरसहस्रं तु मनुं जप्त्वा समापयेत्।

इन पाँच ऋचाओं वाले वर्ग के प्रयोग को अब कहा जा रहा है। आठ मास तक घृतसिक्त तिल एवं चावल से उक्त ऋग्वर्ग के द्वारा प्रतिदिन एक सौ आठ बार हवन करने से अन्न आदि की प्रचुर वृद्धि होती है। आयु की कामना वाले को उक्त पाँच ऋचाओं के वर्ग द्वारा प्रत्येक वर्ष अपने जन्मदिवस पर देव्यामृत से एक सौ आठ बार हवन करना चाहिये; उससे वह अपमत्यु को भी जीत लेता है। साथ ही उसके समस्त पापों का क्षय हो जाता है एवं चित्त को असीम शान्ति की प्राप्ति होती है। पलाश के पुष्पों से एक सौ आठ बार हवन करने वाले द्विजश्रेष्ठ का शरीर ब्रह्मतेज के समान अतिशय प्रकाशमान हो जाता है। पलाशवृक्ष की समिधा और मौलसिरी के फूल और अक्षत को घृतसिक्त कर आठ हजार हवन करने से पापों का विनाश होता है। जो साधक इसी अनुवाक से अग्नि का पूजन करता है, एक वर्ष के भीतर ही उसके सभी पापों का क्षय हो जाता है। इस अनुष्ठान का समापन प्रकृत अनुवाक के एक हजार आठ जप से करना चाहिये।।१९१-१९६।।

मनोरस्यार्णसङ्ख्याकान् देवताप्रीतिकारकैः॥१९७॥
दिव्यैस्तु भोजयेद्विप्रान् देवताराधनक्षमान्।
तदभावे वैदिकांश्च मनुर्वेदमयो यतः ॥१९८॥
तदाम्नायप्रवृत्तोऽन्यांस्तदभावे तु भोजयेत्।
एवं गुरुत्याग उक्तः सर्वतन्त्रेषु गोपितः ॥१९९॥

असिद्धो यः स्वयं शिष्यं कथं सन्तारयिष्यति।

इस मन्त्र में जितने वर्ण हैं, उतने लाख की संख्या में जप करने से देवता प्रसन्न होते हैं। देवता के आराधन में समर्थ न होने पर दिव्य पदार्थों द्वारा ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिये। ब्राह्मणों के अभाव में वैदिकों को ही भोजन कराना चाहिये; क्योंकि मन्त्र वेदस्वरूप ही होते हैं। वैदिकों के भी न मिलने पर उस आम्नाय में प्रवृत्त अन्य लोगों को भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार से समस्त तन्त्रों में गुप्त गुरुत्याग को कहा गया; क्योंकि जो (गुरु) स्वयं सिद्ध न हो, वह शिष्य को किस प्रकार तार सकता है।।१९७-१९९।।

देवत्यागविधिः

देवत्यागं प्रवक्ष्यामि सर्वतन्त्रेषु गोपितम् ।।२००।।
कृतनित्यक्रियः पूजां देवतायाः समाचरेत्।
सङ्कल्पन्तु ततः कुर्य्याद्देवत्यागादिपूर्वकम् ।।२०१।।
स्वनामगोत्रं चोच्चार्य्य मनसा संस्मरन् हरिम्।
परोक्षं वा समक्षं वा गुरोः सम्प्रार्थयेत्सुरम् ।।२०२।।

अब सभी तन्त्रों में गुप्त देवत्याग को कहता हूँ। प्रातःकाल नित्यक्रिया का सम्पादन करके देवता की पूजा करनी चाहिये। इसके बाद देवत्यागादि-पूर्वक संकल्प करना चाहिये। अपने नाम एवं गोत्र का उच्चारण करके मन ही मन हरि का स्मरण करते हुये परोक्ष या प्रत्यक्ष गुरु की प्रार्थना करनी चाहिये।।२००-२०२।।

त्रैलोक्यनाथ जगदीश महेश्वरस्त्वं
मत्कान्तकोटिजठराद्भुतशान्तिचिद्भिः ।
यत्त्वं मयाल्पमतिना द्विभुजादिदेही
ध्यातोऽपराधशतकं मम तत्क्षमस्व ।।२०३।।
त्वं सूर्य्यचन्द्रदहनेशगणेशविष्णु-
ब्रह्मेन्द्रशक्तिनरनागगतस्वरूपः ।
ध्यातोऽसि चाल्पविषये परिपूजितोऽसि
तन्मेऽपराधशतकं भगवन् क्षमस्व ।।२०४।।
देवोऽपि नो न मनवो न च भारती त्वां
जानन्ति मन्दमतिनात्र च किं बहूक्त्या।
ध्यातोऽल्पकं त्वमपराधकृता मयेदं
पापं क्षमस्व करुणाकर दीनबन्धो ।।२०५।।

ध्यानं करोमि मनसा न च वेद्मि रूपं
मन्त्राक्षरात्मकमिदं परिभावयामि।
रूपं त्वदीयमिति यत्प्रवदन्ति वेदाः
सिद्धिर्जपान्न च बहिष्कृतपूजनाद्यैः ॥२०६॥

तत्पश्चात् इस प्रकार देवता की प्रार्थना करनी चाहिये—हे देव! आप तीनों लोकों के स्वामी, जगत् के ईश एवं महेश्वर हैं। आश्चर्यजनक रूप से शान्त चित्त रहते हुये भी आपने अपने जठर में मेरे समान करोड़ों प्रिय लोगों को समाहित कर रखा है; फिर भी स्वल्प बुद्धि वाले मेरे द्वारा दो भुजाओं वाले प्राणी के रूप में जो आपका ध्यान किया जाता है, वह मेरे लिये सैकड़ों अपराध के समान है, उसे आप क्षमा करें।

आप ही सूर्य, चन्द्र, अग्नि, गणेश, विष्णु, ब्रह्मा, इन्द्र, शक्ति, नर, नागगत स्वरूप वाले हैं। अतिशय क्षुद्र विषय के लिये आपका मैं ध्यान एवं पूजन करता हूँ; हे भगवन्! मेरे इस अपराध को आप क्षमा करें।

हे करुणाकर! आपके वास्तविक स्वरूप को न तो देवता जानते हैं, न मन्त्र जानते हैं, न ही सरस्वती जानती हैं; फिर मन्द मति वाले मेरे बहुत कहने से क्या लाभ? हे दीनबन्धो! बहुत थोड़े में जो मैंने आपका ध्यान किया है, उस मेरे अपराध को आप क्षमा करें।

मैं मन से ध्यान करता हूँ; लेकिन आपके रूप को नहीं जानता। ऐसी भावना करता हूँ कि आपका रूप मन्त्राक्षरात्मक है। 'आपका यह रूप है' ऐसा जो वेद कहते हैं, उसकी सिद्धि जप से ही होती है, बाहरी पूजन आदि से सिद्धि नहीं होती।

एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं प्रणामैर्दण्डवत्पुनः।
मन्त्रमूर्त्त्यादिकं सर्वं गुरवे तत्समर्पयेत् ॥२०७॥
तदभावे पूजकाय तद्भक्ताय प्रदापयेत्।
कुर्य्याज्जपं द्विगुणितं सर्वत्रापि च तद्दिनात् ॥२०८॥
प्राग्वच्च भोजयेद्विप्रान् गुर्वादींश्चापि तोषयेत्।
एवन्तु देवतात्यागो मया तुभ्यं निवेदितः ॥२०९॥
इति वैदिकमन्त्रेण सुसभ्यानां कलौ युगे।
विधिर्मया निगदितः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥२१०॥

इति श्रीमहामायामहाकालानुमते मेरुतन्त्रे श्रीशिवप्रणीते
प्रत्यङ्गिरामन्त्रकथनप्रकाशश्चतुर्दशः ॥१४॥

•

इस प्रकार देवेश की प्रार्थना करके दण्डवत् लेटकर प्रणाम करने के उपरान्त

मन्त्र-मूर्त्ति आदि सभी को गुरु के लिये समर्पित कर देना चाहिये। गुरु के न रहने पर पूजा करने वाले उस मन्त्र एवं देवता के भक्त को प्रदान कर देना चाहिये। उस दिन से सभी स्थान पर दुगुना जप करना चाहिये। साथ ही पूर्ववत् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहियें एवं गुरु को सन्तुष्ट करना चाहिये। इस प्रकार तुम्हारे लिये मेरे द्वारा देवत्याग को बतलाया गया।

इस प्रकार कलियुग में सज्जनों के लिये वैदिक मन्त्रों के द्वारा उपासना की विधि का वर्णन मेरे द्वारा किया गया। अब आगे क्या सुनना चाहती हो?।।२०७-२१०।।

इस प्रकार श्रीमहामाया महाकालानुमत मेरुतन्त्र में शिवप्रणीत 'प्रत्यङ्गिरामन्त्रकथन' नामक चतुर्दश प्रकाश पूर्णता को प्राप्त हुआ।

●

Translated & Written by
Giri Ratna Mishra

Sri Kali Tantra & Sri Rudra Chandi

Text with English
Commentary & Introduction

An acme assortment of various mantras, variegated worship rituals and tantric practices of Sri Dakshin Kali, along with glory saga and worship ritual of Sri Rudra Chandi.

Bhootdaamar Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

An authoritative Tantra of Sri Krodha Bhairava along with his; mantras, variegated mandal worship, rituals and accomplishment rituals of Bhootinis, Yakshinis, snake-girls etc.

Uddish Tantra

Text with English
Commentary & Introduction

An authoritative work on various exorcisms, Yakshini accomplishment, Bhootini accomplishment and black magic like Indrajaal compiled by Lankesh Ravan.

Sri Matrika Cakra Viveka

Text with English
Commentary & Introduction

An acme Sri Vidya mantra Shastra of Kashmir, correlating the creation and liberation of this world with Sri Yantra while describing the meaning of Sanskrit alphabets called Matrikas using Sri Yantra.

Sri Bagala Tatva Prakashika

A detailed study on philosophical and worship aspects of Sri Bagalamukhi as mentioned in Vedas, Upanishads, Puranas, Sri Durga Saptashati and Tantra.

तन्त्रशास्त्र-ग्रन्थ

एस.एन. खण्डेलवाल—अनुदित एवं लिखित
- नित्याषोडशिकार्णव
- सर्वोल्लासतन्त्र
- नीलसरस्वतीतन्त्र
- भूतडामरतन्त्र
- सिद्धनागार्जुनतन्त्र
- अनवद्यकल्पतन्त्र
- राधातन्त्र
- सौभाग्यलक्ष्मीतन्त्र
- कालीतन्त्र-रुद्रचण्डीतन्त्र
- तोडलतन्त्र-निर्वाणतन्त्र
- आगमतत्त्वविलास (1-4)
- श्रीसाम्बपुराण
- श्रीदेवीपुराण
- श्रीसौरपुराण
- शाबर मंत्र सागर (1-2 भाग)
- महाचीनक्रमाचारसार तन्त्रम्
- पुरश्चरणरहस्यम्

श्यामाकान्त द्विवेदी—लिखित एवं अनुदित
- श्रीविद्या-साधना (1-2 भाग सम्पूर्ण)
- शक्तितत्त्व एवं शाक्त साधना
- ब्रह्मास्त्रविद्या एवं बगलामुखी-साधना
- काश्मीर शैवदर्शन एवं स्पन्दशास्त्र
- भारतीय शक्ति-साधना
- स्पन्दकारिका
- मुद्राविज्ञान एवं साधना
- कामकलाविलास
- वरिवस्यारहस्य
- महार्थमंजरी
- शिवसूत्र : सिद्धान्त एवं साधना

श्री कपिलदेवनारायण द्वारा अनुदित
- लक्ष्मीतन्त्र (1-2 भाग)
- तन्त्रराजतन्त्र (1-2 भाग)
- श्रीविद्यार्णवतन्त्र (1-5 भाग)
- मेरुतंत्रम् (1-5 भाग सम्पूर्ण)
- देवीरहस्य : (रुद्रयामलतन्त्रोक्त) (1-2 भाग)
- महानिर्वाणतन्त्र
- बृहत्तन्त्रसार (1-2 भाग)
- रेणुकातन्त्र-प्रचण्डचण्डिकातन्त्र

श्री परमहंस मिश्र द्वारा अनुदित
- तन्त्रसार (1-2 भाग)
- कुलार्णवतन्त्र
- नित्योत्सव : श्रीविद्याविमर्शकसद्ग्रन्थ

राधेश्याम चतुर्वेदी—अनुदित एवं लिखित
- कृष्णयामल महातंत्र
- गायत्री महातंत्र
- नेत्रतन्त्र
- कामाख्यातन्त्र
- शक्ति संगम तंत्र (1-4 भाग)
- महाकालसंहिता : (कामकला-कालीखण्ड)
- महाकालसंहिता : (गुह्यकाली-खण्ड) (1-5 भाग)
- तारिणीय पारिजाततन्त्र
- वामकेशवरीयतम्
- श्री तंत्रालोक (1-5 भाग)
- श्रीस्वच्छन्द तंत्र (1-2 भाग)

श्री जगदीशचन्द्र मिश्र द्वारा अनुदित
- त्रिपुरारहस्य (ज्ञानखण्ड एवं माहात्म्यखण्ड)
- त्रिपुरार्णवतन्त्र

श्री रामप्रिय पाण्डेय द्वारा लिखित
- श्रीदक्षिणकालिका-सपर्यापद्धति
- श्रीमहाविद्यापुरश्चरणपद्धति
- कामकलाकालीसपर्यापद्धति
- कालसर्पयोग-शान्तिप्रयोग
- सार्द्धनवचण्डीपुरश्चरण
- श्रीप्रत्यंगिरा-पुनश्चर्या
- विपरीतप्रत्यंगिरापुनश्चर्या
- अष्टलक्ष्मी प्रयोग
- बटुकभैरवसपर्या
- विनायकशान्तिपद्धति

मधुसुदन शुक्ल—अनुदित एवं सम्पादित
- षट्कर्म दीपिका
- सांख्यायन तंत्र
- स्वच्छन्दपद्धति
- श्रीतत्वचिन्तामणि
- त्रिपुरासारसमुच्चय
- ललितास्तवरत्नम् एवं त्रिपुरामहिम्नस्तोत्र

श्री राम चन्द्र पुरी—अनुदित एवं सम्पादित
- प्रपञ्चसारतत्तन्त्रम् (1-2 भाग)
- श्रीतंत्र दुर्गासप्तशती
- सांख्यायनतन्त्र
- षट्वामतन्त्राणि। (तन्त्र)
- ललितात्रिशतीस्तोत्र

सुधाकर मालवीय—अनुदित एवं सम्पादित
- रुद्रयामलतन्त्र (1-2 भाग)
- शारदातिलकम् (1-2 भाग)
- सौन्दर्यलहरी
- मन्त्रमहोदधि

अन्य पुस्तकें—
- विज्ञानभैरव : बापूलाल आँजना
- कृष्ण की तान्त्रिक पूजा : विष्णु आचार्य
- गौतमीयतंत्र : श्री निवास शर्मा
- अभिनवस्तोत्रावलि : चतुर्वेदी
- अनुष्ठान प्रकाशः (भा.टी.) - अभय कात्यायन
- श्री तैलंगस्वामी के तत्वोपदेश – केशव प्रसाद
- बृहन्नील-तन्त्रम् (भा.टी.) – स्वामी शत्रुघ्न दास
- सप्तशती तन्त्रसार – स्वामी शत्रुघ्न दास
- फेत्करणी तन्त्र
- श्री लक्ष्मी-प्रत्यंगिरा
- रुद्रयामल उत्तरतन्त्र – श्रीमनोज कुमार रजक।
- श्री बगला ब्रह्मास्त्र–कल्पः–पं. विकास थपलियाल
- त्रिपुरोपनिषद्–डॉ. क्षितीश्वरनाथ पाण्डेय
- उड्डीशतन्त्रम्–डॉ. शशिशेखर चतुर्वेदी

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी-221001
chaukhambasurbharatiprakashan@gmail.com
www.chaukhamba.co.in
@chaukhambabooks @chaukhambabooks
₹ 5000 set in 5 vols.